राष्ट्रीयता के विविध आयाम

(आलेख-संग्रह)

भाग-1

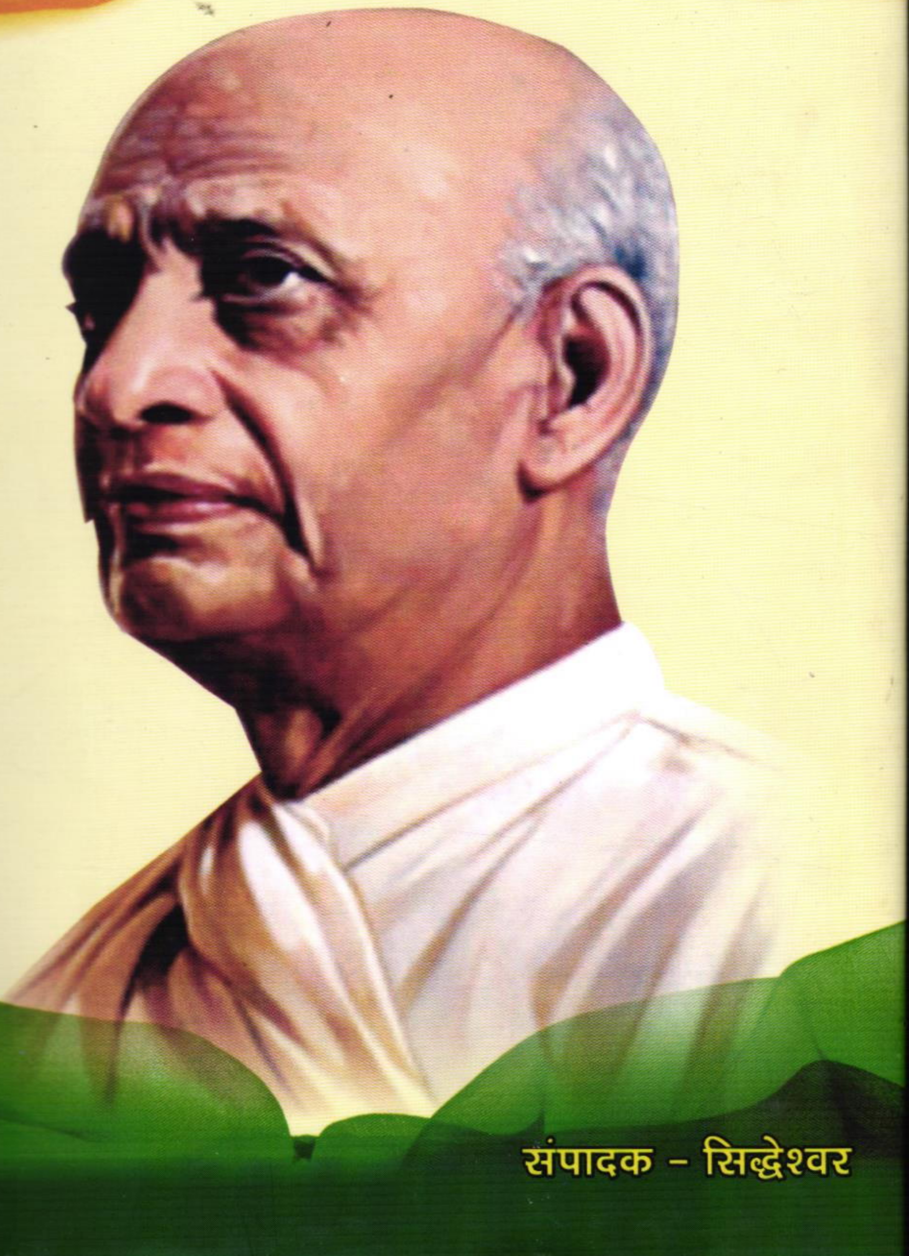

संपादक - सिद्धेश्वर

राष्ट्रीयता के विविध आयाम
संपादक - सिद्धेश्वर

राष्ट्रीयता के विविध आयाम

(भाग-एक)

प्रधान संपादक

सिद्धेश्वर

स्वामित्व

राष्ट्रीय विचार मंच

दिल्ली

प्रकाशक
सरदार पटेल साहित्य प्रकाशन
दिल्ली- 92

राष्ट्रीयता के विविध आयाम

(भाग-एक)

प्रधान संपादक	:	**सिद्धेश्वर**, संस्थापक-संपादक, 'विचार दृष्टि', दिल्ली पूर्व अध्यक्ष, बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड, पटना 'संस्कृति', ए-164, ए.जी. कॉलोनी, शेखपुरा, पत्रा.-आशियाना नगर, पटना-800025, मो.- 9431037221
संपादक मंडल	:	सिद्धेश्वर, डॉ. देवेंद्र आर्य, डॉ. धर्मेंद्रनाथ अमन डॉ. रमाशंकर श्रीवास्तव, अमरेन्द्र कुमार
प्रकाशन प्रबंधक मंडल	:	अरविंद कुमार उर्फ पप्पू, अखिलेश्वर प्रसाद, मनोज कुमार, डॉ. शाहिद जमील, सुरेश कुमार सिन्हा, सुधीर रंजन
प्रकाशक	:	सरदार पटेल साहित्य प्रकाशन, **'दृष्टि'**, यू. 207, शकरपुर, विकास मार्ग, दिल्ली फोन : 011-22530652, मो.: 9811281443
प्रस्तुति-रूपसज्जा	:	डॉ॰ शाहिद जमील, उप संपादक, विचार दृष्टि, दिल्ली
मुद्रक	:	लोकवाणी प्रिंटिंग प्रेस, पटना 29, शशि पैलेस, नाला रोड, पटना मो॰: 9801772460
प्रथम संस्करण	:	वर्ष 2018 ई॰
पृष्ठ सं.	:	320
शब्द-संयोजन	:	अमित कुमार, सुशीला सदन, रोड नं.- 17, राजीव नगर, पटना
मूल्य सजिल्द	:	आठ सौ रुपए मात्र (Rs. Eight Hundred Only)

Rashtriyata Ke Vividh Aayam (Part-1)

Edited by Sidheshwar **Price Rs. 800/**

सिद्धेश्वर : एक नज़र

पूरा नाम : सिद्धेश्वर प्रसाद

संक्षिप्त नाम : सिद्धेश्वर

पिता का नाम : स्व. इन्द्रदेव प्रसाद

माता का नाम : स्व. फूलझार प्रसाद

पत्नी का नाम : श्रीमति बच्ची प्रसाद

जन्म तिथि : 18 मई, 1941

जन्म स्थान : ग्राम+पत्रा.-बसनियावाँ, भाया-हरनौत, जिला-नालंदा, बिहार(भारत)

शैक्षिक योग्यता : सन् 1962 में पटना विश्वविद्यालय से श्रम एवं समाज कल्याण विषय में स्नातकोत्तर

तकनीकी शिक्षा : सन् 1973 में भारतीय लेखा एवं लेखा परीक्षा विभाग से एस.ए.एस. (Subordinate Accounts Service)

सरकारी सेवा : भारतीय लेखा एवं लेखा परीक्षा विभाग के कार्यालय, महालेखाकार, राँची एवं पटना में लेखा परीक्षक से प्रोन्नति प्राप्त करते हुए वरिष्ठ लेखा परीक्षा अधिकारी के पद पर छतीस वर्षों तक सेवा प्रदान करने के पश्चात् सन् 2000 के 31 मई से स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति लेकर वृहतर एवं व्यापक समाज व राष्ट्रहित में सार्वजनिक जीवन में प्रवेश।

सार्वजनिक सेवा : 1.भारतीय रेलवे के रेलवे हिंदी सलाहकार समिति के सदस्य
2. बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड के राज्यमंत्री का दर्जा प्राप्त अध्यक्ष पद पर 15 सितंबर, 2008 से 14 सितंबर, 2011 तक कार्यरत।

अभिरुचि : समाज व साहित्य सेवा तथा पत्रकारिता, राष्ट्रभाषा हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए संघर्षशील तथा रचनात्मक लेखन से जुड़ाव।

रचनाएँ प्रकाशित :1.सामाजिक-'आरक्षण','कल हमारा है', 'समता के सपने', 'आत्ममंथन', 'बिहार के कुर्मी (निबंध संग्रह)' एवं 'बिहार के कुर्मी (निर्देशिका)'
2.स्मृति-'यादें'(भोला प्र. सिंह 'तोमर' की स्मृति में)
3.हाइकु काव्य संग्रह-'पतझड़ की सांझ', 'सुर नहीं सुरीले', 'कवि और कविता'

4. सेन्र्यु काव्य संग्रह-'जागरण के स्वर', 'बुजुर्गों की जिंदगी'

5. काव्य संग्रह-'यह सच है'

6. जीवनी- 'एक स्वप्नद्रष्टा की अंतर्कथा',
'डॉ. मोहन सिंह: एक तपस्वी मन'

7. शैक्षिक-'समकालीन यथार्थबोध'एवं 'समकालीन संपादकीय'

जीवनी-साहित्य : 1.'सिद्धेश्वर:व्यक्तित्व और विचार'-प्रो. रामबुझावन सिंह
2.'सिद्धेश्वर:अंकों से अक्षर तक' डॉ. ब्रह्मचारी सुरेन्द्र कुमार

रचनाएँ प्रकाश्य:साक्षात्कार-1.'हिंदी के जीवंत हस्ताक्षर', डॉ. बलराम तिवारी द्वारा संपादित
2. 'इंसानियत की धुँआती आँखें'
3. 'राष्ट्रीय राजनीति'
4. 'उम्मीद जताते न्यायिक एवं आर्थिक फैसले'
5.'वैश्विक कूटनीति'

भारतीय राजनीति : 'आम आदमी की आवाज'

यात्रा-वृतांत : 'मेरी यादगार यात्राएँ'

आत्मकथा-'जीवन-रागिनी' तथा हाइकु में 'मेरी जीवन-यात्रा'

संस्मरण-1.'हमें अलविदा ना कहें' 2.'जो जीवित हैं हमारे जेहन में'

संपादन- 'राष्ट्रीयता के विविध आयाम' दो भाग में

सम्मान : देश के विभिन्न सामाजिक, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक संगठनों द्वारा पुरस्कृत एवं सम्मानित।

विदेश यात्रा : 13-15 जुलाई, 2007 तक अमेरिका के न्यूयॉर्क में आयोजित 8वें विश्व हिंदी सम्मेलन में बिहार सरकार की ओर से भारतीय प्रतिनिधिमंडल में शामिल होकर सम्मेलन के शैक्षिक सत्र में 'वैश्वीकरण, मीडिया और हिंदी' विषय पर आलेख पाठ एवं परिचर्या में सक्रिय भागीदारी।

संप्रति : राष्ट्रीय महासचिव, राष्ट्रीय विचार मंच, दिल्ली
संस्थापक संपादक, 'विचार दृष्टि', दिल्ली

संपर्क : 'दृष्टि', यू. 207, शकरपुर, विकास मार्ग, दिल्ली-92
दूरभाष: 011-22530652, मो.-9431037221
'संस्कृति' ए-164, पार्क रोड, ए.जी. कॉलोनी, शेखपुरा,
पत्रा.-आशियाना नगर, पटना-800025,
मो.-9431037221, मो.-9472243949

अनुक्रम

पृष्ठ

प्रधान संपादक- सिद्धेश्वर : एक नजर में 3
संपादकीय : श्री सिद्धेश्वर..9
भूमिका : श्री टी. एन. चतुर्वेदी..16
शुभाशंसा : डॉ. ब्रह्मचारी सुरेन्द्र कुमार......................................20

अध्याय : एक

राष्ट्र चेतना के कर्णधार

(1) **भारत की एकसूत्रता के प्रमुख स्तंभ सरदार पटेल**...........22
डॉ॰ मणिशंकर प्रसाद

(2) **राष्ट्रीयता और सरदार पटेल**..30
डॉ॰ चन्द्रिका ठाकुर

(3) **राष्ट्रीय एकता के अधिष्ठाता सरदार पटेल**....................38
डॉ॰ राम सिया सिंह पटेल

(4) **राष्ट्र प्रेम के अमर गायक सुब्रह्मणय भारती**..................48
डॉ॰ कमला विश्वनाथन

(5) **राष्ट्रीय एकता और गाँधी**..54
राज चतुर्वेदी

(6) **कबीर का समन्वयवादी दृष्टिकोण**...................................57
डॉ॰ ए. बी. साई प्रसाद

(7) **क़ौमी एकता के प्रतीक 'शाद' अज़ीमाबादी**....................63
डॉ॰ शाहिद जमील

(8) **राष्ट्रप्रेम और सहजानुभूति के कवि सुब्रह्मण्य भारती**.....82
डॉ॰ निर्मला एस. मौर्य

(9) **सर्वत्यागी देशभक्त निर्भय राष्ट्रवादी सरदार पटेल**..........90
सिद्धेश्वर

अध्याय : दो

साहित्य और राष्ट्रीयता

(1) **राष्ट्र के निर्माण में साहित्य की सार्थकता**......................99
डॉ॰ सुषमा शर्मा

(2) **राष्ट्रभाषा हिंदी और राष्ट्रीय एकता**..............................104
प्रो. नवल किशोर प्रसाद श्रीवास्तव
(3) **साहित्य : भारतीय संस्कृति की संजीवनी**......................113
डॉ॰ दयाकृष्ण विजयवर्गीय 'विजय'
(4) **राष्ट्रीयता और दलित-साहित्य**..119
डॉ॰ मोहम्मद अजहर ढेरीवाला
(5) **राष्ट्र निर्माण में साहित्य की उपादेयता**..........................129
डॉ॰ महेश चंद्र शर्मा
(6) **आधुनिक हिंदी साहित्य में राष्ट्रीय चेतना**.......................135
डॉ॰ देवेन्द्र आर्य
(7) **राष्ट्रीय एकता : हिंदी और दक्षिण भारत**.......................140
डॉ॰ निर्मला एस. मौर्य
(8) **हिंदी काव्य में राष्ट्रीय चेतना के स्वर**............................147
माधुरी शास्त्री
(9) **उर्दू शायरी में सामाजिक एवं राष्ट्रीय चेतना**....................152
चंद्र मौलेश्वर प्रसाद

अध्याय : तीन

भारतीय संस्कृति और राष्ट्र चेतना

(1) **अमर गीत**..162
डॉ॰ धमेंन्द्र नाथ 'अमन'
(2) **धर्म और उसका राष्ट्रीय स्वरूप**....................................178
डॉ॰ श्रीरंजन सूरिदेव
(3) **भारतीय संस्कृति में राष्ट्रीयता की परिकल्पना**................182
कुमार रवीन्द्र
(4) **सांस्कृतिक राष्ट्रवाद**..188
डॉ॰ श्यामसुंदर घोष
(5) **भारतीय संगीत और राष्ट्रीय एकता**................................197
डॉ॰ आरती श्रीवास्तव
(6) **राष्ट्र के सांस्कृतिक मूल्याँकन में लोक साहित्य की भूमिका**..207
डॉ॰ किशोर काबरा

अध्याय : चार

राष्ट्र निर्माण और राष्ट्रीयता

पृष्ठ

(1) राष्ट्र का विकास और नैतिक मूल्यों का तकाजा..........224
प्रो. के. डी. गंगराडे
(2) राष्ट्र निर्माण में युवाशक्ति..........234
मंजुला गुप्ता
(3) राष्ट्र के निर्माण में युवा शक्ति..........238
पी. आर. वासुदेवन 'शेष'
(4) ग्रामीण विकास और राष्ट्रीयता..........242
सिद्धेश्वर

अध्याय : पाँच

विविधा

(1) 'आमुक्त मालयदा' पर श्री वल्लभाचार्यजी का प्रभाव....255
डॉ॰ ए. बी. साई प्रसाद
(2) लोकतंत्र और राष्ट्रीय चेतना..........263
ज्योति शंकर चौबे
(3) राष्ट्रीयता और नारी..........278
सुनीता जाजोदिया
(4) स्त्री सशक्तीकरण का अभियान..........286
डॉ॰ ऋषभदेव शर्मा
(5) राष्ट्र की समकालीन चुनौतियाँ..........291
डॉ॰ चुन्नी लाल शर्मा
(6) राष्ट्रीयता और बाल चेतना..........300
राजनारायण चौधरी
(7) पंचायत राज्य व्यवस्था..........305
डी. पी. महेश्वरी
(8) राष्ट्र और राष्ट्रीयता..........311
प्रह्लाद् श्रीमाली
(9) मीडिया और राष्ट्रीयता..........315
रमेश गुप्त नीरद

समर्पण

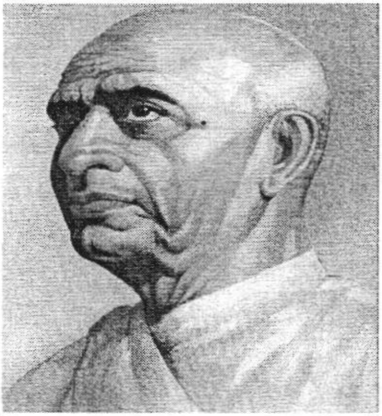

लौह पुरुष सरदार वल्लभभाई पटेल

स्वतंत्र भारत के प्रथम गृहमंत्री,
राष्ट्रीय एकीकरण के प्रमुख
सूत्रधार, दूरदर्शी, अदम्य साहसी,
व्यावहारिक एवं राष्ट्रीय चेतना से ओत-प्रोत
तथा कौशल, क्षमता एवं दृढ़ इच्छाशक्ति से
परिपूर्ण और 'भारतरत्न' से सम्मानित लौहपुरुष सरदार
वल्लभभाई पटेल की पावन स्मृति को समर्पित।

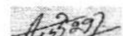

– (सिद्धेश्वर)

संपादकीय

समायोजित राष्ट्र और राष्ट्रीयता के व्यापक क्षेत्र में विभिन्न तत्व आते हैं। वस्तुतः 'जननी जन्म-भूमिश्चः स्वर्गादपि गरीयसी' अर्थात् जननी और जन्मभूमि स्वर्ग से भी बढ़कर होती है- यह भाव भारत में युग-युग से प्रत्येक देशवासी को अपनी मातृभूमि के प्रति प्रेम का भाव जगाने के लिए प्रेरित करता रहा है और राष्ट्रप्रेम के साथ-साथ संपूर्ण राष्ट्र की एकता एवं अखंडता को अक्षुण्ण रखने के लिए प्रोत्साहित किया जाता रहा है।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि आज राष्ट्र जिस दौर से गुजर रहा है, उसमें अपनी मातृभूमि के प्रति अटूट श्रद्धा एवं विश्वास जगाने की जरूरत है। अपनी गौरवपूर्ण संस्कृति के प्रति तीव्रानुराग व्यक्त किए जाने के साथ-साथ राष्ट्र-विरोधी पुरातन रूढ़ियों एवं परम्पराओं के प्रति जन-जन के हृदय में विद्रोह उत्पन्न करने का सामर्थ्य बढ़ाने की आवश्यकता है। संप्रति देशवासी यह महसूस कर रहे हैं कि समस्याओं की जटिलता पहले की अपेक्षा आज कहीं ज्यादा घनीभूत हुई है। सांप्रदायिकता पहले के वनिस्पत अधिक संगठित और भयानक बनी हुई है। साम्राज्यवादी हमलों के तौर-तरीकों में भी परिवर्तन हुआ है। सामंती कुसंस्कार आज भी अपने स्थान पर जस का तस विद्यमान है। जनतांत्रिक मूल्यों पर शोषण-सत्ता के शिकंजे कसते जा रहे हैं। देश-विभाजन का खतरा फिर दिखने लगा है। संसदीय प्रणाली तथा हमारी न्याय व्यवस्था शक के दायरे में आ गई है। देशवासियों में राष्ट्रीयता की भावना का तेजी से ह्रास होता चला जा रहा है। इस संदर्भ में यह कहने की आवश्यकता नहीं कि जिस प्रकार कोई भी देश अपने अतीत के प्रति गौरव की भावना से विहीन होकर स्वाभिमान के साथ खड़ा नहीं हो सकता, उसी प्रकार राष्ट्रीयता की भावना से विहीन देश विकास के पथ पर अग्रसर नहीं हो सकता, दूसरी बात यह है कि किसी राष्ट्र की स्वतंत्रता को अक्षुण्ण बनाए रखने में वहाँ के नागरिकों की राष्ट्रीय चेतना और राष्ट्र निर्माण का उत्साह सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। चेतना और उत्साह ही ऐसे तत्व हैं, जो व्यक्ति के कर्म की ओर प्रेरित करते हैं। हमारे देश की एकता व अखंडता के लिए सबसे बड़ा खतरा हमारे अपने स्वार्थी, पदलोलुप व भ्रष्टाचारी नेता ही बनते जा रहे हैं। निश्चित रूप से ऐसी विषम परिस्थिति में आज राष्ट्र विरोधी शक्तियों एवं शत्रुओं को कमजोर करने की

जरूरत है। कुछ इन्हीं भावों से प्रेरित होकर राष्ट्रीय चेतना की वैचारिक संस्था–राष्ट्रीय विचार मंच द्वारा राष्ट्र की सामूहिक उन्नति, प्रगति एवं समृद्धि हेतु सर्वसाधारण के हृदय में तीव्र ज्वाला प्रज्ज्वलित करने के ध्येय से राष्ट्रीयता पर आधारित इस पुस्तक के प्रकाशन का निर्णय लिया गया है। विश्वास है इस पुस्तक के माध्यम से भारत के स्वर्णिम अतीत के गौरवमय चित्रों की सुंदर झाकियाँ व समृद्ध बनाने की प्रेरणा प्रदान हो जाएँगी, क्योंकि अतीत को केवल वर्तमान के दु:ख को भुलाने के लिए सुखद स्वप्न की भाँति ही चित्रित नहीं किया जाता, वरन् यह भविष्य की प्रेरणा बनकर भी सक्षम रूप में उपस्थित होता है। इसी को मद्देनजर रखते हुए इसकी अधिकतर रचनाएँ पौराणिक अथवा ऐतिहासिक राष्ट्रीय गाथाओं के चित्र एवं घटनाओं से समन्वित एवं प्रेरित हैं। साहित्य, समाज, संस्कृति, धर्म, राजनीति, शिक्षा, पत्रकारिता, भाषा तथा महापुरुषों से संबंधित शोधपूर्ण आलेखों में जहाँ उनकी गाथाएँ अंकित हैं, वहीं प्रत्येक रचना के माध्यम से रचनाकार मानों यह संदेश देता हुआ प्रतीत होता है कि देश के पुरातन युग में मानवता के जिन उच्च मूल्यों की स्थापना हुई और दानवता की जिस हिंसक प्रवृत्ति को हमारे ऐतिहासिक पराक्रमी पुरुषों ने अपने प्राणों की बाजी लगाकर भी पराभूत बनाने का प्रयास किया उनसे निश्चित ही भारत के अतीत का एक उच्च आदर्श झलकता है।

आधुनिक युग में देश की एकता एवं अखंडता की रक्षा का सवाल आज इसलिए भी उठ रहा है कि विदेशी ताकतें भारत की प्रगति और समृद्धि के प्रति ईर्ष्या करती हुई हमारे देश के नवयुवकों को दिग्भ्रमित या गुमराह करने का प्रयास कर रही हैं। ऐसी स्थिति में देश के विभिन्न क्षेत्रों के युवकवृंद गलतफहमी का शिकार होकर देशद्रोही एवं विदेशी शक्तियों के शिकार न हो जाएँ अथवा उसके हाथों का खिलौना न बन जाएँ तथा क्षुद्र लोभ में फँसकर मातृभूमि के प्रति अपना कर्त्तव्य न भुला बैठें, इससे हमें सावधान रहना है तथा उन नवयुवकों को सचेत करना है। ऐसे में यह पुस्तक देश के खासकर तरुण वर्ग को स्वदेश के रक्षार्थ उद्बोधित करती है, क्योंकि हमारे देश के नौजवानों के रहते हुए देश की अस्मिता कभी मिट नहीं सकती। इस प्रकार रचनाओं की चेतना निरंतर राष्ट्रीयता के प्रति सजग दिखाई देती. है।

दरअसल प्रत्येक रचनाकार अपने देश की स्वतंत्रता के प्रति जागरूक होता है। यही कारण है कि अपने भावों के माध्यम से वह राष्ट्रीय स्वाधीनता के गीत गाता हुआ संपूर्ण देश व समाज के कण–कण में जागरण

के स्वर फूँकने का प्रयास करता है। जागरण के ये स्वर देश के प्रत्येक भू-भाग पर निर्भय होकर वैचारिक क्रांति की मशाल जलाने की तथा मुक्ति के हवनकुंड को कण-कण में प्रज्ज्वलित करने की प्रेरणा देता है। इतिहास साक्षी है कि स्वामी विवेकानंद, मैथिलीशरण गुप्त, रामधारी सिंह 'दिनकर', सुब्रह्मण्य भारती, माखनलाल चतुर्वेदी, महादेवी वर्मा, बंकिम चंद्र, प्रेमचंद, शरतचंद, भारतेंदु हरिश्चंद्र, निराला, शंकर कुरूप, जोश मलीहावादी, राम प्रसाद बिस्मिल, तिरूवल्लुवर, बलवंत गार्गी, 'नवीन', अप्पाल, रामलिंगम, गोपाल कृष्ण 'अडिग', शंकर राव देव, मेथानी, गोपीनाथ महन्ती, पाणिग्रही सरीखे राष्ट्रीय चेतना के प्रतिनिधि रचनाकारों ने पौराणिक, ऐतिहासिक कथनों, घटनाओं और पात्रों के माध्यम से सामयिक अपेक्षाओं की पूर्ति कर न केवल रचना धर्म की प्रासंगिकता और सार्थकता प्रतिपादित की, अपितु देशप्रेम की तीव्र अनुभूति, जन्मभूमि के कण-कण के प्रति अगाध ममत्व, श्रद्धा एवं स्नेहभाव से देशवासियों का मार्गदर्शन किया। यही नहीं इन रचनाकारों ने भारतीय संस्कृति के पुनरुद्धार, जीवन के प्रति प्रवृत्ति का, कर्म का, लोक सेवा का संदेश देकर नवीन विश्वास और आस्था तथा संकीर्ण प्रवृत्तियों का खंडन करके राष्ट्र जागरण का सफल प्रयास किया। इन्होंने युग-मानस को झंकृत कर उसमें नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना का मंत्र फूँका।

इस संग्रह की रचनाओं में भारतीयता या स्वदेशी भावना के अंतर्गत देश की प्रतिष्ठा, स्वाभिमान और सम्मान के लिए भारतवासियों में अपनी भाषा, बोली तथा अपनी भूमि से जुड़े हुए राष्ट्रगान तथा स्वतंत्रता के प्रतीक राष्ट्रीय ध्वज पर रचनाकारों के स्वर दिखते हैं। देश की साझी गंध भरी मिट्टी जहाँ नवीन उत्कर्ष के लिए किसान और मजदूर का परिश्रम चाहती है, वहीं देश के सर्वांगीण विकास के लिए ग्रामीण जीवन को समुन्नत बनाने पर बल दिया गया है। देश का वर्तमान परिवेश बौद्धिक उन्नति के लिए प्रबुद्धजनों से नवीन विधान की आकांक्षा कर रहा है। इस दृष्टि से इसकी कई रचनाओं में नवीन युग के उत्कर्ष की आस्था का भाव तथा धरती के प्रति मंगलकामना के बिंदु भी छिपे हुए हैं और साथ ही देश के आंतरिक मूल्यों के प्रति सजग रहने का उपेदश भी ध्वनित है। कई रचनाएँ इस तथ्य को भी व्यक्त करती हैं कि यह संपूर्ण सृष्टि मानवीय समानता के ऊपर ही आधारित है इसलिए सामाजिक समरसता और सांप्रदायिक सद्भाव पर ये रचनाएँ बल देती दिखाई देती हैं।

आतंकवाद और हिंसा के संदर्भ में रचनाकारों ने इस तथ्य को भी

उजागर किया है कि हिंसा वास्तव में मनुष्य का अपना ही अमंगल करती हुई अपनी ही श्वासों में विष भर देती है। संसार का कोई भी कार्य हिंसा और आतंक के बल से कभी संपन्न नहीं होता है तथा यह सृष्टि भी मानवता की उज्ज्वलता को चाहती है। इस दृष्टिकोण से रचनाकारों ने अहिंसा और आतंक के वर्णनक्रम में मानवतावाद के उदात्त आयाम और सत्य अहिंसा की ओर संकेत किया है, क्योंकि संसार में अगर मानवता बची रहेगी, तो उस स्थिति में पृथ्वी की भी रक्षा होगी अन्यथा मानवता का अवमूल्यन होने पर पृथ्वी भी पूरी तरह नष्ट हो जाएगी।

इस संग्रह के रचनाकारों ने भारत की दीन दशा से प्रभावित होकर अपनी रचनाओं से संपूर्ण राष्ट्रीय भावनाएँ व्यक्त की हैं। गुलामी गुलामी है, वह व्यक्ति के लिए कभी भी मान्य नहीं हो सकती। विदेश शासन का अर्थ है उत्पीड़न, शोषण, अत्याचार और दुराचार। राष्ट्रकवि मैथिली शरण गुप्त ने अपनी कृति 'भारत-भारती' में कहा-

'मानस-भवन में आर्य्यजन जिसकी उतारें आरती,
भगवान भारतवर्ष में गूँजे हमारी भारती।'

ठीक इसी प्रकार इसके रचनाकारों ने देश के युवकों एवं नारियों को स्वतंत्रता और राष्ट्र-चेतना का संदेश दिया, देश-प्रेम और प्राणों को बलिदान करने की महती प्रेरणा दी। गौरवगान सुनाकर सजग और सतर्क बनाया। अपने पतन के कारणों पर विचार विमर्श करने के लिए राष्ट्रकवि ने आह्वान किया-

हम कौन थे, क्या हो गए और क्या होंगे अभी,
आओ, विचारें आज मिलकर ये समस्याएँ सभी।

जिस प्रकार देश के अगणित देशभक्तों ने स्वतंत्रता की मशाल प्रज्ज्वलित कर देशवासियों के मन में देशभक्ति एवं अपने अधिकारों के प्रति लड़ने की भावना जाग्रत की थी, अँग्रेजी शासन का विरोध एवं स्वाभिमान जागरण करने वाली 1857 की क्रांति ने देश के सामान्यजन में राष्ट्रीयता का संचार किया था, आज देशवासियों में लुप्त होती राष्ट्रीयता की भावना को जागृत करने का प्रयास हम क्यों नहीं कर सकते? तो आइए, हम सम्मिलित रूप से इसके लिए कदम बढ़ाएँ। राष्ट्रीय विचार मंच ने इसके लिए एक अभियान छेड़ रखा है। दिल्ली में 31 अक्टूबर को लौह पुरुष सरदार वल्लभभाई पटेल के 130वें जयंती-समारोह का आयोजन कर राष्ट्रीयता पर आधारित हिंदी एवं अँग्रेजी में दो पुस्तकों का प्रकाशन और इस

समारोह के अवसर पर राष्ट्रीय एकता रैली का आयोजन उसी अभियान की कड़ी है, जिसके माध्यम से एकता व अखंडता के प्रतीक सरदार पटेल के संदेश को जन-जन तक पहुँचाने का प्रयास किया गया।

हम सब इस बात से पूर्णत: अवगत हैं कि आजादी के पूर्व देशवासियों में राष्ट्रीयता की भावना कूट-कूटकर भरी थी, पर स्वतंत्रता प्राप्ति के कुछ दशक बाद ही उनकी यह देशभक्ति जैसे तिरोहित हो गयी। आज हर तरफ हिंसा, आतंक विध्वंश, आंदोलन, अलगाव का साम्राज्य स्थापित हो गया है। हम देशवासी आज जाति, धर्म, भाषा और क्षेत्रीयता के नाम पर एक दूसरे को कत्ल करने पर आमादा हैं। देश के प्राय: अधिकांश क्षेत्रों में नक्सलवादी, भूमि सेना, पिपुल्स वार ग्रुप, एम.सी.सी. तथा उग्रवादी संगठनों द्वारा सैकड़ों लोगों की हत्या और सार्वजनिक संपत्ति की बर्बादी की जा रही है। क्या यही है राष्ट्रीयता और विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र के नागरिकों का राष्ट्रीय चरित्र? समाज के प्रति न तो कोई प्रतिबद्धता और न राष्ट्र के प्रति कोई लगाव। देश के तथाकथित राजनेताओं की नैतिकता प्राय: शून्य पर है। केवल राष्ट्रीय पर्व-समारोहों पर, झंडोत्तोलन और अपने भाषण में लंबे-चौड़े आश्वासन ही उनकी देश सेवा रह गई है। प्रशासन से जुड़े बड़े-बड़े अधिकारी भी उन्हीं के सुर में सुर मिलाकर लूट में शामिल हैं। पिछले दिनों मुंबई में केंद्रीय उत्पाद कर आयुक्त के यहाँ से पाँच करोड़ रुपए से अधिक की संपत्ति का बरामद होना क्या हतप्रभ करने वाली घटना नहीं है? निजी स्वार्थ में लिप्त हो राष्ट्र हित को लोगों ने तिलांजलि दे रखी है।

गाँधी के खून से रंगे दो हाथ आज करोड़ों हाथ बन गए हैं। राष्ट्रीय एवं सामाजिक दायित्व से बेखबर, बेफिक्र उद्यमियों की विलासी अपसंस्कृति ने आजादी को उच्छृंखलता, उदंडता और अनुशासनहीनता का पर्याय बना दिया है। जेसिका लाल और बी.एम.डब्ल्यू प्रकरण की यादें भी तेजी से धुँधला रही हैं। विडंबना यह है कि इन संपन्न सबल विकृत देशवासियों का कोई वास्ता अपनी जन्मभूमि से नहीं रह गया है। इनका खाना-पहनावा, भाषा-बोली, मनोरंजन के साधन लटके-झटके सब आयातित हैं। दुर्भाग्य से शासक वर्ग के ये प्रतिनिधि बाकी नौजवानों के लिए भी 'रोल मॉडल' बनते जा रहे हैं। इनकी जूठन-उतारन शहर के कस्बों व गाँवों तक पहुँच वहाँ का फैशन बन जाती है। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया और विज्ञापन व्यवसाय मिलकर इस अश्वमेध में जुटे हैं। किसमें है दम जो इन घोड़ों को रोक सके? जरूरत आज लव-कुश बनने की है जो पिछले दरवाजे से घुसे आ रहे और विदेशी

साम्राज्यवादी अंतरराष्ट्रीय परस्परनिर्भरता के नारे बुलंद करते हुए सिंह द्वार से दहाड़ते प्रवेश कर रहे हैं उसको रोकें।

दरअसल, आजादी के बाद जिनके हाथों देश के संचालन का दायित्व सौंपा गया था वे इस बात को अच्छी तरह जानते थे कि आजादी का मतलब सिर्फ राजनीतिक स्वाधीनता नहीं। आर्थिक आजादी यानी आम आदमी का स्वावलंबन इसका अभिन्न हिस्सा है। आम आदमी को लंबी-चौड़ी अर्थशास्त्र की परिभाषाओं से कोई वास्ता नहीं, उसको चाहिए भूख से आजादी। क्या हम ईमानदारी से यह कह सकते हैं कि यह आजादी हमने हासिल कर ली है? आम आदमी को किस मुँह से यह सुझाएँ- 'बोल कि मन आजाद हैं तेरे।' प्राय: प्रत्येक राष्ट्रीय पर्व के अवसर पर 'ऐ मेरे वतन के लोगों जरा आँख में भर लो पानी' सुनकर सिहर तो उठते हैं पर वही 'ढाक के तीन पात'। चाहे संसद का वह पवित्र प्रांगण हो या चुनावी सभा के वक्त किए गए वायदे, सभी झूठ के पुलिंदे सिद्ध हुए। पिछले छह दशक में हमने अच्छे भले अर्थवाले शब्दों को, नारों को इतना अधिक विकृत किया है कि अब उनसे वितृष्णा होने लगी है। 'मेरा भारत महान', 'साम्राज्यवाद', 'जरा आँख में भर लो पानी', 'जय जवान जय किसान', 'भारत उदय', 'फील गुड' तथा 'भारत गाँवों का देश है'- ये सारे शब्द अपना प्रभाव खो चुके हैं। ये शब्द गर्वोन्नत करने की बजाय खीझ और गुस्से से भर देते हैं। पतोन्मुख राजनीतिवाले देश को महान कह जय घोष करना जले पर नमक छिड़कने की तरह लगता है, क्योंकि देश की अधिकांश जनता खासकर गाँवों में बसने वाले लोग आज भी रोटी, कपड़ा तथा मकान जैसी बुनियादी सुविधाओं के लिए मोहताज हैं। भारत को आजादी मिली, हम सभी भारतवासी गौरवान्वित हैं, पर हमारा गौरव, हमारा आत्म सम्मान तभी कायम रह सकता है जब हम जाति, धर्म, वर्ग, वर्ण, भाषा और क्षेत्रीयता से ऊपर उठकर देश के सभी नागरिकों विशेषकर हाशिए पर खड़े अपने हक से अभी तक वंचित लोगों के प्रति सोचें, विचारें और राष्ट्रीय दायित्व निर्वाह की भावना से ओत प्रोत हों। यह पुस्तक उसी सोच और दायित्व की भावना का प्रतिफल है जिसमें देश के पंद्रह राज्यों के कुल 75 प्रतिनिधि रचनाकारों की रचनाएँ शामिल की गई हैं और यह पुस्तक दो भागों में विभाजित है। दोनों के नाम 'राष्ट्रीयता के विविध आयाम' हैं।

इस संदर्भ में यहाँ एक और बात की चर्चा करना यथोचित होगा कि राष्ट्र के प्रति सम्मान के भाव में ह्रास होते जाने से लोगों की सोच में

खोट उत्पन्न होते जा रहे हैं और विचारों में कुप्रवृत्तियाँ पनपती जा रही हैं जिसके लिए वैचारिक क्रांति आवश्यक है। वैचारिक क्रांति से ही लोगों के आचार-विचार और व्यवहार में परिवर्तन लाया जा सकता है और नागरिकों को मानसिक रूप से समृद्ध किया जा सकता है। मानसिक समृद्धि के लिए यह पुस्तक कारगर सिद्ध हो सकेगी, ऐसा मेरा विश्वास है। देशवासियों में राष्ट्र-चेतना लाने तथा नागरिकों में अपने राष्ट्रीय दायित्व का निर्वाह करने के लिए प्रेरित करने में राष्ट्रीयता पर आधारित दोनों पुस्तकें अपनी उपयोगिता सिद्ध कर सकें तो मंच का यह प्रयत्न सार्थक होगा।

मैं हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ उन सभी उदार एवं सहृदय अपने रचनाकारों के प्रति, जिन्होंने अपनी रचनाएँ भेजकर इस पुस्तक को स्तरीय एवं पठनीय बनाने की कोशिश की हैं। रचनाओं के संचयन से लेकर पुस्तक के प्रकाशन तक की यात्रा में जब कभी हमारे समक्ष समस्याएँ आ खड़ी हुईं, मंच के पूर्व राष्ट्रीय अध्यक्ष श्री यू. सी. अग्रवाल के मार्गदर्शन से हमें सदैव प्रोत्साहन मिला। भारत के पूर्व नियंत्रक महालेखापरीक्षक एवं कर्नाटक के पूर्व राज्यपाल श्री टी. एन. चतुर्वेदी की भूमिका तथा कामेश्वर सिंह दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय, दरभंगा के पूर्व कुलपति डॉ. ब्रह्मचारी सुरेन्द्र कुमार की शुभाशंसा से हमारा मनोबल बढ़ा है, मैं तहेदिल से आप दोनों के प्रति आभार प्रकट करता हूँ। इसके साथ ही मैं अभारी हूँ राष्ट्रीय विचार मंच के वर्तमान राष्ट्रीय अध्यक्ष डॉ. नरेन्द्र शर्मा 'कुसुम' का जिनका सहयोग एवं मार्गदर्शन मुझे हर कदम पर मिलता रहा है। संपादक एवं प्रबंधक मंडल के सभी सदस्यों के अपेक्षित सहयोग से ही यह कार्य संपन्न हो पाया है। मंच की ओर से मैं उनके प्रति आभार व्यक्त करता हूँ। मंच के राष्ट्रीय उपाध्यक्ष तथा देश के जाने-माने साहित्यकार डॉ. बालशौरि रेड्डी और गाँधी-दर्शन समिति (राष्ट्रीय) कोलकाता के श्री मंगला प्रसाद के सुझाव काम आए, मैं इन दोनों हस्ताक्षरों के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। हर कदम पर साथ दिया अणुव्रत महासमिति के राष्ट्रीय अध्यक्ष प्रो. धर्मेन्द्र नाथ 'अमन' ने। मैं इन्हें तहेदिल से शुक्रिया अदा करता हूँ।

संपर्क :
'संस्कृति', ए-164, पार्क रोड
ए.जी कॉलोनी, शेखपुरा पटना-25
मो. - 9431037221

राष्ट्रीय महासचिव
राष्ट्रीय विचार मंच, दिल्ली
दूरभाष : 011-22530652

भूमिका

श्री टी. एन. चतुर्वेदी

देशभक्ति राष्ट्रीय भावना की आधारशिला है। देश की आजादी के पूर्व राष्ट्रीयता एक उमंग भर थी। केवल विदेशी शासन और अँग्रेजी साम्राज्यवाद के खिलाफ ही वह उमंग सीमित थी। उन दिनों राष्ट्रीयता के सामाजिक तथा आर्थिक मूलों की ओर लोगों का ध्यान सामान्यत: नहीं जा सका था, किंतु आजादी के बाद वाले भारत में यह बात अब स्पष्ट हो गई है कि राष्ट्रीयता की भावना, जो सामाजिक तथा आर्थिक मूलों से अनिवार्यत: जुड़ी हुई है, हमारी सामाजिक संरचना एवं हमारी संस्कृति की आंतरिक चेतना को नियंत्रित करती है। मुश्किल यह है कि हम देशवासियों के मन में आज राष्ट्रीयता की कोई स्पष्ट कल्पना ही नहीं है। यही कारण है कि यहाँ राष्ट्रीयता की भावना का बड़ी तेजी से ह्रास हो रहा है। सच तो यह है कि हमारी राष्ट्रीयता का मूल आधार है हमारा संविधान। उसकी प्रस्तावना में स्वतंत्रता और समता के साथ बंधुता का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि यह मूल्य व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्रीय एकता सुनिश्चित करने के लिए है। राष्ट्र की एकता तभी मजबूत हो सकती है जब देश में रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति को उचित सम्मान मिले और साथ ही हममें भाई-चारे का विकास हो।

किसी भी राष्ट्र की स्वतंत्रता को अक्षुण्ण बनाए रखने में वहाँ के नागरिकों की राष्ट्रीय चेतना सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। और इस राष्ट्रीय चेतना को बाँधे रखने के लिए वहाँ के नागरिकों में सांस्कृतिक और भावनात्मक एकता के सूत्र होने चाहिए। राष्ट्रीयता की भावना अपने राष्ट्र के गौरवमय अतीत पर गर्व और स्वाभिमान की शक्ति, एकता पर बल-इन सबकी चेतना फैलाने में नागरिकों का योगदान होता है। राष्ट्रीय चेतना कोई निश्चेष्ट भावना नहीं है, बल्कि यह एक अत्यंत गतिमान, उत्प्रेरक तथा स्फूर्तिदायक चेतना है, जो मनुष्य के अपने राष्ट्र के उत्थान एवं समृद्धि हेतु संगठित रूप से प्रयास करने के लिए प्रेरणा प्रदान करती है। राष्ट्रीय चेतना की वैचारिक संस्था-राष्ट्रीय विचार मंच के राष्ट्रीय महासचिव सिद्धेश्वर के संपादकत्व में मंच की ओर से प्रकाशित 'राष्ट्रीयता के विविध आयाम' नाम्नी यह पुस्तक

संभवत: राष्ट्रीयता के विचारों को देशवासियों के मन-मस्तिष्क में भरने और उनकी चेतना को संघटन क्रिया के कार्यो में परिवर्तित करने के लिए प्रेरित करती है। वस्तुत: 'राष्ट्रीयता' शब्द मनुष्य की स्वाभाविक वृत्तियों में से एक प्रमुख वृत्ति है जिसकी वजह से मानव अपने राष्ट्र के प्रति प्रगाढ़ प्रेम एवं अभिन्न लगाव रखता है और वह अपने राष्ट्र को सदा समृद्ध एवं उन्नतिशील देखना चाहता है। कुछ इसी भावना से प्रेरित होकर इसके संपादक ने राष्ट्रहित एवं समग्र समाज-कल्याण के लिए राष्ट्रीयता पर आधारित प्रस्तुत पुस्तक को दो भागों में पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है-'राष्ट्रीयता के विविध आयाम' भाग- एक और दो। सिद्धेश्वर जी हमारी हार्दिक बधाई के पात्र हैं। पाठक इसे पढ़कर अपने आपको गौरवान्वित महसूस करेंगे।

प्रत्येक देश और उनकी संस्कृति के आधार भिन्न-भिन्न होते हैं। भारत और भारतीय संस्कृति का यह अहोभाग्य है कि इसकी आधारशिला त्याग, वैराग्य, ममता, बंधुत्व, दया, करुणा, सत्य और अहिंसा पर टिकी हुई है। इसी अविछिन्न धारा को संतों, साधुओं, श्रमणों, साध्वियों, भिक्षुकों ने प्रवहमान रखा है। यह इस मिट्टी की विशेषता कही जा सकती है कि यहाँ संतों का सम्मान सम्राटों से बढ़कर रहा और संतों ने 'संतन को कहाँ सीकरी सो काम' शब्दावली का सहारा लिया। संस्कृति के सिद्धांतों में मानवीय भावनाओं का समावेश है, लेकिन कोई भी संस्कृति केवल अपने इतिहास एवं यशोगाथाओं के सहारे जीवित नहीं रह सकती। यह तभी संभव है जब उसका अनुयायी वर्ग तदुनुरुप आचरण-विचरण करे और प्राणीमात्र की भलाई के लिए अग्रसर हो। किंतु आज वैसा इस देश में देखने को नहीं मिल रहा है। धार्मिक परंपराओं ने हमारे समाज के साथ न्याय नहीं किया है। इसका परिणाम विभाजित लोकशक्ति के रूप में सामने आया है। भ्रष्टाचार हमारी व्यवस्था का वायरस है जिसके उभरने से व्यवस्था उद्येश्यपरक और सेवापरक नहीं बन पा रही है। आमजन के विरूद्ध हो रहे भ्रष्टाचार को सुधारने की गुंजाईश है, मगर राष्ट्र के साथ हो रही गद्दारी को बर्दाश्त नहीं किया जा सकता। ऐसी विषम परिस्थिति में हमें राष्ट्र व समाज के प्रति प्रतिबद्धता दिखानी होगी। मुझे खुशी इस बात की है कि मंच के राष्ट्र भर में फैले सदस्यों के साथ यह साहस और विवेक है जिसकी वजह से ऐसी पुस्तक प्रकाशित करने के लिए मंच के राष्ट्रीय महासचिव प्रेरित हुए। यह इस बात का परिचायक है कि यह देश पृथ्वी पर ऐसी संस्कृति का संवाहक

है जो प्रेम, करुणा और संवेदना से भरा है। ऐसे ही संवेदकों के बल पर गुलामी के लंबे काल खंड और विदेशी विचारों द्वारा हमारे गौरव ग्रंथों व मान बिंदुओं पर डाली गई गर्द की चादर हटाई जा सकती है और अपने गौरव का, मान का, ज्ञान का, आदर किया जा सकता है और सोते हुए भारत को जगाने और झकझोरने का काम किया जा सकता है।

इस संदर्भ में यह भी कहना युक्तिसंगत लगता है कि लोक चेतना जो भारतीय जीवन की मूल चेतना है यह देश भी उसका वाहक है, किंतु लोकजीवन के तमाम किस्से गीत-संगीत, कलाओं, शिल्पों को बाजार की ताकतों ने घालमेल कर रखा है जिसकी वजह से इसकी जीवतंता और मौलिकता के समक्ष खतरा उत्पन्न हो रहा है। हजारों-हजार गीत, कविताएँ, साहित्य, शिल्प और तमाम कलाएँ नष्ट होने के कगार पर है और उसके गुण ग्राहकों की कमी होती जा रही है, क्योंकि बाजार आज सारे मूल्य तय कर रहा है जो लोक को नष्ट करने का षड्यंत्र है। संस्कृति अलग से कोई चीज नहीं होती, वह हमारे समाज के सालों से अर्जित पुण्य का फल है जिसे बचाने और संरक्षित करने के लिए और इसके विकास के लिए राष्ट्रीय विचार मंच और उसके मुख-पत्र-'विचार दृष्टि' राष्ट्रीय चेतना जाग्रत करने के साथ-साथ अपनी विरासत और लोक को बचाने की ओर अग्रसर है।

'राष्ट्रीयता के विविध आयाम' नाम्नी पुस्तक के दोनों भाग पाठकों के समक्ष प्रस्तुत की गई हैं जिसका उद्येश्य साहित्य और इसके माध्यम से साहित्यिक-सांस्कृतिक चेतना के साथ-साथ राष्ट्रीय चेतना जाग्रत करने हेतु एक आवश्यक वातावरण तैयार करना है। इसकी दृष्टि स्पष्ट, पूर्वाग्रहमुक्त और राष्ट्रीयता की सांस्कृतिक अवधारणा से विनिर्मित है। यह उन मूल्यों के प्रति अडिग और आस्थावान है जिसकी समसामयिकता का तेजी से लोप होता जा रहा है और बाजारवादी आयातित सभ्यता व संस्कृति जिसे तिरस्कृत कर रही है। व्यावसायिकता की इस मरुभूमि में यह पुस्तक साहित्य की मूल्यपरक कसौटी पर उन गिन-चुने नखलिस्तानों की तरह है, जो हाँफती-भागती मनुष्यता के लिए थोड़ा पानी बचाकर रखेगी। इसके सारे सरोकार को सामाजिकता के प्रति प्रतिबद्धता और राष्ट्रीयता की संवेदनात्मक अनुभूतियों से संचालित है। इसके लेखों एवं अग्रलेखों में राजनीति से आक्रांत होकर बिखरते समाज, साहित्य, संचार-माध्यम, धर्म और संस्कृति के सार्वकालिक सरोकारों के मानदंडों से जुड़े सवाल और उभरते प्रश्न एवं संदर्भों से जुड़े तथ्य हैं। इसका दायरा वहाँ तक है जहाँ अभी भी थोड़ी बहुत रोशनी शेष

है। इसके प्रकाशक को विश्वास है कि अँधेरा व्यक्ति और समाज की अंतिम नियति नहीं है। इसके सहयोगी रचनाकारों ने यदि प्रश्न उठाया है, तो उसका जवाब देने का साहस भी किया है और लेखकीय सच को प्रस्तुत करने में कोताही नहीं की है।

सामाजिक व्यवस्था में व्यक्तिनिष्ठ चिंतन घातक हो सकता है। इससे न केवल भ्रष्टाचार पनपता है, बल्कि इससे अराजकता का भी जन्म होता है, जो एक स्वस्थ समाज एवं सबल राष्ट्र के लिए अहितकर है। वैयक्तिकता की सोच पश्चिमी चिंतन की देन है, जिसकी भारतीय संस्कृति से कोई संगति नहीं बैठती है। भारतवासियों की राष्ट्रीयता आज इसी वैयक्तिकता की शिकार है। इसलिए समय की माँग है कि हमें नए वातावरण में अतीत की रीति को फिर से चलाना है, अपनी आत्मा के दर्पण से आपाधापी के मैल को साफ करना है, ताकि हम देशवासी अपने वास्तविक स्वरूप को पहचान सकें। हमें विश्वास है कि इसकी रोशनी में शक और सुबह के बादल छँट जाएँगे, दुविधा और विरोध का कोहरा दूर होगा और मेल व मुहब्बत का आसमान देशवासियों की आँखों की ज्योति वापस लाएगा जिससे हम सब मिलकर राष्ट्र की कौमी जिंदगी का नया ताना-बाना तैयार कर सकेंगे। हमें पूरा भरोसा है कि राष्ट्रीय विचार मंच से जुड़े लोग राष्ट्र के वास्तविक स्वरूप को पहचान कर इसकी समग्ररूपता को फिर से बलवती बना सकेंगे। मंच की ओर से प्रकाशित पुस्तक अपनी पठनीय सामग्रियों के जरिए सबल राष्ट्र के निर्माण में सहयोगी साबित होंगी, ऐसा मेरा विश्वास है। मेरी मंगलकामना और सहानुभूति उनके साथ है।

प्रस्तुत पुस्तक के प्रधान संपादक सिद्धेश्वर जी तथा इनके सभी सहयोगी बंधुओं को हमारी हार्दिक बधाई। विश्वास है इस पुस्तक का साहित्यजगत और देशप्रेमियों के बीच गर्मजोशी के साथ स्वागत होगा।

'प्रकाशालय'
ए-4, सेक्टर-17
नोयडा, गौतमबुद्धनगर
उत्तरप्रदेश

टी. एन. चतुर्वेदी
कर्नाटक के पूर्व राज्यपाल एवं
भारत के पूर्व नियंत्रक-महालेखापरीक्षक
नई दिल्ली

शुभाशंसा

डॉ. ब्रह्मचारी सुरेन्द्र कुमार

बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड के पूर्व अध्यक्ष एवं सुप्रतिष्ठित पत्रकार श्री सिद्धेश्वर जी द्वारा सम्पादित 'राष्ट्रीयता के विविध आयाम' के दोनों भाग उल्लेखनीय कृतियाँ हैं विशेषत: भूमण्डलीकरण के फैलते सर्वग्राही दुष्परिणामों के सन्दर्भ में। भूमण्डलीकरण के प्रवर्त्तकों का मानना है कि अब राष्ट्रीयता की अवधारणा निरर्थक हो चली है। भूमण्डलीकरण, जो बाजारवाद का छद्म नाम है, पाश्चात्य चिन्तकों के अनुसार आर्थिक तथा सांस्कृतिक नवसाम्राज्यवाद का पर्याय है तथा परिचय के उत्पादों की खपत के लिए राष्ट्र की सीमा को बाधक मानता है। वह निर्बन्ध मुक्त व्यापार का ही हिमायती नहीं है, अपितु अपने उत्पादों के लुभावने विज्ञापन द्वारा विकासशील राष्ट्रों की सामाजिक-सांस्कृतिक सोच को भी आक्रान्त करना चाहता है। उन राष्ट्रों की अस्मिता को विखण्डित करना चाहता है।

इस पृष्ठभूमि में भारतीय लेखकों-विचारकों का कर्तव्य है कि वे भारतीय राष्ट्रीय अस्मिता के सन्दर्भ में, उभरते सामाजिक-सांस्कृतिक-राजनैतिक संरचना के सम्बन्ध में आलोचनात्मक दृष्टि अपनावें। प्रस्तुत ग्रन्थ 'राष्ट्रीयता के विविध आयाम' के दोनों पाँच अध्यायों में विभाजित हैं। प्रथम अध्याय 'राष्ट्र चेतना के कर्णधार' के अन्तर्गत कबीर से लेकर अधुनातन चिन्तकों-साहित्यिकों के विचारों का समीक्षण है। द्वितीय अध्याय में राष्ट्रीयता के दृष्टि से साहित्य के महत्व का निरूपण है। तृतीय अध्याय में भारतीय सांस्कृतिक चेतना प्रवाह और राष्ट्रीय अस्मिता का विमर्श है। चतुर्थ अध्याय में राष्ट्र की समृद्धि-शक्ति के संवर्धन के लिए राष्ट्र-भावना की सतत जागरूकता की अपेक्षा का विवेचन है। पंचम अध्याय में राष्ट्रीयता के सन्दर्भ में लोकतंत्र एवं नारी की भूमिका का समीक्षण है। इस प्रकार नि:सन्देह इन दोनों ग्रन्थों में राष्ट्रीयता के विविध आयामों को पूरी शिद्दत से उकेरा गया है।

वर्तमान में हमारा राष्ट्र संक्रमणकाल से गुजर रहा है। समाज के सभी क्षेत्रों में परम्परा को नकारने का प्रयास तो दीख रहा है, परन्तु उससे उत्पन्न विरूपता को सँवारने या आसन्न रिक्तता को भरने के लिए सकारात्मक सोच पनप नहीं रही है। इस त्रासद समस्या की घोर विश्वप्रसिद्ध भाषा-शास्त्री नोआम चौमस्की ने दिल्ली विश्वविद्यालय के छात्रों-शिक्षकों

को लगभग एक दशक पूर्व सम्बोधित करते हुए उनका ध्यान आकृष्ट किया था और चेतावनी दी थी कि वे पाश्चात्य संस्कृति का अनुकरण न करें, क्योंकि वहाँ न तो परिक्य रह गया है और न सामाजिकता। व्यक्तिवाद की उग्रता एवं धनलिप्सा ने उसे ग्रास रखा है। जबकि संयुक्त राष्ट्रसंघ की महासभा ने 1968 में ही परिवार की संरक्षा को राष्ट्रीय अनिवार्यता बताते हुए एक प्रस्ताव पारित किया था। भारतीय परम्परा में परिवार की अवधारणा का पोषण समाज से ध्यान में रखकर किया गया है। वरवधू को आशीर्वाद के रूप में कहा जाता है कि तुम दोनों सौ वर्षों की आयु पूर्णता के बिताओ– अपने घर में नाती–पोतों के साथ आनंद मनाते हुए–

'इहैवास्तं मा वियौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम्।
क्रीडन्तौ पौत्रैः नप्तृभिः मोदमानौ स्वेदमे।।

राष्ट्र की नींव पारिवारिक स्थिरता होती है। इसीके आधार पर समाज–राष्ट्र की अट्टालिका निर्मित होती है। इसके लिए, राष्ट्रीय अस्मिता के लिए सतत जागरूकता की अनिवार्यता होती है। इसी कारण वैदिक उक्ति है– 'राष्ट्रे जागृयाम'। आज के सामाजिक–सांस्कृतिक ताने–बाने को विखण्डन से बचाने के लिए राष्ट्रीय अस्मिता के विविध आयामों के सन्दर्भ में चिन्तन अनिवार्य हो उठा है। इसकी पूर्ति प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रचार–प्रसार से निःसन्देह होगी। इसके आलेखों द्वारा परम्परा और परिवर्तन के अन्योन्याश्रय सम्बन्ध की विकृति तो होती ही है, बाजारवाद से उत्पन्न सामाजिक–सांस्कृतिक–शैक्षिक–राजनैतिक आस्थाविहीनता जो धनलिप्सा के अतिरेक से उद्भूत हुई है, के निराकरण में महत्वपूर्ण योगदान होगा इसमें सन्देह नहीं। अन्त में महाकवि भवभूति के शब्दों को दुहराना चाहूँगा–

ये नाम के चिदिह नः प्रथयन्त्विज्ञां
जानन्ति ये किमपि तान् प्रति नैषयत्नः।
उत्पस्यतेऽस्ति मम कोऽपि समानधर्मा
कालो ध्ययं निवरधिः विपुला च पृथ्वी।।

(जो अवज्ञा से भरे हैं या जिन्हें अपने अल्प ज्ञान का ध्यान है उनके लिए यह रचना नहीं है। यह पृथ्वी विस्तृत है और समय की सीमा नहीं है, अतः कोई न कोई इस ग्रन्थ का 'गुणग्राहक' विद्यमान होगा या जन्म लेगा ही)

'सरस्वती महतां महीतयाम्'

डॉ. ब्रह्मचारी सुरेन्द्र कुमार
पूर्व कुलपति, संस्कृत वि.वि., दरभंगा

अध्याय : एक
राष्ट्र चेतना के कर्णधार
भारत की एकसूत्रता के प्रमुख स्तंभ सरदार पटेल

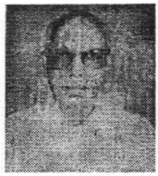

डॉ. मणि शंकर प्रसाद

लौह पुरुष के रूप में विख्यात सरदार वल्लभभाई पटेल न केवल स्वतंत्र भारत के प्रथम गृहमंत्री थे, वरन् राष्ट्रीय एकीकरण के प्रमुख आधारस्तंभ भी थे। भारतीय राजनीति में नेहरू और पटेल का संयोजन महज संयोग या इत्तफाक नहीं था। यह एक ऐतिहासिक मिलन था जिससे राजनीति को एक साथ कई प्रवाह और कई दिशाएँ मिलीं। कतिपय लोगों ने इसे विरोधाभास के गणित के रूप में देखा है तो कइयों ने इसे अहंवाद के टकराव की कवायद के रूप में अंकित किया है, परंतु इस सम्मिलन में निहित सहयोग और समन्वय की विलक्षणता को सही परिप्रेक्ष्य में आँकने का प्रयास बहुत कम लोगों ने किया है।

दोनों की पारिवारिक पृष्ठभूमि, शिक्षा-दीक्षा, सामाजिक परिवेश तथा प्रभावक कारकों में भिन्नता के बावजूद दोनों के बीच समानता का प्रमुख बिंदु था देश के प्रति अगाध प्रेम तथा देश को गुलामी की जंजीरों से मुक्त करने का दृढ़संकल्प। नेहरू पर पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति का प्रत्यक्ष प्रभाव था। इंग्लैंड में शिक्षा प्राप्त करने के दौरान उन पर पाश्चात्य संस्कारों, विशेषकर, ब्रिटिश संस्कारों की स्पष्ट छाप पड़ी थी। उन्होंने अपनी पढ़ाई के दौरान इंग्लैंड के औद्योगिक क्रांति की स्थितियों और परिणामों को नजदीक से देखा और समझा था। अत: नेहरू का आधुनिकता एवं औद्योगिकीकरण की ओर प्रवृत होना स्वाभाविक था और तार्किक भी। दूसरी ओर, सामान्य कृषक परिवार में जन्में-पले तथा विशुद्ध भारतीय संस्कारों से ओत-प्रोत सरदार पटेल का दृष्टिकोण पंडित नेहरू के दृष्टिकोण से भिन्न था। यह भी एक सुखद संयोग था कि दोनों पर गाँधी का प्रत्यक्ष एवं स्पष्ट प्रभाव था। इंग्लैंड से शिक्षा पूरी करने के बाद नेहरू जब भारत आए और यहाँ आकर भारत के गरीब किसानों, मजदूरों तथा अन्य वर्गों के सामान्य लोगों के जीवन-स्तर को देखा और समझा तो उन्हें भारतीय जन-जीवन की धूप-छाँह तथा पाश्चात्य समाज की चकाचौंध के बीच विरोधाभास स्पष्ट नजर आया और वे आहिस्ते-आहिस्ते गाँधीवादी विचारधारा की ओर उन्मुख

हुए। इस तरह नेहरू पर गाँधी का परोक्ष और दूरस्थ प्रभाव पड़ा था, जबकि पटेल पर गाँधी का प्रभाव प्रत्यक्ष एवं निकटस्थ था, यद्यपि प्रारंभिक चरण में सरदार पटेल भी गाँधी के सत्याग्रह आंदोलन के प्रति सशंकित थे। अधिकांश विश्लेषकों का यह मत रहा है कि पटेल नेहरू की अपेक्षा गाँधी के विचारों से ज्यादा निकट थे। इसे एक विरोधाभास ही कहा जा सकता है कि गाँधी के विचारों से पटेल की अधिक निकटता के बावजूद प्रधानमंत्री के रूप में नेहरू के चयन में गाँधी की स्पष्ट सहमति थी, यद्यपि कई प्रसंगों में गाँधी ने इस चयन के औचित्य की परोक्ष रूप से चर्चा की थी। इस चयन के बावजूद न तो गाँधी के प्रति पटेल की आस्था में कमी आयी और न ही पटेल के प्रति गाँधी के विश्वास में कोई फर्क दिखाई पड़ा।

15 अगस्त 1947 को भारत आजाद तो हो गया, परंतु आजादी के बाद सबसे बड़ी चुनौती थी देश के नव निर्माण की। राष्ट्र निर्माण के मसले पर पटेल और नेहरू के दृष्टिकोणों में स्पष्ट भिन्नता थी। नेहरू के सामने राष्ट्र निर्माण का पाश्चात्य मॉडल था। वे एक आधुनिक, औद्योगिक भारत के प्रणेता थे। उन्होंने स्वतंत्र भारत के लिए त्वरित औद्योगिकीकरण की वकालत की। इसके विपरीत, सरदार पटेल कृषि विकास एवं लघु उद्योगों के समर्थक थे। इस दृष्टि से पटेल और गाँधी के विचारों में बहुत हद तक साम्य था। अपने इंग्लैंड प्रवास के दौरान नेहरू ने समाजवाद का भी अध्ययन किया था। वे रूसी क्रांति से प्रभावित थे और 1936 में सोवियत रूस की यात्रा में उन्हें रूसी समाजवाद को निकट से देखने का अवसर मिला। यद्यपि नेहरू ने साम्यवाद का जामा पहनना स्वीकार नहीं किया, तथापि सोवियत रूस की समाजवादी व्यवस्था की सराहना करने से भी चूके नहीं। उन्होंने इंग्लैंड के उदारवादी लोकतंत्र तथा रूस के समाजवाद को मिलाकर एक नया सम्मिश्रण–'लोकतांत्रिक समाजवाद' की अवधारणा का प्रतिपादन किया। इस दृष्टि से नेहरू वामपंथ के निकट थे। इसके विपरीत, सरदार पटेल समाजवादी प्रवाह से अनभिज्ञ थे। उनके चिंतन का मूल आधार था राष्ट्रवाद। अपने सघन राष्ट्रवादी विचारधारा के कारण सरदार पटेल को दक्षिणपंथी तथा प्रतिक्रियावादी होने के आरोप का दंश भी झेलना पड़ा था, किंतु इन आरोपों से विमुख होकर वे अपनी राष्ट्रवादी सोच को कार्यात्मक रूप देने के लिए दृढ़संकल्प थे। उनकी राष्ट्रवादी विचारधारा की सबसे पहली और सबसे महत्वपूर्ण कड़ी थी भारत की एकता। उन्होंने कई अवसरों पर यह बात दुहराई थी–'भारत की

भौगोलिक, राजनीतिक और आर्थिक एकीकरण हमारा चरम लक्ष्य रहा है जिसकी प्राप्ति कठिन दिखती रही है और आज आजादी प्राप्ति के बाद भी इस लक्ष्य की प्राप्ति की आशा क्षीण ही है।' सरदार पटेल को इस बात का पूरा अहसास था कि भारत की एकसूत्रता के मार्ग में सबसे बड़ा बाधक साढ़े पाँच सौ से अधिक देशी रियायतों का पृथक एवं स्वतंत्र अस्तित्व था। यदि ये रियासतें स्वतंत्र राज्यों के रूप में भारत के इर्द-गिर्द बनी रहें तो वे भारत की सुरक्षा एवं संप्रभुता की दृष्टि से खतरनाक होगी। देशी रियासतों की स्थिति के संबंध में बटलर कमेटी ने अपने प्रतिवेदन में स्पष्ट उल्लेख किया था कि ''राजनीतिक दृष्टि से दो भारत हैं-एक भारत 'ब्रिटिश इंडिया' जिस पर ब्रिटिश सरकार की सत्ता ब्रिटिश संसद तथा भारतीय विधानमंडल के अधिनियमों द्वारा अभिव्यक्त होती है और दूसरा भारत देशी रियासतों के रूप में जिन पर ब्रिटिश सरकार का प्रत्यक्ष नियंत्रण है।''

भौगोलिक दृष्टि से भारत एक है और कुशल राजकौशल इन दोनों भागों को मिलाकर एक करने में ही निहित है। सरदार पटेल इस तथ्य से पूर्णतया अवगत थे, पूर्णतया सचेत थे। उन्होंने स्वयं इसे व्यक्त करते हुए कहा था-'हमारा वास्तविक कार्य अब प्रारंभ हुआ है। हमें न केवल बँटवारे से उत्पन्न क्षति को पूरा करना है, न केवल देशी रियासतों को भारत के साथ मिलाना है, बल्कि इन रियासतों को सही परिप्रेक्ष्य में पुनर्गठित कर वहाँ सक्षम और लोकतांत्रिक व्यवस्था स्थापित करनी है।' सरदार पटेल ने इस संकल्प को कार्यरूप देने में अपनी राजनीतिक सूझ-बूझ, प्रशासनिक दक्षता तथा अपनी लौह इच्छाशक्ति का पूर्ण परिचय दिया। न केवल भारत के, वरन् विदेशों के अनेक राजनीतिक विशारदों ने स्वीकार किया कि जिस शांतिपूर्ण ढंग से साढ़े पाँच सौ से अधिक देशी रियासतों के विलयन एवं एकीकरण की प्रक्रिया संपन्न की गयी, वह अपने-आप में अद्भुत एवं बेमिसाल कही जा सकती है और यह इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि सरदार पटेल अलौकिक प्रतिभा एवं विलक्षण राजनीतिज्ञतासंपन्न व्यक्ति थे। देशी रियासतों के एकीकरण के कई बिंदुओं पर सरदार पटेल से मतांतर होते हुए भी पंडित नेहरू ने न केवल इस कार्य में पटेल को समर्थन दिया, बल्कि यह स्वीकार करने में तनिक भी संकोच नहीं किया कि सरदार पटेल भारतीय एकीकरण के प्रमुख सूत्रधार थे।

1947 में भारतीयों को सत्ता हस्तांतरित करने के पश्चात् न केवल भारत से अँग्रेजों की विदाई हुई, वरन् अन्य स्थिति भी चुनौती के

रूप में सामने आयी। साढ़े पाँच सौ से अधिक देशी रियासतों में भी ब्रिटिश सत्ता समाप्त हो गयी। सत्ता समाप्ति की घोषणा के बाद देशी रियासतों के सामने दो विकल्प थे–प्रथम, भारत या पाकिस्तान के साथ विलय, द्वितीय, स्वतंत्र पृथक शासन की स्थापना। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि इन देशी रियासतों का स्वतंत्र सत्ता स्थापित करना भारत की सुरक्षा एवं संप्रभुता के लिए खतरा हो सकता था, अतः भारत हर हालत में इन रियासतों के विलयन एवं एकीकरण का पक्षधर था। गृह मंत्री के रूप में सरदार पटेल के लिए यह गहन चुनौती थी, ऐतिहासिक जिम्मेदारी थी जिसका निर्वहन एवं कार्यान्वयन उन्होंने कुशलता एवं सफलता के साथ किया। इस कार्य का प्रभावपूर्ण ढंग से करने के लिए सरदार पटेल ने 'साम, दाम, दंड तीनों प्रकार के मार्गो को अपनाने में कोई परहेज नहीं किया। अपने मिशन को अपनी योजना और कार्यशैली के अनुरूप पूरा करने में कई बार इन्हें प्रधानमंत्री नेहरू तथा कुछ अन्य कैबिनेट सहयोगियों का विरोध भी झेलना पड़ा, किंतु वे अडिग रहे। कई अवसरों पर तो उन्हें त्यागपत्र तक देने की धमकी भी देनी पड़ी। पंडित नेहरू पटेल की मानसिकता, दृढसंकल्प तथा हठवादिता से पूर्णतया परिचित थे, अतएव पटेल के निर्णयों को स्वीकार करने की उनकी विवशता थी। पाश्चात्य संस्कृति के निरंतर संपर्क में रहने के कारण नेहरू का दृष्टिकोण अंतरराष्ट्रीय हो गया था, जिसके कारण कभी-कभी राष्ट्रीय भावना का संप्रेषण कमजोर हो जाता था। पटेल के चिंतन का प्रमुख आधार राष्ट्रवाद था, इसलिए अंतरराष्ट्रवाद के पोषण के लिए राष्ट्रवाद की भावना की न्यूनतम उपेक्षा भी उनके लिए असह्य एवं अस्वीकार्य थी। दोनों के दृष्टिकोणों एवं कार्यशैलियों के बीच मतांतर के बावजूद प्रशासनिक दायित्वों के निर्वह्ण में दोनों के बीच अपूर्व सहयोग एवं पारस्परिक विश्वास में कहीं कभी कोई कमी नहीं थी। महात्मा गाँधी के मृत्योपरांत तो उनके पारस्परिक सहयोग और विश्वास में प्रगाढ़ता भी आ गयी थी। यह सही है कि कई मुद्दों पर दोनों के बीच गहन मतांतर था और दोनों त्यागपत्र देने की स्थिति पर भी विचार करने लगे थे, किंतु गाँधी का अभिभावकत्व और हस्तक्षेप उनके बीच संजोयी शक्ति रूप में था। गाँधी के मृत्योपरांत दोनों ने महसूस किया कि उनके बीच बढ़ती मतांतर की खाई न केवल काँग्रेस पार्टी के लिए, वरन् संपूर्ण देश के लिए घातक हो सकती है।

एक व्यावहारिक राजनेता के रूप में देशी रियायतों के

विलयन के संबंध में पहला कदम था कि इन रियासतों के नरेशों पर मनोवैज्ञानिक दबाव डालना। इस उद्येश्य से सरदार पटेल ने 5 जुलाई 1947 को देशी नरेशों के नाम एक भावात्मक अपील जारी की, जिसमें भारत की भौगोलिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक एकता की चर्चा करते हुए देशी रियासतों का भारत के साथ विलयन पर बल दिया तथा इसे देशी रियासतों के हित में करार दिया। उन्होंने देशी रियासतों के शासकों को स्पष्ट रूप से समझाया कि उनके अस्तित्व एवं सुरक्षा के लिए भारत के साथ विलयन समय और स्थिति की माँग है। इस भावात्मक अपील के साथ उन्होंने अनेक नरेशों से व्यक्तिगत संपर्क भी स्थापित करने का प्रयास किया। भारत सरकार के कुछ निपुण एवं जिम्मेदार पदाधिकारियों को भारत सरकार के विशेष दूत के रूप में अनेक देशी रियासतों के शासकों के पास गृहमंत्री के विशेष संदेश के साथ भेजा गया। कुछ बड़ी रियासतों के नरेशों से दूरभाष पर स्वयं पटेल ने भी बातचीत की। पटेल के इन प्रयासों का वांछित परिणाम मिला। अधिकांश देशी रियासतों ने भारत के साथ मिलने में ही अपना हित देखा। उत्तर भारत में सांप्रदायिक दंगों के उभरने का भी प्रभाव देशी रियासतों पर पड़ा। पाकिस्तान से उनका मोह भंग हो गया। इसी बीच गृह मंत्रालय द्वारा अभिमिलन पत्र का मसविदा भी तैयार किया गया जिसके द्वारा यह प्रावधान किया गया कि विदेश, प्रतिरक्षा और संचार मंत्रालय भारत सरकार को सौंप दिये जाएँ तथा शेष विषयों पर रियासत का अधिकार बरकरार रहेगा। देशी रियासतों को आश्वस्त करने के उद्येश्य से 5 जुलाई, 1947 को एक पृथक विभाग 'स्टेट्स डिपार्टमेंट' की स्थापना की गयी, जिसे देशी रियासतों से संपर्क स्थापित करने तथा उनकी समस्याओं और सुझावों पर विचार करने की जिम्मेदारी सौंपी गयी। विभाग ने यह जिम्मेदारी बखूबी निभायी।

यद्यपि इस काम को अंजाम देने में सरदार पटेल ने अपनी सूझ-बूझ और कौशल का भरपूर उपयोग किया, उन्होंने नियमित रूप से प्रधानमंत्री नेहरू तथा तत्कालीन गवर्नर जनरल लॉर्ड माउण्टबेटन को समस्त कार्यवाहियों की सूचना देते रहने में कोई चूक नहीं थी।

पटेल की व्यक्तिगत अभिरुचि एवं निष्ठा, नेहरू का सहयोग एवं समर्थन तथा भारत सरकार द्वारा प्रतिनियुक्त पदाधिकारियों की सक्रिय सहभागिता के कारण अच्छे एवं वांछित परिणाम प्रतिफलित हुए। अधिकांश देशी रियासतों के नरेशों ने अधिमिलन पत्रों पर हस्ताक्षर कर भारत के साथ विलयन की सहमति प्रदान की। सरदार पटेल ने एक ओर

इन देशी रियासतों को अपनी मंशा और संकल्प स्पष्ट कर दिया, तो दूसरी ओर उन्होंने धैर्य और अभिरुचि के साथ उनकी समस्याओं को सुना और यथासंभव उनका समाधान भी ढूँढ़ने का प्रयास किया। इन देशी रियासतों में तीन ऐसे थे जो समस्या रियासत के रूप में उभरे। वे थे जूनागढ़, हैदराबाद और जम्मू कश्मीर। जूनागढ़ का शासक मुस्लिम था, किंतु वहाँ के निवासियों में हिंदुओं का बहुमत था। वस्तुतः जूनागढ़ के नवाब की आंतरिक इच्छा थी पाकिस्तान के साथ विलयन और इसके लिए वह पाकिस्तान से सौदेबाजी भी कर रहा था। जूनागढ़ रियासत की बहुसंख्यक हिंदू आबादी तथा इर्द-गिर्द हिंदू रियासतों से घिरे रहने के कारण उसे अपने मकसद में कामयाबी नहीं मिली। रियासत के अंदर आमजनों के विरोध का विद्रोह के कारण नवाब को पाकिस्तान भाग जाना पड़ा और दीवान ने भारत के साथ विलयन के लिए अपनी सहमति प्रदान कर दी, जिसे 20 फरवरी, 1948 को जनमत संग्रह द्वारा अंतिम स्वीकृति दे दी गयी। जूनागढ़ विलयन में सरदार पटेल ने जिस प्रकार के कौशल और दृष्टिसंकल्प का परिचय दिया उसकी सराहना तत्कालीन गवर्नर जेनरल लार्ड माउण्टवेटन ने भी की। जूनागढ़ की विषम स्थिति के निदान के लिए 13 नवम्बर 1947 को सरदार पटेल स्वयं जूनागढ़ गए तथा बहाउद्दीन कॉलेज के प्रांगण में विशाल जन समूह को संबोधित कर भारत के पक्ष में जन समर्थन प्राप्त किया। सार्वजनिक रूप से जन समर्थन की अभिव्यक्ति के बाद नवाब के लिए स्वविवेक का कोई विकल्प नहीं रहा और अंततोगत्वा उसे पाकिस्तान भाग जान पड़ा।

हैदराबाद का विलयन भी एक विशद् एवं दुरूह कवायद थी। हैदराबाद का निजाम स्वतंत्र एवं पृथक राज्य की स्थापना का हिमायती था। उसने भारत सरकार के साथ समझौता के संदर्भ में इतनी सारी समस्याएँ एवं आपत्तियाँ उठायीं कि सबों को यह महसूस होने लगा कि हैदराबाद का विलयन संभव नहीं है। उनके अंतरिम समझौते के बावजूद विलयन दूरस्थ ही दिख रहा था। उनके समझौतों और सहमति पत्रों की विफलता से खिन्न सरदार पटेल ने अंततोगत्वा सैनिक कार्रवाई, जिसे उन्होंने 'पुलिस कार्रवाई' की संज्ञा दी, का निर्णय लिया और इसके लिए अपने विश्वसनीय अधिकारियों से परामर्शोपरांत एक योजना तैयार की। पंडित नेहरू हैदराबाद में सैनिक कार्रवाई के समर्थक नहीं थे और तत्कालीन ब्रिटिश कमांडर-इन-चीफ जेनरल बूचर ने भी इसी प्रकार की मंत्रणा दी थी। दूसरी ओर, सरदार पटेल

पुलिस कार्रवाई के लिए कटिबद्ध थे। मेजर जनरल चौधरी को सैनिक कार्रवाई का कमान सौंपा गया। 15 सितम्बर 1947 को भारतीय फौज की टुकड़ी को मार्च करने की घोषणा कर दी गयी, किंतु गोपनीयता एवं सामरिक कारणों से दो दिनों पूर्व फौज की टुकड़ी को कूच करने का लाभ यह हुआ कि कार्रवाई सफलतापूर्वक संपन्न हो गयी। इसके अतिरिक्त एक बड़ा खतरा टल गया। 15 सितम्बर की मध्य रात्रि तक उन तमाम पुलों को ध्वस्त कर दिया गया था जिधर होकर भारतीय फौज को गुजरना था। पुलिस कार्रवाई को मनोवांछित प्रभाव पड़ा। निजाम को अंततोगत्वा भारत के साथ विलयन के लिए विवश होना पड़ा और 23 नवम्बर 1947 को हैदराबाद विधिवत् भारत का अंग बन गया।

जम्मू कश्मीर के विलयन की समस्या अत्यधिक जटिल बनी हुई थी। जम्मू कश्मीर का शासक हिंदू था और रियाया में मुसलमानों का बहुमत था। पाकिस्तान जूनागढ़ की तर्ज पर कश्मीर को पाकिस्तान के साथ विलयन के लिए प्रयासरत था। प्रारंभिक दौर में तत्कालीन महाराजा हरि सिंह ने भारत का पाकिस्तान के साथ विलयन की कोई इच्छा नहीं दिखायी, फलस्वरूप यह मामला पेचीदा बन गया। यद्यपि कश्मीर का प्रधानमंत्री एवं गृहमंत्री होने के कारण वे तटस्थ नहीं हो सकते थे। प्रारंभिक दौर में उन्होंने महाराजा हरि सिंह को पत्र लिखा था कि जम्मू कश्मीर का भारत के साथ विलयन उनके हित में है, किंतु महाराजा ने पटेल के परामर्श पर विशेष ध्यान नहीं दिया। सरदार पटेल हैदराबाद की तर्ज पर कश्मीर में भी सैनिक कार्रवाई के पक्षधर थे, किंतु पंडित नेहरू सैनिक कार्रवाई के पक्षधर नहीं थे। यद्यपि 1948 में पाकिस्तान समर्थित एवं नियोजित कबायली आक्रमण का मुकाबला करने में विफल महाराजा हरि सिंह को भारत के साथ विलयन के अधिमिलन पत्र पर हस्ताक्षर करने के लिए स्वीकृति देनी पड़ी, किंतु इसके लिए जनमत संग्रह की शर्त रख दी गयी। पाकिस्तान ने संपूर्ण कश्मीर विवाद को संयुक्त राष्ट्र संघ को सौंपने के लिए भारत सरकार को बाध्य कर दिया। इस संपूर्ण कांड में दो व्यक्तियों की विवादास्पद भूमिका रही है, शेख अब्दुल्ला तथा लार्ड माउण्टबेटन। शेख अब्दुल्ला ने कश्मीर के जनमत का गलत चित्र प्रस्तुत कर पंडित नेहरू को प्रभावित कर जनमत संग्रह के लिए राजी करा लिया और इधर लार्ड माउण्टवेटन के प्रभाव से आवेष्टित उन्हें इस विवाद को संयुक्त राष्ट्र संघ को सौंपने की सहमति देनी पड़ी। कतिपय समीक्षकों का यह मत है कि

यदि सरदार पटेल को प्रत्यक्ष रूप से कश्मीर के विलयन की जिम्मेदारी सौंपी गई होती तो अन्य रियासतों की तरह कश्मीर का विलयन भी अंतिम और संपूर्ण होता। आज की कश्मीर समस्या उसी भूल की देन है।

कश्मीर विवाद के लिए एकमात्र पंडित नेहरू की जिम्मेदार ठहराना उचित नहीं है, क्योंकि कश्मीर में इतनी सारी समस्याएँ एक साथ पैदा हो गयी थीं कि उनका एक बारगी समाधान सहज नहीं था। कश्मीर में मुस्लिम आबादी का बहुमत, तत्कालीन महाराजा की महत्वाकांक्षा एवं हठवादिता, घाटी के लोकप्रिय नेता शेख अब्दुल्ला की विवादास्पद भूमिका तथा पाकिस्तान सरकार की गहरी और सक्रिय अभिरुचि ने कुल मिलाकर एक ऐसी विषम स्थिति प्रस्तुत कर दी थी कि पंडित नेहरू को झुकना पड़ा। पंडित नेहरू पर दोषारोपण किये बिना यह कहने में कोई आपत्ति नहीं है शायद पटेल इस स्थिति का बेहतर मुकाबला कर सकते थे। पंडित नेहरू एक स्वप्नद्रष्टा थे, रूमानी आदर्शवादी थे तथा अंतरराष्ट्रीयता के पोषक थे। दूसरी ओर पटेल व्यावहारिक एवं राष्ट्रीय चेतना से परिपूर्ण दृढ़संकल्प व्यक्ति थे। उनकी प्राथमिकता थी भारत का एकीकरण जिसे उन्होंने पूरे निश्चय और निष्ठा से पूरा किया। देशी रियासतों के विलयन के संबंध में उन्होंने स्पष्ट कहा था-'मैं भारत का बाल्कनाइजेशन नहीं होने दूँगा।' इस दृष्टि से उन्हें भारत का बिस्मार्क भी कहा जाता है। भारत के एकीकरण में उनके योगदान के संबंध में उनके कटु से कटु आलोचक भी स्वीकार करते हैं कि 554 देशी रियासतों का विलयन एवं एकीकरण सरदार पटेल के कौशल, क्षमता तथा दृढ़ इच्छाशक्ति की विलक्षणता थी।

राष्ट्रीयता और सरदार पटेल

डॉ. चन्द्रिका ठाकुर

'राष्ट्रीयता' ऐसी भावना है जिसका संबंध मानव की अंत:करण एवं भीतरी चेतना से होता है। 'राष्ट्रीयता' शब्द मनुष्य की स्वाभाविक वृत्तियों में से एक प्रमुख वृत्ति है जिसके कारण मानव अपने राष्ट्र के प्रति प्रगाढ़ प्रेम एवं अभिन्न लगाव रखता है और वह अपने राष्ट्र को सदा समृद्ध एवं उन्नतशील देखना चाहता है। इसी भावना से प्रेरित होकर मनुष्य अपने राष्ट्रीय हित एवं कल्याण के लिए अपने आपको न्योछावर एवं बलिदान कर देता है। इसी बलिदान और त्याग में एक सच्चा देशभक्त अपने आपको गौरवान्वित अनुभव करता है। भारत माता के इन्हीं सच्चे एवं कर्मठ सपूतों में से एक वल्लभभाई पटेल थे। इस महान देशभक्त का जन्म गुजरात के कुर्मी नामक क्षत्रिय जाति में भगवान राम के पुत्र 'लव' के नाम पर 'लेवा' और 'कुश' के नाम पर 'कदवा' दो उपजातियों में से लेवा जाति में 31 अक्टूबर 1875 ई. को बोरसद तालुक के करमसद ग्राम के एक कृषक परिवार में हुआ था।

वल्लभभाई पटेल बचपन से ही विद्रोही प्रवृत्ति के थे। गलत इन्हें कदापि सह्य नहीं होता था। वल्लभभाई की यह हाजिर जवाबी प्रवृत्ति अपने पिता से विरासत में मिली थी। इनके पिता झबेरभाई जी क्रांतिकारी स्वभाव के थे। झबेरभाई ने 1857 के सिपाही विद्रोह में अपने-आपको बलिदान कर दिया था। वल्लभभाई पटेल की माता का नाम लाड़बाई था। वल्लभभाई, भाई में चतुर्थ स्थान पर थे। इनसे बड़े तीन भाई थे-बिट्ठल भाई, सोमा भाई, नरसिंह भाई। बहन आहीबा सबसे छोटी थी।

वल्लभभाई की प्रारंभिक शिक्षा करमसद गाँव के ही विद्यालय में हुई थी। माध्यमिक शिक्षा के लिए पटेल को नडियाद और बड़ौदा जाना पड़ा था।

वल्लभभाई पटेल में राष्ट्रीयता की भावना कूट-कूट कर भरी थी। आन-बान-शान का दूसरा नाम था वल्लभभाई पटेल। ये अपने क्रांतिकारी स्वभाव के कारण ही एक बार इन्होंने पुस्तक खरीद-बिक्री को लेकर विद्यालय के शिक्षक के विरूद्ध आंदोलन किया था जिसमें विद्यालय

के सभी विद्यार्थियों ने वल्लभभाई का साथ दिया था। परिणाम यह हुआ कि शिक्षक महोदय को वल्लभभाई के समक्ष झुकना पड़ा था। तत्पश्चात् वल्लभभाई ने अपना आंदोलन वापस ले लिया। इस तरह की अद्‌भुत एवं अजीबोगरीब घटनाएँ वल्लभभाई ने अपने स्कूली जीवन में ही कई बार कर दिखायी थीं। वल्लभभाई का यह क्रांतिकारी एवं विद्रोही स्वभाव धीरे-धीरे समय के साथ और अधिक प्रबल होने लगा। अंततोगत्वा वल्लभभाई सन् 1897 में नडियाद आये और यहाँ से इन्होंने माध्यमिक परीक्षा पास की।

आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं रहने कारण वल्लभभाई को ऊँची शिक्षा में काफी बाधाएँ आयीं। आर्थिक स्थिति से मुक्ति पाने के लिए मामाजी ने इन्हें अहमदाबाद बुलाया, पर वल्लभभाई के लिए नौकरी करना अच्छी बात नहीं थी। वे पराधीनता को स्वीकार नहीं करते थे। पराधीनता वल्लभभाई के लिए काली कोठरी की भाँति थी। इसका आँखों देखा हाल सन् 1921 ई. के इनके असहयोग आंदोलन के भाषण में देखने को मिलता है। यह भाषण वल्लभभाई की अद्‌भुत प्रतिभा का जीता-जागता प्रमाण है। यह लौह पुरुष के लिए नौकरी तो एक बंधन है। पटेल का जन्म सिर्फ नौकरी करने के लिए नहीं हुआ था। वरन् भारत के इतिहास में एक वल्लभ ने इतिहास का निर्माण करने के लिए हुआ था जिसको वल्लभ ने सार्थक सिद्ध कर दिखाया।

अठारह वर्ष की अल्प आयु में वल्लभभाई का विवाह पड़ोस के गाना नामक गाँव के झबेर वा के साथ संपन्न हुआ था। शादी के समय झबेर वा मात्र तेरह वर्ष की थी। वल्लभभाई परंपरा को पालन करने में भी सिद्धहस्त थे। यही कारण है कि वकील बन जाने के बाद इन्होंने अपना पारिवारिक जीवन आरंभ किया था। संयम और निष्ठा इनका संबल था। ये कर्त्तव्यपरायण थे। सत्य और निष्ठा इनके व्यक्तित्व का सबसे बड़ी पहचान है।

सन् 1900 ई. में वल्लभभाई ने मुखतारी की परीक्षा पास की थी। सन् 1902 में वल्लभभाई बोरसद आये। बोरसद वस्तुतः वल्लभभाई अपने अग्रज विट्ठल भाई के मदद के लिए आये थे। बोरसद में दोनों भाई एक दूसरे से अलग रहते थे, ताकि अन्य लोग एवं सरकारी अधिकारी समझे कि दोनों भाइयों में अनबन है। तबतक वल्लभभाई दो संतान के पिता बन चुके थे। 1903 में पुत्री मणिबेन और नवंबर 1905 में पुत्र डाह्याभाई का जन्म हुआ।

वल्लभभाई की कानूनी विद्या एवं वकीली चातुर्य से सभी लोग घबराने लगे थे। इन्होंने कितने निर्दोष व्यक्तियों को भी अपनी तीक्ष्ण बुद्धि से रिहाई करवायी। इसलिए विवश होकर अँगरेज सरकार को बोरसद से अदालत हटाकर आणंद लाना पड़ा था। वल्लभभाई फिर बोरसद से आणन्द आ गये। वहाँ भी फिर वही स्थिति हुई जो वल्लभभाई को बोरसद में रहने से होती थी। अंत में तंग होकर सरकार को फिर अदालत आणंद से बोरसद लाना पड़ा था।

वल्लभभाई जिस दिन विलायत के लिए प्रस्थान करने वाले थे, उसी दिन एक सोनार को एक स्त्री के साथ व्यभिचार करने के आरोप में अभियोग था। वल्लभभाई ने सोनार की ओर से कलेक्टर के यहाँ पैरवी की थी। तत्पश्चात् कलेक्टर ने वल्लभभाई से पूछा-क्या व्यभिचार कानून में अपराध है? वल्लभभाई ने उत्तर दिया-नहीं साहब, सुधरे हुए देशों में यह अपराध ही नहीं है। मगर इस पिछड़े हुए देश में सरिश्तादार और नीचे के अदालत मजिस्ट्रेट जैसे पुराने कट्टरपंथी और संकीर्ण विचार के ब्राह्मण इस काम को बड़ी कड़ी नजर से देखते हैं। कलेक्टर ने अविलंब अभियुक्त को छोड़ दिया। वल्लभभाई की चातुर्य एवं कुशाग्रता से सरिश्तादार क्रोध को पी कर रह गया। वल्लभभाई हमेशा दूसरे की हित की चिंता करते एवं रखते थे। अपने लिए पटेल कभी चिंता नहीं करते थे। यही कारण है कि वल्लभभाई को सदा सभी का स्नेह एवं प्यार मिलता था, मिला है और भविष्य में भी मिलेगा।

सन् 1905 ई. में वल्लभभाई विलायत वैरिस्टरी करने के लिए जाने की सारी व्यवस्था कर ली थी, परंतु जिस कंपनी के माध्यम से विलायत जाने का टिकट मिलने वाला था, वह टिकट भरा पत्र विट्ठलभाई को हाथ लग गया। अब क्या कहना था विट्ठलभाई को भी विलायत जाने की इच्छा हो गई। अनुज वल्लभभाई ने अग्रज की बातों को सहर्ष स्वीकार कर लिया। अंतत: वल्लभभाई स्वयं विलायत न जाकर अग्रज को बैरिस्टरी करने के लिए विलायत भेजा तथा उनके विलायत के खर्च की भी जिम्मेदारी वल्लभभाई ने ही ली। जोखिम एवं आज्ञाकारी प्रवृत्ति के वल्लभभाई में जबावदेही, जोखिम एवं दायित्व उठाने की प्रवृत्ति बचपन से ही विराजमान थी, जो बढ़ती हुई उम्र के साथ और अधिक दृढ़ होती गई। विट्ठल भाई सन् 1906 में विलायत गये और 1908 में वे बैरिस्टरी पास कर स्वदेश लौटे।

वल्लभभाई की पत्नी झबेर वा अंतड़ियों के रोग से ग्रसित थीं। चिकित्सा के लिए इन्होंने अग्रज विट्ठलभाई के पास बम्बई में पत्नी को रखा था। डॉक्टर ने सलाह दी कि पंद्रह दिन बाद ऑपरेशन होगा। तबतक एक मुकदमें को लेकर वल्लभभाई पत्नी को अग्रज के यहाँ रखकर आणंद चले आये। लेकिन स्थिति इतनी खराब हो गई कि झबेर वा का ऑपरेशन समय से पूर्व करना पड़ा। ऑपरेशन संतोषजनक हुआ, लेकिन दुर्भाग्य से झबेर वा ऑपरेशन के दूसरे दिन ही इस संसार से जाने के लिए बाध्य हो गई। अंततोगत्वा झबेर वा ईश्वर को प्यारी हो गई। जब पत्नी की मृत्यु का टेलीग्राम वल्लभ को मिला, तब वे न्यायालय में एक मुकदमे की पैरवी कर रहे थे। जरा सोचिये उस समय वल्लभभाई के जीवन पर क्या गुजरा होगा? लेकिन वल्लभ का जन्म सिर्फ अपने लिए नहीं हुआ, वरन् सबके कल्याण के लिए हुआ था। ऐसे भयंकर संकट की घड़ी में भी इन्होंने धैर्य एवं साहस को नहीं खोया और मुकदमा का बहस करते रहे। ऐसे थे वल्लभाई पटेल जिनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व का वर्णन तभी हो सकता है, जब लेखक के हाथों में सोने की कलम और स्याही के बदले मधु का प्रयोग हो।

वल्लभभाई जब 33 वर्ष के थे, तभी इनकी पत्नी स्वर्ग सिधार गई थीं। पत्नी की मृत्यु के बाद मित्रों तथा संबंधियों ने इन्हें दूसरी शादी करने को कहा, परंतु वल्लभभाई अपने निश्चय पर अटल एवं अडिग रहे। भार्या की मृत्यु के पश्चात् 1910 ई. में वल्लभभाई ने बैरिस्टरी के लिए विलायत प्रस्थान किया और वहाँ जाने के पश्चात् इन्होंने बैरिस्टरी के लिए मिडिल टेम्पल में नामांकन कराया।

विलायत में ही वल्लभभाई के पैर में नहरूआ का रोग हो गया था। वल्लभभाई एक भारतीय डॉ. पी. टी. पटेल की सम्मति से नर्सिंग होम में भरती हो गये, परंतु वहाँ दो बार ऑपरेशन होने के बाद भी डॉक्टर को सफलता नहीं मिली। अतः तीसरी बार पुनः डॉ. पी. टी. पटेल ने अपने एक प्रोफेसर को रोग के विषय में विस्तृत जानकारी दी। तत्पश्चात् प्रोफेसर ने बिना क्लोरोफॉर्म का ऑपरेशन किया। डॉक्टर बहुत चकित हुआ और बोला ऐसा साहसी रोगी हमने पहली बार देखा है। सरदार पटेल ऐसे साहसी और वीर पुरुष थे। इस ऑपरेशन के बाद पटेल पूर्णतः स्वस्थ हो गये। 1912 ई. तक इन्होंने बैरिस्टरी की अंतिम परीक्षा पास की थी। बैरिस्टरी की परीक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त करने के कारण वल्लभभाई को 50 पौण्ड का

नगद ईनाम भी मिला था।

13 फरवरी, 1913 ई. को वल्लभभाई बैरिस्टिरी की पढ़ाई समाप्त कर स्वदेश लौटे। स्वदेश लौटते ही वल्लभभाई के व्यक्तित्व में स्वाधीनता की लहर दौड़ पड़ी थी। सन् 1921 ई. को वल्लभभाई द्वारा दिये गये भाषण से यह बात प्रमाणित हो जाती है। वल्लभभाई कहा करते थे-'स्वतंत्रता' के लिए हमें सन्यासी बनना होगा, स्वार्थ त्याग करके सेवा करनी होगी। इसलिए विट्ठलभाई तथा वल्लभभाई ने निश्चय किया कि एक भाई देश सेवा करेगा और एक भाई कुटुम्ब सेवा और ऐसा ही किया भी। पुण्य कार्य विट्ठल भाई के हिस्से में पड़ा और वल्लभभाई के सिर पर पाप कार्य, परंतु वल्लभ यह कहकर मन को बहला लेते थे कि उनके पुण्य में मेरा भी हिस्सा है। ऐसे थे सदाबहार एवं जिंदादिल वल्लभभाई पटेल जिन्हें स्वार्थ कभी स्पर्श नहीं कर पाया था।

1917 ई. में वल्लभभाई अहमदाबाद म्युनिसिपैलिटी के सदस्य चुने गये। 1917 ई. में ही प्लेग की बिमारियों से इन्होंने अहमदाबाद के वासियों को जो सुरक्षा प्रदान की थी, वह राष्ट्रीय इतिहास में सदा चिरस्मरणीय रहेगा। 1918 ई. में फिर द्वितीय बार इन्फ्लुएंजा फैला तो वल्लभभाई ने निःशुल्क चिकित्सा की व्यवस्था कराई थी। ऐसे प्रतिभावान एवं राष्ट्रभक्त वर्तमान युग में मुझे जहाँ तक अनुभव एवं ज्ञान है, मिलना मुश्किल है और यदि राष्ट्र के किसी कोने में मिल भी जाये तो वह शोध का ही विषय होगा। इसी तरह दिनानुदिन अहमदाबाद में वल्लभभाई की ख्याति बढ़ती गई और एक नेता के रूप में उभरकर जनता के सामने आये।

सन् 1916 ई. में वल्लभभाई का सर्वप्रथम महात्मा गाँधी से संपर्क हुआ था। बेगार विरोधी आंदोलन को मूर्त रूप देने में वल्लभभाई पटेल ने जो अद्भुत एवं अभूतपूर्व कार्य किया, उससे गाँधी जी अत्यधिक प्रसन्न हुए। तभी से भारतीय राजनीति में वल्लभभाई महात्मा गाँधी के विश्वास पात्र बन गये। गाँधी जी ने कहा था-'करमसद गाँव वल्लभभाई का है। वल्लभभाई यद्यपि अभी आग में हैं और उन्हें अच्छी तरह तपना है परंतु मेरा विश्वास है, वे उसमें से कुंदन बनकर निकलेंगे।' इसी पुस्तक के इसी पृष्ठ में गाँधी जी ने फिर कहा है 'जैसे-जैसे वल्लभ मेरे निकट आये, मेरा उनपर विश्वास बढ़ता गया और वे मेरे लिए अनिवार्य हो गए। यदि मुझे वल्लभभाई न मिले होते तो जो काम हुआ वही नहीं होता।'

1920 ई. में विदेशी आभूषणों का बहिष्कार किया गया।

स्वदेशी कपड़े का प्रचार किया गया। तभी से वल्लभभाई ने खादी पहनना शुरू किया था। 1930 ई. में अहमदाबाद में काँग्रेस का अधिवेशन हुआ था जिसके स्वागताध्यक्ष वल्लभभाई थे। महात्मा गाँधी जब साबरमती आश्रम से गिरफ्तार कर लिए गये थे तो वल्लभभाई ने जनता को हतप्रभ देखकर कहा था- 'जैसे एक इमारत को बनाने वाला उसके प्लान बनाने वाले इंजीनियर के बराबर शक्ति रखने का दावा नहीं कर सकता, किंतु फिर भी वह प्लान के अनुसार इमारत को पूरी करने में कठिनाई नहीं पाता, उसी प्रकार गाँधीजी के साथी उनकी तैयार की हुई स्वराज की इमारत का प्लान यदि भली-भाँति समझ गए हैं तो उस प्लान के मुताबिक इमारत का काम बढ़ाने में घबरायेंगे नहीं।'

महात्मा गाँधी के जेल जाने के पश्चात् वल्लभभाई उपसेनापति बने और इन्होंने राष्ट्र की रक्षा के लिए कोई कसर नहीं छोड़ी। गाँधी जी के गिरफ्तारी की पश्चात् इन्होंने जिस उत्साह एवं निष्ठा के साथ काँग्रेस की रचनात्मक प्रवृत्तियों चरखा, खादी, स्वदेशी प्रचार, ग्रामोद्धार, अस्पृश्यता निवारण, किसान संगठन तथा शिक्षा आदि के कार्यो को आगे बढ़ाया था, यह पटेल के नेतृत्व एवं संगठन शक्ति का साक्षात् प्रमाण है। इसी प्रकार नागपुर का झण्डा सत्याग्रह वल्लभभाई के परिश्रम, संगठन शक्ति एवं बुद्धि चातुर्य की कसौटी ही कही जाएगी, पटेल की यह सफलता राष्ट्रीयता की भावना को ही चरितार्थ करती है।

जुलाई 1927 ई. को गुजरात में इतनी आँधी, तूफान और मूसलाधार वारिश हुई थी कि संपूर्ण जन-जीवन अस्त-व्यस्त हो गया था। उस समय बाढ़ से पीड़ित जनता की जो सेवा वल्लभभाई ने की थी, वह उस समय उसकी प्रशंसा अँगरेज सरकार ने भी की थी। बारदोली के किसान की जर्जर स्थिति को देखकर पटेल ने कहा था- 'किसान डरकर दु:ख उठाएं और जालिमों की लाते खाएं, इससे मुझे शर्म आती है। मेरे जी में आता है कि किसान को कंगाल नहीं रहने देकर खड़ा कर दूँ। इतना करके मरूँ तो अपना जीना सफल समझूँ।

वल्लभभाई जितने गंभीर थे, उतने ही मजाक पसंद व्यक्ति भी थे। उनकी गंभीरतापूर्ण बात को निम्न उदाहरण से जाना जा सकता है-'सौ रुपये की नौकरी के लिए जनेऊ पहननेवाला ब्राह्मण हाथ में रस्सियाँ लिए कसाई को देने के लिए डोर पकड़ता फिरता है। मुझे तुम्हें दिखाना है कि हमारे आदमियों को, उँचे वर्ण के लोगों को यह शासन कैसा

राक्षसी बना देता है।'

सन् 1928 के बारडोली सत्याग्रह में वल्लभभाई को पूर्ण सफलता मिली थी। उनकी इस सफलता को देखकर बम्बई के एक नेता ने सार्वजनिक सभा में उन्हें सरदार नाम से संबोधित किया था, जिसकी पुष्टि गाँधीजी ने की थी। तभी से वल्लभभाई सरदार के नाम से पुकारे जाने लगे।

भारत के स्वतंत्रता आंदोलन में वल्लभभाई महात्मा गाँधी के बाद की पंक्ति में थे। सरदार पटेल का जीवन हमें एक महान उद्येश्य और संदेश प्रदान करता है जिसकी पूर्ति और प्रतिष्ठा के लिए उन्होंने आजीवन संघर्ष किया। वल्लभभाई स्वतंत्र भारत के प्रथम उप-प्रधानमंत्री तथा गृहमंत्री थे।

प्रकृति का यह विधान है कि पौधा कोई लगाता है, फल कोई और खाता है। यह एक परंपरा नहीं, उसका प्रसार गुण है, एक पुण्य है। सरदार पटेल ने राष्ट्रनिर्माण की दिशा में भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम के दिनों में तथा उसके बाद राष्ट्र की नवरचना की। स्वाधीनता का जो स्थायित्व, सुदृढ़ता और अवरोध रहित गतिशीलता प्रदान की है, उनको इस कार्य के लिए भारतीय राष्ट्र की यह अखण्ड आत्मा उनके प्रति चिर ऋणी और उनको इस राष्ट्र निर्माता रूप के प्रति सदा अपनी श्रद्धापूर्ण श्रद्धांजलि अर्पित करती रहेगी। सरदार पटेल का व्यक्तित्व एक ऐसे जीवित व्यक्ति का व्यक्तित्व था जिसने जीवन भर भारत के करोड़ों कृषक एवं मजदूरों के लिए गंगा की वही धारा बनी जिसने अपने प्रदानशील जीवन से न केवल उन्हें सुख, संतोष और परितोष दिया, अपितु बंधन मुक्ति का आत्म संतोष भी प्रदान किया था। वल्लभभाई कृषक थे। इसलिए वह कृषक की वेदना समझते थे। वे कृषक थे, इसलिए काँग्रेस के सिपाही बने थे। वे एक सच्चे सिपाही थे, इसलिए वे उसके सेनापति बने थे। वे साहस एवं अनुशासन के अवतार थे। इन्हीं मायने में वे सरदार थे।

आधुनिक भारत के कर्णधारों में सरदार पटेल का नाम राष्ट्रीय एकता की दृष्टि से अग्रणीय है। राष्ट्र के निर्माण में तथा भारतीय जनता का मनोबल बढ़ाने में सरदार पटेल की बहुत बड़ी भूमिका रही है। तभी तो जवाहर लाल नेहरू ने पटेल को 'राष्ट्रीय एकता में उनको शिल्पी की संज्ञा से अभिहित किया था। भारत की एकता में, उसकी अखण्डता में तथा उसे स्थायित्व देने वाले हर प्रयत्न में सरदार पटेल सदा जीवित हैं,

जीवित रहेंगे और उनका वह विश्वास व्यक्तित्व एवं उनके जीवंत कृतित्व अतीत की स्मृतियाँ न रहकर देश के नवयुवकों को नव-स्फूर्ति, नव-चेतना एवं नव-प्राणों के रूप में सदा अनुप्राणित करेगा। भारत की जनता इस लौह पुरुष का और इससे भी अधिक अपने स्वाभिमानी और देशभक्त कृषक सरदार पटेल का चिरऋणी रह अनंत काल तक उनका अनुगामी बना रहेगा।

'सरदार पटेल और राष्ट्रीयता' एक ऐसा विषय है, जिसका संपूर्ण रूप से एक आलेख में कलमबद्ध करना संभव नहीं है, फिर भी मैंने इस छोटे से प्रयास में वल्लभभाई पटेल की राष्ट्रीय भावना, देशभक्ति, जनता के प्रति उनका अगाध प्रेम, उनके त्याग एवं बलिदान तथा तपस्या का सांगोपांग वर्णन करने का प्रयास किया है। वल्लभभाई पटेल का जीवन हम सबके लिए सदा प्रेरणा श्रोत बना रहेगा।

राष्ट्रीय एकता के अधिष्ठाता सरदार पटेल

डॉ. राम सिया सिंह पटेल

भारत की राष्ट्रीय एकता के मौलिक सूत्रों के गुंफन, उसके लिए आवश्यक आधार सुनिश्चित करने और भारत की राष्ट्रीय एकता के लिए अपने संपूर्ण जीवन भर संघर्षरत सरदार वल्लभभाई पटेल की अद्वितीय भूमिका रही है। भारत की स्वतंत्रता के लिए आजीवन संघर्षरत सरदार ने 15 अगस्त 1947 के पश्चात् राष्ट्रीय एकीकरण की दिशा में अभूतपूर्व भूमिका का निर्वह्ण किया। सरदार पटेल की महान देनों का लेखा-जोखा प्रस्तुत करते हुए पूर्व राष्ट्रपति वी.वी. गिरि ने नवम्बर 1973 में ठीक ही कहा था-'यह अत्यंत उपयुक्त है कि सरदार भारत की एकता में सर्जक माने जाते हैं। उनकी राजनीतिक सूझ, प्रखर राष्ट्र भावना, व्यावहारिकता, बुद्धिमता और जबरदस्त प्रबंध-कुशलता ने उन्हें दुनिया के बड़े से बड़े राजपुरुषों में एक सिद्ध किया है। सरदार ने अपनी संपूर्ण योग्यता का उपयोग एक और अखंड बनाने में किया है।'

देशी रियासतों का विलीनीकरण-

सरदार पटेल ने भारत की 554 देशी रियासतों को अपनी संप्रभुता, वैभव और ऐशोआराम के सारे साधन स्वतंत्र भारत के एकीकृत होकर त्यागने के लिए राजी कर लिया, वह डंडे के बल पर नहीं, अपितु आत्मिक प्रभाव, प्रखर कूटनीति, देशप्रेम सौजन्यशीलता, विनम्रता, आत्मतेज, निश्छल प्रेम के द्वारा भारत की 554 देशी रियासतों के राजाओं को भारत में मिलने के लिए सहमत करने का अद्वितीय पराक्रम सरदार के ही वश की बात थी, अलवर देशों ने देशी राजाओं के हृदय की बात को अभिव्यक्त करते हुए कहा था कि-'सरदार साहब तो हमारे बुजुर्ग रहे माता-पिता जैसे वे प्रेम से बरते। उन्होंने हमें प्रेम और वात्सल्य-भाव से जीत लिया। हमारे हृदय में हमारे हित की बात उतारी। सरदार साहब ने हम पर किसी भी प्रकार का दबाव नहीं डाला। हमें ऐसा लगा था कि हमारा दिल दुखाकर सत्ता के बल पर यदि हमें सतायेंगे तो सन् 1857 में जैसा विद्रोह हुआ था वैसा नई भारतीय सरकार के खिलाफ भारत के राजा करेंगे। लेकिन सरदार साहब ने सत्ता का डंडा नहीं चलाया। उन्होंने अपनी प्रेम गंगा हमारे जीवन

में बहाई। हमें अपने सच्चा स्वार्थ समझाया और माता-पिता जिस प्रकार अपने लड़कों को संतुष्ट करते हैं, उसी प्रकार उन्होंने हमें संतुष्ट किया। सरदार साहब ने तो हमारी मिलकियत और राजसत्ता का हमसे देश को समर्पण कराया। ऐसा समर्पण प्रेम, देशप्रेम और उदारता के सिवाय हो नहीं सकता।'

हिंदू-मुस्लिम एकता का प्रयास-

सरदार पटेल ने भारत और पाकिस्तान का बँटवारा एक अनिवार्य आवश्यकता के रूप में ही अंततः स्वीकार किया। यदि वह विभाजन स्वीकार नहीं किया जाता तो अँग्रेजों का शासन समाप्त नहीं हो पाता और भारत गृहयुद्ध की भयानक भट्ठी में झोंक दिया जाता, जिससे हमारी अकथनीय हानि सुनिश्चित थी। संकट की ऐसी घड़ी में बड़े ही चातुर्य, कूटनीति, दूरदर्शिता और भाईचारा के बल पर हिंदू-मुस्लिम दंगों पर काबू पाया। सरदार की मान्यता थी कि -'भारत और पाकिस्तान में हिंदू और मुस्लिम भाईचारे से रह सकें, ऐसी हवा खड़ी करने की आवश्यकता है। बहुमत के लोगों को अल्पमतों के हितों के पहरेदार बनना है। लघुमत के हितों की रक्षा करने का कर्त्तव्य बहुमत के लोगों का है। मुस्लिम अधिक से अधिक 4 करोड़ होंगे, जबकि हिंदू 30 करोड़ हैं। (स्वतंत्रता-प्राप्ति के समय)। इसलिए मुस्लिमों का रक्षण करना भारत के हिंदुओं के लिए अनिवार्य है।'

लौहपुरुष पटेल ने स्वतंत्र भारत की, अखण्ड भारत की, भारत संघ की एकता और संप्रभुता के लिए अपना जीवन हवन कर दिया। उन्होंने स्वयं इसे अभिव्यक्त किया है-'एकता और संगठनात्मकता हासिल करने के इस प्रयास में राष्ट्र को जितना मुझसे संभव था, उतनी सेवा मैंने दी है। देश की एकता और अखण्डता सुरक्षित रहे, इसके लिए मैं सतत् चिंता करता रहा होऊँ तो यह स्वाभाविक ही माना जाना चाहिए कि इस कार्य में देश को हर वर्ग का, हर एक कौम का, हर एक धर्म का, हर एक नागरिक का मुझे सहयोग चाहिए।'

श्री वी. शंकर ने ठीक ही कहा है- 'इतने कम समय में सरदार ने जो जादू कर दिखाया, वह इतिहास के पृष्ठ पर अमर रूप से लिखा रहेगा। इस घटना से महान कोई घटना हुई हो और इस घटना की तुलना में आ सके और ऐसी कोई दूसरी घटना सारे विश्व में अब तक नहीं हुई।'

स्मरणीय है कि भारत संघ ने जिन देशी रियासतों का विलीनीकरण किया गया, उनकी संख्या निम्नांकित है-

1. संघों में मिले हुए राज्य-	275
2. प्रांतों के साथ मिलने वाले राज्य-	216
3. केंद्र द्वारा शासित राज्य-	61
	कुल-552

इनके अतिरिक्त जूनागढ़ एवं हैदराबाद को सरदार पटेल ने पुलिस-बल का प्रयोग करके संघ में मिलाया व भोपाल में भी पुलिस-बल का प्रयोग करना पड़ा। भोपाल राज्य उपरोक्त संख्या में सम्मिलित हैं। इस प्रकार कुल 554 देशी रजवाड़ों को मिलाकर सरदार पटेल ने ऐतिहासिक कार्य किया और राष्ट्र की एकता का सृजन किया। वस्तुत: भारत राष्ट्र के जनक और अधिष्ठाता सरदार पटेल की उपलब्धियाँ अनुपम रहीं।

चैम्बर ऑफ प्रिंसेज के अध्यक्ष तथा काठियावाड़ संघ के राज्यप्रमुख नवानगर के जाग साहब ने राज्यों की विलीनीकरण के संबंध में सौराष्ट्र इकाई की रचना के समय कहा था-'काठियावाड़ के राजाओं की ओर से मैं यह कहना चाहता हूँ कि हम राज्य करते-करते थक नहीं गये थे। यह बात नहीं है कि धाक-धमकी या दबाव डालकर हमसे गद्दी का त्याग कराया गया, बल्कि हमने अपनी स्वयं की मर्जी से हमारी सर्वोपरिता का त्याग किया और इस नये राज्य का निर्माण किया है।'

ध्रांगध्रा नरेश ने भी स्वीकार किया है कि 'सरदार की शांत प्रकृति और असाधारण नम्रता ने देशी राजाओं के दिलों पर इतना प्रभाव डाला कि वे अपने स्वार्थ-त्याग के लिए तत्पर हो गये और उनके एकीकरण के कार्य में उन्होंने सहयोग किया।'

युवक स्वतंत्रता और एकता के प्रहरी-

भारत की राष्ट्रीय एकता के महत्व को स्पष्ट करते हुए सरदार पटेल ने 17 दिसंबर 1947 को जयपुर में आगाह किया था-'एकता के अभाव के कारण भारत ने आजादी खोई। राजपूताना के स्त्री-पुरुषों की बहादुरी और समर्पण के बावजूद सदियों पहले भारत विदेशियों का गुलाम बना था। हम फिर से यह भूल न दुहराएँ।'

2 जनवरी 1948 को सरदार ने शिलांग में जो उद्‌गार व्यक्त किये थे, वे आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं।

भारत एकीकरण की दिशा में आगे बढ़ रहा है। छः महीने पहले भारत में अनेक छोटे-छोटे रजवाड़े खड़े हो गये होते। इसके बदले हमने एकीकरण और राष्ट्रीय एकता सिद्ध की है। इसके परिणामस्वरूप उज्ज्वल भविष्य के लिए विशाल अवसर खड़े हुए हैं। हमारे अच्छे या बुरे भविष्य का निर्माण हमारे हाथों में है। यदि हमें अपना भविष्य सुधारना है तो वह एकता के द्वारा ही संभव है।'

सरदार ने राष्ट्रीय एकता को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए भारत के नवयुवकों का आह्वान किया। आज सांप्रदायिकता, जातिवाद, धर्मांधता के कारण तिकड़मबाज छलिया लोग आये दिन विभिन्न धर्मों के अनुयायियों को आपस में लड़ाते और अपना उल्लू सीधा करते रहते हैं। राष्ट्रीय एकता को सुनिश्चित करने के लिए नवयुवकों को सरदार का संदेश है।

'देश का कल्याण न गाँधी जी के हाथ में है और न मेरे हाथ में है। वह तो युवकों में है, क्योंकि युवकों ने ही अपने देश को स्वतंत्रता दिलायी है। युवक ही स्वतंत्रता के प्रहरी हैं और भविष्य के युवकों के हाथों में स्वतंत्रता सौंप दी गई है।'

राष्ट्रीय एकता के लिए सांविधानिक उपबंध-

सरदार के ही प्रयत्नों से डॉ. भीमराव अम्बेडकर को केंद्रीय मंत्रिपरिषद में सम्मिलित किया गया और उन्हें कानून मंत्री बनाया गया। उन्हीं के प्रयासों से डॉ. अम्बेडकर को संविधान की प्रारूप निर्मात्री समिति का अध्यक्ष बनाया गया। सरदार पटेल की मंशा के अनुरूप संविधान में निम्नांकित उल्लेखनीय प्रावधान रखे गये हैं-

1. भारत के संविधान को संघात्मक स्वरूप दिया गया। अनेक राज्य अपने-अपने क्षेत्र में स्वतंत्र हैं, किंतु राष्ट्रीय महत्व के बिंदुओं पर केंद्र सरकार की सत्ता सर्वोपरि है।
2. भारत के संविधान का स्वरूप संघात्मक है, किंतु उसकी आत्मा एकात्मक है। संकटकाल में पूरा देश एकात्मक सत्ता के रूप में काम करता है।
3. समूचे देश में एक ही नागरिकता का प्रावधान है।
4. एक ही राष्ट्रभाषा हिंदी है, किंतु क्षेत्रीय भाषाओं के विकास पर भी बल दिया गया है।
5. भारत की न्यायव्यवस्था में सर्वोच्च न्यायालय सर्वोपरि है। यह न्यायालय

केंद्र और राज्य सरकारों द्वारा बनाये गये गलत कानून को अवैध और निष्प्रभावी घोषित कर सकता है। देखा गया है कि पिछले 58 वर्षो में सर्वोच्च न्यायालय ने अनेक केंद्रीय और राज्य सरकारों द्वारा पारित संविधान विरोधी कानूनों को अवैध घोषित करके राष्ट्र का सराहनीय कल्याण किया है।

6. अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा अन्य पिछड़े वर्गो के लिए राज्य विधान मंडलों, लोकसभा में तथा सरकारी नौकरियों में आरक्षण की व्यवस्था संविधान द्वारा सुनिश्चित की गई है। इससे इन वर्गों का विशेष विकास करके उन्हें राष्ट्र की मुख्यधारा में सशक्त भागीदारी का पथ प्रशस्त किया गया है।

7. भारत में संविधान के द्वारा सभी नागरिकों को स्वतंत्रता, समानता, धर्म संबंधी स्वतंत्रता, संपत्ति का अधिकार, जीविकोपार्जन की स्वतंत्रता आदि प्रदान की गई है।

8. भारत में संविधान द्वारा संसदीय शासन प्रणाली लागू की गई है।

9. राजतंत्र की बजाय भारत में गणतंत्र है, जिसमें कार्यपालिका का सर्वोच्च अधिकारी-राष्ट्रपति जनता द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से चुना जाता है।

10. सरदार ने मुसलमानों के लिए पृथक निर्वाचन क्षेत्र की व्यवस्था के प्रस्ताव का विरोध किया था।

11. संविधान में संघ और राज्य की शक्तियों के लिए संघ सूची, राज्य सूची तथा समवर्ती सूची का प्रावधान है। इससे संघर्ष और बिखराव की नौबत नहीं आती।

12. भारत में लोकतांत्रिक, समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष, संघात्मक व्यवस्था देश को एक अभूतपूर्व राष्ट्रीय एकता में गुम्फित करने का प्रयास किया गया है।

13. अस्पृश्यता को दंडनीय अपराध घोषित किया गया है। सभी को सम्मानपूर्वक जीने का अधिकार है।

14. धर्म, प्रजाति, जाति, लिंग, जन्मस्थान, निवास आदि के आधार पर किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं किया जायेगा।

15. जमींदारी प्रथा, बेगार प्रथा, बंधुआ मजदूरी प्रथा आदि को समाप्त करने के प्रावधान रखे गये हैं।

16. राज्य द्वारा किसी भी प्रकार की उपाधि नहीं दी जायेगी।

17. 'भारतीय सिविल सेवा' के स्थान पर 'भारतीय प्रशासनिक सेवा' और 'भारतीय पुलिस सेवा' नामक दो नई सेवाएँ प्रारंभ की गई हैं।

18. अल्पसंख्यकों के हितों की सुरक्षा के प्रावधान संविधान में रखे गये।

मुसलमानों के लिए पृथक निर्वाचन क्षेत्र अमान्य-

सरदार पटेल के समक्ष जब मुसलमानों के लिए पृथक् निर्वाचन क्षेत्र बनाये रखने संबंधी प्रस्ताव लाया गया तो उन्होंने दृढ़तापूर्वक कहा-

'जब पाकिस्तान की माँग स्वीकार की गई थी तब कम से कम यह सोचा गया था कि शेष भारत में एक की राष्ट्र होगा। 80 प्रतिशत भारत और यहाँ पर दो राष्ट्रों की बात करने के प्रयास नहीं किये जायेंगे। पृथक् निर्वाचन क्षेत्र की बात करना निरर्थक है, क्योंकि यही हमारे लिए हितकर है। पहले इसे हम पर्याप्त मात्रा में सुन चुके हैं। इसी संघर्ष के कारण हमारे देश का विभाजन हुआ। इसी संघर्ष के परिणामस्वरूप हम विभाजित हुए हैं। हम न तो पृथक् निर्वाचन क्षेत्र बना सकते हैं और न ही हम अपनी सुरक्षा की कीमत पर इस पर विचार कर सकते हैं।.... क्या तुम अभी यहाँ दो राष्ट्र बनाये जाने की इच्छा रखते हो? मैं पृथक् निर्वाचन क्षेत्र का विरोधी हूँ। क्या तुम मुझे एक भी ऐसा स्वतंत्र राष्ट्र बता सकते हो, जहाँ पृथक निर्वाचन क्षेत्र है। यदि ऐसा है तो मैं इसे स्वीकार करने के लिए तैयार हूँ।'

संविधान निर्मात्री सभा ने सरदार पटेल के इस प्रस्ताव को ज्यों का त्यों स्वीकार किया था। लौहपुरुष के इन उद्‌गारों से उनकी दूरदर्शिता, सूक्ष्मावलोकन शक्ति और देशप्रेम की भावना परिलक्षित होती है। सरदार पटेल ने स्पष्ट रूप से कहा था कि-

'जो ऐसा चाह रहे हैं, उनके लिए पाकिस्तान में जगह है, पर भारत में नहीं है। यहाँ पर हम एक राष्ट्र का निर्माण कर रहे हैं और एक राष्ट्र की नींव रख रहे हैं। जो पुनः विभाजित होना चाहते हैं और विभाजन की इच्छा रखते हैं, उनके लिए यहाँ कोई जगह, कोई क्वार्टर खाली नहीं है। यह मैं बहुत ही साफ शब्दों में कहता हूँ।'

सरदार की मान्यता थी कि 'देश की बदली हुए परिस्थितियों में सबका हित वास्तविक और विशुद्ध धर्मनिरपेक्ष राज्य में है। दीर्घकाल के लिए हम सबके लिए यह हितकर होगा कि हम सब यह भूल जाएँ कि इस देश में अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक जैसी कोई चीज है। हमें यह मानना चाहिए कि यहाँ पर एक ही समुदाय है।'

धर्मनिरपेक्ष अखंड राष्ट्र की नींव-

सरदार ने दृढ़तापूर्वक कहा था-'मैं उनसे (पृथक निर्वाचन

क्षेत्र के हिमायती) बड़े सम्मान के साथ यह अपील करता हूँ कि वे वहाँ जाकर उस स्वतंत्रता का उपयोग करें और हमें शांति के साथ जीने दें। यहाँ उन लोगों के लिए स्थान नहीं है, जो पृथक प्रतिनिधित्व की बात करते हैं।

'भावी पीढ़ी इसे स्वर्णाक्षरों में लिखेगी जिसे तुम आज कर रहे हो और मुझे आशा एवं विश्वास है कि हम आज जो कदम उठा रहे हैं वह हमारे देश के स्वरूप, इतिहास और चरित्र को बदल देगा।'

'प्रभु की कृपा और सर्वशक्तिमान के आशीर्वाद से एक ऐसे धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र की नींव रखी जा चुकी है, जिसमें सभी को समान अवसर प्राप्त करने का अधिकार है।'

अल्पसंख्यकों के सुरक्षा कवच–

न्यायमूर्ति श्री धीरूभाई ए. देसाई ने दि. 4.2.1988 को सरदार पटेल विश्वविद्यालय, वल्लभ विद्यानगर, गुजरात में अपने व्याख्यान में ठीक ही कहा था–'सरदार पटेल एक उच्चकोटि के देशभक्त थे। वे धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोणवाले व्यक्ति थे और अल्पसंख्यकों की सुरक्षा के लिए कृतसंकल्प थे। वे उनके सुरक्षा–कवच थे सरदार पटेल के कारण ही पृथक निर्वाचन क्षेत्र का हलाहल और सदनों की सीटों के लिए आरक्षण के भयानक हलाहल को हमने अलग कर दिया, जिससे धर्मनिरपेक्ष और अखंड भारत की नींव रखी गयी।'

सरदार पटेल ने कहा था–'हमारा नया संविधान सन् 1935 की योजना के तहत प्रजातंत्र और राजतंत्र का मिलाजुला रूप नहीं है, अपितु यह धर्मनिरपेक्षता के बुनियादी सिद्धांतों पर बना भारतवासियों का संविधान है। यह प्रांतों और रियासतों के सारे अवरोधों को समाप्त करता है और पहली बार रियासतों तथा राज्यों के लोगों के पारस्परिक सहयोग से मजबूत तथा लोकतांत्रिक भारत का निर्माण करता है।'

मैसूर राज्य के प्रतिनिधि श्री के. चेगलराय ने उस समय अपने उद्‌गार व्यक्त किये थे–'15 अगस्त 1947 से लेकर अब तक पहली बार भारतीय रियासतों की जटिल समस्या बड़े ही कूटनीतिक ढंग से हल की गयी है। इसके लिए मैं मिनिस्ट्री ऑफ स्टेट्स और खास तौर से सरदार पटेल को बधाई देना चाहता हूँ। जिस परिस्थिति का अभी तक हम सामना कर रहे थे, वह विध्वंसकारी क्षमताओं से परिपूर्ण थी, भारत को खंडित करने की संभावनाओं से परिपूर्ण थी और कठिनाई से प्राप्त की गई स्वतंत्रता को गलत दिशाओं की ओर मोड़ सकती थी। लेकिन जैसे राजनीतिज्ञ इस

समस्या को हल कर रहे थे और विघटनकारी प्रवृत्तियों को फैलने देने के जो अवसर प्रदान किये गये थे, उससे मुझे लग रहा था कि वे भारत की अव्यस्क आजादी के घातक प्रहार सिद्ध होंगे।' यह दावा ठीक ही किया गया है कि हमने जो कुछ प्राप्त किया है, वह एक ऐसी उपलब्धि है, जो विश्व-इतिहास में अप्रतिम है। किसी भी देश ने किसी भी समय ऐसी उपलब्धि प्राप्त नहीं की। आज हमें इस बात का गर्व है। भारत में हम पहली बार एक ऐसे संविधान को लागू करने जा रहे हैं, जो संगठित एवं मजबूत प्रजातांत्रिक राष्ट्र को सुनिश्चित करता है।'

राष्ट्रीय एकता के महान सर्जक-

इस तरह हम देखते हैं कि सरदार पटेल के पुरुषार्थ और बुद्धिमता से ही भारत के इतिहास में पहली बार जनाधारित प्रभुसत्ता संपन्न गणतंत्रात्मक शासन-व्यवस्था का अभ्युदय हुआ।

भारत के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने सरदार पटेल को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए ठीक ही कहा था-

'इतिहास के अनेक पृष्ठों में उनके योगदान का उल्लेख किया जायेगा। सरदार पटेल को भारत का निर्माता और संगठनकर्ता माना जायेगा। उनके संबंध में और भी बहुत सी गौरवपूर्ण बातें कही जायेंगी। हम लोगों के बीच में सरदार पटेल हमारी सेनाओं के एक महान कैप्टन के रूप में याद किये जायेंगे, जिन्होंने संकट और महान विजय के क्षणों में बड़ी माकूल सलाह दी थी। वे एक ऐसे मित्र सहयोगी और कामरेड थे जिनपर पूरा भरोसा किया जा सकता था। वे शक्ति के एक ऐसे शिखर थे, जिन्होंने संकटकाल में डगमगाते हुए दिलों को नया जीवन प्रदान किया था।' 15 दिसम्बर 1950 को लौह पुरुष सरदार पटेल इस नश्वर संसार को छोड़कर चले गये। उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए नेहरू ने लोकसभा में कहा था- 'उनका नाम भारत के स्वतंत्रता संग्राम के महान नेता के रूप में नहीं, बल्कि महान सर्जक, ऐक्यसाधक और नवभारत के एकीकरण के निर्माता के रूप में हमेशा याद रहेगा।'

जननी और जन्मभूमि जिनके जनम से कृतार्थ हो जाती है ऐसे महामानव कभी-कभी ही जन्म लेते हैं। उनमें से एक थे सरदार पटेल।

भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने सरदार को भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए उचित ही कहा था-'उनकी दूरदर्शिता, उनकी सबको राजी करने और संगठित करने की अद्‌भुत शक्ति, स्थिति को

ठीक समझने की योग्यता और दृढ़तापूर्वक संकल्प करने की शक्ति ने इतने बड़े भूभाग को एक संघीय विधान और एक केंद्रीय शासन की छत्रछाया के नीचे ला दिया है जैसे इसके लंबे और शुभ-अशुभ घटनापूर्ण इतिहास में कभी नहीं हुआ है।'

एस. के. पाटिल ने कहा था-'यदि कोई मुझसे देश के उस सर्वोत्कृष्ट राजनीतिज्ञ का नाम पूछे तो मैं बिना किसी हिचकिचाहट के फौरन ही सरदार वल्लभभाई पटेल का नाम चुन दूँगा।'

सम गैस्टेलिनो ने सरदार के व्यक्तित्व और कृतित्व का आकलन करते हुए ठीक ही कहा था-'वे दल के सर्वोच्च विनायक थे और पाँच सौ से भी अधिक रियासतों के एकीकर्ता थे, जिसके कारण अँग्रेजों के प्रस्थान के बाद देश को प्राय: संघबद्ध करने में वह कृतकार्य हुए। जब सरदार गतिमान होते थे, तब देश एकदम कांप उठता था। सरदार पटेल शक्ति के पर्याय थे। उन्हें जो भारत का 'दृढ़, मौन, मानव', 'लौहपुरुष', 'घन' और 'हमारे देश का बिस्मार्क' कहा जाता था, वह सर्वथा उपयुक्त है।

कवि मोहन लाल महतो 'वियोगी' के शब्दों में-'आज का महान भारत पटेल जी का भारत है। राज्यों को रास्ते से हटाकर उन्होंने भारत को समूल नष्ट होने से बचा लिया।' 'राष्ट्रवाणी के सम्पादक ने जनवरी 1951 में ठीक ही लिखा था-'सरदार पटेल भारत के बिस्मार्क रहे, जिनकी राजनीतिक पैनी बुद्धि, संगठन-कौशल्य, मार्गदर्शन, प्रबल इच्छाशक्ति, संयम, दूरदर्शिता आदि गुण बेजोड़ थे। वे दुनिया के उन महापुरुषों में रहे जिन्होंने अपने देश को ऊँचा उठाया। सरदार न होते तो आज का एक संघीय भारत कभी नहीं बन पाता।' हेमवतीनन्दन बहुगुणा के शब्दों में -'वल्लभभाई असमर्थ व्यक्तियों के प्रेरणास्रोत थे। कश्मीर समस्या में उनका योगदान बेमिसाल था। देश की कठिनतम समस्याओं का निराकरण वे चंद मिनटों में अपने बुद्धिबल से निकाल देते थे। उनसे अँग्रेजी शासन बात करने में थर्राता था।' जवाहरलाल नेहरू ने सरदारश्री का गुणगान करते हुए कहा था-'वे एक ऐसी शक्ति के स्रोत थे, जो कांपते दिलों को साहस प्रदान करते थे।'

माइकेल एडवर्ड्स ने सरदार पटेल की प्रशासनिक क्षमता और राष्ट्रीय एकीकरण की दिशा में किये गये महान कार्यों का उचित ही मूल्याँकन किया है-'इस विरासत में प्राप्त हुए प्रशासनतंत्र को सुरक्षित रखने के कारण स्वाधीनता के प्रारंभिक वर्षों में न केवल आवश्यक सेवाएँ चालू रहीं, बल्कि सरकार की सत्ता भी सफलता से स्थापित हो सकी। कानून

व्यवस्था और सत्ता की स्थापना नये स्वतंत्र भारत के समक्ष खड़ा सबसे महत्वपूर्ण कार्य था और यह सरदार पटेल का भारतीय राष्ट्र के लिए बहुत बड़ा योगदान था।'

देश में एकता, व्यवस्था और स्थिरता कायम करना स्वतंत्र भारत की सबसे कठिन समस्या थी, जिसे दूरदर्शी सरदार पटेल ने बड़ी ही सूझबूझ के साथ हल किया था।

वी. शंकर के शब्दों में -'वे चर्चाओं की अराजकता में से पुनः व्यवस्था को जन्म देते थे, वे स्थिति को उसके उचित परिप्रेक्ष्य तथा व्यावहारिक स्वरूप में रख देते थे। अक्सर कुछ ही शब्दों में वे दलीलों की बौछार को खामोश कर देते थे। अपने इतिहास के किसी भी काल में भारत को इतनी संख्या में दूरगामी परिणामवाले मूलभूत निर्णय नहीं करने पड़े, जितने उसे उन तीन वर्षो में करने पड़े, जो सरदार को स्वाधीनता के बाद प्राप्त हुए थे। इतनी महान सिद्धि इतने थोड़े समय में संभव हो सकी, इसका श्रेय बड़ी हद तक सरदार की अनोखी पद्धति को है।

निष्ठावान सरदार पटेल में देशभक्ति और राष्ट्रीय एकता की भावना कूटकूट कर भरी हुई थी। उन्होंने कहा था- 'मैं इतना जानता हूँ कि मैं भारत का एक निष्ठावान सिपाही बना रहना चाहता हूँ। यदि इस निष्ठा से मैं एक कदम भी डिगता हूँ तो परमात्मा मेरा जीवन समाप्त कर दे।' उनका मानना था कि 'यह देश सबका है। सभी धर्म और संप्रदायों के लोगों को मिलकर देश के विकास के लिए आगे आना चाहिए।'

भारतीय राष्ट्र और राष्ट्रीय एकीकरण के जनक तथा अधिष्ठाता कर्मयोगी सरदार पटेल को संपूर्ण राष्ट्र कृतज्ञतापूर्वक अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता है। जब तक भारत राष्ट्र का अस्तित्व रहेगा, तब तक लोग भरे हृदय से इस महान आत्मा को याद करते रहें।

अंत में हम भारत के दार्शनिक राष्ट्रपति डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन के शब्दों में उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं-'जब तक आज का भारत अस्तित्व में रहेगा तब तक उनका नाम वर्तमान भारत के ऐसे राष्ट्र निर्माता के रूप में याद रहेगा, जिन्होंने 554 देशी राज्यों का एक संघ बनाया। हमारे देश की एकता की दृष्टि से उनका यह कार्य अत्यंत चिरस्थायी माना जायेगा। इस दिशा में उनकी सिद्धि कभी भुलाई नहीं जा सकती। जैसा कि मैंने पहले बताया है कि भारत देश जब तक अस्तित्व में रहेगा, तब तक आज के भारत के शिल्पी के रूप में उनका नाम सदा याद रहेगा।'

राष्ट्र प्रेम के अमर गायक सुब्रह्मण्य भारती

डॉ. कमला विश्वनाथन

राष्ट्रीय चेतना के अमर गायक, तमिल की आधुनिक काव्यधारा के अग्रदूत सुब्रह्मण्य भारती का विश्वविख्यात साहित्य हमारी अमूल्य निधि है। उनकी कविताओं से उनकी विलक्षण प्रतिभा एवं अपूर्व शक्ति का परिचय मिलता है।

11 दिसंबर 1882 को जन्मे भारती जी को बचपन से ही ऐसा माहौल उपलब्ध हुआ कि उनका रोम-रोम क्रांति की पुकार करने लगा। काशी निवास एवं उत्तर भारत के समग्र वातावरण के प्रभाव से उनके मन में वैचारिक चिंतन प्रक्रिया आरंभ हो चुकी थी। धर्म-जाति पर हो रहे अत्याचार, विदेशी शासन, जनमानस का निरीह मौन शोषण सहन आदि देख-देख उनका मन काफी विचलित हुआ था। बंग-भंग तथा उसके फलस्वरूप हुए अद्‌भुत आंदोलन ने उनके युवा हृदय में उद्वेलन उत्पन्न किया। अपनी मौलिक प्रतिभा के द्वारा उन्होंने कवितायें एवं अन्य कृतियों की रचना प्रारंभ कर दी। उनके चिंतन पक्ष पर राष्ट्रीय-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का अद्‌भुत प्रभाव पड़ा।

भारती एक ऐसे कवि, गीतकार एवं संगीतकार थे जिनसे विरले ही कोई भारतीय अपरिचित होगा। समाज के वक्षस्थल की धड़कन को तमिल कविता में भारती जी ने सर्वप्रथम सुनाया। अपनी पत्रिका इण्डिया के माध्यम से तमिल प्रदेश की सुप्त जनता में चेतना जागृत करने का श्रेय उन्हीं को जाता है। अपनी जोशीली देशभक्ति से भरी कवितायें, क्रांतिकारी विचारों से भरे लेख तथा जोशीले गीतों द्वारा राष्ट्रीय भावना जागृत की। संपूर्ण भारतीय वाङ्मय एवं मनीषा के पुनरुत्थान में भारती जी का महत्वपूर्ण स्थान रहा है।

भारती के काव्य में भाषा प्रेम, राष्ट्र प्रेम तथा विश्वप्रेम एक ही सूत्र में बँधे मुक्ताभणिसम अभिव्यक्त हुए हैं। देशप्रेम की तीव्र अनुभूति, जन्मभूमि के प्रति अगाध ममत्व, श्रद्धा एवं स्नेहभाव इनकी कविताओं का मूल स्वर है। उन्होंने एक ऐसे स्वतंत्र भारत की कल्पना की थी जिसमें राजनैतिक, धार्मिक, आध्यात्मिक और सामाजिक स्वतंत्रता हो, सद्‌भाव एवं मैत्री का वातावरण हो, सर्वत्र प्रेम का साम्राज्य हो तथा राष्ट्र के

जन-जन के सपनों का भारत साकार हो।

भारती जी अपनी कविताओं के माध्यम से जनता में चेतना जागृत कर तदयुगीन परिस्थितियों से जनता को अवगत कराना चाहते थे। उन्होंने समाज की अंतर्वेदना को व्यक्त कर पीड़ितों तथा शोषितों का मार्गदर्शन किया। उनका काव्य मातृभूमि के प्रति एक रागात्मक बोध है, भारतीय चिंतन एवं संस्कृति का समन्वित स्वर है और ज्ञानरूप परमत्व के प्रति अद्‌भुत आस्था का प्रमाण है।

भारती जी महात्मा गाँधी से अत्यधिक प्रभावित थे। उनके काव्यों में श्रीमद्‌भागवत, उपनिषद्, महाभारत, तमिल वैष्णव भक्ति काव्य, नालायार, दिव्य प्रबंधम, तमिल कवि मणिक्वाचकर का तिरुवाचगम, पातंजल-योगसूत्र आदि का प्रभाव है। देश प्रेम की अनुभूतिमूलक चेतना उनकी कविताओं में निरंतर बहती रहती है।

भारत के तीन राष्ट्रगीतों की पंद्रह हजार प्रतियाँ सन् 1907 में श्री वी. कृष्ण स्वामी अय्यर ने प्रकाशित करवाई थी। 'स्वदेश गतिंगल' का प्रकाशन सन् 1908 में हुआ। इसकी भूमिका में कवि की राष्ट्र-भावना का परिचय मिलता है।

'मैं इन पुष्पों का शक्ति एवं एकता की प्रतीक भारतमाता के चरणों में प्रस्तुत करता हूँ। इन पुष्पों में सुगन्धि नहीं है, इससे मैं भली-भांति परिचित हूँ.. भारत माता मेरे इन पुष्पों को कृपापूर्वक स्वीकार करें।' कवि का लक्ष्य था भारत की भौगोलिक एवं आध्यात्मिक महानता को अद्‌भुत रूप से प्रस्तुत कर जनता का हृदय उसके गौरव की ओर आकृष्ट करना। स्वतंत्रता का आदर्श इस प्रकार संजोया कि वृद्ध, नर-नारी, युवा एवं बालक सभी निर्भीक हो जाएँ।

1909 में उन्होंने एक कविता संग्रह प्रकाशित किया जिसमें स्वतंत्र, मुक्त भारत राष्ट्र की कल्पना साकार हो उठी। उनकी कविताओं में कुछ भारत भूमि विषयक हैं तो अन्य तमिल भूमि, स्वतंत्रता संबंधी, स्वतंत्रता आंदोलन संबंधी, राष्ट्र नेता संबंधी और कुछ स्वतंत्रता संघर्ष संबंधी कवितायें हैं।

तमिल साहित्य के जिस मोड़ पर भारती जी का आगमन हुआ था उस समय तमिल भाषा की कोई विशिष्ट आधुनिक परंपरा नहीं थी, न ही राष्ट्रीय जागरण के उद्‌बोधक स्वर ही थे। प्रकाशन की सुविधायें भी सहज उपलब्ध नहीं होती थीं। भारती की स्वानुभूति राष्ट्रीयता की प्रबल

भावना, तमिल भाषा एवं जाति के प्रति अगाध स्नेह, अध्यात्म एवं दर्शन विषयक विशाल धरोहर प्रकृति एवं मानव प्रेम आदि ही राष्ट्रीय कविताओं का आधार बना। पत्रकार होने के कारण देश की स्थिति को करीब से देख पाये। तद्‌युगीन परिस्थितियों के प्रति गहरी चिंता, तीव्र असंतोष, रूढ़िग्रस्त समाज में परिवर्तन लाने की तीव्र इच्छा ने उनके विचारों की दिशा बदली। कवि कहते हैं कि इस भारत भूमि पर जिसने भी जन्म लिया है वह जन्म से ही महान है, चाहे वह ब्राह्मण हो या अछूत सभी जातियाँ, सभी धर्म, समस्त मानव समान है, हम जाति धर्म को स्वीकार न करेंगे, उँच-नीच का भेद समाप्त करेंगे, हम वंदे मातरम् कहेंगे। कवि उत्तर दक्षिण पूर्व पश्चिम में एकता स्थापित करने हेतु संघर्षरत रहा। देश की संस्कृति सृजनात्मक शक्ति, मेधा शक्ति पर उन्हें प्रबल विश्वास था, भारत को विश्व-पटल पर सर्वाधिक शक्तिशाली और सक्षम राष्ट्र के रूप में प्रस्तुत करने की उनकी कामना थी।

काव्य की नवीन धारा प्रस्तुत करने पर भी उनकी वाणी का सबसे ऊँचा स्वर राष्ट्रीय भावना का था। पारस्परिक मन मुटाव मिटाकर एकता की भावना से सारे देश को एक साथ जीने एवं मरने का संदेश देते हुए वे कहते हैं

यहाँ हजारों जातियाँ हैं
लेकिन क्या अधिकार है
विदेशियों को यहाँ घुस आने का?
हम भले ही आपस में लड़ें
पर एक माँ की कोख से जन्में हम
अरे विदेशियों हम अभिन्न हैं।

भारती के राष्ट्र प्रेम का अर्थ था इसकी नदियों, पहाड़ों, झरनों, पशुपक्षियों से प्रेम। उनका राष्ट्र प्रेम सर्वधर्म समभाव, सर्वात्व भाव इन दो दर्शनों का अद्‌भुत मिश्रण है।

अपनी प्रसिद्ध कविता 'भारत देशम्' में कवि ने स्वतंत्र भारत का खूबसूरत चित्र प्रस्तुत किया है। इस कविता में कवि ने कल्पना की है कि भारत स्वतंत्र हो चुका है और यहाँ प्यार एवं मैत्री का साम्राज्य छाया है। भय और गरीबी को समाज के शत्रु पर हमने विजय पा ली है।

वे लिखते हैं-

चाँदनी रात में सिंधु नदी पर

संग केरल-सुदरियाँ हों
आंध्र देश के मधुर गीत गा
हम नैया में रमण करेंगे।
हम देकर कावेरी तट के पान
गंगा तट पर पैदा होता गेहूँ लेंगे
हम देंगे चेर देश के हाथी दांत
बदले में वीर मराठों की कविता लेंगे।

एक मुक्त, स्वाधीन, राष्ट्र की कल्पना तभी साकार हो सकती है जब यहाँ का जन-जन निडर होकर आगे बढ़े। वे कहते हैं-

ओ शक्तिहीन क्षीण बाहुबल भारत जा, जा, जाओ तेजही, निष्प्रभ नेत्र, कातर वाणी वाले। जा जा जा ओ कविहीन, भयभीत हृदय युक्त...जा..जा....जा कांतियुक्त नेत्रों वाले, दृढ़ संकल्पोंवाले भारत आ-आ-आ शांतियुक्त कंधोंवाले, निर्मल मतिवाले दीनों के दुःख में दुःखी भारत...आ...आ...आ!!

दीप्त नयन युक्त तेजस्वी दृढ़ संकल्पवाले स्वस्थ राष्ट्र के आमंत्रण के मूल में स्वतंत्रता के सूर्य के प्रकाश में आलोकित राष्ट्र है।

भारत दुर्दशा का कारण वे देशवासियों की अकर्मण्यता एवं कायरता को मानते हैं। उनका विचार था कि देवी स्वतंत्रता की कृपा से वंचित मनुष्य के पास धन, संपदा ऐश्वर्य सब कुछ होने पर भी वह एक अलंकृत शव के समान है। भारत समुदायम नामक कविता में उनके उद्गार इस प्रकार प्रकट हुए हैं-

भारत समुदाय की जय हो
तैंतीस कोटि मानव का यह संगम
सबका इस पर सम अधिकार
अपूर्व है भारत समुदाय
विश्व तट पर नवल चित्र है।

भारती देश में व्याप्त भूखमरी, धन का अनमेल विभाजन आदि से आक्रोशित थे तभी कहते हैं कि यदि एक व्यक्ति भी बिना भोजन के रह गया तो हम जगत को ध्वस्त कर देंगे। यह आक्रोश मानवीय मर्यादा की सीमा में ही था।

आजादी का अर्थ भारती के शब्दों में
मछुआ और बहेलिया
डोम और कंजर

सब हैं महान
भारत माँ की संतान
सब हो संपन्न सब हों सज्ञान
अंतस् में उल्लसित सब एक समान।

वे चाहते थे कि स्वतंत्र भारत में न कोई दीन रहे न दास। प्रत्येक भारतीय को शिक्षा एवं धन उपलब्धि का समान अधिकार हो, सभी बराबरी का दर्जा पा आनंदपूर्वक जी सकें। स्त्री पुरुष का भेद मिट जाये, गुलामी की सारी प्रक्रिया समाप्त हो जाए... इसी को उन्होंने 'विडुदलै' अर्थात् आजादी कहा है।

कवि भारती की स्वतंत्रता की परिकल्पना में एक ओर सर्वधर्म सम-भाव पर आधारित समाजवाद है तो दूसरी ओर प्रवृत्तियुक्त आशावादी जीवन दर्शन है। उनकी कर्म सिद्धांत में निष्ठा है। राष्ट्र की सामुहिक क्षमता और उसकी सफलता पर अदम्य विश्वास है। उन्होंने अपनी राष्ट्रीय कविताओं में राष्ट्रभक्त नेताओं को काव्य विषय बनाया। उसके नेताओं को काव्य विषय बनाया। उनके दुर्दम्य साहस, आत्मविश्वास एवं देश के प्रति सच्ची निष्ठा एवं प्रेम का चित्रण कर वह हर भारतवासी के मन में देश प्रेम का बीज बोना चाहते थे। भारत की कविता संकुचित सीमाओं को तोड़ जीवन के विस्तृत विशाल क्षेत्र में आच्छादित है। यह राष्ट्रीय भावना के जागरण की प्रवाहिनी शक्ति बन गई। जीवन के विविध क्षेत्रों में इसका प्रवेश हुआ। वह जन-जन जीवन में प्रविष्ट होकर नवीन चेतना के इस कवि के हाथों राष्ट्रीय चेतना की दुदूँभी बन गई।

भारती अँग्रेजों की हुकूमत के खिलाफ थे। वे चाहते थे कि भारत नवीन शिक्षा प्राप्त करे, नूतन संस्कृति को परखे और अपनाये भी, किंतु अपनी बलि चढ़ाकर नहीं। वे भारत में भारतीयता की रक्षा चाहते थे। वे किसी तरह की मानसिक दासता के लिए तैयार न थे। अपनी कविता छत्रपति शिवाजी में भारत की संस्कृति एवं प्राचीन गौरव का गान करते हुए अँग्रेज शासकों और उनके अत्याचार का विरोध करने का संदेश देते हैं।

ये आततायी हमें सताते रहें
और हम सहें इनके दुराचार को
नरक तुल्य जीवन बिताते रहें
तो भला कौन जीवन कहेगा इसे?

गुरु गोविंद सिंह नामक कविता में कवि जन जागरण,

धार्मिक सहिष्णुता एवं मातृभूमि की रक्षा हेतु शिष्यों को कृत संकल्प की प्रेरणा देता है। एक प्रसंग में वे कहते हैं शिष्यो... सिंहो....इस क्षण के बाद तुम सब एक समान हो, तुम्हारी जाति, धर्म-कुल-कर्म सब एक है। भेद मृत्यु है अतः भेद भुला दो, एकता के मार्ग का अनुसरण करो, तुम एक हो सदा एक ही बन कर रहो, हजारों जातियों में बँटवारा मिथ्या आंडम्बर है. ..इसका त्याग करो। तुम अपने मन में यह धारणा कर लो कि कार्य के प्रति द्वेष न करोगे... और अधर्म को सहन नहीं करोगे.. अपनी मातृभूमि का यशोगान करोगे।'

भारती की निश्चित रूप से राष्ट्रीय भावना विराट तथा आत्म-गौव युक्त है। उनकी राष्ट्रीय कविताओं का मूल विचार स्वतांत्र्य, प्राचीन गौरव के प्रति अटूट श्रद्धा, जर्जरित रूढ़ियों से देश को स्वतंत्र करने की कामना, युगानुकूल नवनिर्माण आदि अनेक दृष्टिकोणों पर आधारित है। उनका विचार था कि देश विदेश के श्रेष्ठ ग्रंथों का अनुवाद तमिल भाषा में कर तमिल भाषा को सुदृढ़ करना चाहिए। उनका कथन है कि 'तिरूवल्लुवर, इलंगों एवं कंबन जैसे श्रेष्ठ कवियों का आविर्भाव किस भाषा में हुआ? विश्व में ऐसा अन्यत्र कहीं नहीं हुआ।' तमिल भाषा के प्रति उनका आग्रह भारतीय भाषाओं के प्रति आग्रह के रूप में बदलता है। राष्ट्र चेतना उद्बुद्ध करते हुए भारती 'हमारी माता' नामक कविता में कहते हैं-'उसके (माता के) तीस करोड़ मुख हैं पर आत्मा एक है, वह अठारह भाषाएँ बोलती है पर उसका चिंतन एक है'

भारतीय अपनी कृतियों के लिए चिंतन का आधार 'तिरूकुरल' इलंग अडिगल कृत शिल्पादिकारम कम्बन कृत कम्ब रामायण तथा अन्य प्रसिद्ध तमिल ग्रंथों से प्राप्त करते हैं। उन्होंने लोक जीवन, लोकशैली एवं लोक परंपरा का प्रयोग कर काव्य को अत्यंत प्रभावशाली बनाया है। इसके साथ ही विश्व साहित्य एवं स्वतंत्रता के लिए संघर्ष कर रहे देशों का प्रभाव भी उनपर पड़ा है।

स्वतंत्रता, समानता एवं भातृत्व की भावना उनकी कविताओं की विशेषता है। उनकी राष्ट्रीय कविता में उनकी अद्भुत मौलिक दृष्टि एवं समग्र चेतना को आत्मसात करने की चेतना स्पष्ट परिलक्षित होती है। अतः यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि सुब्रह्मण्य भारती राष्ट्र प्रेम के अमर गायक हैं।

राष्ट्रीय एकता और गाँधी

राज चतुर्वेदी

'एकता' का अर्थ है एकत्व, संगठन। वास्तव में देखा जाय तो एक लक्ष्य को लेकर एकजुट होकर कार्य करना ही एकता है। यही उसका भावार्थ है, आशय है।

यह निर्विवाद है कि किसी भी राष्ट्र के सर्वांगीण विकास के लिए एकता परम आवश्यक है- कोई राष्ट्र अपनी उन्नति तभी कर सकता है। इस कहावत से भी यही सिद्ध होता है-संघे शक्ति कलीयुगे अर्थात कलयुग में केवल संघ में ही वास्तविक शक्ति विद्यमान है। इस बात को और भी व्यापक रूप में कहा जा सकता है-संघे शक्ति युगे युगे। कोई युग, काल क्यों न हो, सर्वदा संगठन में ही शक्ति निहित रही है और यही भविष्य के लिए भी ध्रुव सत्य है। जब भी संगठन बिखरा है, टूटा है, परिणामस्वरूप वह राष्ट्र भी बिखरा है, ध्वस्त हुआ है-इतिहास साक्षी है।

राष्ट्रीय एकता के महत्व को हमारे ऋषि, मुनि, संत, मनीषी सब ने एक स्वर से स्वीकार किया और हमेशा पारस्परिक एकता पर बल दिया। सृष्टि के आदिग्रंथ 'ऋग्वेद' के संज्ञान सूत्र के मंत्रों का यही अभिप्रेत है-

'सब मिल कर तुम एक रहो, है धर्म विरत विद्वानों
एक बात तुम बोलो, मन से अर्थ एक तुम जानो।
एकचित्त हो देव पुरातन ज्यों लेते निज भाग,
वैसे ही तुम भी कर लो, करके निज विरोध का त्याग।
तुम सबकी चेष्टा समान हो, निश्चय एक समान
हृदय तुम्हारे एकतुल्य हों, हो न विषमता भान।
एक सदृश ही हो तुम सबके अंतःकरण उदार,
हो सुंदर सहवास तुम्हारा, ज्यों समता साकार।।'

और अथर्ववेद के सूक्त का आशय भी यही रेखांकित कर रहा है-

'भाषा विविध, धर्म भी कितने, सुदृढ़ बंधु है किंतु सभी जन।
गाय बहाती ज्यो पयधारा, राष्ट्रभूमि दे सुख संपत्ति धन'

परवर्ती काल की विभूतियों, संतों, मनीषियों ने भी राष्ट्रीय एकता का प्रतिपादन किया, क्योंकि उनका दृढ़विश्वास था कि उसी से राष्ट्र, समाज और जीवन में शांति, सौमनस्य और स्थिरता स्थापित हो सकती है।

पर आधुनिक युग में महात्मा गाँधी ने राष्ट्रीय एकता पर राष्ट्रवासियों का सबसे अधिक और प्रभावी ढंग से ध्यान आकृष्ट किया है। गाँधीजी ने 'राष्ट्रीय एकता' अवधारणा की बहुत अधिक विस्तृत व्याख्या की है। उन्होंने संकीर्णता के दायरे से निकल कर उसे व्यापक बना दिया। उनकी दृष्टि में राष्ट्रीयता बुरी सोच या बुरी चीज नहीं है, परंतु संकीर्णता, अलगाववाद, स्वार्थपूर्ण कार्य आधुनिक राष्ट्र के लिए जबरदस्त कलंक है जिन्होंने सभी आधुनिक कहे जाने वाले देशों को बुरी तरह से जकड़ रखा है।' गाँधी जी के विचार में आत्मा एकता में विश्वास रखती है। गाँधीजी की मान्यता थी कि 'हमने अपने पूर्वजों से यही सब सीखा है। हमारे नेता, मुखिया लोगों ने पैदल चलकर भारत की यात्रा की थी। एक दूसरे की भाषायें सीखीं, वे एक दूसरे को प्यार करते थे, उनके आपस में कोई दुराव नहीं था। इससे राष्ट्रीय एकता के बँधन दृढ़ हुए।'

इस संदर्भ में आगे गाँधीजी का कथन था-'भारत मेरे लिए दुनिया का सबसे प्यारा देश है, इसलिए नहीं कि ये मेरी मातृभूमि है, बल्कि वास्तविकता यह है कि मैंने अधिक अच्छाई इसी देश में पाई है। हमारे अंदर संकुचित राष्ट्रीयता की भावना नहीं होनी चाहिए, क्योंकि इस प्रकार के विचार राष्ट्र को तोड़ने वाले होते हैं, जोड़ने वाले नहीं होते। हमारे विचार, हमारी भावना सभी देशहित में होने चाहिए। क्योंकि प्रांत देश का ही एक अंग है। राज्यों की तुलना में इस सहायक नदियों से कर सकते हैं। नदियाँ विशालता को बढ़ाती हैं, घटाती नहीं हैं, क्योंकि यही उनका गुण धर्म है इसलिए राज्यों की सोच, उनकी भावना, उनकी क्रियात्मकता सभी राष्ट्रहित में होने चाहिए। सामूहिक एकता पर उनकी दृष्टि हो अलगाव पर नहीं। तभी देश की राष्ट्रीयता कायम रह सकती है, क्योंकि राज्य राष्ट्र के प्राण हैं, उसकी आत्मा है। अगर राज्य अलगाव की बात करते हैं तो वह राष्ट्र निर्जीव हो जाएगा।'

महात्मा गाँधी ने राष्ट्रीय एकता के मर्म को समझते हुए इसीलिए एकता की सुदृढ़ कड़ी के रूप में कार्य व्यवहार में, जीवन में हिंदी के प्रयोग पर सर्वाधिक बल दिया था। 'दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा' की स्थापना की। अपने पुत्र देवदास को हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए दक्षिण भेजा। काँग्रेस का नेतृत्व संभालने के बाद आपने सन् 1921 में काँग्रेस के कामकाज में हिंदी के प्रयोग को अनिवार्य ठहराया। 'हिंदी साहित्य सम्मेलन' के इंदौर अधिवेशन के अध्यक्ष पद से भावपूर्ण भाषण देते हुए आपने भारत

देश के लिए हिंदी भाषा की पहत्ता और उपयोगिता को ही रेखांकित किया था। गाँधी जी का आशीर्वाद प्राप्त वर्धा में कार्यरत्, 'राष्ट्रभाषा प्रचार समिति' ने देश के सब प्रांतों, सुदूर अँचलों में हिंदी का प्रचार, प्रसार कर देश को भाषाई दृष्टि से एकसूत्र में बाँधने में महत्वपूर्ण योगदान दिया, परंतु महात्माजी के महाप्रयाण के बाद, यह हमारा व हमारे राष्ट्र का दुर्भाग्य या विडंबना रही कि आजादी के साठ वर्ष गुजरने पर भी हमारा राष्ट्रीय चरित्र उदात्त ऊँचा नहीं उठ पाया, न हमारी कोई राष्ट्रीय नैतिकता ही बन पाई, जो राष्ट्र की एकता और सुदृढ़ता के लिए अत्यावश्यक है। यही कारण है कि आज प्रत्येक क्षेत्र में द्रोह, अराजकता व अविश्वास व्याप्त है। आज स्थिति यह है कि समर्थ लोग बगैर सामान्य जन का ध्यान रखे संकटकाल में भी अपने स्वार्थों की सिद्धि करते देखे गए हैं। भारत में आज बड़ी तत्परता व जोश से 'राष्ट्रीय एकता' का नारा बुलंद करते हुए भी कहीं भाषा के नाम पर, तो कहीं प्रांतीयता के नाम पर झगड़े उठते हैं। कभी-कभी छोटी छोटी बातों में छोटे-छोटे मसले भी विध्वंस, विनाश का कारण बन जाते हैं। ये हमारी राष्ट्रीय अखंडता को तोड़ने में बड़ी भूमिका निभाते हैं। कई राष्ट्रीय दलों की क्षुद्र व स्वार्थी राजनीति भी हमारी राष्ट्रीय एकता के मार्ग में गंभीर बाधक तत्व है।

हमारा विकासशील देश इतिहास के नाजुक दौर से गुजर रहा है। उसे एक ठोस धरातल की आवश्यकता है और इसे हम नागरिकों की सामूहिक एकता से ही प्राप्त कर सकते हैं, जिसके लिए हम भारतवासियों को सदा तत्पर, सचेष्ट रहना चाहिए। हम तभी अपने प्राथमिक महत्वपूर्ण उद्देश्य- राष्ट्रीय एकता को सच्चे मायने में प्राप्त कर सकेंगे। यह तभी संभव है जब हम परस्पर सुख-दुख, हानि-लाभ की अनुभूति को साथ-साथ बाँटकर चलेंगे। भारत की आत्मा बिना किसी धर्म, जाति, लिंग, स्तर के भेदभाव के यहाँ जन-जन में बसी हुई है। भारत उन सभी लोगों का है जिनका यहाँ जन्म पालन-पोषण हुआ है और उनका भी जिनका किसी देश में कोई आसरा नहीं है। राष्ट्रीय एकता किसी एक जन के सोच व प्रयत्न का नहीं, बल्कि यह सामूहिक सोच का परिणाम है। आज जब आतंकवाद, अलगाववाद, क्षेत्रवाद, हमारी सदियों पुरानी राष्ट्र की एकता, सामासिकता को खंड-खंड करने पर तुलें हों, समस्त राष्ट्रानुरागी जन को राष्ट्रीय एकता के मूर्तिमंगल स्वरूप महात्मा गाँधी के समरसतावादी विचारों और आदेशों को आत्मसात करने की आवश्यकता है।

कबीर का समन्वयवादी दृष्टिकोण

डॉ. ए. बी. साई प्रसाद

समन्वय शब्द को टेढ़ी खीर कहूँ या कबीर के शब्दों में 'गूगे हैरी सरकरां कहूँ' यह बात मेरी समझ में न आयी। काफी माथा-पच्ची के बाद जब कबीर की ओर मुड़ा तो संशय रूपी बरफ पिघल गई। अपने परिचय के साथ-साथ समन्वय भावना की परिभाषा देते हुए कबीर ने कहा है:

'कबीरा खड़ा बाजार में माँगे सबकी खैर
न काहू से दोस्ती न काहू से बैर।'

उनकी न हिंदुओं से दोस्ती थी और न ही मुसलमानों से बैर। वह तो सबसे एक जैसा प्रेम करता था। इस आपसी प्रेम का दूसरा नाम ही समन्वय है। तेलुगु, कन्नड़ और मराठी के कोशकार इसी अर्थ पर जोर दे रहे हैं। इसी कसौटी पर कसने पर कबीर सौ फीसदी खरा उतरता है।

समन्वय शब्द की उत्पत्ति का जिक्र करते हुए अपने आलेख तुलसीदास की समन्वय भावना, इंद्रप्रस्थ भारती, अक्टूबर-दिसंबर 2001 में डॉ. उदय भानु सिंह लिखते हैं- सम्+अनु+इ+अय - समन्वय का व्युत्पत्ति अर्थ नियमित क्रम, संयोग पारस्परिक संबंध है। आदर्श हिंदी शब्दकोश (भार्गव शब्दकोष) में समन्वय के लिए अवरोध अर्थ भी दिया गया है। शायद इसी को दृष्टि में रखकर डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं-कबीर का रास्ता साफ था। वे दोनों को (हिंदू और मुसलमान को) स्वीकार कर समन्वय कराने वाले नहीं थे। यहाँ डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी का मतलब कबीर कार्यकारिणी निर्वाह में अवरोध पैदा करने वाले नहीं थे। डॉ. द्विवेदी जी आगे लिखते हैं- वे समस्त बाह्यचारों के जंगल और संस्कारों को विध्वंस करने वाले क्रांतिकारी नहीं थे। समझौता उनका रास्ता नहीं था। कबीर दिखावे का खंडन कर इंसान को इंसान बनाना चाहते थे। लोगों के मन में विश्वास को पैदा करने की कोशिश उसने की। उसने साफ कहा है-

'जाके मन विश्वास है सदा गुरु के संग
कोटि काल झकझोर ही तऊ नहीं चित्त भंग।'

तो कबीर ने कहा-

'मन मस्त हुआ अब क्या बोलें'

संभवतः हम इसे समन्वय की भावना की चरम सीमा मान सकते हैं।

चौदहवीं और पंद्रहवीं सदियाँ भारतीय इतिहास का अशांतिपूर्ण समय है। मुहम्मद बिन तुगलक (1325-1353) ने भारतीय जनता को बहुत सताया था। फिरोजशाह तुगलक ने मंदिरों को तुड़वाकर हिंदुओं पर जजिया कर लगाया था। तैमूर (1398) ने तो भगवान की मूर्तियों को कसाइयों को दे दिया। वे माँस को तौलने के लिए पहुँचे का उपयोग करने लग गये थे। अगर कोई हिंदू, दोनों में भाईचारे का भाव फैलाने की कोशिश करता तो उसे मार देते थे। बंगाल के एक ब्राह्मण को इसलिए मार दिया गया, क्योंकि वह इस्लाम को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं था। दोनों में परस्पर प्रेम-भाव को फैलाने की कोशिश कबीर ने भी की। सिकंदर लोदी ने कबीर को बहुत सताया था। काशी छोड़ने पर पहुँचे लोदी ने मजबूर किया। इन परिस्थितियों में ही कबीर ने कहा हिंदू कहो तो मैं नहीं, मुसलमान भी नहीं। पाँच तत्व का पूतला, गैनी खोले नहीं। अत्याचार करने वाले मुल्लाओं से सीधा सवाल करते हुए कहता है।

'ना जाने तेरा साहेब कैसा है?
फिर भगवान था साहेब के बारे में बताते हुए कहता है
साहेब हममें, साहेब तुझमें जैसे प्राण बीज में
शेख या ब्राह्मणों को वह सुबह का भूला मानते हुएँ कहा है
अवधू भूले को घर लावै
सो जन हम को भावै।'

कबीर के समन्वय कद का लक्षण आपस में लड़ मरने वालों को हैवानों से इंसान बनाना था।

कबीर समन्वय के फूलों को प्रेम की डोरी से गूँथ कर हिंदू और मुसलमानों के गले में डालना चाहता था। दोनों को समझाया कि बाहरी दिखावे छोड़ दो। मुसलमानों से उसने कहा 'कबीर काजी स्वादिनसि, ब्रह्म हतै सब दोई, चढ़ि मसीति एकै कहै, दरि क्यूँ सांचा होई' काजी मुला भ्रमियाँ चलया दुनि के साथि दिल थैं दीन बिसरिया करद लई जब हाथि दिन में रोजा रखत हो रात्रि हनत हो गाय।

शेष सबूरी बाहिरा, क्या हज काबे जाई जिनके दिल स्थिति नहीं तिनको कहाँ खुदाइ हिंदुओं को भी समझाते हुए कहता है।

'पांहन कँका पूजिर, जे जनम न देई जान। आंधा नीर आसामुषी यों ही खो वै आन।' आगे यह बताता है-

चतुराई हरि नाँ मिलै, ए नाताँ की ताब 'एक निस्प्रेही

निराधार का गाहक गोपीनाय।'

दोनों को परखने के बाद, समझने के बाद पारस्परिक संबंध स्थापित करने की दृष्टि से कहता है–

'यह दोनों हम दीठा'

हिंदू तुरक हटा नहीं मानै स्वाद पचन को मीठा

हिंदू करते एकादसि साधै, दूध सिंघरासेती अन्न को त्यागै। मन नहीं हटकैं रोजा तुरक नमाज गुजारै निसमिल बांग सांझ मुरगा मारै पुकारै।'

दोनों के पर्व को देखकर यह समन्वयवादी तिलमिला उठता है। वह ऊँची आवाज में कहता है–

'एक मिरंजन उल्लाह मेरा

हिंदू तुरक दुहूँ नहीं मेरा।'

अब सवाल यह उठता है कि आखिर कबीर है तो किसका। सूफियों में विश्वास रखने वाला होने के कारण प्रेम, आपसी प्रेम का प्रचार करता है। उनका कहना है कि ढाई अक्षर प्रेम को समझने वाला ही अपना है।

कबीर की रगों में समन्वयवादी भावना दौड़ रही थी। एक दंत कथा के अनुसार कबीर एक ब्राह्मण विधवा की संतान है। नीरू और नीमो जो मुसलमान जुलाहे थे इनको पाला। इस अनोखे मिलाप के कारण वह दोनों धर्मो के बारे में जानता था। उनकी खूबियों से और उनकी कमजोरियों से वह परिचित था। स्वामी रामानंद के कारण वह राम भक्त बन जाता है। निर्गुण ब्रह्म का प्रचार राम रहीम, केशव करीम के नाम पर करता है। सूफियों के प्रेम तत्व को अपना कर वह सबको सहीं रास्ता दिखाता है। चाहे आदमी हिंदू हो या मुसलमान कबीर के अनुसार गुरु के बिना कोई भगवान को न समझ सकता है और न ही जान सकता है। कबीर गुरु गोविंद में कोई फर्क नहीं मानता था। सच पूछा जाय तो गुरु का दर्जा गोविंद से भी ऊपर होता है। गुरु के बिना हम 'करतार' को पा नहीं सकते। प्रेम का गुण–गान करते हुए वह कहता है–

'अकथ कहानी प्रेम की कदम कहीं न जाई

गूंगे हैरी सरकरां, बैठे मुसकाई।'

यह प्रेम ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो बाजार में या हाट में बिकती हो। पहुँच पाने के लिए आदमी को सिर झुकाना पड़ता है। ऐंठकर

चलने वाले को खुदा या राम कभी नहीं मिलता। अल्लाह या राम को पाने के लिए कबीर कहता है-प्रेम मार्गी बनो।

वर्ण व्यवस्था के कारण आक्रमणकारियों के जुल्मों के कारण साधारण लोग खासकर निम्न वर्ग के लोग काफी परेशान थे। ज्यादातर लोग मुसलमान हो गये थे। बाकी लोगों की जो मुसलमान बन नहीं पाये थे उनकी परिस्थिति भी खराब थी। जुलाहे ज़ो होते थे उनको अपनाने के लिए न हिंदू तैयार थे और न ही मुसलमान। उनको पीछे छोड़कर दोनों ने कुचलने की चेष्टा की थी। कबीर ने इनका बीड़ा उठाया। मजहब के सही अर्थ को समझाया। अपने नजरिया से कबीर को और कबीर के उपदेशों को देखते हुए केरल कैडर के आई.ए.एस. अधिकारी और आलोचक डॉ. धर्मवीर कबीर को दलित धर्म के अगुवा मानते हैं। न हिंदू, न मुसलमान का अर्थ दलित लगाते हुए कबीर के सभी आलोचकों को वे कटघरे में ला खड़ा कर देते हैं। हिंदू समाज से वह कबीर पूछ बैठता है-

'तुमकत बामन हमकत सूद
हमकत लोहू तुम कत दूध।'

अपने आपको काशी का जुलाहा, जात कमीना कहने वाला सबसे सवाँल करते हुए कहता है-

'आय हमारे कहा करोगे
हमतो जात कमीना, पूछो मोरे ग्यान।'

गोरे नंद जशोदा गोरी तुम कत इलाम शरीर कहकर भोलेपन के श्याम कृष्ण से पूछने वाली राधा और ग्वाल बालकों के समान वह ब्राह्मणों और मुसलमानों से पूछता है-

'जो तू भांमन बैमनी जाया
तौ ओन बार है क्यों नहीं आया
जो तू तुरक तुरकनी जाया
तौ भीतर खतना क्यों न कराया

उक्त उदाहरणों में कबीर कहना चाहता है कि वर्ण या जात या धर्म का निर्धारण जन्म से नहीं होना चाहिए पर व्यक्ति के चुनने पर होना चाहिए। पं. बुद्ध देव विद्यालंकार वर्ण शब्द की व्युत्पत्ति 'वृ' धातु से मानते हैं। इसका अर्थ चुनना होता है। कबीर के जाति न पूछो साधु की का अर्थ शायद यही हो सकता है। इस चुनने के अर्थ के साम ही बहुत हद तक 'द्विज' शब्द की मेल खाता है। सभी धर्मो को, सभी कर्मो को, सभी विश्वासों को

देखने की बाद समन्वयवादी कबीर कहता है साधो एक रूप सब माही। आगे चलकर वह यह भी कहता है अवधू भजन भेद है न्यारा। 'नूर' देखने के लिए कबीर हद-अनहद दोनों को गाता है। नूर देखने के बाद .कहता है हद-बेहद दोनों से न्यारा, ऐसा भेष हमारा। समन्वयवादी होने के कारण कबीर ने लोगों को समझाया कि 'कबीरा यह घर प्रेम का खाला का घर नाहि। सीस उतारे भूंईधरे, सों पैसे घर माहि।' प्रेम के दीवाने, इश्क के मस्ताने बनकर कबीर कहता है-

'हमन तो इश्क मस्ताना
हमन को होशियारी क्या,

डॉ. धर्मवीर कबीर को दलित धर्म का संस्थापक सिद्ध करने के लिए प्रयास करते हुए लिखते हैं कबीर में भारतीय संदर्भ के भगवान तथा विदेशी संदर्भ में पैगंबर के सारे गुण मौजूद हैं। वे भक्त के रूप में भगवान की खोज करने नहीं गए, बल्कि भगवान के रूप में अपना आपा खोज कर गये हैं। कुछ हद तक कबीर के दोहे 'लाली देखन मैं गयी मैं भी हो गई लाल' और

'तू तू कहता तू भया, मुहन मैं रही न हूँ।
वारी फेरी बलि गई, जित देखौ तित तूँ।।'

साबित करते हैं कि वह भगवान के रंग में रंग कर खुद भगवान हो जाता है। वह कहता भी है कि मैं राम-राम कहते आगे बढ़ा तो कुछ देर के बाद देखा कोई कबीर कबीर कर मुझे पुकार रहा है। कबीर की इस महानता की सराहना करते हुए डॉ. धर्मवीर अपनी रचना 'कबीर नाज भी, कपोत भी पपीहा भी' में लिखते हैं तुलसी और सूर भक्त हैं जबकि इस मामले में कबीर अपने आत्मज्ञान के कारण भगवान होने की स्थिति पर पहुँचे हुए हैं। वास्तव में कबीर के सामने तुलसी और सूर बहुत छोटे जीव हैं।

लोक-नायक के लक्षणों के बारे में बताते हुए डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते है- भारतवर्ष का लोक-नायक वही हो सकता है जो समन्वय करने का धैर्य लेकर आया हो। इसी गुण के कारण वह साफ-साफ कह देता है-

'हिंदू कहै मोहि राम पियारा, तुरक कहै रहिमाना'
कबिरा लड़ि-लड़ि दोऊ मुए मरम काहू न जाना।

अपने धैर्य गुण के कारण ही कबीर कहता है-

'नाहीं धर्मी नाहीं अधर्मी
ना मैं जती न कामी हो।'

वह तो समन्वयवादी था। इसको मंदिर-मस्जिद में, काबा कैलास में ढूँढ़ना बेकार है। वह तो लोगों के हृदय में बसा हुआ है। उसको ढूँढ़ने के लिए हमें अपने-अपने दिलों को टटोलना पड़ता है। टटोलने पर वह हमारी पकड़ में आ जाता है। भगवान बुद्ध के बाद परच्च प्रेम और संबंधों की सद्भावना को जगाने वाला एकमात्र समन्वयवादी कबीर है। अंत में कबीर के ही शब्दों में मैं कहना चाहूँगा-

'कहना था सो कह दिया,
अब कुछ कहा न जाय।
कविरा जो था सोइ भया,
अब कछु कहा न जाय।'

क़ौमी एकता के प्रतीक 'शाद' अज़ीमाबादी

डॉ॰ शाहिद जमील

बिहार आदी काल से ही महान विभूतियों, सूफ़ी-संतों, स्वतंत्रा सेनानियों, राजनीतिज्ञों, गणितज्ञों, खगोल शात्रियों, दार्शनिकों, कलाकारों एवं साहित्यकारों आदि की धरा एवं कर्यास्थल रहा है। गंगा की आग़ोश में बसा प्राचीन पाटलिपुत्र का एक नाम 'अज़ीमाबद' भी है, जिसे 'शाद' अज़ीमाबादी ने एक साहित्यिक केंद्र (अज़ीमाबद स्कूल) बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है।

मिर्ज़ा 'ग़ालिब' की तरह 'शाद' भी अपनी उपेक्षा से जीवनपर्यन्त नाशाद (अप्रसन्न) रहे और उनके लबों पे यह पैग़ाम और शिक्व रहा कि,

ढूँढ़ोगे अगर मूल्कों-मूल्कों मिलने के नहीं नायाब हैं हम
ताबीर हो जिसकी हसूरतो ग़म ऐ हमनफ़सो वो ख़ाब हैं हम
पर्दापोशाने वतन तुमसे तो यह भी न हुआ
एक चादर को तरसती रही तुर्बत मेरी

'शाद' अज़ीमाबादी के वह्म व गुमान में भी यह नहीं होगा कि एक ज़माना ऐसा भी आएगा जब जयंती-समारोह में उनके मज़ार पर चादरपोशी होगी और लेखकों को सम्मानित किया जाएगा। सरकारी स्तर पर भी पुण्य-तिथि समारोह का आयोजन होगा तथा उनके नाम से साहित्यकारों को पुरस्कृत-सम्मानित किया जाएगा। उनके अवदानों की मीमांसा होगी। शोध-ग्रंथ प्रकाशित होंगे। उनकी शायरी का सिक्का प्रचलन में रहेगा और लोग अपने विचारों, भाव एवं भावनाओं की अभिव्यक्ति हेतु उनके अश्आर का इस्तेमाल करेंगे। पोता, बेहज़ाद फ़ातमी, परपोता अंजुम फ़ातमी, परपोती, डॉ॰ शहनाज़ फ़ातमी और नतिन दामाद कै़सर ख़ालिद उन पर पुस्तकें लिखेंगे।

'शाद' अज़ीमाबादी न केवल एक अज़ीम शायर थे, बल्कि बहुआयामी प्रतिभासंपन्न एक प्रेरक व्यक्तित्व, आदर्श मानवीय मूल्यों के संवाहक, प्रकृति-प्रेमी तथा धार्मिक एवं जातीय भेद-भाव से पाक-साफ़ क़ौमी-एकता के प्रतीक भी थे।

उनका नाम सैयद अली मोहम्मद और 'शाद' उपनाम है। 07 जनवरी, 1846 ई॰ को 'शाद' अपने ननिहाल मुहल्ला पूरब दरवाजा

अज़ीमाबाद में पैदा हुए। इनके पिता नवाब सैयद इज़्हार हुसैन ख़ाँ उर्फ़ सैयद अब्बास मिर्ज़ा का शुमार ख़ानदानी रईसों में होता था। 'शाद' का ददिहाली ख़ानदान शिया और ननिहाल सुन्नी विचारधारा के थे।

'शाद' अज़ीमाबादी की शिक्षा-दीक्षा पाँच साल की उम्र में ननिहाल में शुरू हुई थी। उनके परपोते अंजुम फ़ातमी ने अपनी पुस्तक 'शाद अज़ीमाबादी' में लिखा है कि "उन्होंने सैयद फ़रहत हुसैन से इब्तिदाई तालीम हासिल की। इसके बाद मौलवी शैख़ आग़ा जान और मौलवी सैयद अब्दुल्लाह साहब से अरबी व फ़ारसी पढ़ी। उन्होंने नाज़िर वज़ीर अली इब्रती और आग़ा मोहम्मद से भी अरबी भाषा का दर्स (पठन) लिया। 'शाद' ने अँग्रेज़ी भी पढ़ना चाहा और इसका इंतिज़ाम भी किया गया। लेकिन यह सिलसिला ज़्यादा दिनों तक नहीं चल सका। मौलवी आज़म और गुलज़ार अली से शर्अ मुस्लिम (धार्मिक-नियम) का दर्स लिया। दीनियात (धार्मिक-शिक्षा) की तालीम मौलवी सैयद मेहदी शाह से हासिल की और तिब (यूनानी चिकित्सा) शैख़ मोहम्मद अली से पढ़ी। उन्होंने अदबियात फ़न मानी व बयान (साहित्यिक विधि-विधा एवं शैली) इत्यादि की शिक्षा शैख़ आग़ा जान से हासिल की।"

'शाद' अज़ोमाबादी के पोते एवं प्रसिद्ध शायर सैयद सुलतान अहमद 'बेहज़ाद' फ़ातमी ने अपनी पुस्तक 'साज़े ग़ज़ल' की भूमिका में लिखा है कि "हज़रते 'शाद' के वालिदे बुज़ुर्गवार (पिताश्री) ... अरबी व फ़ारसी के आलिम (पंडित) और हक़ीक़ी मामू नवाब सैयद जलालुद्दीन हुसैन ख़ाँ 'तासीर' शायर थे। भांजे नवाब सैयद नसीर हुसैन ख़ाँ 'ख़्याल' की शुह्रत अदीबुलमुल्क (राष्ट्रीय साहित्यकार) की हैसियत से थी। दूसरे भांजे नवाब सैयद सादिक़ हुसैन 'नेहाल' शायर भी थे और नस्रनिगार (गद्य लेखक) भी। हज़रत 'शाद' के बिरादरे ख़ुर्द (अनुज) सैयद अमीर हसन 'ईजाद' और 'ईजाद' के फ़र्ज़न्द (पुत्र) सैयद मोहम्मद 'विसाल' भी शायर थे।"

ज़ाहिर है, 'शाद' अज़ीमाबादी को अदबी माहौल, साहित्यिक पृष्ठभूमि और प्रतिभा विरासत में मिली। वो जन्मजात शायर थे। उन्होंने सात-आठ वर्ष की आयु में अपनी पतंग पर यह अश्आर कहे थे,

जो कोई इस तिलंगी को लूटे गिर पड़े हाथ पाँव सिर टूटे
उसके घर बेसबब लड़ाई हो उसकी जोरू भी बेसबब छूटे

दस वर्ष की उम्र में 'शाद' अज़ीमाबादी बीमार पड़े थे। उन्होंने हकीम साहब की फ़र्माइश पर अपनी हालत पद में बताई थी। एक शेर

मुलाहज़ा कीजिए,

भूख से पेट में फ़शार भी है दर्द भी सिर में है बुख़ार भी है

'शाद' अज़ीमाबादी की पहली शादी इक्कीस साल की उम्र में सैयद मीर आग़ा उर्फ़ मीर संगी जान की बड़ी बेटी से हुई। जिनसे कई औलादें हुईं, लेकिन सैयद हुसैन ख़ाँ के अतिरिक्त कोई बच्चा जीवित नहीं रहा। सैयद हुसैन ख़ाँ को जन्म देकर दूसरे ही दिन पत्नी की मृत्यु हो गई थी। 'शाद' की दूसरी शादी कलकत्ता में अहमद मीर की बहन से हुई, जिनसे सिर्फ़ एक बेटी हुई।

'बेहज़ाद' फ़ातमी ने "निस्बत गुलों से है मगर ..." शीर्षक अंतर्गत अनुपम भाषा-शैली में 'शाद' अज़ीमाबादी और उनकी साहित्यिक गतिविधियों का वर्णन किया है। 'शाद मंज़िल' एक साहित्यिक स्कूल था, जिसकी प्रसिद्धी दूर-दूर तक फैली हुई थी। सुबह से बारह बजे दिन तक साहित्य एवं शाद-प्रेमियों की आमद व रफ़्त का सिलसिला जारी रहता। फिर चार बजे शाम से देर रात तक साहित्यक गतिविधियाँ जारी रहतीं। 'सीमाब' अकबराबादी ने कहा था कि "हम अज़ीमाबाद को हज़रते 'शाद' मरहूम की वजह से ज़्यादा पहचान सके।" अल्लाम 'इक़बाल' ने यह इच्छा व्यक्त की थी कि "काश! अज़ीमाबाद क़रीब होता और मुझे आपकी सुहबत (समीपता) से मुस्तफ़ैज़ (लाभान्वित) होने का मौक़ा मिलता।" मौलाना 'हसरत' मोहानी अपनी व्यस्तताआं के बावजूद समय निकालकर 'शाद' से मिलने आते और पसंदीदा ग़ज़लें 'उर्दू-ए-मोअल्ला' में प्रकाशनार्थ ले जाते थे। वो कलामे 'शाद' को अपने दिल की आवाज़ समझते थे। मौलाना अबुलकलाम 'आज़ाद' ने 'फ़िक्रे बलीग़' के मसव्वदे को देखकर कहा था, "ग़ज़लों से पहले इस किताब का शाया होना ज़रूरी है, ताकि आपकी फ़िक्री शायरी को बेहतर तौर पर समझने में आसानी हो।" संपादक, 'मख़्ज़न', लाहौर, सर अब्दुल क़ादिर 'शाद' को "अदीब भी समझते थे और मुस्लहे अदब (साहित्य-सुधारक) भी।" 'सायल' देहल्वी ने भरी बज़्म में यह स्वीकारा कि "'सायल' आया न कहो मोतक़िदे 'शाद' आया'। अक्सर राज्य से बाहर के शायर भी 'शाद' से मिलने आते थे, जिनमें 'सायल' देहलवी के अतिरिक्त मौलाना सफ़ी, 'मह्शर', 'साक़िब' और मिर्ज़ा मोहम्मद ताहिर रफ़ी प्रमुख हैं। शागिर्दों का तो हर वक़्त तांता-सा लगा रहता था। समकालीनों के आने से 'शाद मंज़िल' की रौनक़ बढ़ जाती थी। 'शाद' का सान्निध्य प्राप्त करने वालों में मीर 'बाकर' अज़ीमाबादी, 'मुबारक' अज़ीमाबादी, नवाब सैयद

इमदाद इमाम 'असर', ख़ान बहादुर सैयद ख़ैरात अहमद 'मोहिब', ख़ान बहादुर सैयद औलाद हैदर 'फ़ौक़' बिलग्रामी, 'शफ़क़' इमादपुरी, मौलाना 'बदर' आरवी, मौलाना 'क़तील' दानापुरी और 'समर' आरवी प्रमुख हैं। 'शाद मंज़िल' में सभी धर्मों की यकसाँ (एक रूप) बातों पर भी गुफ़्तगू होती थी। इस वार्ता में ख़ास तौर पर मीर इनायत अली इमदाद, सैयद कुदरत हुसैन, सैयद मोहम्मद सुलेमान, सैयद इनायत हुसैन ख़ाँ 'उम्मीद' सैयद मुजतबा हुसैन ख़ाँ, राय इस्री प्रसाद 'अता', शिवनारायण चौधरी 'आरिफ़', सैयद अली हाशिम, दारोग़ा अब्दुर्रहमान, नवाब हाजी जान, सैयद सज्जाद हुसैन, नवाब सैयद नसीर हुसैन 'ख़्याल' और सैयद अली हैदर 'रशीद' शामिल होते थे।

'शाद मंज़िल' में विशिष्ट गोष्ठियों के अतिरिक्त आम मुशायरे भी हुआ करते थे, जिनमें अन्य नगरों के प्रतिष्ठित शायर भी शरीक होते थे। नसर हुसैन 'नसर', 'बदर' आरवी, 'मुबारक' अज़ीमाबादी, 'शफ़क़' इमादुपुरी, 'इशरत' गयावी, योगेश प्रसाद 'ख़लिश', 'रसा' हमदानी, 'क़तील' दानापुरी, 'समर' आरवी, 'साक़िब' अज़ीमाबादी, प्रो॰ अब्दुल मन्नान 'बेदिल' और प्रो॰ 'शम्स' मनेरी शरीक होते थे। इसके अतिरिक्त एक बड़ी संख्या 'शाद' के शागिर्दों की होती थी। उस वक़्त तरन्नुम से कलाम पढ़ने का रिवाज नहीं था। सिर्फ़ सईदुद्दीन 'कैफ़' अज़ीमाबादी और 'हाशिम' जौनपुरी ही तरन्नुम से पढ़ते थे।

'शाद' अज़ीमाबादी की काव्य-प्रतिभा को उनके उस्ताद शाह उल्फ़त हुसैन 'फ़र्याद' ने चमकाया। इस बात का उल्लेख 'शाद' ने 'हयाते फ़र्याद' में किया है।

'शाद' अज़ीमाबादी प्रायः विवादों में घिरे रहे तथा उन्हें नोक-झोंक और अदबी मारकों (साहित्यिक प्रतिद्वन्द्वता) का सामना करना पड़ा। 'बेहज़ाद' फ़ातमी ने रोचक भाषा-शैली में विवादों का वर्णन किया है। इल्मी बहस का एक मारका शागिर्दे 'शाद', 'क़ैस' अज़ीमाबादी और 'तमन्ना' इमादी के बीच हुआ था। इमारत शरिया, फुलवारी शरीफ़ के जल्से में 'क़ैस' ने एक क़सीदा पढ़ा, जिसका मक़्ता था,

बस ख़त्म करो 'क़ैस' तुम इस मत्ला को पढ़कर
ता हश्र रहें 'शाद' मद्दगारे इमारत

'तमन्ना' ने जवाबी क़सीदा इसी ज़मीन में लिखा, जिसमें एतिराज़ था,

मक़्ता में ही मत्ला की गिरी ऐन ख़बर ल

उस्ताद को भी तूने किया ख़ारे इमारत

'क़ैस' ने एक नज़्म के जवाब में कहा,

फुटबॉल कि किक्रेट का इसे खेल न समझें
लड़कों का कोई खेल नहीं कारे इमारत

फिर दो तरफ़ा आपत्तियों का सिलसिला शुरू हो गया था।

एक घटना यह भी घटित हुई थी। टेढ़ीघाट, पटना सिटी में ख़ान बहादुर मीर इब्राहिम हुसैन के घर पर एक 'तरही मुशायरा' आयोजित था, जिसकी 'तरह' थी, 'उर्दू की शाख़ फूले फले बेसमर न हो' 'शाद' अज़ीमाबादी मुशायरागाह पहुँचे तो समकालीन ने जुमलेबाज़ी शुरू कर दी। वो नाराज़ होकर महफ़िल से उठ खड़े हुए और चलते वक़्त यह कह गए कि "मुशायरा सुबह तक चलता रहा तो हाज़िर हो जाऊँगा और ग़ज़ल भी पढ़ूँगा।" उनके शागिर्दों ने भी कह दिया कि हमलोग उस्ताद की मौजूदगी में ही कलाम पढ़ेंगे। नमाज़े फ़जूर के बाद मीर इब्राहिम हुसैन ने गाड़ी भेज दी। 'शाद' आए और शागिर्दों के बाद यह ग़ज़ल पढ़ी,

वह मुझसे उड़ चलें जिन्हें अपनी ख़बर न हो
मशहूर सच मिस्ल है कि चींटी के पर न हा

दामन उलझ गया तो छुड़ाना है दर्दे सर
तू चुन उधर के फूल कि काँटा जिधर न हो

ख़त भेजकर तो और हुए मुंतशिर हवास
हर राहरौव पे शक कि यही नामाबर न हो

ऐ 'शाद' किया मिटेगा मिटाए से वह ग़रीब
जो मुद्दइ-ए-इल्म व कमाल व हुनर न हो

गुस्ताख़ शख़्स ने 'शाद' अज़ीमाबादी से माफ़ी माँगी, तब मामला रफ़ादफ़ा हुआ था।

एक तरही मुशायरा 'नेहाल' अज़ीमाबादी के घर पर हुआ था, जिसकी तरह थी, 'उनको मालूम नहीं रस्मे मोहब्बत क्या है' विरोधी ग्रुप ने यह तरह रखी, 'बज़्मे अग़ियार में जाने की ज़रूरत क्या है'। कल्लुमियाँ के नाम से प्रसिद्ध शायर जिनका उपनाम 'महश्र' था, उन्होंने दोनों मिसरों को मिलाकर अपना मत्ला कहा था,

उनको मालूम नहीं रस्मे मोहब्बत क्या है
बज़्मे अग़ियार में जाने की ज़रूरत क्या है

'शाद' अज़ीमाबादी आए दिन के मारकों से कुपित रहते थे। उन्होंने अपनी आत्मिक पीड़ा को विभिन्न अश्आर में प्रस्तुत किया है। चंद अश्आर अवलोकनार्थ,

मुझी पर पड़ती हैं निगाहें नुक्ता संजों की
वतन खुशनाम है जिस वक़्त तक बाक़ी है उम्र मेरी
मैं वहो मोती तेरे दामन में हूँ ऐ ख़ाके वतन
आज तक दे न सका एक भी क़ीमत मेरी
यह सच है 'शाद' क्या था कुछ न था लेकिन तुम्हारा था
न समझी तुमने ऐ बारीकबीनों बात मोटी सी

प्रो॰ कलीमुद्दीन अहमद ने 'कुल्लियाते शाद' में लिखा है कि ''मैंने जितनी किताबें देखी हैं, उनमें किसी में 'शाद' की शख़्सियत का नफ़सियाती तज्ज़िया (मनोवैज्ञानिक विश्लेषण) नहीं मिलता। एक तरफ़ उनकी तारीफ़ें मिलती हैं ... दूसरी तरफ़ उनके मुख़ालफ़ीन और मोतरेज़ीन (विरोधी-आपत्तिकर्ता) थे और हैं, जो उन्हें समझने की कोशिश ही नहीं करते और हर क़िस्म की तंकीस (आलोचना) रवा रखते हैं।''

उक्त बातों से यह समझ लेना अनुचित होगा कि 'शाद' अज़ीमाबादी को जीवन-काल में मान-सम्मान मिला ही नहीं और उनके अवदानों को स्वीकारा नहीं गया। सच तो यह है कि विरोधियों का एक ग्रुप उनकी सशक्त शायरी, साहित्यिक अवदानों और ईष्याजनक सामाजिक रुतबे के सबब जले दिल के फफोले फोड़ते थे।

'शाद' अज़ीमाबादी को बर्तानवी सरकार ने 1891 ई॰ में 'ख़ान बहादुर' की उपाधि प्रदान की और 1899 ई॰ में उन्हें ऑनरेरी मजिस्ट्रेट बनाया था, जिस पद पर वो तीस वर्षों तक आसीन रहे। 'शाद' पटना सीटी के मनोनीत कमिश्नर भी रहे तथा उन्हें सरकार द्वारा एक हज़ार रुपये वार्षिक प्रदान किया जाता था।

'शाद' अज़ीमाबादी ने कई स्थानों का भ्रमण किया था, जिनमें बनारस, कलकत्ता, लखनऊ, मुर्शिदाबाद और दार्जिलिंग उल्लेखनीय हैं।

धार्मिक गुरु, दार्शनिक, हमीक एवं डॉक्टर सैयद मोहम्मद जव्वाद 'शाद' के मित्र और उनके निजी चिकित्सक भी थे।

'शाद' अज़ीमाबादी अपनी ग़ज़लों एवं नज़्मों के सबब उर्दू

दुनिया में ख्यातिलब्ध हैं। यद्यपि उन्होंने सशक्त गद्य रचनाओं से भी उर्दू साहित्य के भण्डार में श्रीवृद्धि की है। 'शाद' के विराट व्यक्तित्व की पृष्ठभूमि में क्रमशः उनकी काव्य-कृतियों एवं गद्य रचनाओं का संक्षिप्त परिचयात्मक विवरण प्रस्तुत है।

'शाद' अज़ीमाबादी उर्दू की पारंपरिक एवं सामयिक काव्य के पोषक और संरक्षक थे। उन्होंने ग़ज़ल को न केवल एक बड़ा फ़लक अता किया, बल्कि उसे, उस वादी से पुकार लाए, जहाँ मीर तक़ी 'मीर' इब्राहीम 'ज़ौक़' 'दाग़' देहल्वी और इंशाउल्लाह ख़ाँ 'इंशा' सरीखे महान शायरों ने भी इस तरह के ख़्यालात को पेश किया था। क्रमशः इनके एक-एक शेर अवलोकनार्थ प्रस्तुत हैं,

'मीर' क्या सादे हैं बीमार हुए जिसके सबब
उसी अत्तार के लौंडे से दवा लेते हैं

पहुँचा वहाँ कमंद लगाकर रक़ीब हैफ़
सच है हरामज़ादे की रस्सी दराज़ है

हूरों का इंतिज़ार करे कौन हश्र तक
मिट्टी की भी मिले तो रवा है शबाब में

कुछ इशारा जो किया हमने मुलाक़ात के वक़्त
टालकर कहने लगे दिन है अभी रात के वक़्त

उर्दू शायरी पर 'शाद' अज़ीमाबादी का यह एक बड़ा उपकार है कि उन्होंने ग़ज़लों की इस्लाह का बीड़ा उठाया। इसके गिरते स्तर पर विराम लगाने का सफल प्रयास किया और इसकी प्रतिष्ठा के पुनर्स्थापन हेतु महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की।

'शाद' अज़ीमाबादी की काव्य विशेषता यह है कि उन्होंने ग़ज़ल के दामन को नवीन एवं सामयिक विषयों से भरा-सजाया तथा अनुपम भाषा-शैली से प्रबुद्धजनों को आकर्षित-सम्मोहित किया। हुस्नों-इश्क़ का बयान उर्दू ग़ज़ल का ख़ास, लेकिन एक पामाल मौज़ू है। 'शाद' ने इस रिवायती मौज़ू में भी अनुपमता एवं नवीनता पैदा की है। चंद अश्आर मुलाहज़ा कीजिए,

बदली वह वज़ूआ तौर से बेतौर हो गए
तुम तो शबाब आते ही कुछ और हो गए

वही रंगत वही खुशबू वही नाज़ुक बदनी
फूल ने नक़्श उतारा है सरापा तेरा

झुक के लब चूमते हैं जब गेसू तेरा
होके हैरतज़दा मुँह तकते हैं अबरू तेरा

ख़्याले वस्ल को अब आज़ू झूले झुलाती है
क़रीब आना दिले मायूस के फिर दूर हो जाना

मैं हैरत व हस्रत का मारा ख़ामोश खड़ा हूँ साहिल पर
दरिया-ए-मोहब्बत कहता है आ कुछ भी नहीं पायाब हैं हम

'शाद' अज़ीमाबादी ने मानवीय मूल्यों को स्थापित और अश्लीलता क उन्मूलन का प्रयास किया। ग़ज़लों को विशेष पवित्रता, प्रफुल्लता, कोमलता और अनुपम भाषा-शैली प्रदान की। उन्होंने व्यक्तिगत संवेदनाओं, भाव-भावनाओं, अनुभवों और विचारों को इस तरह प्रस्तुत किया है कि उनकी आपबीती, जगबीती लगती है।

शराब और ज़िक्रे मयख़ाना शायरों का पसंदीदा मौजू रहा है। 'शाद' ने अर्जुन की तरह अपने लक्ष्य को भेदा है। चंद अश्आर प्रस्तुत हैं,

मयकदा है यह, समझ बूझके पीना ऐ रिंद
कोई गिरते हुए पकड़ेगा न बाज़ू तेरा

कहाँ से लाऊँ सब्र हज़रते अय्युब ऐ साक़ी
खुम आएगा, सुराही आएगी तब जाम आएगा

यह बज़्मे मय है याँ कोताह दस्ती में है महरूमी
जो बढ़के खुद उठा ले हाथ में मीना उसी का है

माँगने की न मँगाने की ज़रूरत ऐ रिंद
शुक्र कर जामे खुदासाज़ है चुल्लू तेरा

प्रथम शेर के 'मयकदा' को दुनिया के अर्थ में लेकर देखिए, इसकी व्यापकता और अर्थपूर्णता में चार चाँद लग जाएगा। सब्र अय्युब यानी एक पैग़म्बर के सब्र और एक शराबी की अधीरता को सफ़ेद रंग पर काले

रंग की तरह उभारा गया है और अंतिम शेर के 'चुल्लू' को जामे खुदासाज़ (प्रकृति-प्रदत्त जाम) कहना, अनुपम उपमा है। यह शायरी नहीं, बल्कि फ़नकारी है। 'आतिश' लखनवी ने सच कहा है कि,

बंदिशे अल्फ़ाज़ जड़ने में नगों से कम नहीं
शायरी भी काम है 'आतिश' मुरस्सासाज़ का

और 'जिगर' मुरादाबादी ने इसे आग का दरिया पार करने जैसा कठिन कार्य कहा है,

यह इश्क़ नहीं आसाँ बस इतना समझ लीजिए
इक आग का दरिया है और डूबके जाना है

'शाद' अज़ीमाबादी का निरीक्षण और कल्पना-शक्ति अद्भुत थी। उन्हें शब्दों और उपमाओं के इस्तमाल का हुनर आता था। उन्होंने इस ग़ज़ल में आशिक़ की मनोदशा का जीवंत वर्णन किया गया है। आप भी लुत्फ़ लीजिए,

एक सितम और लाख अदाएँ, उफ़ रि जवानी हाए ज़मान
तिरछी कुलाहें, तंग क़बाएँ, उफ़ रि जवानी हाए ज़माने

काली घटाएँ बाग़ में झूले, धानी दुपट्टे लट छटकाए
मुझ पे यह क़दग़न आप न आएँ, उफ़ रि जवानी हाए ज़मान

पिछले पहर उठ-उठके दुआएँ, नाक रगड़नी सिजदों पे सिजद
जो नहीं जायज़ उसकी दुआएँ, उफ़ रि जवानी हाए ज़माने

मौसमे बहार, ख़िज़ाँ, विसाल और हिज्र आदि उर्दू ग़ज़ल के रिवायती मौज़ू हैं। 'शाद' ने इन्हें भी बेनज़ीर लब व लहजे में प्रस्तुत किया है। अवलोकनाथ प्रस्तुत,

काली-काली वह घटाएँ, वह पपीहों की पुकार, धीमी-धीमी वह फ़हार
अब के सावन भी हमारा यूँही रोने में कटा, क्या कहें चुप के सिवा

ऐ बाग़ क्या रहेगी हमेशा यूँही ख़ज़ाँ
क्या फिर कभी न आएगा मौसम बहार का

क़ाबिल बयान के हिज्र की रुदाद भी नहीं
सच पूछते हैं आप तो अब याद भी नहीं

वस्ल उनका गर नहीं तो हूँ उम्मीदवार वस्ल
मैं 'शाद' गर नहीं हूँ तो नाशाद भी नहीं

'शाद' अज़ीमाबादी की ग़ज़लों में अधिकतर आमद के अश्आर हैं। उनकी भाषा प्रांजल है। भाव-भावनाओं एवं विचारों की सम्प्रेषणीयता ऐसी कि अश्आर दिल में उतरकर मस्तिष्क में अंकित हो जाते हैं। सिर्फ़ चंद अश्आर मुलाहज़ा कीजिए,

जो सच पूछो तो 'शाद' अपने किए कुछ भी नहीं होता
ख़ुदा की देन है इंसान का मश्हूर हो जाना

ख़्मोशी से मुसीबत और भी संगीन होती है
तड़प ऐ दिल तड़पने से ज़रा तस्कीन होती है

तमन्नाओं में उलझाया गया हूँ
खिलौने दे के बहलाया गया हूँ

अब भी इस उम्र पें जीने का न अंदाज़ आया
ज़िंदगी छोड़ दे पीछा म्रा मैं बाज़ आया

मुसीबत जिससे ज़ायल हो वही सामान कर देगा
न घबराना ख़ुदा सब मुश्किलें आसान कर देगा

लब्धप्रतिष्ठ आलोचक, प्रो॰ मोहम्मद हसन ने 'शाद' अज़ीमाबादी को लहजे का शायर कहा है। डॉ॰ ख़लीकुर्रहमान आज़मी ने उनकी काव्य-विशेषताओं का वर्णन करते हुए लिखा है कि "शाद अज़ीमाबादी उर्दू अदब के मेमारों (निर्माताओं) और मोहसिनों (उपकारियों) की सफ़े अव्वल में जगह पाने के मुस्तहिक़ (अधिकारी) हैं। उनकी शायरी दिल्ली और लखनऊ के दबिस्तानों (स्कूलों) की ख़सूसीयात से अलग अपना रंग व आहंग रखती है। फ़ारसी ग़ज़ल की बेहतरीन और जानदार रिवायत के साथ 'शाद' की ग़ज़ल में पूरब देश की नरमी, सलोनापन और मौसीक़ीयत मिलती है, जिसे हम नए ज़ायक़े से ताबीर कर सकते हैं।" (बहवाला 'शाद अज़ीमाबादी और उनकी नस्रनिगारी' प्रो॰ वहाब अशफ़ी)

प्रो॰ अंजुम फ़तमी ने कहा है कि 'शाद' अज़ीमाबादी ने अपनी ग़ज़लों के द्वारा अद्वैतवाद, अध्यात्म, दूतत्व, युगल प्रेमी की बातें, कार्य-दर्शन, सदाचार-दर्शन और बुद्धि-दर्शन के जो बिंदु प्रस्तुत किए हैं, वह अन्य शायरों के यहाँ नहीं मिलते।

'शाद' अज़ीमाबादी की काव्य-विशेषता यह भी है कि उनका कलाम पढ़ते वक़्त पूरा दृश्य-परिदृश्य आँखों के सामने गतिमान हो जाता है। दिल से निकली बात, दिल में जगह बना लेती है। 'मुताल-ए-हस्रत' में शाह अताउर्रमान 'अता' काकोवी ने सच कहा है कि "'शाद' ने अपने पाकबाज़ाना (पवित्र) रंग से शायरी को इतना निखारा कि अब्दुस्सलाम नदवी यह कहने पर मजबूर हुए कि दौरे हाज़िर के ग़ज़लगो शेअ्रा में 'शाद' सब के पेशरो (अग्र गामी) हैं। ... उर्दू ग़ज़ल के नाक़दीन (आलोचक) अगर 'शाद' का मर्तब-ए-शायरी न पढ़ सकें तो यह 'शाद' की कम नसीबी नहीं, ख़ुद उनकी बेबसरी (अंधापन) है।"

'शाद' अज़ीमाबादी के क़दम मैदाने ग़ज़ल तक ही महदूद नहीं रहे, बल्कि उन्होंने नज़्म (कविता) और मर्सिया (शोक-काव्य) की वाटिका में भी सुन्दर-आकर्षक पुष्प खिलाए हैं। 'शाद' सहृदय और दूरद्रष्टा थे। वो अपनी क़ौम और देशवासियों को आदर्श मूल्यों, सदाचारिता, भाईचारा एवं देश-प्रेम का पाठ पढ़ाना और उन्हें ग़फ़लत से बेदार करना चाहते थे। 'मादरे हिन्द', 'यादे अज़ीमाबाद', 'तराना-ए-वतन', 'तराना-ए-इत्तेहाद', 'क़ौमी तराना', 'वक़्त का तराना', 'शिराज़-ए-मिल्ली', 'आबे गंगा', 'शहरे ख़्मोशाँ', 'हक़ परस्तों से', 'नींद से चौंको', 'जंग', 'फ़िज़ूल ख़र्ची', 'ग़फ़लत', 'हादसों के लिए दुआ', 'आदमी' और 'गाय' आदि उनकी अत्यंत उत्तेजक-प्रेरक कविताएँ हैं। 'शाद' की कविताओं की समीक्षा से आलेख का आकार बढ़ जाएगा। अतएव मात्र चंद नज़्मों की पंक्तियाँ अवलोकनार्थ प्रस्तुत हैं,

ऐ हिन्द क्यों न तेरा दिलचस्प हो फ़साना
गुज़रा है तुझपे सदियों हर तरह का ज़माना

संसार के निवासी, कहते हैं हिन्द तुझको
दिल खींचता है, तेरा अंदाज़ दिलबराना

यमुना के तट पे अब तक बंसी लिए कन्हैया
हमको सुना रहा है, रस भरा तराना

बंगाल से पेशावर, कश्मीर से दकन तक
किस शाख़ पर नहीं है बुलबुल का आशियाना

(क़ौमी तराना)

एक गोश-ए-जन्नत है ऐ 'शाद' वतन अपना
ता हश्र रहे यारब, आबाद चमन अपना

एक माँ के ये बेटे हैं, हिन्दू हों कि मुस्लिम
गुलज़ार है दोनों से दामाने वतन अपना
इस देश का हर गोशा, हमरंगे गुलिस्ताँ है
शीराज़ से बढ़कर है, हर बागे वतन अपना

(तरान-ए-वतन)

बिखर कर रह गया ऐ 'शाद' जब शीराज़ा-ए-मिल्ली
हमारी कौम की किस्मत में क्या हो जुज़ ग़म आशामी

नेफ़ाके बाहमी ने सबको पस्ती की तरफ़ फेंका
हैं शामिल इसमें सब हिन्दी हों तुर्की हों कि या शामी

(शीराज़ा-ए-मिल्ली)

जिन्हें नफ़्स पर है क़ाबू, वो ग़नी है दो जहाँ में
न शिकायते ख़ुदा है, न शिकायते ज़माना

कोई ख़्वाब से न चौंके, तो कुसूर क्या है अपना
है दलीले सुबहगाही, मेरा नाल-ए-शबाना

(वक़्त का तराना)

ऐ आबे तेज़ गंगा बहता हुआ चला जा
तेरी तरह रवाँ है मेरी भी ज़िंदगानी

गौतम का वाज़ तूने, बरसों यहाँ सुना है
देखी अशोक की भी, पटना में राजधानी

तुर्कों के क़ाफ़लों ने, पानी तेरा पिया है
कहती हैं तेरी मौजें, अब तक वही कहानी

(आबे गंगा)

न अब रूसी रहे बाक़ी, न तैमूरी, न चंगेज़ी
मगर दुनिया में बाक़ी है, अभी तक रस्म ख़ूँरेज़ी

(जंग 1914)

शिफ़ाए क़ल्ब हासिल कर, दवा है इसकी आज़ादी
गुलामी दर हकीक़त रूहे इंसाँ की है बीमारी

उधर बंगाल में, बंगालियों में शोरे आज़ादी

इधर अब तक वही है तल्ख़गोई मरदुम आज़ारी

(आज़ादी)

देती है ख़ूब दूध तो प्यारी हो क्यों न गाय
मैदाँ में घास चरती है, गुर्बत से सिर झुकाए
ये मारती नहीं है कोई लाख इसे सताए
खिंच आएगी पकड़ के जो बच्चा भी खींच लाए
बे उज़्र इसने खा लिया जो पास रख दिया

(गाय)

मन छीन लियो हरजाई मैं तो तोरे चरन बौराई
तुम बिन, साजन कछू न सुहाय
निन्दिया न आये सेज डराए
दुःख के काले मेघ हैं छाए
बिरहा में तोरा ध्यान लगाए
बैठी हूँ मन का दीप जलाए
मन की ज्वाला तन को सुखाए
हरी दर्शन की ललचाई मैं तो तोरे चरन बौराई

(भजन)

रस के रसीले बाँके बसुरिया
रोको न मोरी श्याम डगरिया
ब्रिज बिहारी मोको न छेड़ो
भीज न जाए मोरी चुनरिया

(भजन-होली)

यमुना तट मत जाइयो, सुन री छबीली नार
घूँघट पट मत खोलियो, सुन री छबीली नार

को, ओ, को सुधबुध नाहीं, खेलत रंग खिलाड़ी
हिल-मिल सखियाँ खेलत, भीग न जाए साड़ी

रंग न डारे तोरी चुनरिया, नन्द के लाल अनाड़ी
कोऊ, के संग मत खेलियो, सुन री छबीली नार

(बसनत बहार)

'मादरे हिन्द' और 'यादे अज़ीमाबाद' उनकी लंबी कविताएँ हैं।

'शाद' अज़ीमाबादी ने मरसिया निगारी में भी अपनी एक अलग पहचान क़ायम की है। मात्र एक बंद पेश है,

लो मान लो कि होती है तकलीफ़ सर ब सर
मुश्किल नहीं है कुछ कि ये दु:ख भी है आन भर
या उस तरफ़ की सैर थी या हो गए इधर
अब ग़म का ग़म न सदम-ए-तकलीफ़ का असर
निकली तड़प के रूह बदन के हिजाब से
जिस तरह चौंक पड़ता है इंसान ख़्वाब से

नि:संदेह 'शाद' अज़ीमाबादी ने काव्य-विधा में चार चाँद लगाया और विशेष रूप से बाद की नस्लों को उर्दू ग़ज़ल की एक सशक्त एवं स्वस्थ परंपरा प्रदान की है।

'शाद' अज़ीमाबादी ने गद्य की अधिकांश विधाओं में भी अपनी अद्‌भुत प्रतिभाओं का लोहा मनवाया है। उनके साहित्यिक अवदानों की मीमांसा करते हुए इस दिब्य पक्ष को कदापि नज़रअंदाज नहीं किया जा सकता। समीचीन होगा कि 'शाद' अज़ीमाबादी ने जिन गद्य विधाओं में रचना प्रस्तुत की है, उनका संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया जाए, ताकि उनका विराट स्वरूप दृष्टिगोचर हो सके।

प्रो॰ आसिफ़ा वासे ने अपने शोध-ग्रंथ 'बिहार में उर्दू नाविल निगारी' में 'शाद' अज़ीमाबादी को बिहार का पहला उपन्यासकार कहा है। प्रो॰ वहाब अशर्फ़ी ने भी 1876 ई॰ में प्रकाशित उपन्यास '**सूरतुलख़्याल**' को बिहार का पहला उपन्यास स्वीकारा है। इसकी नायिका वलायती है। दरअसल यह उसकी आपबीती है। 'शाद' ने इसे तीन खण्डों में विभक्त किया है। 'सूरतुलख़्याल', 'हैयतुल मकाल' और 'हुलयतुल कमाल'। 'सूरतुलख़्याल' के संदर्भ में यह बात भी कही गई है कि इसके लेखक मोहम्मद आज़म हैं। इस्लाह के लिए वो इसे 'शाद' अज़ीमाबादी के पास ले गए थे, जिसे 'शाद' ने अपने नाम से प्रकाशित करा लिया। 'शाद' की आत्मकथा के प्रकाशन के बाद इसे हसन अली की रचला कही गई, जबकि हसन अली ने अपने जीवन काल में कभी इस बात का दावा पेश नहीं किया था। यह बात भी प्रसिद्ध है कि मोहम्मद आज़म के उपन्यास 'नक़्श ताऊस' एवं 'सज्जाद सुंबुल' और 'सूरतुलख़्याल' के पात्रों के नाम एक हैं। प्रो॰ आसिफ़ा वासे इस नतीजे पर पहुँची हैं कि ''यह बात तय हो चुकी है कि 'हैयतुल मकाल' और 'हुलयतुल कमाल' 'शाद' के लिखे हुए

हैं। क्योंकि मोहम्मद आज़म के दावे के बाद ये दोनों हिस्से प्रकाशित हुए हैं ... इस नाविल में 'शाद' ने कुछ निजी बातें पेश की हैं, जिनका इल्म किसी दूसरे को नहीं हो सकता। ... फिर क्या वजह है कि हम पहले हिस्से को उनकी तख़्लीक़ न माने, जबकि तीनों हिस्सों का तर्ज़े उसलूब (शैली) और जुबान एक है।'' उन्होंने इस बात का भी खण्डन किया है कि 'सूरतुलख़्याल' बनकम चन्द्र के उपन्यास 'इंदरा' का अनुवाद है। परंतु यह स्वीकारा है कि ''शाद ने इंदरा का मुतालआ ज़रूर किया था और उसके प्लांट से बहुत हद तक मुतआस्सिर नज़र आते हैं।'' उक्त विवाद के बावजूद 'सूरतुलख़्याल' आज तक 'शाद' अज़ीमाबादी के नाम से ही मनसूब है। अंत में उन्होंने यह लिखा है कि ''प्लाट की हमआहंगी 'सूरतुलख़्याल' में नहीं मिलती है। क्योंकि क़िस्सा मेकानकी (मशीनी) तौर पर बढ़ता है। इब्तदा के कुछ हिस्से में फ़ित्री इर्तिक़ा (स्वाभाविक विकास) है, लेकिन थोड़ी दूर के बाद ही यह फ़ित्री रंग ग़ायब हो जाता है। बहुत कुछ अचानक रूनुमा (घटित) होता है। इसका इर्तिक़ा पौधे का इर्तिक़ा नहीं, बल्कि ईंट की जुड़ाई है, जिसके जोड़ साफ़ दिखाई देते हैं।''

'बधावा' शाद अज़ीमाबादी का दूसरा उपन्यास है। इसके संदर्भ में प्रो॰ वहाब अशर्फ़ी ने अपने शोध-ग्रंथ 'शाद अज़ीमाबादी और उनकी नस्रनिगारी' में लिखा है कि ''अर्ज़ मुरततिब में यह भी दर्ज है कि यह क़िस्सा बनकम चटर्जी के नाविल 'राधा रानी' से माख़ूज़ (लिया गया) है, लेकिन इसमें निरी नक़्क़ाली का मुज़ाहिरा नहीं किया गया है, बल्कि बाज़ जगह प्लॉट अलग हो गए हैं।''

1893 ई॰ में प्रकाशित **'सूरते हाल'** 'शाद' अज़ीमाबादी का तीसरा उपन्यास है, जिसमें उस समय के रस्म व रिवाज, अँधविश्वास और शादी में फ़िज़ूलख़र्ची की बुराइयों को प्रभावकारी भाषा-शैली में प्रस्तुत किया गया है।

'पीर अली' शाद अज़ीमाबादी का चौथा उपन्यास है, जिसकी पाण्डुलिपि 'शाद' के पोते नक़ी अहमद इरशाद को ख़स्ता हालत में मिली। उन्होंने इसे प्रकाशन योग्य बनाया, जिसे खुदा बख़्श ओ॰ पी॰ लाइब्रेरी, पटना ने प्रकाशित किया। इसके बाद निदेशक, खुदा बख़्श, डॉ॰ इम्तेयाज़ अहमद ने इसका हिन्दी अनुवाद डॉ॰ शाहिद जमील से करवाकर उसे वर्ष 2007 ई॰ में प्रकाशित किया।

ज़ाहिर है उर्दू साहित्य में कथा विधा के इतिहास में शाद

अज़ीमाबादी का नाम ससम्मान शामिल किया जाना अपरिहार्य है।

शाद अज़ीमाबादी ने अपने उस्ताद की **जीवनी** 'हयाते फ़र्याद' और 'कमाले उम्र' या 'शाद की कहानी शाद की ज़ुबानी' **आत्मकथा** भी लिखी है।

'**हयाते फ़र्याद**' में 'शाद' ने शाह उत्फ़त हुसैन 'फ़र्याद' की शिक्षा-दीक्षा के साथ अपने उस्ताद की अन्य विशेषताओं का भी उल्लेख किया है। जीवनी के अध्ययन से स्पष्ट होगा कि 'फ़र्याद' ने सतरह वर्ष की आयु में शायरी शुरू की। वो उस्ताद की हैसियत से प्रसिद्ध थे। ज्ञानार्जन के लिए पचास वर्ष के लोग भी उनके पास जाते थे। 'शाद' के उस्ताद भौलवी अहमदी किसी समस्या में उलझते थे, तब समाधान के लिए उनसे संपर्क करते थे। 'फ़र्याद' को अधिकांश देशों का इतिहास मालूम था। 'शाद' ने उनकी यात्राओं के वर्णन के अतिरिक्त उनके समकालीन कवियों, धनवानों और वकीलों का भी संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया है।

'कमाले उम' या 'शाद की कहानी शाद की ज़ुबानी' 'शाद' अज़ीमाबादी की आत्मकथा है। 'शाद' के शागिर्द, मोहम्मद मुस्लिम अज़ीमाबादी ने उस्ताद द्वारा सौंपे गए तथ्यों एवं दस्तावेज़ों के आधार पर एक पाण्डुलिपि तैयार करके उनके अवलोकनार्थ प्रस्तुत किया, जिसमें 'शाद' ने इज़ाफ़े किए। मुस्लिम ने उस्ताद के मार्गदर्शन में कई पाण्डुलिपियाँ तैयार कीं, फिर भी उस्ताद संतुष्ट नहीं हुए। अंततः 1921 ई॰ में 'शाद' ने खुद अपनी आत्मकथा, मोहम्मद मुस्लिम अज़ीमाबादी की ओर से लिखी और उसका नाम 'कमाले उम्र' रखा। शागिर्द को इस नाम में सम्प्रेषणीयता का अभाव लगा। फलस्वरूप उसने इसका दूसरा नाम 'शाद की कहानी शाद की ज़ुबानी' रख दिया। आत्मकथा में 'शाद' अज़ीमाबादी के जन्म, ख़ानदान, बुज़ुर्गों का वतन, शिक्षा-दीक्षा, वेशभूषा, यात्राएँ, लेखन एवं काव्य-रचना का आरंभ और शेरगोई का शौक़, मुशायरों में शिरकत, ग़ज़लों की इस्लाह, उस्तादों की साबाशी, विरोधियों का विरोध, मीर 'मोनिस', मीर 'अनीस' और मिर्ज़ा 'दब्बीर' की समीपता और विभिन्न घटनाएँ, राजनीतिक जीवन, 'नवा-ए-वतन' पर हंगामा, मुशायरों और मार्कों में सफलता, मज्लिसे अज़ा (इमाम हुसैन की शहादत की मज्लिस) में मरसिया-पाठ, प्रसिद्ध उस्तादों की प्रशंसाएँ, शागिर्दों की इस्लाह की विधि, गद्य-कृतियों की सूची, जिसमें 'नसाहुलबयान', 'तारीख़ सूबा बिहार', 'सूरतुल ख़्याल', 'नवा-ए-वतन', 'उर्दू तालीम', 'फ़ारसी तालीम', 'अलसर्फ़' (फ़ारसी भाषा से संबंधित संक्षिप्त रसाला), 'अलन्हु'(अरबी

भाषा से संबंधित संक्षिप्त रसाला), 'अलमंतिक्', 'अरबी ज़ख़ीरतुल अदब', 'कशकोल', 'तरजुमतुल इस्लाफ़', 'मर्दुम दीदा' ('शाद' जिनसे प्रभावित हुए, उनका संक्षिप्त विवरण), 'मजमुअ-ए-लेक्चर', 'तस्हीह तारीख़ और 'रिसाला यौमिया उर्दू' इसके बाद अपने दीवान ग़ज़िलयात का विस्तृत उल्लेख किया है, जिसमें ग़ज़लों, रुबाइयों, क़ितात और मसन्वियों के विषय एवं अन्य मुसद्दस की विस्तृत समीक्षा की है। इसमें उपन्यास 'सूरतुल ख़्याल' के विवाद और अँग्रेज़ों से व्यक्तिगत संबंधों का भी उल्लेख है। डॉ॰ ज़ाकिर हुसैन की फ़र्माइश पर यह आत्मकथा 1961 ई॰ में मुआरिफ़ प्रेस, आज़मगढ़ से प्रकाशित हुआ।

'शाद' अज़ीमाबादी ने **तज़्किरा निगारी** के मैदान में भी अपनी ख़ास पहचान क़ायम की है। उन्होंने 'हयाते फ़र्याद', 'मकतूबाते शाद', 'नवा-ए-वतन', 'नक़्शे पायदार', 'फ़िक्रे बलीग़' और 'शाद की कहानी शाद की ज़ुबानी' में कवियों-साहित्यकारों का ज़िक्र किया है। सैयद शाह अताउर्रहमान 'अता' काकोवी ने उक्त पुस्तकों के आधार पर 'फ़िक्रे बलीग़' भाग- 2 संकलित किया, जो प्रकाशित नहीं हो सका। परंतु इसके कुछ अंश पत्रिका 'सहीफ़ा', लाहौर और 'जामे जम' सिखर में प्रकाशित हुए हैं।

'शाद' अज़ीमाबादी को **तारीख़ नवीसी** से भी दिलचस्पी थी। उनकी दो पुस्तकें यथा 'मेरातुलबसार' (तारीख़ सूबा बिहार) और 'नक़्श पा-ए-दार' उल्लेखनीय हैं। प्रो॰ वहाब अशर्फ़ी अपने उक्त शोध-ग्रंथ में लिखते हैं कि "शाद अज़ीमाबादी एक मोवर्रिख़ (इतिहासकार)की हैसयित से ऐसे मारूफ़ नहीं हैं। ... यह (उक्त) किताबें हर चंद कि अलग-अलग नाम रखती हैं, लेकिन इनका मौज़ू (विषय) एक ही है यानी सूबा बिहार की तारीख़ हैं।"

ख़ुतूत निगारी (पत्र-लेखन) भी एक विधा है। उर्दू में ख़ुतूत निगारी के बानी मिर्ज़ा असदुल्लाह ख़ाँ 'ग़ालिब' हैं। बाद में सर सैयद अहमद ख़ाँ, इलताफ़ हुसैन 'हाली', मौलाना 'शिब्ली', 'अकबर' इलाहाबादी आदि ने ख़ुतूत निगारी को परवान चढ़ाया। 'मकतूबाते 'शाद' अज़ीमाबादी' में कुल 68 और 'मजमूअ-ए-मकातीब' में 299 पत्र शामिल हैं। इसके संकलनकर्ता डॉ॰ मोहीउद्दीन क़ादरी 'ज़ोर' ने प्राक्कथन में लिखा है कि "हमारी नज़रों में 'शाद' के यह ख़ुतूत उनके कलाम के बाद उनकी जुमला तहरीरों (समस्त कृतियों) से ज़्यादा अहम हैं। ख़ुतूत क्या हैं, एक बहरे बेकराँ हैं ... बाज़ ख़त तो किताब के तक़रीबन बीस-बीस सफ़हात पर मुश्तमिल हैं। इतने

तवील ख़त शायद ही किसी अदीब के मजमूअ-ए-मकतूब में मिल सकें।''

'शाद' अज़ीमाबादी ने **आलेख** भी लिखे हैं, जो 'मोआरिफ़', आज़मगढ़, 'निगार', लखनऊ, 'सहीफ़ा', लाहौर, 'अदीब', इलाहाबाद, 'ज़माना', कानपुर, 'मख़्ज़न', लाहौर, 'नदीम', गया और 'उर्दू-ए-मोअल्ला' आदि में प्रकाशित हुए हैं।

'शाद' अज़ीमाबादी के **भाषा-विज्ञान** और **छंद-शास्त्र** के संदर्भ में प्रो॰ वहाब अशर्फ़ी का कथन है कि ''शाद की चंद किताबों से उनकी लिसानी (भाषाई), नह्वी (वाक्य-ज्ञान), और ओरूज़ी (छंद विद्या) दिलचस्पियों का हाल मालूम होता है। एक तरफ़ ज़ुबान उर्दू के आग़ाज़ व इर्तिक़ा (आरंभ एवं विकास) के बाब (संदर्भ) में उनका बयान लिसानियात से उनकी वाबिस्तगी (जुड़ाव) का पता देता है, तो दूसरी तरफ़ सर्फ़ (वाक्य की पहचान और अदल-बदल का ज्ञान) व नह्व और अरूज़ व बलाग़त (कम शब्द में अधिक मतलबे बयान करना) से मुतअलिक़ उनकी तसानीफ़ (पुस्तकें) ज़ुबान के फ़नी हिस्सा से उनकी दिलचस्पी का हाल बताती है।'' 'अलसर्फ़', 'अलनह्व' और 'अलअदब' उक्त विषय पर लिखित पुस्तकें हैं।

1926 ई॰ को अज़ीमाबाद में क्रिस्मस के अवकाश में आयोजित अखिल भारतीय शिया सम्मेलन में भारत के नामचीन साहित्यिक व्यक्तित्व के अतिरिक्त इरान से पत्रकार मवैदुल इस्लाम आक़-ए-जलालुद्दीन, संपादक, हबलुलमतीन भी शामिल हुए थे। नाज़िमुत्तजार इसके अध्यक्ष थे। 'शाद' अज़ीमाबादी सख़्त बीमार थे। उद्घाटन सत्र में किसी तरह 'शाद' अज़ीमाबादी को लाया गया। उनका कलाम मीर करीम जान ने अपने मख़सूस तरन्नुम से पढ़ा। एक शेर मुलाहज़ा कीजिए,

तुम अपने 'शाद' के हक़ में दुआ-ए-मग़फ़िरत करना
गुलामे बावफ़ा है दोस्तों मुख़्लिस तुम्हारा है

उक्त समारोह के क़रीब दो हफ्ते बाद 'शाद मंज़िल', पूरब दरवाज़ा अज़ीमाबाद, में 07 जनवरी को रात साढ़े दस बजे 'शाद' ने इस दुनिया को अलबिदा कहा। दूसरे दिन उन्हें सुपुर्दो ख़ाक किया गया। गुग़री के इमाम मौलाना सैयद फ़ख़रूद्दीन ने नमाज़े जनाज़ा पढ़ाई। यह एक अद्भुत बात है कि 'शाद' ने उक्त सम्मेलन से लौटने के बाद अपनी वफ़ात का क़ता तारीख़ खुद फ़ारसी में लिखा, 'ऐन बाशीन व हर्फ़ हा बा मीम' (1345 हिज॰) शाद अज़ीमाबादी की मौत के साथ उर्दू ग़ज़ल गोई का वह अध्याय

समाप्त हो गया, जिसका आरंभ उन्नीसवीं सदी के निस्फ़ आख़िर (अधोपांत) में हुई थी।

अल्लामा 'इक़बाल' ने सच कहा है कि

हज़ारों साल नर्गिस अपनी बेनूरी पे रोती है
बड़ी मुश्किल से होता है चमन में दीदावर पैदा

'शाद' अज़ीमाबादी की काव्य एवं गद्य कृतियाँ उर्दू साहित्य के आकाश पर आकाशगंगा की तरह दिव्य एवं आकर्षक हैं। धुव्र तारे की तरह बाद की नस्लों का वह मार्गदर्शन करते रहेंगे।

राष्ट्रप्रेम और सहजानुभूति के कवि सुब्रह्मण्य भारती

डॉ. निर्मला एस. मौर्य

साहित्य के सृजन में साहित्यकार का दायित्व सबसे अधिक होता है। जिस प्रकार एक व्यक्ति की पहचान उसके गुणों और व्यक्तित्व से, किसी काल की पहचान उस काल की रचनाओं की उपादेयता से होती है, उसी प्रकार एक रचनाकार की पहचान उसकी उदात्त रचनाओं से होती है। किसी भी रचनाकार की कृतियों की मात्रा नहीं, बल्कि गुणात्मकता ही रचनाकार या साहित्यकार और उसके सामयिक समाज को मील का पत्थर बनाती है। साहित्य और समाज का संबंध हाड़-माँस का है। प्रश्न यह उठता है कि साहित्य क्या है और उसकी आवश्यकता क्यों होती है? इस पर थोड़ा विचार करें तो एक बात स्पष्ट हो जाती है मानव एक है, उनके अनुभव एक हैं और उनकी आवश्यकताएँ भी एक हैं तो फिर क्या कारण है कि मानवता के लंबे इतिहास में समाज और साहित्य दोनों ही अलग हो जाते हैं। साहित्य का अर्थ है हित सहित, हित के साथ अर्थात् जो सबका हित करे वही साहित्य है।

इक्कीसवीं सदी की ओर कदम बढ़ाता मानव नए क्षितिज से जुड़े रहा है। जुड़ने की प्रक्रिया में बहुत कुछ ऐसा है जो पीछे छूटता जा रहा है। आज मानव की स्थिति यह है कि वह एक ओर क्षितिज की तलाश में भटक रहा है तो दूसरी ओर अतीत को भी छोड़ना नहीं चाहता और इस कसमकस में पड़े मानव का हृदय शुष्क व कठोर हो जाए तो कोई आश्चर्य नहीं। साहित्य मानव के हृदय की शुष्कता दूर कर स्नेह व प्रेम की उत्पत्ति करता है। उसे सहज व व्यावहारिक बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

साहित्य एक ऐसा शब्द है जो हर क्षेत्र को अपनी परिधि में समेट लेता है। यदि कोई व्यक्ति या समाज यह कहता है कि आज के वैज्ञानिक युग में साहित्य की क्या आवश्यकता व उपयोगिता है, तो मेरा यह मानना है कि जैसे सुविधाओं के रहते हुए भी प्राणी मात्र को जीवित रहने के लिए भोजन, जल और वायु की आवश्यकता होती है वैसे ही वह समाज में रहने वाले मानवों को अपने अस्तित्व को बचाए रख कर जीने के लिए साहित्यरूपी तत्व की आवश्यकता होती है। सृष्टि सुंदर है, किंतु इस सुंदरता

के रहस्य को प्रकट करने वाला साहित्य उससे कहीं सुंदर है। इसी संदर्भ में मैं पश्चिमी चिंतक मैथ्यू आर्नल्ड का कथन लेनी चाहूँगी जिनका यह मानना था कि- साहित्य जीवन की आलोचना है और साहित्यकार देश, काल तथा परिस्थिति की उपज ही नहीं होता अपितु इनसे नियंत्रित और निर्देशित भी हुआ करता है। एक स्थान पर वह काव्य-साहित्य को विज्ञान से भी श्रेष्ठ मानते हुए कहते हैं कि काव्य धर्म का ही नहीं, विज्ञान का भी स्थान लेगा, क्योंकि उसका प्रयोजन केवल आनंद ही नहीं, जीवन की आलोचना भी है (More and more mankind will discover that we have to turn to poetry to interpret life for us, to console us, to sustain us. Without poetry our science will appear incomplete and most of what now passes with us for religion and philosophy will be replaced by poetry. Selected Essay: The study of poetry)

किसी भी देश का साहित्य उस देश के समाज की सभ्यता और संस्कृति का परिचायक होता है। जिस देश के समाज के जीवनानुभव जितने गहरे होंगे वहाँ का साहित्य उतना ही संपन्न होगा। संस्कृतियों के संघर्ष साहित्य को इतना उदात्त और सार्वभौमिक बना देता है कि वह किसी एक राष्ट्र या व्यक्ति के दायरे में न बँधकर अपने में शाश्वत मूल्यों और तत्वों को समेट कर वट वृक्ष बन जाता है। साहित्य-सेवन में मानव की भावनाएँ कोमल बनती हैं। जब मानव सुसंस्कृतनिष्ठ और व्यवहार कुशल होगा तभी समाज में शांति की स्थापना होगी और उसके विकास का मार्ग प्रशस्त होगा।

सुब्रह्मण्य भारती एक ऐसे राष्ट्रीय कवि हैं जिनका साहित्य पढ़कर आनंद प्राप्त करने की स्थिति नहीं आती, बल्कि आनंद स्वयमेव मिल जाता है। रचनाकार सदैव अपनी रचनाओं के रूप में हमारे बीच जीवित रहता है। भाषा, भावों की अभिव्यक्ति का माध्यम होती है बाधक नहीं। कश्मीर से कन्याकुमारी तक भौगोलिक वैविध्य होने पर भी भारत में राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक एकता सदैव बनी रही। किसी साहित्यकार के जीवन में मानव से ज्यादा मानवता का महत्व होता है। महाकवि भारती ऐसे मानवतावादी कवि थे जो संपूर्ण विश्व को प्रेम और राष्ट्र प्रेम का पाठ पढ़ाना चाहते थे। वह अपनी प्रसिद्ध कृति कुयिल पाट्टु में अपना चिंतन इस प्रकार व्यक्त करते हैं-

'कादल, कादल, कादल

कादल पोयिर कादल पोयिर
सादल, सादल, सादल
अस्ले यामनल लोलिये
ओलिपो मायिन् ओ लिपो मायिन्
इस्ले इस्ले इस्ले
इनबम्, इनबम्, इनबम्
इन्बम्म दिर्कोर, एल्लै काणिल्
तुनबम्, तुनबम्, तुनबम्
अर्थात्
प्रेम, प्रेम, प्रेम
प्रेम असफल है तो मृत्यु
मृत्यु, मृत्यु!
प्रकाश, प्रकाश, प्रकाश
प्रकाश का अभाव
केवल अंधकार, अंधकार, अंधकार!
आह्लाद, आह्लाद, आह्लाद
आह्लाद का अभाव
केवल पीड़ा, पीड़ा, पीड़ा'

कवि का यह संग्रह मात्र प्रेम काव्य या कोयल गीत नहीं अपितु कुछ ऐसा चिंतन समेटे है जिसकी व्याख्या नामुमकिन नहीं तो कठिन अवश्य है। स्वयं कवि इसका संकेत देते हुए कहते हैं-

'आव्ड्र तमिलप्पुलवीर
कर्पनये यानालुम
वेदान्तमाग विस्तप पोरुड्रैक्क
यादानुंसट्रै इडामिरुढार कूरीरो?'

ऐ तमिल के प्रबुद्ध पुरातन कवियों, यह कहानी अवश्य है परंतु क्या इसमें कोई गहन दर्शन नहीं छिपा है? क्या आप इसका अर्थ बता सकेंगे। कवि की यह चैतन्य वाणी इस बात का द्योतक है कि यह काव्य मात्र प्रेम-काव्य नहीं, बल्कि इसमें राष्ट्र-प्रेम जैसा तत्व है जो पाठकों को गहन चिंतन और गहराई तक ले जाता है।

कवि भारती ने तमिल-साहित्य को नई गति, नवभाव व विकास तथा नव छंद दिये। शोषण व दमन का विरोध करने वाले कवि

भारतीय मात्र प्रेम व दर्शन के कवि नहीं, बल्कि उनके साहित्य में भाषा प्रेम, राष्ट्र-प्रेम तथा विश्व-प्रेम एक ही सूत्र में बँधे मुक्तामणियों की भाँति अभिव्यक्त हुए हैं। चाहे राष्ट्रप्रेम, राष्ट्रीय संस्कृति की बात हो अथवा नारी शिक्षा और नारी मुक्ति की। कवि 'पाँचाली शपथम' में द्रौपदी के रूप में आधुनिक नारी की परिकल्पना कर उसे महाशक्ति के रूप में उभारते ही नहीं, बल्कि उसके द्वारा राष्ट्र मुक्ति के लिए त्याग करने एवं अत्याचार सहने की तत्परता का उल्लेख भी करते हैं। द्रौपदी और कोई नहीं, बल्कि रूढ़िबद्ध समाज के शिकंजे में फँसी तथा उससे निकलने को तत्पर एक नारी है। यही नारी परतंत्रता की बेड़ियों में जकड़ी असहाय भारतमाता है। इस विषय में डॉ. आर. के. श्रीनिवास आयंगर कहते हैं- भारत की 'पांचाली शपथम' हमारे युग के अरविंद-दर्शन और गाँधी की क्रांति के लिए पुनर्जागरण का मंत्र है, एक राष्ट्र भक्ति के धर्म का आख्यान है।

द्रोपदी का स्वरूप तद्युगीन भारत माता का है जो मानवीयता की सभी हदों को पार कर विजित की गई तथा अवसर आने पर वही नारी चंडी और महाकाली का रूप धारण करती है। देशप्रेम और मानव-समता के कवि भारती की प्रसिद्ध रचना कुयिलपाट्टू की तुलना कई आलोचकों ने दांते की डिवाइन कॉमेडी से की है। विविधता में एकता का संदेश देने वाले कवि भारती एक सशक्त गद्य लेखक और राष्ट्रप्रेमी रहे हैं। बीसवीं सदी की तमिल कविता के कुलभूषण कवि भारती ने भारत को माँ मानकर उसका यशोगान किया है। वर्तमान के धरातल पर अतीत के सहारे भविष्य की ओर संकेत करने वाले युगद्रष्टा कवि भारती का साहित्य उनकी अद्वितीय कल्पना और प्रगल्भ प्रबंधात्मकता का परिचायक है। कवि एक ऐसे भारत की कल्पना करते हैं जहाँ जाति-पाति, धर्म और भाषा का बंधन नहीं होगा किंतु विविधता में एकता का आनंद होगा। सामान्य भारतवासी का उत्साहवर्द्धन करते हुए वह गा उठते हैं-

'विघ्नो का दल चढ़ आये तो, उन्हें देख भयभीत न होंगे,
अब न रहेंगे दलित हम, कहीं किसी से हीन न होंगे,
क्षुद्र स्वार्थ की खातिर हम तो कभी न गर्हित कर्म करेंगे।
पुण्य भूमि यह भारतमाता, जग की हम तो भीख न लेंगे।
और अन्त में कहते हैं कि-
आर्य भूमि उत्कर्षमयी यह, गूँजेगा यह गान हमारा।
कौन करेगा समता इसकी, महिमामाय यह देश हमारा।'

कवि ने व्यावहारिक आदर्श को ध्यान में रखते हुए कविता को सामान्य संपत्ति में ढाल दिया। श्री मंडयम् श्रीनिवासाचारियर मानते हैं कि भारती ने केवल अच्छे कवि न मानकर उन्हें विश्व आनंद का कवि माना है जिसकी ओर मानवता आज धीरे-धीरे कदम बढ़ा रही है। भावों की जननी भाषा व्यक्ति-व्यक्ति के मध्य स्नेह, व्यवहार व सौहार्द की भावना जगाती है, इसी स्नेह और राष्ट्रप्रेम के कवि हैं भारती। उन्होंने अपने साहित्य को संकुचित दायरे में न बाँधकर विश्व के स्तर पर देखा है।

कवि भारती तमिल-साहित्य के ऐसे मील के पत्थर हैं जो सुनहरे भविष्य की ओर संकेत करता है। जिस प्रकार दर्पण में व्यक्ति स्वयं का अक्श प्रतिबिंबित होते देखता है, वैसे ही कवि भारती भारतवर्ष की संपूर्ण भारतीय संस्कृति को प्रतिबिंबित करने वाले दर्पण थे। उनका साहित्य सार्वभौमिक है। स्वतंत्रता के अनन्य उपासक, समाज सुधारक, राष्ट्रीय एकता के अग्रदूत तथा नई मानवीय व्यवस्था के मसीहा भारती भले ही अपनी मातृभाषा तमिल के रचनाकार थे, किंतु वह कभी की भौगोलिक सीमा में नहीं बँधे, यही कारण रहा कि वे हर मानव के हृदय के पुष्प थे। स्वतंत्रता की प्राप्ति होना हर भारतवासी के लिए सपने की बात थी और कवि उनसे अलग नहीं थे। वे अपने हृदय की भावना अपनी एक कविता स्वतंत्रता का बिरवा में व्यक्त करते हैं-

'इसको कोई नीर सींचकर थोड़े ही पाला है,
सर्वेश्वर इसमें तो हमने नयन नीर डाला है।'

किसी भी रचनाकार की रचना उसकी अंतःयात्रा का पड़ाव होती है। कवि ऐसी ही यात्रा के यात्री हैं जिनकी प्रत्येक रचना उनके लिए पड़ाव है। वह कहीं ज्योति और अँधेरे की बात करते हैं तो कहीं अग्निकरण की-

ज्योति जो यत्र तंत्र सर्वत्र पूरित
तो भी यह अधर्मांधकार पतित
हृदय पटल पर क्यों
उनका यह मानना है कि-ज्योति रूपी अनन्त पूर्णत व्याप्त होती है
फिर भी अकेला मन क्यों
तिमिर पीड़ित?

एक छोटा सा अग्निकण न जाने कब अग्निपुंज में परिवर्तित हो सब कुछ जलाकर खाक कर दे। कवि को एक ऐसा ही

अग्निकण मिलता है जिसे वह पेड़ की खोह में रख देते हैं और प्रारंभ होता है विनाश का तांडव–

'सघन वन में मुझे
किस दिन.... कहीं
मिला एक अग्निकण
जिसे रख दिया पेड़ के खोखल में वहीं
आग की भयंकर लपटों से सारा जंगल हो गया राख
और आगे की पंक्तियों की प्रभावोत्मकता देखें कि–
एक बार को लपटें यदि हो जाएँ क्रुद्ध
तब कौन छोटा कौन बड़ा, कौन युवा, कौन वृद्ध'

कवि भारती कई बार अंतःकरण को आश्वासन देते हैं कि सृष्टि की प्रत्येक वस्तु आदि शक्ति द्वारा संचालित है, अंतःमन को सन्मार्ग पर चलना चाहिए। मानव जाति की गरिमा और आत्मा की स्वतंत्रता में प्रबल आस्था का दीप जलाने वाले कवि सामंतवाद व साम्राज्यवाद के युग में भी समता व स्वतंत्रता में प्रबल विश्वास रखते थे। स्वतंत्रता देवी की स्तुति, स्वतंत्रता का पल्लू, स्वतंत्रता जैसी कई कविताओं में कवि का यही विश्वास फलित होता दिखाई देता है। जनता की लोकतांत्रिक भावनाओं को जागृत करने वाली पंक्तियाँ राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन के दिनों में बहुत लोकप्रिय हुई कवि कहते हैं–

'स्वतंत्रता, स्वतंत्रता, स्वतंत्रता
बृहद् जाति में नहीं अकिंचन, दास न कोई
अब भारत में नीच व्यक्ति को नाम कोई।
आपस में हिल–मिल समता का समय बिताएँ
सबने पाई आज स्वतंत्रता।'

इसी प्रकार स्वतंत्रता का पल्लू गीत में कवि गा उठते हैं कि भारत में समानता का तथा छल प्रपंच से पूर्ण मुक्ति का नवयुग आ गया है। कई बार कवि का मन विचलित हो उठता है तो वह कह उठता है–

'माँ दे री माँ, दे हमें स्वतंत्रता सदा ही, जिससे
मनमोहन महकते सुरभियुक्त पवित्र अमृत सागर
से घिरे द्वीप में बसे ज्योतिर्मय देवगण
मिलकर मित्रता बढ़ाएँ हमसे।

प्रतिभा कल्पना का जहाँ महत्व हो वहाँ व्युत्तिपरक कल्पना

का क्या काम? कवि भारत प्रतिभा रचनाकार हैं, वह भारतवासियों की वर्तमान अवस्था गीत में कहते कि-

'आधि-व्याधियाँ हैं असंख्य, जिनसे पीड़ित ये जन हैं।
अपने से उठकर चलने में भी असक्त ये जन हैं।
किसी और ने राह दिखा दी तो चल पड़ते हैं,
नेत्रहीन शिशुओं से नित्त विपदाओं में फँसते हैं।
जिस महान भूमि पर पनपीं चालीस कोटि कलाएँ
उस पावन धरती पर इनको नहीं मिली सुविधाएँ
यहाँ मनुष्य विवेकहीन पशु सा जीवन जीता है।
व्याकुल हो उठता हूँ, मुझसे रहा नहीं जाता है।
देख आज के जन की हालत, हृदय फटा जाता है।'

अँधकार में डूबे भारतवासियों को स्वतंत्रता के प्रकाश की ओर ले जाने वाले कवि भारती शब्दों का गुँजार कर उठते हैं-

'बजा, बजा रे 'जयभेरी
हृदय भानु की अरुण किरणों में नहा लिए
अमृत जैसी ज्योति देख मन को नहला लिये।'

कवि सत्य को परमानंद की श्वेत मानते हैं। वह यही चाहते हैं कि उनके मन रूपी मंदिर में सत्यरूपी तारा सदैव चमकता रहे। वह मन को बारबार यह स्मरण रखने को कहते हैं कि अतीत लौट कर नहीं आता अत: उसे स्मरण रखने की आवश्यकता नहीं। वंदेमातरम् जैसी कविता लिखने वाले कवि-लेखक की कलम जहाँ एक के गीत गाती है वहीं तेज और ओज की पंक्तियाँ भी उगलती हैं। जहाँ शत्रु पर दया दिखाने क़ी बात करते हैं वहीं आत्मजय की भी-

'देखते हैं हम धुँए के बीच में
हुआ करती है आग
शत्रु के हृदय में है वास कृष्ण का
जिस प्रेम के देवता के रूप में
पूजते हैं सभी बुद्धिमान लोग
रे मेरे मन! मधुर
दया दिखा शत्रु पर'

कोई व्यक्ति आत्मजय की बात तभी कर सकता है जब यह इंद्रियों को जीत ले। सांसारिक जीवों के लिए यह कार्य बड़ा दुष्कर है।

कवि मानते हैं कि जबतक व्यक्ति आत्मजय में दक्ष नहीं होता तब तक वह ज्ञानी होते हुए भी अज्ञानी है। इस प्रकार कवि भारती मानस व जन-चेतना के कवि हैं जिनका साहित्य राष्ट्रीय चेतना, भारतीय संस्कृति और परंपरा का साफ सुथरा निर्मल दर्पण है। तमिल में कहें तो-'भारतीय मनिदनेयम् कोन्ड कवि। अवरमनिद रैविड़ मानिदनेयत्तिनमीद नम्बिकै कोन्डवर। अवर देशपट्रमटुम समत्वइतह पौट्रकूड़िय कवि। कवि भारती तमिल लिटरेचरइक्क पुदियनडै, करत्तकल, याप् मटुम मुन्नेट्रम एरपड़ित्तिउल्लार। अवर वेट्रमइल ओट्रमइ एन्ड्रकरत्तै कूरिउल्लार। तमिल कविदै कुलभूषणम् कवि भारतीयार 20th सेन्यूरीयनुड़य अमर कवि। (भारत मानवतावादी कवि थे। वह मानव से ज्यादा मानवता पर विश्वास करते थे। वह देशप्रेम और मानवीय समता के कवि थे। कवि भारती ने तमिल साहित्य को नया गीत, भाव, छंद व विकास दिया। उन्होंने विविधता में एकता का संदेश दिया। तमिल कविता के कूलभूषण कवि भारती बीसवीं सदी के अमर कवि हैं)। मैं कवि भारती को अपनी ही पंक्तियों से स्मरण करना चाहूँगी-

'हर नया युग नये मोड़ की निशानी है।
हर नई क्रांति भारती की कहानी है।'

सर्वत्यागी देशभक्त निर्भय राष्ट्रवादी सरदार पटेल

सिद्धेश्वर

देश इन दिनों अस्मिता के संकट और विखंडन की ताकतों से एक साथ जूझ रहा है। एक ओर कश्मीर में अलगाववादियों के द्वारा जहाँ भारत की राजसत्ता पर लागातार आक्रमण जारी है, वहीं दूसरी ओर पूर्वोत्तर राज्यों के आतंकवादियों ने अमन-पसंद लोगों की जिंदगी को दूभर बना डाला है। फिर असम के अल्फाइयों ने भी इधर कम कहर नहीं ढाला है। स्वाभाविक है उस लौह पुरुष सरदार पटेल की आज याद आना जिनकी उपस्थिति में इन सभी समस्याओं की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। अनायास ही आज हम सबों के मुँह से यह आवाज आ जा रही है, काश! आज सरदार पटेल हमारे बीच होते, तो कदाचित जितनी समस्याओं का आज हमें सामना करना पड़ रहा है, उनमें से एक भी शायद पैदा ही नहीं होती। नेहरू जी ने कश्मीर तथा तिब्बत की समस्या को सरदार पटेल से अपने हाथ लेकर आज किसँ मजबूरी तक हमें पहुँचा दिया। कश्मीर आज हमारा सर-दर्द बन गया। इस बात का खुलासा करते सत्ता के हुकमरानों को आज भी डर लगता है कि इस सचाई को सामने लाने पर जवाहरलाल नेहरू जी का कहीं कद न छोटा हो जाय। यही कारण है कि देश के सर्वोच्च शिखर पर आज तक बैठे सत्ताधारियों ने सरदार पटेल के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को उजागर करने में कंजूसी करते रहे, सकुचाते रहे। किंतु वे सचाई पर परदा बहुत दिनों तक डाले नहीं रह सकते। समय ने करवट बदली है और असलियत अब जनता के सामने आने लगी है। मौजूदा आर्थिक संकट, राजनीति में पनप रहे चमचावाद, स्तरहीनता के फलस्वरूप समाज में हर स्तर पर ह्रास तथा देशभक्ति की भावना लोगों में लगातार लुप्त होते देख हम सब आज बाध्य हो रहे हैं, सरदार पटेल को याद करने के लिए। माखनलाल चतुर्वेदी जी की ये पंक्तियाँ हमें याद आ रही हैं–"दुनिया की मर्दुम शुमारी गलत हो रही है। यथार्थ में दुनिया में दो चार ही गिने-चुने जीव रहते हैं। उन्हीं की गिनती दुनिया भी करती है और उन्हीं का मत दुनिया का मत।"

इसलिये आज जरूरत है सरदार पटेल के विचारों एवं आदर्शों को घर-घर तथा जन-जन तक पहुँचाने की, क्योंकि देश की एकता और अखण्डता की रक्षा के लिये एकजुट रहने की आवश्यकता है, ताकि

भारत माँ के निकट बेड़ियों की झनझनाहट तक नहीं पहुँचने पाए। जब-जब देश को खण्डित करने वाली शक्तियाँ अपना सर ऊपर उठाती हैं, भारत के लौहपुरुष तथा राष्ट्र की एकता के प्रतीक सरदार पटेल की याद बरबस हम सभी देशवासियों के मानस-पटल पर छा जाती है। किंतु दुख की बात यह है कि आज हर मंच से देश की एकता तथा अखण्डता के नारे नेताओं द्वारा लगाए जा रहे हैं पर नाम उनका लिया जा रहा है जिनका भारत के स्वतंत्रता-आंदोलन में योगदान करने की बात तो दूर, उन दिनों उनकी पैदाइश भी नहीं हुई थी। यह कैसी विडंबना है।

लौहपुरुष व्यक्ति से अधिक एक प्रतीक थे और प्रतीक से भी बढ़कर इतिहास के परिच्छेद। उस प्रतीक को संबंधों के मजार का दीया बनाने का प्रयास हम करेंगे, तो सरदार पटेल के व्यक्तित्व को बौना बनाएँगे, जो कभी भी न्यायोचित नहीं होगा। हमने यदि अपने राष्ट्र पुरुषों को बौना बनाया, तो हमारा राष्ट्र भी बौना हो जाएगा। जाने वाला चला जाता है और छोड़ जाता है समय की शिला पर एक ऐसी लकीर, जिस पर इतिहास हो या साहित्य, समाज हो या संस्कृति, अपने बौने पैरों से उन लकीरों का बोध बनाता है। सहज और सरल व्यक्तित्व की ऐसी रेखाएँ हैं, जिनमें वक्रता की कोई गुंजाइश नहीं होती। सरदार पटेल का व्यक्तित्व भी ऐसा अदम्य साहस और शौर्य से भरा था कि हजार चाहने के बावजूद भी उसे वक्र बनाने में स्वयं वह बौना हो जाएगा, केवल दीवार पर लिखे को पढ़ने की जरूरत है जरा देखें इन पंक्तियों को-

वक्त जब गुलशन पे पड़ा था,
तो हमने खून दिया,
अब बहार आई है
तो कहते हैं तेरा काम नहीं

आज जहाँ एक तरफ हमारे यहाँ लोग राष्ट्रीय एकता की दुहाई देते नहीं थकते और दूसरी ओर बेशर्मी से ऐसे काम करते हैं जो राष्ट्रीय एकता की जड़ों पर प्रहार करने वाले हैं। मुश्किल यह है कि हमारे मन में आज राष्ट्रीयता का एक मूल आधार हमारा संविधान है। उसकी प्रस्तावना में स्वतंत्रता और समता के साथ बंधुता का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि यह मूल्य व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता तभी मजबूत हो सकती है जब देश में रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति को उचित सम्मान मिले और साथ ही हममें भाईचारे का विकास हो। इसका एक निहितार्थ यह है कि

यदि देश के किसी नागरिक को चोट पहुँचाई जायगी, उसके साथ भेद-भाव किया जायगा, तो राष्ट्रीय एकता कभी मजबूत नहीं होगी।

आज भारत के अनेक इलाकों में जो असंतोष, विद्रोह और अलगाव की प्रवृत्तियाँ दिखाई देती हैं उनके पीछे भी कारण वही है। हमने अभी तक आबादी के बड़े भाग को आर्थिक और सामाजिक न्याय से वंचित रखकर उसकी जायज आकांक्षाओं को प्रताड़ित किया है। बेरोजगारी और आय के असमान वितरण ने इस समस्या को और जटिल बनाया। गलत आर्थिक नीतियाँ, जो ऊपर के पांच-सात प्रतिशत लोगों की हित-पोषक रहीं, अपनाई गईं। सामाजिक न्याय के लिये संविधान में जो व्यवस्था की गई थी उसे राष्ट्रीय एकता का तमाशा करने वाली पार्टियों, उच्च वर्गों और राजनेताओं द्वारा प्रताड़ित किया गया। सदियों से जिन जातियों के गर्व को वर्ण-व्यवस्था ने कुचला, उन्हें आज भी मानवीय गरिमा का एहसास नहीं कराया जा सका है। आरक्षण व्यवस्था को, जो वर्ण-व्यवस्था को तोड़ने का कारगर हथियार है, जातिवाद को बढ़ाने वाला कहकर पेश किया गया तथा समाज के कुछ वर्गों को भड़काया गया। इन सब के चलते राष्ट्रीय एकता का वह स्वप्न पूरा नहीं होगा, तो सरदार पटेल के सपनों का भला क्या होगा? इस पर आज हम सबों को गंभीरता से विचार करने की आवश्यकता है।

एक बात और, जिसके संदर्भ में सरदार पटेल के नाम को घसीटने का असफल प्रयास किया जा रहा है, जिसकी ओर आपका ध्यान आकृष्ट कराना चाहूँगा। स्वतंत्रता-आंदोलन के वक्त हमने धर्म, नस्ल, संस्कृति, भाषा और जाति को राष्ट्रीयता का आधार कभी नहीं माना। हमारे स्वतंत्रता-आंदोलन में धर्म के आधार पर बने दो राष्ट्रों के सिद्धांत का लगातार विरोध किया गया था लौहपुरुष सरदार पटेल के द्वारा। बल्कि सच तो यह है कि स्वतंत्रता-आंदोलन के शुरु से ही हिंदू, मुस्लिम, सिख, ईसाई, पारसी आदि फिरकों का भेद समाप्त करके इस देश को सभी भारतवासियों का देश मानने का आग्रह उन्होंने किया था और अथक प्रयास के बावजूद भी धर्म के नाम पर जब भारत को बँटते देखा, तो अंत में उनका कहना था कि यदि धर्म के नाम पर ही देश को बाँटना है, तो धर्म के आधार पर देश की पूरी आबादी का बँटवारा भी हो जाना चाहिए, अर्थात् हिंदू हिंदुस्तान में और मुस्लिम पाकिस्तान में। किंतु उनकी वह बात भी नहीं मानी गयी। फलतः आज जो कुछ हो रहा है वह बस आपके सामने है। काश! सरदार की वह सलाह उस समय यदि मान ली गई होती, तो कदाचित आज सांप्रदायिकता

की आग से हमें छुटकारा मिल गया होता।

"काश! आज सरदार पटेल हमारे बीच होते, तो कदाचित् जितनी समस्याओं का आज देश को सामना करना पड़ रहा है, उनमें से एक भी शायद पैदा ही नहीं होती।" ये वाक्य हैं भारत के पूर्व प्रधान मंत्री चौधरी चरण सिंह के, जिन्होंने दो दशक पूर्व सरदार पटेल की जयंती के अवसर पर प्रकाशित स्मारिका के लिए मुझे भेजे गये अपने संदेश में कहा था।

सरदार पटेल आजादी के उन प्रथम पंक्ति के नेताओं में हैं, जो हमेशा प्रासंगिक रहेंगे। पटेल जैसे निर्णायक, ईमानदार, साहसी, समाज की गहरी समझ रखने वाले, निर्भीक और दो-टूक वाले नेता की हमारी राजनीति में हमेशा जरूरत थी और आज भी है। देश की आंतरिक समस्याओं की गहरी समझ रखने के साथ ही प्रशासनिक ढाँचे को खड़ा करने में पटेल की भूमिका अद्वितीय है। यह पटेल की दूरदर्शिता ही थी कि उन्होंने आजादी के बाद भी बहुत से अँग्रेज अधिकारियों को नहीं बदला। शुरुआती वर्षों में भारतीय प्रशासनिक सेवा को जितना सम्मान और स्वाभिमान किसी ने दिया तो वे पटेल ही थे।

मेरा ख्याल है कि ऐतिहासिक विभूतियाँ अपने को एक ही रूप में खुद का बार-बार नहीं दोहरातीं और ना ही परिस्थितियाँ ही खुद को वापस बुलाती हैं। इसलिए अब भारतीय राजनीति में फिर कोई पटेल होगा, ऐसा कहना मुश्किल है। हालांकि ऐसे नेता की आज सख्त जरूरत है। भारत के भौगोलिक, राजनीतिक और एकता के रूप में आज जिस बात को देखने की हमें आदत पड़ गयी है, वह सरदार पटेल ने ही दी है। यह एक ऐसा काम था, जो शायद और कोई और नहीं कर सकता था। नियति ने यह काम सरदार पटेल के कंधों पर डाला और जिस तरह से वी. पी. मेनन के साथ उन्होंने इसे पूरा किया, वह आज किसी भी देश के लिए ऐतिहासिक गर्व की बात है।

सरदार पटेल को किसी वाद या विचारधारा में बाँध कर देखना ऐतिहासिक अपराध होगा। सबकी अपनी एक अलग दृष्टि और संवेदनशीलताएँ होती हैं। गाँधी जी के सर्वाधिक निकट लोगों में जिस तरह से पटेल बने रहे, वह कोई हिंदूवादी नहीं कर सकता था। पटेल ने इस बात पर बल दिया कि हमारा लक्ष्य सभी वर्गों के नागरिकों को जितना जल्दी हो सके समानता के स्तर पर लाने तथा समस्त वर्गीकरणों, भेदों व विशेषाधिकारों को समाप्त करने का है। बहुसंख्यक व अल्पसंख्यक दोनों को उनके

दायित्व का स्मरण कराते हुए उन्होंने कहा था कि यह सबके हित में है कि सेक्युलर राज्य की वास्तविक और प्रामाणिक नींव डाली जाए। हमें यह समझना होगा कि भारत में केवल एक ही समाज है।

इसी प्रकार सरदार पटेल सांप्रदायिकता के विरोधी और धर्मनिरपेक्षता के लिए पूरी तरह प्रतिबद्ध थे। उन्होंने कई बार सार्वजनिक रूप से सांप्रदायिकता और सांप्रदायिक संगठनों का विरोध और धर्मनिरपेक्षता में अपनी आस्था घोषित की। जून, 1947 में भारत को हिंदू राष्ट्र बनाने का सुझाव खारिज करते हुए उन्होंने कहा था-'हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि हमारे यहाँ अल्पसंख्यक भी हैं, जिनकी सुरक्षा हमारी ही प्राथमिक जिम्मेदारी है। राज्य सबके लिए है और उसमें जाति या धर्म का कोई भेदभाव नहीं है।'

हमारे देश के स्वाधीनता-आंदोलन और स्वतंत्र गणराज्य के नवनिर्माण में अपनी अग्रणी जननेता सरदार वल्लभभाई पटेल सर्वत्यागी देशभक्त निर्भय राष्ट्रवादी थे। अपने गंभीर व्यक्तित्व, त्यागमय चरित्र, कूटनीति कौशल और संकल्पनिष्ठा के बल पर वे स्वतंत्र भारत के प्रधानमंत्री के पद के सच्चे अधिकारी माने जाते थे। मगर गाँधी जी की इच्छा से पदमोह त्यागकर, उन्होंने नेहरू जी के नेतृत्व में राजसत्ता संभाली और कर्तव्य, निष्ठा तथा अनुशासन का जीवन आदर्श प्रस्तुत किया।

भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने अपनी डायरी में लिखा था कि आज हम जिस भारत की बात करते हैं और जिसके बारे में सोचते हैं, वह सरदार पटेल की व्यापक राजनीतिक सूझबूझ और दृढ़ प्रशासन के कारण ही मुमकिन हुआ है। देश की आजादी के समय समूचा देश छोटे-छोटे भू भाग में विभाजित था। इनके शासकों को भारत या पाकिस्तान में से किसी एक में विलय का फैसला लेने को कहा गया था। जब अँग्रेजों ने भारत छोड़ा, तब वे स्वतंत्र शासक बनने के स्वप्न देख रहे थे। उन्होंने तर्क दिया कि स्वतंत्र भारत की सरकार उन्हें बराबरी का दर्जा दे। उनमें से कुछ लोग तो संयुक्त राष्ट्र संगठन को अपना प्रतिनिधि भेजने की योजना बनाने की हद तक चले गए थे। ऐसे दुविधापूर्ण समय में 1947 से 1949 के बीच दो वर्षों की अवधि में उन्होंने रिकॉर्ड समय में 554 देशी रियासतों को भारत से जोड़ने में कामयाबी पायी थी। इसी प्रकार महात्मा गाँधी ने भी साफ कहा था कि राज्यों और रजवाड़ों की समस्या को कोई सुलझा सकता है तो वह है सरदार पटेल। 15 अगस्त, 1947 तक केवल जम्मू-कश्मीर, जूनागढ़ और हैदराबाद को छोड़कर सभी देशों रजवाड़ों को

भारत में विलय का राष्ट्रवादी औचित्य समझा देना एक भगीरथ प्रयास था। हैदराबाद का निजाम, जो 'स्वतंत्रता, पाकिस्तान अथवा युद्ध' पर अड़ा हुआ था, वह भी भारत में विलय करने के लिए राजी हो गया।

1875 के 15 दिसम्बर को गुजरात के नाडियाद में जन्में पटेल 1890 में बड़ौदा रियासत के तहत जिले में स्कूली शिक्षा प्राप्त की और 1892 में महज 17 वर्ष की उम्र में झावेर बा के साथ उनका विवाह हुआ था। 1900 में लॉ की शिक्षा हासिल करने के बाद गोधरा में बतौर क्रिमिनल लॉयर वकालत शुरुआत की। बाद में वे अहमदाबाद आ गए थे। 1910 में वकालत की उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए वे इंगलैंड गए। 1918 में खेड़ा सत्याग्रह के दौरान गाँधी जी ने 1921 में अहमदाबाद में आयोजित भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस के राष्ट्रीय अधिवेशन के दौरान पटेल को गंभीरता से सुना गया और देश ने उनकी सांगठनिक क्षमता को समझा। फिर 1924 में अहमदाबाद म्यूनिसिपल बोर्ड के वे अध्यक्ष चुने गए। 1927 में कराची में आयोजित भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस के अधिवेशन के दौरान वे अध्यक्ष चुने गए। फिर 1947 में आजाद भारत के सरदार पटेल पहले उपप्रधानमंत्री नियुक्त हुए। 15 दिसम्बर, 1950 को सरदार पटेल का निधन हो गया। सरदार पटेल उन गिने-चुने लोगों में से थे, जो दो-टूक में बात करते थे और किसी वर्ग विशेष की भावनाओं को तुष्ट करने या उन्हें खुश करने के लिए नहीं, बल्कि तथ्यों पर बात करते थे। पटेल और गाँधी ही उस समय ऐसे नेता थे जो हिंदू तथा मुसलमानों को भी डांट सकते थे और ये दोनों इनकी बात सुनते थे। लेकिन वर्तमान दौर की भारतीय राजनीति में ऐसा कोई नेता नहीं दिखता, बल्कि सच तो यह है कि आज या तो लोग हिंदुओं को खुश करने की बात करते हैं या मुसलमानों को, या तो दलितों को खुश करने की बात करते हैं या सवर्णो को। हमारी राजनीति और नेताओं का चरित्र ऐसा हो गया है कि वे वर्गीय हितों को ध्यान में रखकर ही बात करते हैं। इसलिए आज देश और समाज को समग्रता को सामने रखकर सबके हित की बात करने की जो जरूरत है, वही चीज सरदार पटेल को प्रांसगिक बनाती है और उन्हें किसी खाँचे से मुक्त करती है।

मेरा स्पष्ट मत है कि अगर सरदार वल्लभभाई पटेल भारत के प्रथम प्रधानमंत्री बनते, तो कश्मीर की समस्या हमारे सामने आज नहीं होती और हम चीन से पहली लड़ाई में नहीं हारे होते। प्रधानमंत्री नेहरू की लिखी हुई सरदार पटेल की चिट्ठियाँ यह बताती हैं कि किस तरह से

उन्होंने बार-बार चीन के इरादों से नेहरू को सचेत किया था। नेहरू पटेल ने बार-बार कहा कि चीन पर भरोसा नहीं किया जा सकता, क्योंकि चीन के इरादे ठीक नहीं हैं। इसी तरह कश्मीर के बारे में पटेल लगातार सचेत करते रहे।

एक आम भ्राँति देशवासियों में गाँधी-नेहरू परिवार और उनके बाद काँग्रेस जनों द्वारा उस समय फैलायी गयी कि नेहरू वैश्विक राजनीति को ज्यादा गहराई से समझते थे, जबकि पटेल की सारी समझ आंतरिक मामलों को लेकर ही थी। मेरे ख्याल से यह एक गलत अवधारणा लोगों में फैलायी गयी, क्योंकि अगर केवल पटेल-नेहरू के पत्राचार को देखते हैं, तो हम पाते हैं कि पटेल को वैश्विक राजनीति में आने वाले उतार-चढ़ाव की गहरी जानकारी रहती थी और वैश्विक मामलों में एक अंतर्दृष्टि भी थी। इसी अंतर्दृष्टि के चलते वे बार-बार नेहरू जी को आगाह करते रहे कि चीन के साथ कैसे रिश्ते होने चाहिए।

बहुमुखी व्यक्तित्व के सरदार वल्लभभाई पटेल मजबूत इच्छाशक्ति के पुंज तो थे ही, त्वरित फैसले तथा दो टूक अपनी बात रखने के भी आदी थे। ठोस कार्रवाई के लिए जाने जाने वाले सरदार पटेल एकता में विविधता की भावना के हामी भी थे। उनमें देशभक्ति का उदात्त भाव था।

सरदार पटेल के सख्त नजरिए और तौर-तरीकों से सहमत या असहमत हुआ जा सकता है, लेकिन भारत की एकता को सहेजने में उनकी प्रतिबद्धता पर प्रश्न नहीं उठाया जा सकता। उन्होंने जिसे सच समझा उसी के पक्ष में हमेशा लड़े। इसी प्रकार उन्होंने पार्टीगत पदक्रम का पूरा सम्मान करते हुए अपनी नाराजगी जताने के लिए हमेशा प्रक्रियात्मक मार्ग को अपनाया। इसी के साथ उन्होंने तमाम असंतोष और मत-भिन्नता के प्रति भी पूरा सम्मान दिखाया। पटेल के नेतृत्व का मर्म तो उनके न्यायप्रिय व्यवहार में निहित है, जिसके बल पर उन्होंने सभी के साथ समान व्यवहार किया। बहरहाल, भले ही सरदार पटेल का स्वर और लहजा कड़ा था, कभी-कभी संशय पूर्ण भी, लेकिन दावे के साथ कहा जा सकता है कि वह अल्पसंख्यकों और बहुसंख्यकों के बीच सौहार्द बनाए रखने के कट्टर हामी थे।

जहाँ तक सरदार पटेल और जवाहर लाल नेहरू के साथ संबंध का सवाल है, भले ही गाँधी जी के कहने पर नेहरू प्रधानमंत्री बने और सरदार पटेल उनके मंत्रिपरिषद् में उपप्रधानमंत्री, लेकिन दोनों के संबंधों

में कभी खटास नहीं आया। नेहरू जी भी सरदार पटेल की राष्ट्रवादिता और कर्मठता को देखते हुए उनका सम्मान करते थे। आखिर तभी तो सरदार पटेल के देहावसान के बाद उनके दोनों संतानों-बेटी मणिबेन और बेटे डाहयाभाई को नेहरू ने संसद में भेजा। मणिबेन दक्षिण कैरा लोकसभा सीट से जहाँ 1952 में और फिर आनंद सीट से 1957 में काँग्रेस के टिकट पर निर्वाचित हुई, वहीं 1962 में गैप होने के बाद उन्हें छह साल के लिए राज्यसभा के सदस्य के रूप में निर्वाचित करवाया। इसी प्रकार मणिबेन द्वारा इंदिरा सरकार के द्वारा देश में लगाए गए आपातकाल का विरोध करने की वजह से मणिबेन जतना पार्टी के टिकट पर 1977 में मेहसाना से जीतीं। वह एक बहुत ही परिपक्व राजनीतिक कार्यकर्ता थीं जिनके नाम पर ही वह शहर बसा है, जो कुछ पहले तक नरेन्द्र मोदी का विधान सभा क्षेत्र हुआ करता था। डाह्या भाई पटेल जो अपनी बहन मणिबेन से तीन साल छोटे थे, बंबई में एक बीमात कंपनी में काम करते थे, को भी काँग्रेस के टिकट पर 1957 और 1962 में लोकसभा के सदस्य रहे। बाद में वह फिर 1970 में राज्यसभा के सदस्य बने और मृत्युपर्यन्त रहे।

वर्तमान दौर की सामाजिक और राजनीतिक स्थिति के मद्देनजर सरदार पटेल की प्रासंगिकता इसलिए भी बढ़ गई है, क्योंकि आज की भौतिकवादी दुनिया में जहाँ नैतिक संकट है, वहीं हमारे देश भारत में देशभक्ति की भावना का तेजी से ह्रास हो रहा है। जाति, धर्म, भाषा तथा क्षेत्रीयता के नाम पर हम एक-दूसरे से दूर होते चले जा रहे हैं। आपने देखा नहीं पिछले दिनों गाँधी और पटेल की जन्मभूमि गुजरात विधानसभा चुनाव, 2017 के चुनाव में जाति और धर्म को आधार बनाकर प्रायः सभी राजनीतिक दलों ने खुलकर राजनीति की।

सरदार पटेल एक किसान नेता थे और 1928 में हुए ऐतिहासिक बारदोली के किसान आंदोलन को उन्होंने नेतृत्व किया था जिसमें उन्होंने देशवासियों को बारदोली सत्याग्रह और किसान आंदोलन का संदेश दिया था कि अहिंसा, असहयोग और नागरिक अवज्ञा का इस्तेमाल करते हुए बड़ी से बड़ी ताकत को झुकाया जा सकता है।

उल्लेख्य है कि जब अँग्रेज हुकूमत ने भू-राजस्व बढ़ाने की घोषणा की थी, तो विरोध स्वरूप सरदार पटेल की अगुवाई में किसानों द्वारा शुरू किए गए इस आंदोलन के वक्त भू-राजस्व नहीं चुकाने और ब्रिटिश सरकार के हितैषियों का सामाजिक बहिष्कार करने की घोषणा की

गयी थी। बारदोली का यह सत्याग्रह और किसान आंदोलन कई महीनों तक चला और आखिरकार ब्रिटिश सरकार को नाक रगड़नी पड़ी, क्योंकि इस आंदोलन को देशभर का समर्थन मिला जिसका पूरा श्रेय सरदार पटेल इसलिए गया क्योंकि इसे गाँधी जी का दिशा-निर्देश मिला, मगर जमीनी स्तर पर सभी काम सरदार पटेल ने ही किया था। कुछ इसी ख्याल से बारदोली की महिलाओं ने लौह पुरुष सरदार वल्लभभाई पटेल को 'सरदार' की उपाधि दी थी और उन्हें अपना मुखिया चुना। इस आंदोलन से एक संदेश यह भी गया कि अगर एक बारदोली का एक तालुका के किसान इतनी बड़ी और ताकतवर हुकूमत को घुटनों पर गिरा सकते हैं, तो किसान एकजुट होकर क्या नहीं कर सकते हैं? वर्तमान दौर में देशभर के किसानों की जो बदतर स्थिति है और उसके समक्ष जो अनेक समस्याएँ खड़ी हैं उसका सामना एकजूट होकर ही किया जा सकता है और उसका हल निकाला जा सकता है।

इसके अतिरिक्त सरदार पटेल ने भूमि सुधार को लेकर देशभर में किसानों के लिए अलख जगाई और यह संदेश दिया कि जो खेत जोतता है, जमीन उसी की होनी चाहिए।

सरदार पटेल ने कृषि कार्य में चल रही बँधुआ मजदूर प्रथा पर रोक लगाई। इस दृष्टि से देखा जाए, तो जिस प्रकार सरदार पटेल के व्यक्तित्व में जो अदम्य साहस, दूरदर्शिता और राष्ट्रीयता की भावना थी उससे वर्तमान दौर में देशवासियों को उनसे प्रेरणा लेने की जरूरत है। इस लिहाज से लौहपुरुष सरदार पटेल आज के दौर में ज्यादा प्रासंगिक हैं। खासतौर पर तब जब आज इस देश के लोगों में जिस तेजी से राष्ट्रीयता की भावना का ह्रास होता जा रहा है उसमें जरूरत इस बात की है कि लौह पुरुष सरदार पटेल के बताए रास्ते पर चलकर हम सभी भारतवासी राष्ट्र को सबल बनाने तथा राष्ट्रीय एकता एवं अखण्डता को अक्षुण्ण बनाए रखने में अपने कर्तव्य का निष्ठापूर्वक पालन करें, ताकि इस देश की एकता पर किसी तरह की आँच न आने दे।

अध्याय : दो
साहित्य और राष्ट्रीयता

राष्ट्र के निर्माण में साहित्य की सार्थकता
डॉ. सुषमा शर्मा

प्रश्न उठता है कि आज सर्जनात्मक चिंतन की उपलब्धियाँ कहाँ तक मानव की संवेदना को प्रभावित एवं रूपांतरित करती हैं जो राष्ट्र के निर्माण में साहित्य की सार्थकता दर्शाने में सहायक हो? इसी प्रश्न को उठाते हुए उपरोक्त शीर्षक पर विचार करते हैं। शब्द और अर्थ का सहित भाव 'साहित्य' होता है। सहित का भावार्थ ही है हित से युक्त! हित का अभिप्राय है-प्रसन्न करने वाला, कल्याण करने वाला। इस प्रकार शब्दार्थमयी रचना जो उपयोगी हो और आह्लाद का भाव उत्पन्न करे वो है साहित्य। साहित्य की उपयोगिता में तीन मुख्य बिंदु विद्यमान हैं- व्यावहारिकता, औचित्य और लाभप्रदायिकता! उपयोगिता किसी वस्तु का महत्व निर्धारित करती है। मानव जब साहित्य से जुड़ता है तो वह तीन रिश्तों से जुड़ता है- 1. व्यक्तिगत, 2. सामाजिक, 3. राष्ट्रीय। जहाँ तक राष्ट्र के निर्माण में साहित्य की सार्थकता का सवाल है वहाँ यह कहना होगा कि व्यक्ति समाज से जुड़ा है, क्योंकि वह सामाजिक प्राणी है। समाज की आधारशिला राष्ट्र पर निर्भर है। अत: राष्ट्र जीवित है तो समाज और व्यक्ति दोनों जीवित हैं। 'पराधीन सपनेंहु सुख नाहिं' की उक्ति से पराधीन राष्ट्र की गुलामी है। उस गुलामी को तोड़ने वाला होता है साहित्य! साहित्य स्वाधीनता के भाव को जागृत करता है, बलिदान और क्रांति की प्रेरणा देता है। राष्ट्रभक्ति ही राष्ट्र के निर्माण में साहित्य की सार्थकता को बल देने में सहायक है। साहित्य राष्ट्र के उज्ज्वल भविष्य का उद्घोषक है। भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के समय हिंदी साहित्य की विभिन्न विधाओं में राष्ट्रीय भावनाएँ उदीप्त करने हेतु सबल प्रयास हुए। समाज सुधार के साथ राष्ट्र के निर्माण में साहित्य में सतत सृजन होता रहा। विदेशी सरकार के विरूद्ध क्रांति की गूँज फैली। साहित्य ने सामाजिक एवं राष्ट्रीय स्तर पर हो रहे शोषण, जातिगत भेद, भ्रष्टाचार, अनाचार, नकली मुखौटे पर कड़ा प्रहार कर जीवन के यथार्थ की तस्वीर खींची। राष्ट्र के निर्माण में साहित्य की सार्थकता में सूर, तुलसी, कबीर, रहीम, भारतेंदू, प्रसाद, निराला, दिनकर आदि कितने ही साहित्यकार

हुए जिनका साहित्य आज भी जीवित है, प्रासंगिक है। इन साहित्यकारों के साहित्य ने उन्हें तो यशस्वी बनाया ही साथ ही हमारे लिए प्रकाश स्तंभ सिद्ध हुआ। इस प्रकार राष्ट्र के निर्माण में साहित्य की सार्थकता ने जीवन को चेतना दी, स्पंदन दिया, समाज के आइने को प्रतिबिंबित किया तो व्यक्तिगत जीवन का प्रेरणा स्रोत बनाया। जब साहित्य में आह्लाद उत्पन्न होता है तो हम कहेंगे कि साहित्य में मानसिक तुष्टि निहित है, मानवीय व्यवहारों की अभिव्यक्ति है। राष्ट्र के निर्माण में साहित्य बुद्धि और मन के माध्यम से गृहित बोध संवेदनाओं का विश्लेषण करने में सहायक है- बुद्धि और मन का समन्वय ही प्रतिभा है, जिसमें कौशल का गुण है। प्रतिभा विश्लेषित बोध की संवेदनाओं में एक ओर कल्पनाओं के रंग भरती है, इंद्रधनुषी रंगों द्वारा उज्ज्वल भविष्य के क्षितिज को छूती है, तो दूसरी ओर अभिव्यक्ति के पक्ष के स्वरूप को झंकृत करती है। मन इन ज्ञानेंद्रियों और कर्मेंद्रियों में सेतु की भूमिका निभाता है। अंत:करण परोक्ष रहकर विषय के संश्लेषण में जुड़ाव का रिश्ता कायम रखता है। साहित्य राष्ट्र के निर्माण में अभिव्यक्ति से पूर्व उसका आस्वादन करता है और रचना की अभिव्यक्ति के बाद उसके संप्रेषण से संतुष्टि होती है। यही साहित्य जनित मैत्रीभाव है। जिस प्रकार संत चित्त की एकाग्रता से आनंद की अनुभूति ग्राह्य करता है, उसी प्रकार साहित्यकार अपनी कलम से प्रतिपावन विषय में हमें अपने निजी जीवन को, इर्द गिर्द के जीवन को नए आयाम देता है। प्रत्येक युग का साहित्य आज के तर्क सम्मत परिवेश के संस्कारों से जुड़े दिखाई देते हैं। यदि प्राचीन साहित्य के आस्वादन पर आधारित वे कृतियाँ भी अमर हैं जिसने राष्ट्र के निर्माण में अहम भूमिका निभाई आज के परिवेश में भी वे संदर्भ प्रासंगिक हैं। जब साहित्य के इतिहास पर दृष्टि डालें तो इतिहास का उद्देश्य है अतीत का गौरवगान-सामाजिक परिवर्तनों को प्रभावित करने वाले उन सक्रिय विचारों का अन्वेषण है जो समाज के विकास में सहायक सिद्ध हुए हैं। साहित्य का इतिहास किसी भी भाषा को ही व्यक्ति के कार्यो एवं उपलब्धियों को वर्णित करता है। इस प्रकार साहित्य का इतिहास मानव के इतिहास की मुँहबोली कहानी है। इतिहास के पृष्ठों में ऐसे साहित्य के पृष्ठ हैं जो समाज को, राष्ट्र को नई दिशा देते हैं। उनके प्रभाव से व्यापक रूप में समाज की, राष्ट्र की छवि दिखाई देती है।

साहित्यकारों ने समाज सुधार का बीड़ा उठाया, कबीर को हम दुहराएँगे, क्योंकि उनकी वाणी व्यक्तिगत स्तर से उठकर समाजगत स्तर

पर उभर कर सामने आईं। राष्ट्र के निर्माण में संतों की अहम् भूमिका रही चाहे वो तुलसीदास हों जिन्होंने....... सुखाय को जनहित सुखाय प्रदान किया। सूर ने, तुलसी ने हरि अनंत हरि कथा अनंत द्वारा भक्ति के अभ्युदय में अहम् भूमिका निभाई, जनमानस को राममय, कृष्णमय बनाने का आह्वान किया। उनके स्वर स्वयं नहीं बोलते अपितु उनके परस्पर समवेत स्वर बन जाते हैं- हर साहित्यकार वृत्ति के माध्यम से उस युग की छवि दर्शाता है जिसका वह स्वयं अभिन्न अंग है, अत: परिस्थितियाँ उसे झकझोर देती हैं-हर साहित्यकार बन जाता है- 'कबीरा खड़ा बाजार में, सबका दुखड़ा देख, न काहू से दोस्ती ना काहू को बैर' -निष्पक्ष रूप से समाज को देता है-उसके विचार प्रधान होते हैं, विषयवस्तु समाज को नई दिशा का आधार होता है, जो राष्ट्र के निर्माण का कर्णधार सिद्ध होता है।

व्यक्ति अपने युग में जीता है उसी युग में समाज है, समाज का प्रतिबिंब है साहित्य। साहित्य में कला है, जीवन भी एक कला है। अत: कला साहित्य दोनों एक दूजे के लिए हैं। व्यक्ति की अनुभूतियाँ, संवेदनाओं का व्यक्त करने वाला माध्यम है भाषा। भाषा ने एकता, समानता, अखंडता को द्विगुणित किया है, जिनके प्रभाव से परिधि, समाज के व्यापक क्षेत्र के दायरे को ऊँचाई मिली 'उन्हें कालजयी साहित्य की संज्ञा मिली। साहित्य का ध्येय सत्यं शिवं सुंदरम् हुआ।' साहित्यकार ने इसी ध्येय को कायम रखा, जो युगीन संदर्भ के साथ जुड़ा रहा जिसने राष्ट्र के निर्माण में अपनी सार्थकता को सिद्ध किया। सगुण भक्ति द्वारा रागानुराग भक्ति का निरूपम हुआ, उस आनंद और हित की साधना हुई जिसने रामराज्य की कल्पना की, आदर्श की आधारशिला रखी, तो कृष्ण की भक्ति ने 'कर्मनेवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन' का शंखनाद किया। निर्गुण भक्ति ने सामाजिक चेतना को उद्‌वद्ध किया। भक्ति साहित्य ने राष्ट्र निर्माण के निर्माण में इतनी ख्याति दी, संतों का साहित्य जनमानस का कंठहार बना। भक्ति साहित्य एक ऐसे युग की देन रही जो स्वर्णयुग से जाना गया। इस प्रकार साहित्य सृजन उस विशाल समृद्धिशाली संपदा की कोष बना जिसका इतिहास राष्ट्र की संवेदनाओं का निर्माता हुआ। भक्ति साहित्य के पश्चात् कालीन साहित्य ने कला को दर्शाया, काव्य की व्याख्या हुई, शृंगारी साहित्य ने कला का वैभव दर्शाया। आधुनिक साहित्य ने जो वाह्यजगत से प्रतिबिंबित होकर चित्त वृत्तियों का वाहक बना, राष्ट्रीय जागरण काल का साहित्य तो राष्ट्रीय आंदोलन के परिप्रेक्ष्य में अग्रसर रहा, संकल्पित रहा,

प्रतिज्ञाबद्ध रहा आधुनिक साहित्य का विकास तीव्र गति से हुआ, जिसने उज्ज्वल भविष्य की किरणों को फैलाया।

साहित्य में आधारभूत की दृष्टि से परिवर्तन आया। यही परिवर्तन राष्ट्र के निर्माण का प्रकाश स्तंभ बना। साहित्य के निहित विचारों की परिधि में उपलब्धि हुई जो खुली आँखों से देखी जा सकती है। बौद्धिक बेचैनी के बीच मौन को भी विविध आयाम मिले, सोता हुआ शेर जागा तार्किक आधारशिला पर! साहित्यशास्त्र सौंदर्यशास्त्र है, समाजशास्त्र है, संस्कृति, सभ्यता का इतिहास है, दर्शन है तो अध्यात्म परिवेश में शक्ति है। जहाँ एकता है, समवेत स्वर है। साहित्य में जो जीवनानुभूति आई वह साहित्यानुभूति सिद्ध हुई। साहित्य पर समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण बनाया। साहित्य और संस्कृति में राष्ट्र निर्माण का बीजारोपण सुदृढ़ हुआ, बलशाली हुआ। रचनात्मक सत्त्वों, मूल्यबोध करवाया तो संस्कृति संदर्भित साहित्य सापेक्ष होते हुए भी चरम मूल्य बोध का द्योतक बना। जब इतिहास पर आते हैं इतिहास के तथ्य, समाज और जीवन की प्रस्तुति का सजीव चित्रण हुआ। जहाँ दर्शन है, अर्थ की खोज हुई। विज्ञान ने नई खोज द्वारा नई दृष्टि प्रदान की चिंतन और वैचारिकता को नई दिशा मिली। मनोविज्ञान का साहित्य से संबंध चोली दामन का रहा और है गो-तुलसी...की शोभा का चित्रण ठुमक चलै रामंचद्र बाजैं पैजनियाँ हो तो सूर की बाललीला चित्रण में कान्हा, यशोदा के प्रसंग में वात्सल्य रस की धारा प्रवाहित कर दी 'शोभत कर नवनीत लिए, या यशोदा हरि पालने झुलावै' आदि इस प्रकार साहित्य से सभी विषयों का अटूट संबंध है। साहित्य सत्य और शास्त्र का पहचान करवाते हैं। बदलते परिवेश में साहित्य ने अपनी रेखाएँ यदि बढ़ाई भी हो तो प्राचीन संस्कृति, सभ्यता, कला को भी प्रमुखता दी है। राष्ट्र के निर्माण में एक आकर्षण आमंत्रण का स्वागत होता रहा साहित्य का संसार हर विधा, हर भावों में नए लोक की परिक्रमा करवाई है। जिसका आद्योपांत लक्ष्य रहा राष्ट्र का निर्माण इस प्रकार साहित्य राष्ट्र का निर्माणकर्ता, सृष्टिकर्ता दिखाई देता है। सैद्धांतिक विश्लेषण, गंभीर चिंतन के साथ विवेकपूर्ण साहित्य का प्रयोजन राष्ट्र निर्माण का समग्रबोध के साथ नई संभावनाओं के साथ उजागर हुआ। साहित्य ने व्यक्ति को जोड़ा। परिवार को जोड़ा, समाज को जोड़ा, प्रान्त को जोड़ा, देश को जोड़ा, राष्ट्र को जोड़ा, साहित्य सत्यं शिवं सुंदरम के साथ वसुधैव कुटुंबकम् की धारणा के लिए अग्रसर रहा।

जिस देश का राष्ट्रध्वज है, राष्ट्रगीत है, राष्ट्रभाषा है वहाँ

हमारा सिर उसके सामने झुक जाता है और गौरव का अनुभव होता है हमारे देश में भिन्न-भिन्न भाषाएँ हैं, विविधता होते हुए एकता है वैसे भी भिन्न-भिन्न धर्म होते हुए भी एकता प्रमुख अंग है। राष्ट्र के निर्माण में चाहे किसी भाषा का साहित्य हो धर्म हो यही समेकित स्वर देता है।

'मजहब नहीं सिखाता, आपस में बैर रखना।
हिंदी हैं हम वतन हैं, यह हिंदोस्तां हमारा।'

राष्ट्र के निर्माण में साहित्य की सार्थकता तीन अवस्थाओं में यत्र तत्र दिखाई देती है, 1. शैशवावस्था 2. यौवनावस्था 3. प्रौढ़ावस्था इस प्रकार साहित्य राष्ट्र के निर्माण में मील का पत्थर सिद्ध हुआ। एक ऐसे अनुष्ठान की शुरुआत हुई जिस अनुष्ठान में हर युग का साहित्य, हर साहित्य का अक्षर हर शब्द की पूजा हुई। शब्द वृक्ष बना, विचारों का मंथन हुआ, मुखरित स्वर गूँजे। हर साहित्यकार यदा यदाहि धर्मस्य के कृष्ण बने तो राम भी बने शिव भी बने। राष्ट्र के निर्माण में चुनौती सामने आई, हर साहित्य ने अपने दायित्व की बागडोर संभाली, तमसो मा ज्योतिर्गमय के आह्वान से चारों ओर प्रकाश फैला। सामाजिक परिवर्तन होते हुए भी साहित्य स्वयंभू सिद्ध हुआ, साथ ही संजीवनी बना और अमर साहित्य की कोटि में गणना हुई। वह मंच प्रेमी न होकर उसका मंच प्रेमी हुआ। चाहे सूर जैसी क्रीड़ा भक्ति, तुलसी द्वारा दृढ़ता की शक्ति, कबीर जैसी समस्यात्मक प्रेम का पुनीत उन्माद प्रेम हो या प्रेम दीवानी मीरा का वेदना भाव हो सभी ने अनुभूतियों को अभिव्यक्तियों द्वारा रहस्य खोला, मर्म दिया और वह रहस्य, मर्म खुलता रहा। इस प्रकार ऐसा साहित्य बना जिसने सभी को नियंत्रित कर आह्वान किया कि मुझे आलिंगनबद्ध कर लो, ताकि मैं तुमसे समा जाऊँ वहाँ हम तुम अलग नहीं केवल मैं शेष रह जायेगा वह मैं है साहित्य! जिसने स्व की पहचान कराई, स्व का आत्मलोचन किया, जीवन और कला से जुड़कर चेरैवति! चेरैवति! चलते रहो, चलते रहो चाहे नारी जागरण, युवा जागरण हर कदम आगे रहे अपने लक्ष्य के साथ अपने समवेत् स्वर में राष्ट्र का निर्माण हो, कोई भी क्षेत्र पीछे नहीं रहा। साहित्य ने हर क्षेत्र को छूआ जिसके स्पर्श से समस्त साहित्य विशाल समृद्धिशाली हुआ है और आगे भी वह राष्ट्र के निर्माण में अहम् भूमिका निभाने में सर्वप्रथम है, यह दावे के साथ कहना होगा।

राष्ट्रभाषा हिंदी और राष्ट्रीय एकता

प्रो. नवल किशोर प्रसाद श्रीवास्तव

सब भाषाओं में सचमुच हिंदी भाषा ही सामर्थ्यवती एवं अति चुनी-चुनिंदी है, सच पूछो तो राष्ट्रीय एकता भी लाने वाली बस एकमात्र अपनी यह हिंदी है शृँगार हिंदी की हिंदी है, सर्वस्व राष्ट्र के जीवन का, भारत-जननी के तो ललाट की यह अति सुंदर बिंदी है।

किसी भी राष्ट्र के जीवन में उस राष्ट्र की राष्ट्रभाषा का बड़ा ही अधिक महत्व होता है। कोई भी राष्ट्रभाषा उसकी आत्मा, राष्ट्र अगर शरीर है तो राष्ट्रभाषा उसकी आत्मा, राष्ट्र यदि पुष्प है तो राष्ट्रभाषा उसकी सुगंध और राष्ट्र अगर हृदय है तो राष्ट्रभाषा उसकी मस्तिष्क। इस प्रकार राष्ट्र के जीवन में राष्ट्रभाषा का महत्व सर्वथा उनुपेक्षणीय है।

राष्ट्रभाषा में लिखित साहित्य के अंतर्गत एक साथ ही सामाजिक, सांस्कृतिक और राष्ट्रीय चेतना समाविष्ट होती है जो राष्ट्रीय जीवन में अहर्निश संजीविनी शक्ति का संचार करती रहती है। इसके बिना कोई भी स्वतंत्र राष्ट्र बिल्कुल निस्पंद हो जाता है तभी तो राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने कहा है-

'अँधकार है वहाँ जहाँ आदित्य नहीं है,
मुर्दा है वह देश जहाँ साहित्य नहीं है।'

कोई भी विजयी देश विजित देश की भाषा और इसके साहित्य को नष्ट कर उस देश पर अपनी भाषा का भार क्यों लाद देता है? इसलिए कि यदि उस विजित देश की भाषा और उसका साहित्य नष्ट हो जाएगा तो वह अपने पूर्वजों द्वारा अर्जित और प्रस्तुत चिर-संचार ज्ञान-भण्डार से वंचित रह जाएगा, अपने देश के महापुरुषों के प्रेरणास्पद चरित्र को भूल जाएगा, अपनी सांस्कृतिक और अपने जातीय गौरव को विस्मृत कर देगा तथा अपने धर्मग्रंथ और इतिहास को खोकर पंगु बन जाएगा। तभी तो विजयी देश बहुत अधिक दिनों तक उस पर शासन कर सकेगा। इस संदर्भ में लार्ड डलहौजी का यह कथन ध्यातव्य है-'जिस देश पर बहुत अधिक दिनों तक शासन करना हो, उस देश की भाषा और उसके साहित्य पर सबसे पहले आक्रमण करो और उन्हें पूर्णतः नष्ट कर दो। जब भारत पर मुगलों का आधिपत्य हो गया तो यहाँ उर्दू भाषा लाद दी गयी और यहाँ की भाषा को

नष्ट करने के सारे षड्यंत्र किये गये। विक्रमशिला, तक्षशिला और नालंदा के पुस्तकालयों को जलाकर राख कर दिया गया। जब मुगलों को हटाकर इस देश में अँग्रेजों ने अपना शासन स्थापित किया तो संस्कृत, उर्दू और हिंदी आदि देशी भाषाओं पर प्रहार किया गया तथा शैक्षणिक संस्थानों और सरकारी कार्यालयों की भाषा अँग्रेजी बना दी गयी। भारत पर पूरी तरह अँग्रेजी भाषा लाद दी गयी। इन तथ्यों से स्पष्ट है कि राष्ट्रभाषा और इसके साहित्य का सीधा संबंध देश की स्वतंत्रता से जुड़ा हुआ होता है। अत: येन-केन प्रकारेण इसकी रक्षा करना और इसका संवर्द्धन करना और इसका प्रचार-प्रसार करना हमारा पुनीत कर्त्तव्य है।

राष्ट्रभाषा में राष्ट्र की शक्ति और ऊर्जा प्रच्छन्न होती है, प्रतिष्ठा और अस्मिता छिपी होती है। भारत की राष्ट्रभाषा हिंदी के साथ भी यही बात है। अत: इसकी रक्षा राष्ट्रीयता की रक्षा है।

अगर हम राष्ट्रभाषा को खो देंगे तो अपना सब कुछ खो देंगे। सब कुछ खोकर भी यदि हम इसे बचाये रखेंगे तो फिर सब कुछ प्राप्त कर लेंगे।

एक माता हमें जन्म देती है जिसे हम जननी कहते हैं, दूसरी माता हमें अन्न, जल, जीवन आदि प्रदान कर हमारा पोषण करती है जिसे जन्मभूमि या मातृभूमि कहते हैं और तीसरी माता हमें अभिव्यक्ति तथा सोचने-समझने की कला सिखलाती है, हमारे ज्ञान में वृद्धि करती है-यही हमारी मातृभाषा है। जिस राष्ट्र की धरती पर हम उत्पन्न हुए हैं, सब प्रकार के सुख भोग रहे हैं और अंत में महाशांति की प्राप्ति की इच्छा से सदा-सदा के लिए जिसकी गोद में सो जाते हैं, उस राष्ट्र की भाषा ही राष्ट्रभाषा कही जाती है। सच तो यह है कि राष्ट्र की धरती हमारी माता की भी माता है। अत: इसका महत्व माता से अधिक बढ़कर है। जिस प्रकार हम किसी भी मूल्य पर अपनी माता का अपमान नहीं सहन कर सकते, उसी प्रकार अपनी राष्ट्रभाषा माता के समान ही हमारे लिए सब प्रकार से हितकर, सुखकर और श्रेयस्कर है।

हमारे देश को स्वतंत्र हुए सत्तर वर्ष से अधिक हो गये, अगर अबतक इस देश की राष्ट्रभाषा हिंदी को वह स्थान और प्रतिष्ठा नहीं मिल सकी है जो मिलनी चाहिए थी। पूर्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी के शब्दों में, हम हिंदी को राजभाषा से राष्ट्रभाषा नहीं बना पाये तो यह मानने का विषय है। यह ऐतिहासिक सच है कि हिंदी भारत की राजभाषा

है। मगर यह उतना ही कटु सच है कि राजभाषा आज भी अपना अपेक्षित स्थान नहीं ले सकी है।

आज कहने को हिंदी राष्ट्रभाषा है, मगर उसकी स्थिति को देखते हुए यह कड़वा सत्य कहना पड़ रहा है कि व्यावहारिक दृष्टि से वह राष्ट्रभाषा न होकर सैद्धांतिक दृष्टि से राजभाषा है। जिस दिन हिंदी मात्र कार्यालयों की भाषा न होकर भारत के जन-जन की भाषा बन जायेगी, उस दिन से यह सच्चे अर्थों में राष्ट्रभाषा कहलाने की अधिकारिणी बन सकेगी।

भारत वर्ष विभिन्नताओं का देश है। यहाँ विभिन्न जाति, धर्म, संप्रदाय, खान-पान, रहन-सहन, रीति-रिवाज, आचार-व्यवहार, विचार और भाषा के लोग रहते हैं, जिन्हें एकता के सूत्र में बाँध रखने का कार्य राष्ट्रभाषा ही करती है। राष्ट्रभाषा हिंदी ही इस कार्य को करने में समक्ष हो सकती है, क्योंकि यह देश के लगभग आधे से अधिक भाग में बोली जाती है।

राष्ट्र के नागरिकों के लिए मस्तिष्क की स्फूर्ति में वृद्धि करने का साधन राष्ट्रभाषा से बढ़कर दूसरा नहीं है। राष्ट्रभाषा राष्ट्र के हृदय को संवेदनशील बनाती है, उसकी भावना में दृढ़ता लाती है और उसमें आत्म-बल का संवर्द्धन और संचार करती है।

राष्ट्रभाषा और उसके साहित्य की उन्नति राष्ट्रीय तथा जातीय उन्नति का प्रथम सोपान है। राष्ट्रीयता का निर्माण वर्तमान का भूतकाल से एक शृंखलाबद्ध होने तथा अर्वाचीन काल का प्राचीन काल से अटूट संबंध होने से होता है। यह संबंध हममें प्राचीन पुरुषों की सभ्यता का आधुनिक समय में वर्तमान होने से पाया जाता है। विचार भाव और भाषा का अटूट संबंध, जिसके द्वारा हम अपने पूर्वजों के साथ संलग्न हैं और वर्तमान काल पूर्वकाल से वद्ध है, उसी को समता से राष्ट्रीयता का निर्माण हो कसता है।

राष्ट्रभाषा ही राष्ट्र का जीवन है। भाषा को लेकर विश्व को कतिपय देशों में न जाने कितने राष्ट्रीय आंदोलन खड़े हुए। आज भारतवर्ष में भी ऐसे ही आंदोलन की आवश्यकता है, क्योंकि यहाँ केवल नाम के लिए हिंदी राष्ट्रभाषा है, मगर अधिकतर कार्य अँग्रेजी भाषा में ही हो रहे हैं। अगर देश के सभी कार्य केवल हिंदी भाषा में ही होने लगे तो यहाँ के लोगों में एक नवीन जागृति आज जाएगी, सबमें पारस्परिक प्रेम, बंधुत्व और सद्भावना स्पंदित होने लगेगी तथा सभी मिल-जुलकर राष्ट्रीय उत्कर्ष की बात सोच सकेंगे। हमारी आधुनिक राष्ट्रीयता के उत्थान में राष्ट्रभाषा की गहरी सहायता है। जिस भाषा को हमारी जनता समझ नहीं

सकती उससे हमें राष्ट्रीयता की प्रेरणा कैसे मिलेगी? स्वतंत्रता-संग्राम के क्रम में देश के नेताओं ने अपनी आवाज हिंदी के माध्यम से ही जनता तक पहुँचाई थी, शहीदों ने हिंदी में ही गीत गा-गाकर फाँसी के तख्ते को चूमा था। यह हिंदी भाषा का ही जादू है कि संपूर्ण भारतवर्ष की जनता में राष्ट्रीय एकता आ गयी और सबने एक साथ मिलकर देश को स्वतंत्र करने का पाँचजन्य-विवाद किया, क्रांति का बिगुल बजाया।

इस परिप्रेक्ष्य में यह बात भी ध्यातव्य है कि जबतक देश के रग-रग में हिंदी का रक्त संचार नहीं मिल जाय तो गंगा-यमुना से बड़ी सरस्वती हुगली की तरह बन जाएगी। मगर गाँधीजी के इस विचार का विरोध हुआ। कुछ हिंदू नेताओं ने स्पष्ट शब्दों में कहा कि हिंदुस्तान में हिंदी की जगह हिंदुस्तानी नहीं चलेगी। ऐसे नेताओं में महात्माजी के अनुयायी भी थे। मुस्लिम नेताओं को ऐसा लगा कि गाँधी हिंदुस्तानी भाषा चलाकर मुसलमानों की संस्कृति नष्ट करना चाहते हैं। इसका परिणाम यह हुआ कि हिंदी-हिंदुस्तानी संघर्ष ने भयंकर रूप धारण कर लिया। हिंदुस्तानी समर्थन में काका साहब कालेलकर, बिनोवा भावे, चक्रवर्ती राजगोपालाचारी, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद आदि खुलकर गाँधी के साथ थे। मगर, हिंदुस्तानी के विरोध में और हिंदी समर्थन में डॉ. संपूर्णानन्द, श्री वियोगी हरि, कन्हैया लाल माणिकलाल आदि पुरुषोत्तम दास टंडन के साथ थे। उन दिनों गाँधीजी हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग के अध्यक्ष थे, मगर सम्मेलन ने हिंदी के समर्थन में उनका कसकर विरोध किया। फलतः 28 मई 1945 ई. को गाँधी जी ने सम्मेलन के अध्यक्ष पद से इस्तीफा दे दिया। जब टंडनजी को उनका त्याग-पत्र मिला तो उसे उन्होंने सम्मेलन की स्थायी समिति के अध्यक्ष विचारार्थ रखा और समिति ने विचार करते हुए निर्णय लिया 'महात्मा गाँधी के त्याग पत्र के संबंध में निश्चिय हुआ कि स्थायी समिति के सौर 12 संवत् 2002 के मंतव्य के उत्तर में महात्मा गांधी का जो उत्तर आया है, उसे पढ़ने के बाद समिति अन्य कोई मार्ग न देख बहुत दुःख और नम्रता के साथ महात्मा गाँधी जी का त्याग पत्र स्वीकार करती है।

अब राजर्षि पुरुषोत्तम दास टंडन के नेतृत्व में हिंदी के प्रचार-प्रसार का काम और अधिक तीव्र हो उठा, क्योंकि टंडनजी इस बात को भली-भांति जानते थे कि संपूर्ण राष्ट्र की संपर्क भाषा हिंदी ही हो सकती है और जो संपर्क भाषा होती है वही संपूर्ण राष्ट्र में भावात्मक एकता ला सकती है। जब कालांतर में गाँधी जी ने हिंदी का महत्व समझा तो

उन्होंने स्वयं ही कहा- 'मैं हिंदी के जरिये प्रांतीय भाषाओं को दबाना नहीं चाहता, किंतु उसके साथ हिंदी को भी मिला देना चाहता हूँ जिससे एक प्रांत दूसरे के साथ अपना सजीव संबंध जोड़ सके। इससे प्रांतीय भाषाओं के साथ हिंदी की भी श्रीवृद्धि होगी। हिंदी के प्रति अपना विचार व्यक्त करते हुए उन्होंने 'यंग इण्डिया' में भी कहा था- 'हमारी बहुत सी देशी भाषाएँ एक दूसरी से मिलती-जुलती हैं और इसलिए सब प्रांतों के लिए राष्ट्रभाषा के नाते हिंदी अनुकूल है। जब गाँधीजी को ऐसा लगा कि हिंदुस्तान की अधिकांश जनता की भाषा हिंदी ही है तो उन्होंने खुलकर हिंदी के पक्ष में कहा- 'अगर हिंदुस्तान को सचमुच एक राष्ट्र बनाना है तो कोई चाहे माने या न माने, राष्ट्रभाषा तो हिंदी ही बन सकती है, क्योंकि जो स्थान हिंदी को प्राप्त है वह किसी दूसरी भाषा को कभी नहीं मिल सकता। हम किसी भी हालत में प्रांतीय भाषाओं को मिटाना नहीं चाहते। हमारा मतलब तो सिर्फ यह है कि विभिन्न प्रांतों के पारस्परिक संबंध के लिए हम हिंदी भाषा सीखें। महात्मा गाँधी की इन उक्तियों से स्पष्ट है कि वे राष्ट्रीय एकता के लिए हिंदुस्तानी पर भले ही जोर देते थे, मगर वे अपनी आत्मा से हिंदी को ही राष्ट्रभाषा बनाने के पक्षधर थे।

गाँधी जी का मत था कि राष्ट्र को एक सूत्र में बाँधने का सबसे बड़ा साधन एक राष्ट्रभाषा है और भारत जैसे देश में, जहाँ अनेक भाषाएँ बोली जाती हैं, एक राष्ट्रभाषा का होना नितांत आवश्यक है और भारत की राष्ट्रभाषा का स्थान हिंदी ही ले सकती है।

उधर अपने अनुयायियों की सहायता से राजार्षि पुरुषोत्तम दास ने हिंदी को संविधान सभा द्वारा राजभाषा के पद पर प्रतिष्ठित तो करा दिया, मगर उस पद पर रहते हुए भी आज उसके साथ बड़ी-बड़ी विडंबनाएँ हैं।

यह हिंदी का सौभाग्य या दुर्भाग्य ही कहा जा सकता है कि संविधान-सभा ने इसे राजभाषा घोषित कर दिया है। सौभाग्य इसलिए कि इसे स्वतंत्र भारत की एकता का माध्यम बनने का गौरव प्राप्त हुआ और दुर्भाग्य इसलिए कि यह राजनीति के चक्रवात में बुरी तरह फँस गयी। संविधान-समिति की घोषणा के बावजूद राजगोपालाचारी, फ्रैंक एन्थोनी, डॉ. सी.पी. रामास्वामी अय्यर, मुल्कराज आनंद आदि कतिपय नेताओं ने राजभाषा के रूप में हिंदी को प्रतिष्ठित किये जाने का घोर विरोध किया।

हिंदी को राजभाषा के पद पर प्रतिष्ठित किये जाने के

साथ-साथ यह भी प्रावधान किया गया कि पंद्रह वर्षो तक अँग्रेजी भी सरकारी काम-काज की भाषा बनी रहेगी और उसके बाद हिंदी उसका स्थान ले लेगी, मगर ऐसा नहीं हुआ। 11-12 अगस्त 1962 ई. को दिल्ली में देश भर के बड़े-बड़े साहित्यकारों ने अधिक दिनों तक अँग्रेजी को काम-काज की भाषा बनाये रखने का विरोध किया, मगर इसका कोई परिणाम न निकला। 23 अप्रैल 1963 ई. को पुन: एक विधेयक पारित कर दिया गया कि 1965 ई. के बाद भी अँग्रेजी सहायक राजभाषा के रूप में बनी रह सकती है। तत्कालीन राज्य-सभा सदस्य राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त, सेठ गोविंद दास आदि ने इस विधेयक का जोर-शोर से विरोध किया, मगर सब बेकार!

सन् 1968 में जो त्रिभाषा फॉर्मूला बनाया गया वह भी दोषपूर्ण ही रहा। इतना होने पर भी विभिन्न सरकारी विभागों में हिंदी-सलाहकार समितियाँ बनीं, देश के विभिन्न भागों में हिंदी-विकास संस्थान, राजभाषा-विभाग, राष्ट्रभाषा-परिषद्, ग्रंथ अकादमी, हिंदी भाषा अकादमी आदि की स्थापना हुई, किंतु हिंदी का विकास जिस गति और रीति से होना चाहिए नहीं हो सका।

प्राय: लोगों की ऐसी धारणा है कि अँग्रेजी बोलना और लिखना गौरव तथा शान की बात है। इसलिए भी हिंदी की अपेक्षा अँग्रेजी पर लोग अधिक जोर दे रहे हैं। आज अशिक्षित लोग भी हिंदी के वाक्यों में अँग्रेजी के शब्दों को मिलाकर बोलने में गौरव का अनुभव कर रहे हैं। यह एक विचित्र विडंबना की बात है।

स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद से लेकर अबतक आठ विश्व हिंदी सम्मेलन हो चुके हैं। बड़े खेद की बात है कि अपने ही देश में हिंदी का महत्व घट रहा है, हिंदी का व्यवहार कम हो रहा है और कुछ लोगों द्वारा हिंदी को अक्षम भाषा कहकर उसकी उपेक्षा की जा रही है। ऐसी स्थिति में हिंदी का उचित विकास हो ही कैसे सकता है?

हमारी सरकार सैद्धांतिक स्तर पर हिंदी के विकास की खूब लंबी-चौड़ी बातें करती है। हिंदी दिवस के अवसर पर प्रति वर्ष 14 सितम्बर को फैशन के रूप में यह राष्ट्रीय उत्सव मना लिया जाता है। अब तो हिंदी सप्ताह और हिंदी पखवारे भी मनाये जाने लगे हैं, मगर यह केवल नाटक है, ढोंग है। सरकार यदि हृदय से हिंदी की उन्नति और इसका कल्याण चाहती है तो इसे रोजी-रोटी से जोड़ना होगा। सरकारी नौकरियों में नियुक्ति के लिए आयोजित होने वाली परीक्षाओं में केवल हिंदी में ही उत्तर

देना अनिवार्य करना होगा। तेरहवीं शताब्दी तक इंग्लैंड में अँग्रेजी ग्रामीण लोगों की एक बोली थी जिसका कोई विशेष महत्व न था। उन दिनों इंग्लैंड के शिक्षित समाज में केवल फ्रेंच भाषा प्रचलित थी, मगर 14वीं शताब्दी में वहाँ की सरकार के नागरिकों के लिए अँग्रेजी की शिक्षा अनिवार्य कर दी और कानून बना दिया गया कि जो लोग अँग्रेजी पढ़ेंगे, उन्हें ही सरकारी नौकरी दी जाएगी। फिर तो लोग बड़ी तेजी के साथ अँग्रेजी सीखने और पढ़ने लग गये। शीघ्र ही अँग्रेजी वहाँ की राजभाषा बन गयी। अँग्रेजी ने जहाँ-जहाँ अपने उपनिवेश स्थापित किये, वहाँ-वहाँ भी अँग्रेजी अनिवार्य कर दी गयी। परिणामस्वरूप उसका खूब प्रसार हुआ और आज तो कुछेक देश को छोड़कर संपूर्ण विश्व भाषा बन गयी है।

हिंदी के विकास के मार्ग में कई बाधाएँ हैं। सरकारी हिंदी-संस्थानों ने जहाँ विद्वानों की नियुक्ति होनी चाहिए, वहाँ या तो राजनीतिक नेताओं के चहेतों की नियुक्ति की जा रही है या पैरवी और पैसे के बल पर अयोग्य उम्मीदवारों को बहाल किया जा रहा है। सरकार साहित्यकारों और विद्वानों को पुरस्कृत करने के लिए जो चयन-समिति बनाती है, उसके सदस्य भी पैरवी-पुत्र ही होते हैं जिन्हें हिंदी की कोई विशेष जानकारी नहीं होती। ऐसी स्थिति में सुयोग्य जनों का तिरस्कृत होना और न अयोग्य जनों का पुरस्कृत होना स्वाभाविक ही है। ऐसे दूषित परिवेश में हिंदी का उत्कर्ष हो तो कैसे?

आज ऐसी स्थिति हो गयी है कि अच्छे-अच्छे साहित्यकारों की अच्छी-अच्छी रचनाएँ अर्थाभाव के कारण प्रकाशित नहीं हो पा रही हैं और व्यर्थ की पुस्तकों का प्रकाशन अयोग्य लोग कर रहे हैं। इतना ही नहीं, साहित्य के नाम पर आज कुछ तथाकथित साहित्यकारों द्वारा जो पुस्तकें लिखी जा रही हैं उनकी कोई भी सामाजिक, सांस्कृतिक या साहित्यिक उपयोगिता नहीं है। कहीं नेताओं के नाम पर 'चालीसा' तो कहीं 'अमुक चरित मानस' लिखे जा रहे हैं। ऐसे तथाकथित साहित्यकारों से हिंदी की प्रगति की आशा ही क्या की जा सकती है?

इतना ही नहीं, समाज में सरकारी विद्यालयों की दुर्दशा हो रही है और नित्य नये-नये कांवेंट स्कूल खुलते जा रहे हैं जहाँ हिंदी की पढ़ाई न के बराबर होती है और अँग्रेजी पर आवश्यकता से अधिक जोर दिया जाता है। कुछ ऐसे भी कांवेंट है जहाँ केवल अँग्रेजी के माध्यम से शिक्षा दी जाती है तथा संस्कृत और हिंदी की पुस्तकें अँग्रेजी में पढ़ाई जाती

हैं। हिंदी की इस उपेक्षा से उसकी उन्नति की बात सोचना वृथा है।

तृतीय विश्व हिंदी सम्मेलन के समापन भाषण में हिंदी की दयनीय स्थिति के संबंध में कवियत्री महादेवी वर्मा ने बड़े ही मार्मिक शब्दों में कहा था-'हिंदी बेचारी वहीं -की- वहीं है। जब संपूर्ण राष्ट्र में इसके प्रयोग की बात होती है तो शासन-व्यवस्था कहती है कि उसे समृद्ध बनाओ। बड़े आश्चर्य की बात है कि प्रयोग के बिना वह समृद्ध बनेगी कैसे? यह तो ऐसा लगता है कि घोड़े की गाड़ी के पीछे बांध दिया है और कह रहे हैं घोड़े समर्थ हो जाएगा तो गाड़ी को खींच लेगा।

इसमें संदेह नहीं कि हमारी राष्ट्रभाषा हिंदी एक सशक्त भाषा है। इसकी लिपि देवनागरी विश्व की सभी भाषाओं की लिपियों से अधिक सरल और वैज्ञानिक है, संसार की 2800 भाषाओं में व्यापकता की दृष्टि से हिंदी का तीसरा स्थान है। हिंदी 'शब्द-सागर' के 11 भागों में लगभग 2 करोड़ 11 लाख 50 हजार शब्द हैं। इतने अधिक शब्द विश्व की किसी भी भाषा में नहीं हैं। हिंदी का सामर्थ्य उसकी संपन्नता और महत्ता के संबंध में आचार्य शिवपूजन सहाय का कथन है 'हिंदी को सूर और तुलसी ने चंदन-चर्चित किया है। केशव, देव और बिहारी ने उसे नख-शिख अलंकृत किया है। कबीर और जायसी ने उसी दुंदुंभि बजाई है। रहीम और रसखान ने इसे अमृत पिलाया है। भारतेंदु और द्विवेदी ने उसकी जड़ पाताल तक पहुँचाई है। अब शेष नाग के मस्तिष्क से उसकी जड़ उखाड़ने का जो दुस्साहस करेगा, वह निश्चय ही भूकंप-ध्वस्त होगा। हिंदी अब धूसर खेत की मूली नहीं है। उसके स्वर में कृष्ण की बांसुरी की सुरीली तान है, उसकी वाणी में राम के धनुष्टंकार का गंभीर गर्जन है, उसके नेत्रों में भूषण और गुरु गोविंद सिंह की तेजस्विता है। इतने पर भी जो कोई उससे आँखें बराबर करेगा, उसकी आँखों की रोशनी बुझा दी जाएगी। हिंदी को मुट्ठी में मसलकर जो समुद्र में फेंकना चाहता है, वह हिमालय को बटवरा बनाना चाहता है। जिसको समझना हो वह समझ ले कि हमारी हिंदी निपूती नहीं है, उसकी रक्षा के लिए हजारों सपूत सन्नद्ध हैं। हिंदी जैसी समृद्धशाली भाषा को मटियामेट करना खिलवाड़ नहीं है। जो सौत बनकर आई है, वो कभी सहेली नहीं बन सकती। हिंदीवाले अबतक असावधान थे, चाहे जिसकी तूती बोल गई। पर अब हमारी नींद टूट गयी, किसी को कौआ भी नहीं बोल सकता।

आज साहित्यकारों की विचित्र स्थिति हो गयी है। वे

विभिन्न वादों और गुटों में बँटने लगे हैं। इधर कुछ घटिया किस्म के साहित्य भी लिखे जा रहे हैं इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे भी प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके कवि और गद्य लेखक हैं जो अपनी रचनाओं में धड़ल्ले के साथ उर्दू, फारसी और अँग्रेजी के शब्दों का प्रयोग करने लगे हैं जबकि उन भाषाओं से कहीं अधिक समर्थ, अर्थवान, प्रभावाभिव्यंजक और ललित शब्द हिंदी भाषा में पूर्व से ही विद्यमान हैं। यदि हिंदी में उर्दू, फारसी, अँग्रेजी आदि के शब्द अधिक मात्रा में प्रयुक्त होने लगेंगे तो हिंदी का स्वाभाविक रूप निखर ही कैसे सकेगा। अत: ऐसे लोगों में विशुद्ध हिंदी लिखने की प्रवृत्ति जाग्रत करनी होगी। तभी हिंदी-भारती अपने वास्तविक रूप में निखर सकेगी और उसमें सत्यं, शिवं, सुंदरं का समावेश हो सकेगा तथा राष्ट्र के लोगों में भावात्मक और सांस्कृतिक एकता आ सकेगी एवं राष्ट्र के कल्याण का मार्ग प्रशस्त हो सकेगा। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने ठीक ही कहा है-

'निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा-ज्ञान के, मिटै न टिम को सूल।।

अत: हमें राष्ट्रभाषा हिंदी के उत्थान और इसकी रक्षा के लिए सतत् सचेष्ट और जाग्रत रहने की आवश्यकता है।

साहित्य : भारतीय संस्कृति की संजीवनी

डॉ. दयाकृष्ण विजयवर्गीय 'विजय'

राष्ट्र के निर्माण में तीन आवश्यक तत्व काय भूमि, जन तथा संस्कृति। इन तीनों का सतत सकारात्मक संबंध तथा इनकी एकता अनिवार्य है। इन तीनों में से किसी एक की भी विछिन्नता राष्ट्र के विखंडन का कारण बन जाती है। एक भूमि विशेष पर एक निश्चित संस्कृति के साथ लंबे काल तक अधिवास करने वाला जन उस राष्ट्र के राष्ट्रीय होने का गौरव प्राप्त करता है। जब यह राष्ट्र इस 'राष्ट्रीय' संज्ञा से अभिषिक्त होता है तब उस राष्ट्र की सांस्कृतिक परंपरा, उसका आचरण-धर्म बनती है। उसके आचरण में उसकी संस्कृति प्रतिबिंबित होती है। संस्कृति ही उस राष्ट्र की, वहाँ के जन की पहचान होती है।

राष्ट्र की राष्ट्रीयता का आधार राजनीतिक नहीं, सांस्कृतिक होता है। नागरिकता राष्ट्रीय नहीं होता, जब तक वह वहाँ की संस्कृति को आचरण धर्म के रूप में स्वीकार नहीं होता। यही सांस्कृतिक स्वीकृति उसमें भूमि तथा जन के प्रति एकात्मक का भाव जगाती है। इसी स्वीकृति के आधार पर जन-मन सहसा कह उठता है। माता, भूमिः पुत्रोऽहम पृथिव्याः। 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी'।

'राष्ट्र' शब्द रीति से बना है: जिसका अर्थ होता है देना। इस राति का विलोम है अराति। अराति वह है जो दूसरों की भूमि तथा संपत्ति का अपरहरण करते संकोच नहीं करता। उसे दस्यु कहें या समाज संकट। राष्ट्रीय वह है जो अपने राष्ट्र तथा अपने जन के लिए देता ही देता है।

'देश ही तीर्थ है देश ही देवता
दे अगर देश को और देना पड़े।'

यह त्याग प्रधान राष्ट्रभाव ही उसकी संस्कृति बनता है। राष्ट्र न तो कोई भूखंड भर है, न उस भूमि पर निवास करने वाला जन और न विभिन्न समुदायों की विभिन्न संस्कृतियों का समुच्चय भर ही है। किसी भी राष्ट्र का राष्ट्रीय होने के लिए परस्पर सहकार तथा सद्भावना के साथ-साथ उसकी अनन्य भूमि-निष्ठा, अनन्य जन-निष्ठा तथा अनन्य संस्कृति-निष्ठा, त्याग और समर्थन जिसके प्रधान गुण हैं, आवश्यक है। भूगोल एवं इतिहास चेतना के साथ संस्कृति के मूल्यों पर आधारित लोक चेतना भी आवश्यक है।

राष्ट्रभाव को अभिव्यक्त करने में अँग्रेजी का 'नेशन' (Nation)

शब्द असमर्थ ही नहीं अपूर्ण भी है। नेशन शब्द तो रंग-भेद को, समाज एवं समुदायों में वर्ग भेद को स्वीकार कर चलता है। इसमें सौमनस्य नहीं, टकराहट का वास है। राष्ट्र कोई सोसाइटी भी नहीं है। सोसाइटी तो आपसी समझौतों की परिणति भर है। इसमें एकात्मकता का तथा पारस्परिक आत्मीयता का अभाव होता है। हर सदस्य अपना हित पहले देखता है। अपनी अलग पहचान लेकर चलता है। राष्ट्र सोसाइटी की भाँति अलग-अलग पहचान लेकर नहीं चलता। वह अथर्ववेद की पवित्र ऋचा उच्चारण करता दिखता है। 'संगच्छध्वं संवर्द्धवं सं नो मनासि जायताम्'। वह बहुजन की नहीं, सर्व की मंगल कामना लेकर चलता है। वह सर्व की ही आराधना करता है। सर्वे भवन्तु सुखिन:, सर्वे सन्तु निरामया, सर्वे पश्यन्तु भद्राणि मां कश्चिदु:ख भवेत्।

राष्ट्रभाव, विश्व भाव का विरोधी नहीं है। जो अपने राष्ट्र को प्रेम नहीं कर सकता, उससे विश्व प्रेम की कल्पना करना व्यर्थ है। जो अपनों का नहीं, वह दूसरों का क्या हित करेगा। उसके लिए उदार हृदय होना आवश्यक है। उदार चरितों के लिए तो वसुधा ही एक कुटुम्ब हैं। 'अयं निज: परोवेत्ति गणना लघु चेतसाम्, उदार चरितानाम् तु वसुधैव कुटुम्बकम्।'

अंतरराष्ट्रीय शब्द की निमित्ति अनेक राष्ट्रों की उपस्थिति ध्वनित करती है। अंतरराष्ट्रीयता अनेक राष्ट्रों के बीच निर्णित समझौतों का परिणाम भर है। संयुक्त राष्ट्र संघ भी राष्ट्रों का संघ भर ही है। दोनों शब्द राष्ट्रों की उपस्थिति दर्शाते हैं। राष्ट्रों के बीच के संपन्न समझौतों को गिनाते हैं। इसमें उदार चरितवाले सांस्कृतिक भाव का सर्वथा अभाव हम देखते हैं। भारत एक अतीव प्राचीन राष्ट्र है। इसकी संस्कृति भी अतीव प्राचीन है। शास्त्र तो कहते हैं 'सा प्रथमा संस्कृति विश्ववारा'। यह विश्व की प्रथम संस्कृति है, जिसे विश्व ने वरण किया है। यह श्लोक भी इस सत्य की पुष्टि करता है।

'एतद्धेश प्रसूतस्थ सकाशादग्रजन्मन:।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षरेन् पृथिव्या: सर्वमानवा:'।

यह संस्कृति आध्यात्म के आधार पर विकसित होने से समस्त सृष्टि को एक ही चेतना सत्ता का विस्तार मानती है। इसी कारण इसकी दृष्टि उदार तथा वृत्ति त्याग-मयी है। इसमें द्वैत एवं भेद के लिए कोई स्थान नहीं है। इसका व्यापक चिंतन मानवता की समग्र भित्ति पर खड़ा है। मानवीय दृष्टि ही भारतीय सांस्कृतिक दृष्टि है। इसकी अद्वैत दृष्टि व्यक्ति से विश्व तक अविछिन्न रूप से गतिशील है। यह खंडश: पृथक विचार न कर, सर्व का समग्रता से एक साथ विचार कर चलती है। यही

इसकी विशेषता है, जबकि पश्चिमी दृष्टि इसके विपरीत सबको अलग-अलग मान पृथक-पृथक चिंतन करती है। संस्कृति की संजीवनी शक्ति साहित्य है। साहित्य संस्कृति का ही शब्दायन है। इसलिए राष्ट्र के निर्माण में संस्कृति, जितना एक आवश्यक उपादान है, प्रकारांतर से साहित्य भी उतना ही एक आवश्यक तत्व है। संस्कृति साहित्य से ही विस्तार पाती है। जिस संस्कृति का साहित्यायन नहीं है, वह चिरंजीवी नहीं होती। साहित्य ही संस्कृति का प्राण-चेतना है। संस्कृति, साहित्य के माध्यम से ही विस्तृत प्रसारित एवं प्रचारित होती है।

यह सही है कि संस्कृति समाज का आचरण धर्म है, पर उस आचरण धर्म की समाज में निरंतरता साहित्य के माध्यम से ही बनी रहती है। बिना साहित्य के राष्ट्र अपने आचरण धर्म से शीघ्र ही विचलित एवं सवलित हो जाता है। यह विचलन शनैः शनैः रूढ़ि बनकर स्वयं राष्ट्र के विनाश का कारण बन जाता है। इतिहास साक्षी है। आक्रांता विजेताओं ने अपनी भाषा संस्कृति विजितों पर थोपने हेतु, पहले वहाँ का साहित्य नष्ट किया है। भाषा का प्रचलन स्वशिक्षण बंद किया है। आचरण धर्म के उपास्व प्रतिष्ठानों से विखंडित किया है। जबरन अपना साहित्य, अपनी भाषा, अपनी संस्कृति तथा अपना धर्म थोपा है। यह सही है, भारत हजार वर्ष तक पराधीन रहकर भी अपने भक्ति-साहित्य के बल पर आक्रांताओं से सफल लोहा लेकर, अपनी राष्ट्रीयता तथा अपनी संस्कृति को बचाये रखने में अवश्य सफल रहा है। आक्रांता ने तो अपनी करनी में कोई कसर नहीं छोड़ी थी। अपनी भाषा थोपी, धर्म स्थान तोड़े, धर्मांतरण किया, बड़े कर लगाये तथा शक्ति के बल पर लूट-खसोट ही नहीं, बलात्कार तक किये, पर यह साहित्य की ही शक्ति थी कि भारत भारत बना रहा। इकबाल ने इस संबंध में ठीक ही कहा है-

यूनान मिश्र रोमां सब मिट गये जहां से,
अब तक मगर है बाकी नामो निशां हमारा,
कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी
दुश्मन रहा भले ही, दौरे जहां हमारा।

हस्ती नहीं मिटने देनी वाली बात के पीछे तात्कालिक दृष्टि से यह भक्ति साहित्य तो है ही, इसके श्रेष्ठ साहित्य की पृष्ठभूमि तथा उसके अनुसार आचरण धर्म की सुदृढ़ परंपरा भी कही जा सकती है। उसी साहित्य की तथा नव रचित साहित्य की पारायवी परिपाटी संस्कृति को विनाश से बचाये रही। भारत के दार्शनिक, धार्मिक एवं व्यावहारिक साहित्य

ने संस्कृति को ही नहीं, भारतीय राष्ट्र तक को जीवित रखा है। जागरूक जन ने निरंतर स्वतंत्रता संघर्ष सामर्थ्यानुसार लड़, अपनी भूमि को मुक्त कराया है, अपनी संस्कृति का पुनरुद्धार किया है। इसे स्वीकारने में मुझे किंचित हिचक नहीं है कि साहित्य की शक्ति क्षीण होने पर संस्कृति निष्ठा जन सांस्कृतिक क्रांति करने का उतारू हो, रणक्षेत्र में आ डटते हैं। ऐसी सांस्कृतिक क्रांति के अवसर पर भी साहित्य ही सबसे पहले उससे जुड़ता है। साहित्य कभी मरता नहीं है, उसकी गति अवश्य शिथिल या दुर्बल हो सकती है। ऐसी स्थिति में ही सांस्कृतिक क्रांति की आवश्यकता होती है, अन्यथा यह दायित्व साहित्य ही निर्वाहित करता है।

साहित्य अपने पूर्ववर्ती सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय साहित्य की भूमि पर ही लिखा जाता है, यही उसकी जैविकी शक्ति है। साहित्य कभी न तो अपनी जातीय स्मृति से कट कर चलता है, न अपनी सांस्कृतिक भूमि से। यही उसकी संस्कृति संरक्षिका तथा संवाहिका शक्ति है। संस्कृति विहीन साहित्य की संकल्पना शशक श्रृंगवत् है। संस्कृति एवं साहित्य का अन्योन्याश्रित संबंध है। साहित्य संस्कृति का संवाहक है और संस्कृति साहित्य का उपजीव्य। इसी हेतु से राष्ट्र के निर्माण में जितनी संस्कृति आवश्यक है, उतना ही साहित्य भी आवश्यक है। प्रकारांतर से कहें तो कहेंगे राष्ट्र का निर्माण भूमि जन और संस्कृति के साथ-साथ वहाँ का साहित्य भी करता है। अंतर दोनों में इतना ही है, जहाँ साहित्य आंतरिक प्रक्रिया है, वहीं संस्कृति की अभिव्यक्ति बाह्य है। बाह्यभिव्यक्ति मानसिकता का ही आचरणिक रूपांतरण है। मैंने लिखा भी है-

'आचरण रूपांतरण है मानसिकता का,
काव्य का संदेश रचनाकार होता है।'

संस्कृति जहाँ जन के आचरण की अंतर्बाह्य शुद्धता तथा उदात्तता की विधि तक ही सीमित रहती है, वहाँ साहित्य भावाधारित होने से सर्जक के चित्तस्व संस्कारों तथा अनुभूतियों की उदात्तता से संबद्ध होता है। साहित्य इसी दृष्टि से मानव के जीवन पथ का नियंत्रक, निर्माता तथा पथ-प्रदर्शक है। संस्कृति की मूल्यवत्ता जहाँ सिद्धांतों तक सीमित रह जाती है, वहीं साहित्य की शब्द शक्ति उत्प्रेरणा बन, उसकी कर्म शक्ति को संचालित भी करती है। संस्कृति की परिधि भौतिक होती है, जबकि साहित्य की परिधि का उकेरन, सूक्ष्म अंतः भावों से होने से, उसकी मानवीय सदाशयता अकल्पनीय होती है। साहित्य का बाह्य आवरण, बाह्य कलेवर,

बाह्य रूप तथा शिल्प विधान ही बदलता है, उसका मूल मानवीय स्वभाव कभी नहीं बदलता। साहित्य तो मानवता का ही चितेरा होता है। जिस साहित्य में मानवीयता का अभाव है, उसे साहित्य कहना भी अपराध है। संस्कृति अपने पथ से अडिग कभी रूढ़िवादिता का, तो कभी अकाल मृत्यु का ग्रास बन सकती है, पर साहित्य उस अंतश्चेतना का या उस मानवीय संवेदना का प्रतिनिधित्व करता है, जिसे सृष्टि तक अमर रहना है।

धर्म संस्थापन ही साहित्य का उद्येश्य है। धर्म संस्कृति का प्राण है। धर्म ही साहित्य और संस्कृति की भागीरथी के न मिलने वाले दो कूलों को जोड़ता है। संस्कृति आचरण के स्तर पर तथा साहित्य शब्द के स्तर पर धर्म की विजय सुनिश्चित करता है। उद्येश्य के स्तर पर साहित्य और संस्कृति दोनों एक हैं। संस्कृति योग की भांति कर्म का कौशल है। साहित्य उसी यौगिक कर्म का कुशल शब्दायन है। कर्म के स्तर पर भी इस तरह दोनों एक हैं। शास्त्रकारों ने शब्द को ब्रह्म कहा है तथा साहित्य स्रष्टा को 'कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभू' कहकर विभूषित किया है, इस स्तर पर भी साहित्य और संस्कृति की निकटता ध्वनित होती है। संस्कृति जहाँ सत्, शिव, सुंदर की अन्विति है, वहीं साहित्य सत्, शिव, सुंदर का चितेरा है। साहित्य में जो साहित एवं हित का भाव सन्निहित है, वही संस्कृति का मंगलधर्म भी है। इस तरह विभिन्न रूपों में साहित्य एवं संस्कृति की घनिष्ठता व्याख्यायित की जा सकती है।

सामाजिक संरचना में ही नहीं, उसकी पुनर्रचना में भी साहित्य की नियामक भूमिका होती है। राजनैतिक स्तर पर, भले ही साहित्य स्वयं क्रांति न करे, पर क्रांति की भूमिका के विरचन मे साहित्य की भूमिका असंदिग्ध है। क्रांति काल का साहित्य भले ही आक्रोशी, विप्लवी तथा विद्रोही तेवर लिए हो, किंतु उसका अपना ऐतिहासिक महत्व कभी नकारा नहीं जा सकता। उस काल में संस्कृति का औदात्य शब्दायित ही नहीं होता, समाज जीवन में नवीन प्रेरणा, नवीन उत्साह तथा नवीन क्रियाशीलता का वह संचार भी करता है। विगत, अपनी अनेक प्रेरणादायी, त्याग, पूर्ण बलिदानियों के माध्यम से वर्तमान को ओजस्विता ही प्रदान नहीं करता, उसका भावीपण भी प्रशस्त करता है। पुरातन उदाहरण, वर्तमान की भावाग्नि को सतत प्रज्ज्वलित करते रहते हैं क्रांतिकालीन साहित्य, बाद में भी, जब नवीन समाज रचना का महनीय कार्य संपन्न करना होता है, अपनी श्रेष्ठ ज्ञानात्मक संचेतना की प्रस्तुति से मानव का, समाज शास्त्रियों का तथा

राजनेताओं का मार्ग दर्शन करता है। मैं मानता हूँ, इस मार्गदर्शन में साहित्य की आदेशात्मक नहीं, निर्देशात्मक भूमिका ही होती है। लेकिन तब उसका निर्देशन भी, शब्दायित सांस्कृतिक भावों की उपस्थिति से आदेशात्मक स्वरूप ग्रहण कर लेता है।

साहित्य-सृजन इसी हेतु से एक सांस्कृतिक कर्म है। सामाजिक पुनरुत्थान और सांस्कृतिक साहित्य में अप्रत्यक्ष रूप से गहरा संबंध है। साहित्य मानव-जीवन को उसकी वर्तमान वास्तविक अवस्था का दिग्दर्शन करा, उन उदात्त विश्वासों, आस्थाओं तथा अनुभूतियों से जोड़ता है, जो उसे महामानव बनाते हैं। साहित्य अपनी सांस्कृतिक परंपरा की पहचान को नवीन-नवीन संदर्भो तथा रूपों में प्रस्तुत कर मानव का औदात्य-पथ प्रशस्त करता है। जो कार्य शब्द के स्तर पर संस्कृति को निष्पन्न करना होता है, उसे साहित्य संपन्न करता है। आचरण के स्तर पर उसे धर्म पूर्ण करता है। साहित्य का औदात्य, श्रेष्ठता तथा नैतिक पवित्रता ही संस्कृति का शब्दायन है। साहित्य के माध्यम से ही संस्कृति का भाव-चेतना व्याख्यायित होकर राष्ट्र निर्माण में सहायक होती है। सद् साहित्य ही किसी भी राष्ट्र की संजीवनी शक्ति है। यदि यह कहें, साहित्य ही किसी भी राष्ट्र का प्राण है, तो अत्युक्ति नहीं होगी। कोई भी राष्ट्र अपने साहित्य के माध्यम से ही पहचाना जाता है।

किसी भी राष्ट्र की पहचान के दो मुख्य उपादान हैं। एक तो उसका साहित्य और दूसरा वहाँ के जन का आचरण। साहित्य जहाँ राष्ट्र की जीवन दृष्टि की भावात्मक अभिव्यक्ति है वहीं आचरण उस साहित्य की कथात्मक एवं जन को प्रत्यक्ष व्यावहारत्मक अभिव्यक्ति है। इन दोनों की संयुति ही उस राष्ट्र की संस्कृति की परंपरा बनाती है। राष्ट्र के आवश्यक अंगों में जब संस्कृति को गिनाते हैं, तब प्रकारांतर से हम साहित्य को ही गिनाते हैं। राष्ट्र के निर्माण में जो सार्थकता संस्कृति की है, वास्तव में उस सार्थकता का संवाहक साहित्य ही है। राष्ट्र की श्रेष्ठता का भवन वहाँ के श्रेष्ठ साहित्य तथा वहाँ के जन के श्रेष्ठ आचरण के अधिष्ठान पर ही खड़ा होता है। साहित्य की महत्ता इसलिए भी प्राथमिकता पाती है, क्योंकि साहित्य के द्वारा उपदृष्टि ज्ञानात्मक संचेतना ही उस राष्ट्र विशेष का आचरण धर्म बनती है तथा वहाँ की सांस्कृतिक पंरपरा को आगे बढ़ाती है। श्रेष्ठ साहित्य से जहाँ राष्ट्र की सांस्कृतिक श्रेष्ठता दिग्दर्शित होती है, वहीं राष्ट्र जन के श्रेष्ठ आचरण को शब्दायित कर स्वयं साहित्य भी अपनी सार्थकता प्रमाणित करता है।

राष्ट्रीयता और दलित-साहित्य

डॉ. मोहम्मद अजहर ढेरीवाला

'राष्ट्रीयता' शब्द अँग्रेजी साहित्य के 'नेशललिज्म' के पर्यायवाची अर्थ में प्रयुक्त होता है। भारतीय परिवेश के अंतर्गत 'राष्ट्रीयता' के स्थान पर 'भारतीय राष्ट्रीय संस्कृति' का प्रयोग किया जाता है। इसमें समस्त भारतीय संस्कृति, धर्म, संप्रदाय, जातियाँ आदि का समावेश होता है। 'राष्ट्रीयता' और 'संस्कृति' इन दोनों अर्थों में तात्विक रूप से अर्थ भिन्नता है।

राष्ट्रीयता की अवधारणा क्या है? आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपनी पुस्तक 'हिंदी साहित्य : उद्‌भव और विकास' में निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत किया है-'उन्नीसवीं शताब्दी संसार के इतिहास का नयी दिशा में मोड़ने वाली शताब्दी है। नाना प्रकार के वैज्ञानिक अविष्कारों ने इस शताब्दी में यूरोप को जड़ विज्ञान का प्रेमी माना था। बड़े-बड़े कारखाने खुले, वाष्पचालित जलयानों की सहायता से दूर-दूर के देशों से व्यापारिक संबंध बढ़ा और पूँजी क्रमशः सिमटती हुई व्यापारी वर्ग के घर में पूँजीभूत हो उठी।....धीरे-धीरे व्यापारिक वर्ग ने यह अनुभव किया कि राजसत्ता पर अधिकार जमाये बिना व्यापार सुविधा से नहीं चल सकता और यूरोप में सर्वत्र राजतंत्र शिथिल हो गया। इसी परिस्थिति में उस नवीन विचारधारा का जन्म हुआ, जिसे 'राष्ट्रीयता' कहते हैं। यूरोप में जन्मी हुई विचारधारा ने धीरे-धीरे भारत के विचारशील लोगों को भी प्रभावित करना शुरू किया। राष्ट्रीयता भारतवर्ष के लिए नवीन विश्वास थी। इसके पहले इस देश में यह बात अपरिचित थी। राष्ट्रीयता का अर्थ है कि प्रत्येक व्यक्ति राष्ट्र का अंग है और इस राष्ट्र की सेवा, इसको धनधान्य से समृद्ध बनाने, इसके प्रत्येक नागरिक को सुखी और संपन्न बनाने-हेतु, प्रत्येक व्यक्ति को सब प्रकार के त्याग और कष्ट स्वीकार करने चाहिए। यह राष्ट्रीयता एक सीमा तक मनुष्य के उच्चतर उद्येश्यों के अनुकूल थी, लेकिन सीमा-व्यक्तिक्रम करने के बाद इसका एक अत्यंत कुत्सित रूप सामने आता है कि अपने देश को धन-धान्य से समृद्ध बनाने के लिए दूसरे देशों का शोषण किया जा सकता है, अपने देश का प्रासाद सँवारने के लिए दूसरे देश की झोपड़ियाँ जलाई जा सकती है।'

आचार्य हजारी प्रसाद 'द्विवेदी' द्वारा विश्लेषित 'राष्ट्रीयता' की व्याख्या अपने में एक विशेष अर्थ रखती है, जिसमें समानता का भाव है।

किंतु दूसरी ओर आजाद भारत में दलितों और पीड़ितों के लिए इसकी अर्थवत्ता खो चुकी है। दलित आज भी दलित हैं। वे अपने मानवीय अधिकारों से वंचित हैं। इतिहास में भी इन दलित-दमित प्रज्ञा का स्थान नगण्य है। 'कँवल भारती' ने अपनी पुस्तक 'दलित विमर्श की भूमिका' में इस सच्चाई को स्वीकार करते हुए लिखा है-'इतिहास की बात चलती है, तो आमतौर पर यह समझ लिया जाता है कि वह राजा-महाराजाओं के सम्राज्यों, उनकी शासन पद्धतियों और जय-पराजय की गाथाओं का लेखा-जोखा है। अभी तक ऐसे ही इतिहास लिखे भी गए हैं, इसलिए इतिहास के बारे में यही गलत धारणा रूढ़ भी हो गई है। भारत का इतिहास इन्हीं धारणाओं के कारण एक वंश का अभिलेख मात्र बन कर रह गया है। भारत के इतिहास को पढ़ते वक्त वही चित्र आपके सामने उभरता है कि भारत में एक संस्कृति रही है और राजे-महाराजे राजनीति तथा वंशगत बैर के आधार पर आपस में लड़ते रहे हैं। इस इतिहास में सिर्फ शासक जातियों के उत्थान-पतन, उनके धर्म-संस्कार और उनके जीवन के सिवा अन्य जातियों, वर्गों और समुदायों के जीवन दिखाई नहीं देते। इसलिए, भारत के इतिहास में न तो दलित उपस्थित हैं और न उसका संघर्ष नजर आता है। इसका कारण यह नहीं है कि ये इतिहास से बाहर की वस्तु हैं, बल्कि इसका कारण यह है कि भारत का इतिहास लिखने वालों ने दलितों को (और स्त्रियों को भी) इतिहास से बाहर रखने का काम किया है।

मैं आपको यह बताना आवश्यक समझता हूँ कि इसी गलत इतिहास-बोध के कारण लोगों ने दलितों और स्त्रियों को इतिहास-हीन मान लिया है। जबकि भारत के इतिहास में उनकी भूमिका महत्वपूर्ण है। वे इतिहासवान हैं, सिर्फ जरूरत दलितों और स्त्रियों द्वारा अपने इतिहास को खोजने की है। डॉ. अम्बेडकर पहले भारतीय इतिहासकार हैं, जिन्होंने दलितों की उपस्थिति को रेखांकित किया है। उन्होंने इतिहास-लेखन में दो तथ्यों को स्वीकार किए जाने की बात कही है। पहली बात यह स्वीकार कर लेनी चाहिए कि एक समान भारतीय संस्कृति जैसी कोई चीज कभी नहीं रही और यह कि भारत तीन प्रकार का रहा- ब्राह्मण भारत, बौद्ध भारत और हिंदू भारत। इनकी अपनी-अपनी संस्कृतियाँ रहीं। दूसरी बात यह स्वीकार की जानी चाहिए कि मुसलमानों के आक्रमण के पहले भारत का इतिहास ब्राह्मणवाद और बौद्ध धर्म के अनुयायियों के बीच परस्पर संघर्ष को इतिहास रहा है। जो कोई इन दो तथ्यों को स्वीकार नहीं करता, वह भारत का सच्चा इतिहास, जो इस युग के अर्थ और उद्येश्य को स्पष्ट कर सके, कभी नहीं

लिख सकता।' आज फिर एक बार 'राष्ट्रीयता' के परिप्रेक्ष्य में 'दलित साहित्य' का विश्लेषण करना आवश्यक है।

'राष्ट्रीयता' और 'दलित साहित्य' की बात पर ये प्रश्न सामने आते हैं-

1. दलित-विमर्श सिर्फ एक जाति-विमर्श नहीं है।
2. राष्ट्रीय समस्या के रूप में दलित।
3. दलित-मुक्ति का प्रश्न राष्ट्रीय मुक्ति का प्रश्न।
4. दलितों का उत्थान राष्ट्र का उत्थान।
5. धर्म को कानून से ऊपर मानना।
6. दलितों की समस्याओं को जाति-विशेष तक सीमित कर देना।

आदिकाल से लेकर वर्तमान समय तक दलितों और पीड़ितों के लिए साहित्यकारों ने अपनी कलम चलाई है। आदिकाल और मध्यकाल में हम देखें तो इस समस्या का उतना विमर्श नहीं हुआ है। इसका अर्थ यह नहीं कि उस समय का साहित्यकार इन समस्याओं से अनजान था, किंतु उस समय की परिस्थितियाँ कुछ और प्रकार की साहित्य-रचना के पीछे चल रही थीं। जैसे- आदिकाल में प्रजा युद्धों से घिरी रही, इसलिए उस समय का साहित्य ज्यादातर युद्धों और राजाओं की प्रशंसा में ही लिखा गया। मध्यकाल समग्र भारतीय परिवेश के लिए एक आपातकाल था, जहाँ अनेक धर्म, संप्रदाय, जाति, वर्ग एवं वर्गो में समाज विभाजित था। संक्षेप में आदिकाल से लेकर आजादी तक समस्त भारतीय परिवेश में दलित और दमित प्रजा अपनी आवाज को बुलंद न कर सकी। वर्तमान समय में अब इन 'दलित-वर्ग' ने अपनी समझ को विकसित किया, जिसके परिणामस्वरूप उनकी अपनी आवाज के रूप में 'दलित-साहित्य' उभर कर सामने आया, किंतु इस साहित्य ने भी अपनी एक सीमा पकड़ ली। विशेष जातियों के लिए लिखा गया साहित्य ही दलित साहित्य है, इस धारणा ने इसकी व्यापक अर्थवत्ता को सीमित कर दिया। इस बात की पुष्टि करते हुए 'डॉ. शरण कुमार लिम्बाले' ने अपनी पुस्तक में लिखा है- 'दलित केवल-हरिजन और नवबौद्ध नहीं। गाँव की सीमा के बाहर रहने वाली सभी अछूत जातियाँ, आदिवासी, भूमिहीन खेत मजदूर, श्रमिक, कष्टकारी जनता और यायावर सभी की सभी 'दलित' शब्द से व्याख्यायित होती हैं। दलित शब्द की व्याख्या में केवल अछूत जाति का उल्लेख करने से नहीं चलेगा। इसमें आर्थिक दृष्टि से पिछड़े हुए लोगों को भी समावेश करना होगा।'

इसी रूप में हम राष्ट्रीय समस्या को दलित और पीड़ित जनता की समस्याओं के निराकरण की खोज कर सकते हैं। इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि दलित विमर्श केवल एक विशेष वर्ग या जाति का विमर्श नहीं है। जैसी की आम धारणा बन चुकी है कि दलित समस्या को लेकर लिखा गया साहित्य ही 'दलित साहित्य' है या 'दलित विमर्श'। 'कँवल भारती' ने 'दलित विमर्श की भूमिका' में इस बात को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि- 'दलित विमर्श केंद्र में दलित समस्या को नहीं नकारा जा सकता। पर यह समस्या एक राष्ट्रीय समस्या के रूप में है। इसके केंद्र में दलित मुक्ति का प्रश्न राष्ट्रीय मुक्ति का प्रश्न है। करोड़ों लोगों के लिए अलगाववाद का जो समाजशास्त्र और धर्मशास्त्र ब्राह्मणों ने निर्मित किया, उसने राष्ट्रीयता को खंडित किया था और उसी के कारण भारत अपनी स्वाधीनता खो बैठा था।

इसलिए दलित-विमर्श के केंद्र में वे सारे सवाल हैं, जिनका संबंध भेदभाव से है, चाहे यह भेदभाव जाति के आधार पर हो, रंग के आधार पर हो, नस्ल के आधार पर हो, लिंग के आधार पर हो या फिर धर्म के आधार पर क्यों न हो।'

डॉ. अम्बेडकर ने अनेक स्थलों पर जोर देकर कहा है कि दलितों का उत्थान राष्ट्र का उत्थान है। दलित चिंतन में राष्ट्र पूरे भारतीय परिवार या कौम के रूप में है, जबकि ब्राह्मणों के चिंतन में राष्ट्र की परिकल्पना है, जिसमें सिर्फ द्विज हैं, न दलित हैं, न पिछड़ी जातियाँ हैं और अल्पसंख्यक वर्ग है। इसलिए हिंदू राष्ट्र और हिंदू राष्ट्रवाद दोनों खंडित चेतना के रूप में हैं। दूसरे शब्दों में वर्ण-व्यवस्था ही हिंदू राष्ट्र का मुख्याधार है। दलित-चिंतक इस संकीर्ण अर्थ में राष्ट्र की अवधारणा को स्वीकार नहीं करते। वे एक व्यापक अर्थ में राष्ट्र को स्वीकार करते हैं और उनकी व्यापक राष्ट्रीय चिंता है कि जिस देश में करोड़ों लोग जाति के आधार पर मानवाधिकारों से वंचित रखे गए हों, वह देश सभ्य कैसे कहला सकता है? एक देश की समाज-व्यवस्था में एक सवर्ण हमेशा सवर्ण क्यों रहता है? एक अछूत हमेशा अछूत क्यों रहता है? यह व्यवस्था है, जिसमें व्यक्ति की योग्यता कोई मायने नहीं रखती और जाति ही योग्यता का मानदंड है?

डॉ. अम्बेडकर ने लिखा है कि किसी समय लार्ड बेल्कोर ने जो सवाल प्रत्यक्षवादियों से किए गए थे, आज वही सवाल दलित हिंदुओं

के नायकों से पूछ सकते हैं। दलित तो और भी कई प्रश्न पूछ सकते हैं। वे पूछ सकते हैं कि क्या हिंदू धर्म उन्हें मानव प्राणी के रूप में स्वीकार करता है? क्या वह उनके लिए समानता का समर्थन करता है? क्या उन्हें आजादी का लाभ देना चाहता है? क्या वह हिंदुओं तथा दलितों के बीच भ्रातृत्व कायम करने में मदद करता है? क्या वह हिंदुओं को सिखाता है कि दलित उन्हीं के सजातीय हैं? क्या वह हिंदुओं से कहता है कि दलित के साथ बदतर अमानवीय व्यवहार करना पाप है? क्या वह हिंदुओं से दलितों के प्रति न्याय करने को कहता है? क्या हिंदू धर्म बिना किसी भेदभाव के जीवन मूल्यों को सर्वव्यापी बनाता है? इन प्रश्नों का उत्तर कोई भी ब्राह्मणवादी, सवर्ण हिंदू देने को तैयार नहीं है। कारण स्पष्ट है कि हमारे देश में कानून भले ही समानता का बनाया जाए, सभी मनुष्यों को समानाधिकार दिए जाएँ, फिर भी यहाँ धर्म सबसे ऊपर है। कानून केवल कानून बनकर रह जाता है, उसे भी धर्म के आगे झुकना पड़ता है। ऐसी स्थिति में न्याय की कोई उम्मीद करना व्यर्थ है। दलितों की दयनीय स्थिति के लिए धर्म और धर्मानुयायी जिम्मेदार हैं।

'राष्ट्रवादी चिंतन से परे' नामक अपने शोध-निबंध में आदित्य निगम लिखते हैं कि-'हाल ही में आंध्रप्रदेश के तेरह दलित संगठनों ने राष्ट्रपति को एक ज्ञापन देते हुए आज की राजनीति और दलितों से उसके रिश्ते के बारे में चंद जरूरी सवाल उठाए। यह ज्ञापन इस बयान के साथ शुरू होता है कि 'बढ़ते संकट' के दौर में, अछूतों और गैर अछूतों के बीच शंकाओं की खाई' भी बढ़ रही है। इस दस्तावेज के मुताबिक दलित दौलत पैदा तो करते हैं, मगर उस पर उनका कोई इख्तियार नहीं है। इसी बात को तार्किक बयान में कहा गया है, हिंदुस्तान अपने तमाम नागरिकों के लिए एक राष्ट्र जरूर है मगर हम अच्छे नागरिकों के लिए वह संदिग्ध अतीतवाला एक ख्याल मात्र है। हमारा बहिष्कार एक स्वीकृत नियम था।

जब हिंदुस्तान एक गणतंत्र बना तो उसकी तमन्ना एक राष्ट्र बनने की थी। दलितों और गैर दलितों की पहचान एक हो जानी थी। एक नागरिक समाज बनना था, एकता का एक बिंदु उभारना था। हमारे बहिष्कार का खात्मा होना था... वह मंजिल आज भी एक सपना बनी हुई है। गणतंत्र के मालिकों ने अब सपना देखना भी छोड़ दिया।

अंतिम और सबसे बड़ी समस्या यह है कि 'दलित समस्या' को जाति विशेष तक सीमित कर दिया गया। इसीलिए इसने अपना एक राजनीतिक रंग पकड़ लिया। साहित्य के क्षेत्र में भी इस प्रकार की गुटबाजियाँ

आरंभ हो गई? दलित लेखन, गैर दलित लेखन आदि-आदि। इस संदर्भ में वरिष्ठ साहित्यकार 'राजेन्द्र यादव' का कहना है कि-'यह सही है कि दुनिया का कोई भी साहित्य बिना सामाजिक संदर्भों के न समझा और न लिखा जा सकता है। बीसवीं सदी में हमारी कोई विचारधारा नहीं थी। लोकतंत्र से लेकर मार्क्सवाद तक हमने सारी पश्चिमी विचारधाराएँ अपना लीं, लेकिन यहाँ के समाज को बदलने में हम विफल रहे। कोशिशें की गईं, किंतु उनका कोई असर दिखलाई नहीं दे रहा, जिस मानवतावाद का दर्शन बाहर से आया, वह प्रभावी नहीं रहा। इसलिए जब तक हम समाज की सोच को नहीं बदलते तब तक हम समाज में कोई प्रगति और नया चिंतन नहीं ला सकते, क्योंकि हम मानसिक रूप से अँधविश्वासों में जकड़े हुए हैं। हमारी लड़ाई आस्था और विवेक की लड़ाई है। पहली बात हमारे लेखकों को सीखनी पड़ेगी कि भावनाओं को धक्का देना हर चिंतक एवं दलित लेखक का कर्त्तव्य है। उन्होंने मूर्तिपूजा और व्यक्ति पूजा से दलितों को बचने का भी आख्यान किया। कोई भी प्रवृत्ति जब तक विकास की प्रक्रिया में होती है तब तक परिभाषित नहीं की जा सकती। दलित चेतना विकास की प्रक्रिया में है, हमें उसे परिभाषा में नहीं बाँधना चाहिए। जो हम लिख रहे हैं वह दलित साहित्य है जब तक हम अपने अधिकारों की लड़ाई लड़ने वाले समान धर्माओं के साथ नहीं आएँगे तब तक आगे नहीं बढ़ सकते, इसलिए 'सरनेम्स' के आधार पर दलित लेखक तय करना ठीक नहीं है।'

प्रेमचंद ने अपने साहित्यिक निबंध 'जीवन में साहित्य का स्थान' में इस बात को स्पष्ट करते हुए लिखा है-'आदिकाल से मनुष्य के लिए सबसे समीप मनुष्य है, उसी से हमारी आत्मा का अधिक मेल होता है। विद्यार्थी को विद्यार्थी-जीवन से, कृषक को कृषक-जीवन से जितनी रुचि होती है, उतनी अन्य जातियों से नहीं, लेकिन साहित्य जगत में प्रवेश पाते ही यह भेद, यह पार्थक्य मिट जाता है। हंमारी मानवता जैसे विशाल और विराट होकर समस्त मानव-जाति पर अधिकार पा जाती है। मानव जाति ही नहीं, चर और अचर, जड़ और चेतन सभी उसके अधिकार में आ जाते हैं। उसे मानों विश्व की आत्मा पर साम्राज्य प्राप्त हो जाता है। श्री रामचंद्र राजा थे, पर आज रंक भी उनके दु:ख से उतना ही प्रभावित होता है जितना कोई राजा हो सकता है। साहित्य वह जादू की लकड़ी है, जो पशुओं में, ईंट-पत्थरों में, पेड़-पौधों में विश्व की आत्मा का दर्शन करा देती है। मानव-हृदय का जगत, इस प्रत्यक्ष जगत जैसा नहीं है। हम मनुष्य होने के कारण मानव-जन्म

के प्राणियों में अपने को अधिक पाते हैं, उसके सुख–दुख, हर्ष और विषाद से ज्यादा विचलित होते हैं। हम अपने निकटतम बंधु–बांधवों से अपने को इतना निकट नहीं पाते, इसलिए कि हम उसके एक–एक विचार, एक–एक उद्गार को जानते हैं, उसका मन हमारी नजरों के सामने आइने की तरह खुला हुआ है। जीवन में ऐसे प्राणी हमें कहाँ मिलते हैं, जिनके अंत:करण में हम इतनी स्वाधीनता से विचार सकें। सच्चे साहित्यकार का यही लक्षण है कि उसके भावों में व्यापकता हो, उसने विश्व की आत्मा से ऐसी सामंजस्य स्थापित कर लिया हो कि उसके भाव प्रत्येक प्राणी को अपने ही भाव मालूम हों।'

अब हम 'दलित चेतना' और साहित्य के कुछ पहलुओं पर पहली नजर डाल सकते हैं। कबीर ने कहा था–

'गर्भ बास महिल कुल नहि जानी।
ब्रह्म बिंद ले सब अनपाली।।
जो तू बाम्हन बम्हनि जाया।
तौ आन बाट काहे नहिं आया।
तुम कल बाम्हन हम कल शूद।
हम कल लोहू तुम कल दूध।
कहु कबीर जो ब्रह्म विचारे।
सो बाम्हन कहियन है हमारे।।

दलितों के शोषण के पीछे धार्मिक कारण भी अनेक रहे हैं, हम पीछे इसका उल्लेख कर चुके हैं। वैसे देखा जाए तो हम दलित संतों के युग को आध्यात्मिक विद्रोह का युग भी मान सकते हैं, क्योंकि उन्होंने तमाम आध्यात्मिक मूल्यों का विरोध किया, जो मनुष्यों को आपस में बाँटते हैं। संत सामाजिक समता के साथ आर्थिक समता भी चाहते थे। संत रैदास ने तो कहा भी था–

'बाभन को मत पूजिए जो हो गुन से हीन।
पूजिए चरन चण्डाल के, जो गुन ज्ञान प्रवीण।।'

इस प्रकार संतों ने अपनी वाणी के माध्यम से दलित और दमित प्रज्ञा के शोषण के कारणों को अपनी लेखनी में स्थान दिया। 19वीं शताब्दी में दलित–लेखक की जो धारा प्रवाहित हुई, इसका मुख्य कारण यह था कि अँग्रेजों के आगमन के कारण एक ओर शिक्षा का प्रचार–प्रसार बढ़ा और वे अपने अधिकारों को समझने लगे। अब भारत की विभिन्न भाषाओं में दलित लेखन की धारा प्रवाहित हो गई। सबसे पहले इस धारा को हम

मराठी साहित्य में देख सकते हैं, फिर हिंदी, उर्दू, गुजराती आदि भाषाओं में भी यह धारा प्रवाहित हो गई।

प्राथमिक स्तर पर 'दलित-साहित्य' की जो रचना चल पड़ी उसमें दलित और दमित प्रजा को, उनकी समस्याओं को उनके जीवन की यातनाओं का वर्णन करना साहित्यकारों का लक्ष्य था। आगे चलकर यह विचारधारा अपने व्यापक फलक पर विस्तृत हो गई। हिंदी साहित्य में भी यह धारा अबाध गति से प्रवाहित हो रही है। उपन्यास, कहानी, कविता, नाटक आदि क्षेत्रों के माध्यम से लेखक दबी और दमित प्रजा की आवाज को समाज तक पहुँचा रहा है और दलितों को नवनिर्मित कर उनके दमित होने के कारणों की तलाश कर रहा है, कहीं-कहीं खुला विरोध है, तो कहीं संकेत मात्र से इस ओर लेखक आगे बढ़ रहा है।

'महात्मा जोतिबा फुले' जो मराठी के एक प्रसिद्ध साहित्यकार हैं, उनमें हम दलित चेतना के बिंदुओं को देख सकते हैं। महात्मा जी के नाटकों और पांवाड़ा काव्य में इस प्रवृत्ति को हम देख सकते हैं। उनके द्वारा लिखा गया पंवाड़ा काव्य में एक ब्राह्मण अध्यापक पर चोट की गई है।

'प्रथम ब्राह्मण पैदा हुआ हिंदुस्तान में।
दिखता शूद्र जैसा निरंतर।।
स्नान पूजा-पाठ नित तिलक माथे पर।
उठा ले गोद में वेश्याओं को।।
सुनना वेदों का शुद्रों को बंद किया।
लेकिन पढ़ाया अँग्रेजों को।।
पाँव धुलवा कर शूद्र वर्ग को तीर्थ देते।
मुँह पान करके यवनी का।।
ज्ञानहीन शूद्र लज्जाहीन हुआ।
जूते उठाए ब्राह्मणों के।।
हाथ के जूते बीच में ही कहीं न रखे।
खोज करो सच्चा जोति कहे।।'

महात्मा जी की 'गुलामगीरी' रचना बड़ी प्रसिद्ध हुई। इसमें ब्राह्मणवाद पर जितना प्रहार किया गया है, उतना अन्य कोई ग्रंथ में नहीं। गुलामगीरी के 16वें परिच्छेद में उन्होंने ब्राह्मणों पर प्रहार करते हुए लिखा है कि-

'मनु जनकर खाक हो गया जब अँग्रेज आया।
ज्ञानरूपी माँ ने हमको दूध पिलाया।

अब तो तुम भी पीछे न रहो।
भाइयों, पूरी तरह जलाकर खाक कर दो मनुवाद को।।
हम शिक्षा पाते ही पाएँगे वह सुख।
पढ़ लो मेरा लेख, जोति कहे।'

महात्माजी ने 'शिवपजी का पंवाड़ा' की प्रस्तावना में लिखा है कि ब्राह्मणों को शुद्रों के साथ जो व्यवहार होता है, उससे यह सिद्ध होता है कि ब्राह्मणों का इस देश से कुछ भी संबंध नहीं है। उन्होंने केवल स्वार्थ की वजह से इस देश पर एकाएक हमले किए और जिस-जिस समय जो लोग यहाँ हमलों की चपेट में आए उनको बंदी बनाया गया और ब्रह्म राजा ने उन सभी को अपना गुलाम बना दिया।'

हिंदी में स्वामी अछूतानंद 'हरिहर' उपनाम से कविताएँ लिखते थे। उनकी एक कविता 'मनुस्मृति' पर है, जिसमें उन्होंने लिखा है कि-

'निस दिन मनुस्मृति हमको जला रही है।
ऊपर न उठने देती नीचे गिरा रही है।
ब्राह्मणों व क्षत्रियों को सबको बनाया अफसर,
हमाके पुराने उतरन पहनो बता रही है।
दौलत कभी न जोड़े गर हो तो छीन ले वह,
फिर नीच कह हमारा दिल भी दुखा रही है।
कुत्ते व बिल्ली, मक्खी से भी बना नीचा,
हा शोक, गाँव बाहर हमको बसा रही है।
हमको बिना मजूरी बैलों के संग जोते,
गाली व मार उस पर हमको दिला रही है।
ले ले बेगार, खाना तक पेट भर न देते,
बच्चे तड़पते भूखे, क्या जुल्म ढा रही है।
ए हिंदू कौम सुन ले तेरा भला न होगा,
हम बेकसों को हरिहर गर तू रुला रही है।'

इनकी वाणी का प्रभाव उत्तर-भारत के दलित वर्गो पर भी पड़ा। स्वामीजी के आदि हिंदू आंदोलन और साहित्य ने स्वामी शंकरानंद, केवलानंद और अयोध्यानाथ दंडी जैसे समर्थ संतों को जन्म दिया। केवलानंद का निम्नलिखित गीत दलित वर्ग में आज भी बड़ा प्रसिद्ध है।

'मनु जी तुमने वर्ण बना दिए चार।
जा दिन तुमने वर्ण बनाए, नयारेऊ रंग बनाये क्यों ना?

गोरे ब्राह्मण, लाल क्षत्रिया, बनिया पीले बनाए क्यों ना?
शूद्र बनाये काले वर्ण के, पीछे को पैर लगवाए क्यों ना?
कै हो पहचान पोप जी दो अक्षर डालवाये क्यों ना?
लोहे के बर्त्तन पर पानी कंचन को दयौ डार।।'
मनु जी....

इसमें इन्होंने मनु द्वारा निर्मित वर्ण व्यवस्था को कटघरे में खड़ा कर दिया है, जिसने मनुष्यों को अनेक वर्णों में विभाजित कर दिया।

दलित-चेतना का प्रभाव 20वीं शताब्दी के सामाजिक, राजनीतिक आंदोलन पर भी पड़ा, जिसके परिणामस्वरूप अनेक रचनाकारों ने अपनी लेखनी को इस विषय की ओर मोड़ा। कवि आर. सी. प्रसाद सिंह, सोहनलाल द्विवेदी, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, मैथिलीशरण गुप्त, गया प्रसाद शुक्ल सनेही, पं माधव शुक्ल, शियारामशरण गुप्त आदि ने अछूतों की समस्या पर अपनी लेखनी चलाई। प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना के पश्चात् प्रेमचंद एवं उस समय के कथाकारों ने अपनी रचनाओं में दलित-लेखन का आधार बनाया। त्रिलोचन, मुक्तिबोध, धूमिल, नरेश मेहता, भारत भूषण, रामदरश मिश्र, नागार्जुन, रांगेय राघव, जगदीश चंद्र, राजेंद्र यादव आदि लेखकों और रचनाकारों ने इस साहित्य की रचना में अपना महत्वपूर्ण योगदान किया।

संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि रचनाकार अपने लेखन को राष्ट्रीयता की धारा से जोड़कर इनकी समस्याओं का समाधान निकाले। जब दलितों की समस्याओं को राष्ट्रीय समस्या के साथ जोड़ दिया जाएगा, तभी उनकी समस्याओं का समाधान संभव है।

राष्ट्र निर्माण में साहित्य की उपादेयता

डॉ. महेश चंद्र शर्मा

आज के आपाधापी, भाग-दौड़, स्वार्थपरक संकीर्णता तथा सांस्कृतिक मूल्यों के ह्रास के युग में व्यक्ति संवेदनाशून्य होता जा रहा है। जो व्यक्ति (चाहे वे किसी भी वर्ण में जन्में हों) प्रगतिशील पुरुषों-नारियों के प्रति अपने मनोजगत में ईर्ष्या-द्वेष, छल तथा कपट रखते हैं, वे संस्कारवान नहीं कहे जाते। विचारक श्री प्रेमशंकर की मान्यता है कि-'ईर्ष्या एक मानसिक रोग है जिसके मूल में हीन भावना होती है और चेतन इतनी संकुचित हो जाती है कि 'देखि न सकहिं पराई विभूति।' ईर्ष्या-द्वेष, छल तथा कपट आदि दोषों-बुराइयों से मुक्ति पाने का एकमात्र मार्ग है-

प्रबोधात्मक लेखन (सद्साहित्य) को पढ़ना-समझना तथा उसे आचरण का विषय बनाना।

मेरी यह सुदृढ़ मान्यता है कि 'समाज-मंगल के मार्ग पर ले जाने वाले लेखन को साहित्य कहते हैं।' विचारक श्री प्रेमस्वरूप गुप्त ने साहित्य का लक्षण देते हुए इसकी उपादेयता को रेखांकित किया है। श्री गुप्त का मत है कि-साहित्य जीवन का विज्ञान है और हमें जीने की कला सिखाता है। जीवन का लक्ष्य है आनंद। साहित्य हमारे वैयक्तिक और समष्टिगत जीवन को अधिक आनंदमय बनाता है।

भारतीय साहित्य वस्तुतः प्रबोधात्मक साहित्य है। आदिकालीन कवि जगनिक कृत 'परमलरासो' (आल्हाखंड) जनसमूह की चीज है। चंद वरदाईकृत 'पृथ्वीराजरासो' वीरगाथाकाल की वह प्रतिनिधि रचना है जिसके आधार पर साहित्य के इतिहास में 'वीर काव्य परंपरा' का श्रीगणेश हुआ है। आचार्य श्यामसुंदर दास ने इस रचना को राष्ट्रीय जीवन में रामचरितमानस की भांति महत्वपूर्ण बताया है। पृथ्वीराजरासो निश्चय ही चंदवरदाई की धवल कीर्ति का प्रबल स्तंभ है। वीरगाथा काल के चारण (भाट) कवियों ने हिंदू राजाओं के दरबार में रहकर जहाँ राजाओं की वीरता, शौर्य तथा उनके द्वारा लड़ी गई लड़ाईयों का वर्णन किया है, वहाँ अपनी ओजस्विनी कविताओं के द्वारा सैनिकों में देशभक्ति एवं शौर्य जगाकर उन्हें मातृभूमि की रक्षा के लिए प्रोत्साहित करने का महत्वपूर्ण कर्त्तव्य भी निभाया है। चंद वरदाई जैसे महाकवि ने सेनापति के रूप में अपने कर्त्तव्य का निर्वाह किया है। इस प्रकार राष्ट्र-निर्माण में वीरगाथा काल के रचनाकारों के महत्वपूर्ण

अवदान को हमें स्वीकार कर लेना चाहिए।

भारतीय साहित्य की जड़ें भारत की धरती में हैं। संत कबीर के साहित्य के माध्यम से उनका 'समन्वयवादी' जीवन-दर्शन हमारे सामने आता है। आलोचक रामचंद्र शुक्ल ने कबीरदास की प्रतिभा को स्वीकार किया है। यशस्वी आलोचक डॉ. विजयेन्द्र स्नातक ने हमारे इस कवि को मानवतावादी साहित्यकार माना है। वस्तुत: व्यंग्यकार कबीर की प्रासंगिकता साहित्य के क्षेत्र में सदैव बनी रहेगी। जायसी आदि सूफी साधकों ने उदार दृष्टिकोण का परिचय देते हुए 'हिंदू-मुस्लिम एकता' का संपूर्ण मन से प्रयास किया था।

गोस्वामी तुलसीदास कृत 'रामचरितमानस' भारतीय साहित्य की एक अद्वितीय कृति है। मानस जीवन की समग्रता को लेकर चलने वाली रचना है। इस रचना की महत्ता इस बात से भी उजागर हो रही है कि यशस्वी आलोचक श्री राम विलास शर्मा ने मानस की लोक स्वीकृति के आधार पर भक्ति काल को हिंदी साहित्य का स्वर्ण युग माना है। यशस्वी आलोक डॉ. रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' की मान्यता है कि -'लोक धर्म का इतना बड़ा प्रतिपादक और मर्मज्ञ हिंदी में दूसरा कवि नहीं हुआ।' 'मानस' भारतीय संस्कृति का दर्पण है। इसमें भारतीय संस्कृति अपने 'शिखर' पर है। इस रचना के माध्यम से गोस्वामी तुलसीदास ने 'संयुक्त परिवार प्रथा' की जबरदस्त वकालत की है। मानसकार ने रामभक्ति के साथ-साथ शील, आचार, मर्चादा तथा लोक संग्रह का संदेश देकर मृतप्राय: हिंदू जाति में एक अपूर्व दृढ़ता उत्पन्न की। उन्होंने पारिवारिक आदर्शों की स्थापना के लिए राम-कथा के माध्यम से राम के पारिवारिक आदर्श रखकर, भारतीय पारिवारिक आदर्श की नींव रखकर, भारतीय संस्कृति की आधारशिला रखी। ये सब बातें मानस के म्र्राध्यम से ही संभव हुई। मानस़ का अयोध्याकांड भारतीय आदर्शों का खजाना है। अयोध्याकांड से लेकर नीचे दी गई चौपाई भारतीय आदर्शवादिता को ही सूचित कर रही है। इसके आधार पर गोस्वामी तुलसीदास का शिक्षा-दर्शन हमारे सामने आ रहा है।

'जननि सम जानहिं पर नारी
धनु पराव विषतें सम्पत्ति देखी।
दुखित होहिं पर विपत्ति विषेखी।'
मानसकार ने 'उत्तरकांड' में लिखा है कि-
'परहित सरिस धरम नहिं भाई।

पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।।'

इसका अभिप्राय यह है कि जो व्यक्ति परहित संपादन समाज मंगल कर रहा है, वह सबसे बड़ा धार्मिक कार्य संपादित कर रहा है। जो व्यक्ति दूसरे को (मनसा, वाचा एवं कर्मणा) पीड़ा पहुँचा रहा है, वह सबसे बड़ा पाप कर रहा है। वह दुष्ट है। ऐसे व्यक्ति को मरने के बाद मोक्ष नहीं मिलता। ऊपर अंकित चौपाई के आधार पर भी गोस्वामी तुलसीदास का शिक्षा-दर्शन हमारे सामने आ रहा है। मानस को समझने के लिए तथा समाज को सम्यक रूपेण मार्ग-दर्शन करने के लिए यह चौपाई कुँजी का काम करती है। मानस निश्चय ही कालजयी साहित्य है। जनमानस पर इसका प्रभाव अजर, अमर एवं अमिट है। यदि यह कहा जाए कि मानस के माध्यम से हमारे इस कवि ने राष्ट्र के निर्माण में सराहणीय भूमिका अदा की है तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।

अब्दुर्रहीम खान खाना की गणना भारतीय साहित्यकारों की प्रथम पंक्ति में होनी चाहिए। रहीम संपूर्णतः 'नीति के कवि' के रूप में यशस्वी हो चुके हैं। नीति का मूल उद्देश्य होता है- नैतिक शिक्षा देना। कहना न होगा कि हमारे इस कवि ने अपनी कविताओं के माध्यम से यही कार्य संपादित किया है। यशस्वी आलोचक डॉ. विजयेंद्र स्नातक ने रहीम के नीति-काव्य की प्रासंगिकता के बारे में यह सही लिखा है कि-'तुलसी-वाणी के समान रहीम के वचन भी हिंदी भाषी भूभाग में सर्वसाधारण के मुँह पर रहते हैं।'

राष्ट्रीय भावात्मक एकता की दृष्टि से रहीम क़ी रचनाओं की आज भी उतनी ही प्रासंगिकता है, जितनी कि रचनाकाल में रही होगी।

जो कथन, मनोजगत की प्रेरणा से (अर्थात् अनुभूति से) प्रेरित होगा, उसकी सरसता साहित्यिक दृष्टि से अवश्य विचार-विमर्श का विषय बनेगी। इस संदर्भ में रहीम का दोहा अवलोकनीय है:

'खीरा का मुँह माटिकै, मलियत लोन लगाय।
रहिमन करूवे मुखन को, चहियत इहि सजाय।।'

कहना न होगा कि हमारे इस कवि ने जीवन और जगत के नाना क्षेत्रों से उदाहरण देकर अत्यंत बोधगम्य शब्दावली में नीतिपरक बातों को जनसाधारण तक संप्रेषित करने का अभिनंदनीय कार्य संपादित किया है। राष्ट्र-निर्माण की दृष्टि से रहीम के लेखन की सार्थकता निरापद है।

रीतिकालीन कवि भूषण ने वीररस की ओजस्विनी कविताओं

के द्वारा हिंदुत्व को जगाकर राष्ट्र के नागरिकों में स्वाभिमान तथा देश के लिए मर मिटने की त्याग बलिदान की भावना को जगाने का अद्‌भुत कार्य संपादित किया था।

साहित्य के क्षेत्र में आधुनिक युग का द्वार खोलने का श्रेय भारतेंदु हरिश्चंद्र को मिलता है। कारण? कारण यह है कि उन्होंने ही साहित्य के क्षेत्र में आधुनिक दृष्टि का उन्मेष किया था। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने अनेक पत्र-पत्रिकाओं, सभाओं, साहित्यिक गोष्ठियों के माध्यम से राष्ट्र के निर्माण में महत्वपूर्ण अवदान दिया। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने राष्ट्र-प्रेम, समाज-प्रेम, राम तथा कृष्ण एवं युद्ध संबंधी पौराणिक आख्यानों, राजपूत, सिख एवं मुस्लिम संस्कृति प्रधान ऐतिहासिक कथाओं को लेकर अनेक रचनाओं का प्रणयन किया है। मैथिलीशरण गुप्त ने अपनी 'गुरुकुल' नाम्नी रचना में लिखा है-

'हिंदू हो या मुसलमान
नीचे रहेगा फिर भी नीचमनुष्यत्व सबसे ऊपर है,
मान्य मही मंडल के बीच।'

प्रचंड प्रतिभा के धनी तथा भविष्योन्मुखी साहित्य के स्रष्टा जयशंकर प्रसाद ने अपनी कामायनी नाम्नी रचना के माध्यम से हमें जीवन-संघर्षो से जूझने की प्रेरणा दी है, संसार से पलायन करने की नहीं। यह रचना कभी बासी नहीं पड़ेगी। छायावादी काव्य निश्चय ही जीवन निर्माण का काव्य है, मृत्यु का काव्य नहीं।

आधुनिक काल की लब्ध प्रतिष्ठ साहित्यकार श्रद्धेया महादेव वर्मा का 'प्रबोधात्मक लेखन' आज भी भारतीय समाज को जीने की कला सिखा रहा है। हमारी विदुषी लेखिका के नारी-जाति के लिए प्रबोधात्मक शब्दों को यहाँ उद्धृत करने का लोभ संवरण नहीं कर सकते। महादेवी जी का यह मत है कि 'नारी समाज के लिए भोग का नहीं, वह समाज की शक्ति है। नारी आश्रयहीन या पुरुष की आश्रिता भर नहीं, अपितु आश्रयदात्री है- उस आने वाले कल की, परंपरागत धरोहर या जीवन मूल्यों की और मानवता की। महादेवी ने लिखा है कि उसका (नारी का) जीवन पुरुष के मनोरंजन तथा वंशवृद्धि के लिए इस प्रकार चिर निवेदित हो चुका है कि उसकी सम्मति पूछने की आवश्यकता का अनुभव भी किसी ने नहीं किया।

यह कहना निरापद है कि महादेवी ने भारतीय समाज को

'जीने की कला' सिखाने का अद्भुत कार्य किया है। भारतीय समाज को महादेवी वर्मा का आभारी होना चाहिए।

कौशल्या, सीता, सावित्री, रत्नावली तथा विद्योतमा आदि 'आदर्श भारतीय नारियाँ' हुई हैं। उन्होंने अपने आदर्शवादी कार्यकलापों के आधार पर भारतवर्ष को गौरवान्वित किया है। आज नारियों का बहुलांश ऐसा है जिसका शोषण हो रहा है। नारियों का शोषण क्यों हो रहा है? यह उनके लिए आत्मनिरीक्षण का विषय होना चाहिए। कवि डॉ. हरीश शर्मा ने सही लिखा है-

'नारी गौरव के लिए, था भारत का नाम।
नारी शोषण के लिए, अब भारत बदनाम।।

प्रख्यात कवयित्री डॉ. दुर्गा कंगरानी ने भोग विलास में लगी रहने वाली नारियों को जगाया है तथा अपनी औरत नाम्नी कविता में लिखा है कि-

'बहुत हुआ
अब मैं नहीं सजूँगी
क्या औरत केवल सजने के लिए होती है?'

साहित्य जीवन-दर्पण है। यदि हम समाज के शरीर कहें तो साहित्य को उसका मस्तिष्क कहा जाएगा। यशस्वी विचारक आचार्य नंद दुलारे वाजपेयी ने अपने 'साहित्य तथा जीवन' शीर्षक निबंध में लिखा है कि साहित्य में मनुष्य का जीवन ही नहीं, जीवन की वे आकांक्षाएँ जो अनंत जीवन में भी पूर्ण नहीं हो सकतीं, निहित रहती हैं। जीवन यदि मनुष्य की अभिव्यक्ति है तो साहित्य में उसकी आशा-उत्कंठा भी सम्मिलित है। जीवन यदि संपूर्णता से रहित है तो साहित्य उसके सहित है। तभी तो उसका नाम साहित्य है। तभी तो साहित्य जीवन से अधिक सारवान और परिपूर्ण है तथा जीवन का नियामक और मार्ग द्रष्टा भी रहता आया है।

'साहित्य' की शक्ति शब्दातीत है। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का मत है-'साहित्य में जो शक्ति छिपी रहती है, वह तोप, तलवार और बम के गोलों में भी नहीं पाई जाती।'

यशस्वी साहित्यकार आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का मत है कि - मैं साहित्य को मनुष्य की दृष्टि से देखने का पक्षपाती हूँ। जो वाग्जाल मनुष्य को दुर्गति, हीनता और परमुखोपेक्षिता से बचा न सके, जो उसकी आत्मा को तेजोद्दीप्त न बना सके, जो उसके हृदय को परदुःखकातर

और संवेदनशील न बना सके, उसे साहित्य कहने में मुझे संकोच होता है।' आचार्य द्विवेदी के इस मत के बारे में सोचने-समझने के बाद हमें यह बात कहने में कोई आपत्ति नहीं होती कि लेखक ने 'साहित्य की उपादेयता को उजागर करने का अद्‌भुत कार्य किया है, किंतु द्रष्टव्य तो यह है कि द्विवेदी जी ने साहित्य के 'पर्याय' के रूप में 'वाग्जाल' शब्द का प्रयोग किया है जो अनुचित है। वैसे तो सभी पाठकों, अध्येताओं तथा प्राध्यापिकाओं को साहित्य की उपादेयता को आत्मसात् करके उसे अपने जीवन में व्यावहारिक रूप देना चाहिए, किंतु विशेष रूप से आचार्य द्विवेदी के शिष्यों, शोधकों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे साहित्य की उपयोगिता को आचरण में उतारने का संपूर्ण मन से प्रयास करें। यदि वे ऐसा नहीं करते, तो वे जीने की कला सीखने से वंचित रह जाएँगे। साहित्य की महत्ता को ध्यान में रखते हुए ही मैथिलीशरण गुप्त ने सही लिखा है-

अँधकार है वहाँ, जहाँ आदित्य नहीं है।
मुर्दा है वह देश, जहाँ साहित्य नहीं है।।

इसका अभिप्राय यह है कि यहाँ ज्ञान का सूर्य नहीं चमकता, वहाँ अज्ञान का अँधकार व्याप्त रहता है। जिस देश के वासी साहित्य को नहीं पढ़ते, नहीं समझते तथा इसकी उपादेयता को जीवन में नहीं उतारते, वे मुर्दे हैं। उनका जीवन वस्तुतः जीवन नहीं है। वे इस धरती पर भारस्वरूप हैं- वे केवल अपना शरीर ढो रहे हैं।

उपन्यासकार प्रेमचंद ने हिंदी भाषाभाषी जनता का मानसिक संस्कार किया है। कथा-सम्राट प्रेमचंद की सभी रचनाएँ उनके 'आदर्शोन्मुख यथार्थवाद' को हमारे सामने रखती हैं। प्रेमचंद ने साहित्य के क्षेत्र में अनेक कथाकार प्रदान किए हैं। जैसे-जैनेंद्र कुमार, भगवती चरण वर्मा, जयशंकर प्रसाद, भगवती प्रसाद वाजपेयी, विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक', उपेंद्रनाथ अश्क, फणीश्वरनाथ रेणु तथा उषा देवी मित्रा आदि। साहित्य की उपादेयता को लेकर ऊपर के पृष्ठों में हमने जो अध्ययन उपस्थित किया है, इसके आधार पर हमें यह ज्ञान लेना चाहिए कि राष्ट्र-निर्माण में साहित्य की सार्थकता निरापद है।

आधुनिक हिंदी साहित्य में राष्ट्रीय चेतना

डॉ. देवेन्द्र आर्य

राष्ट्रीय चेतना और उसकी अभिव्यक्ति किसी साहित्य की अमूल्य निधि है। साहित्य समाज का दर्पण है, जैसा समाज होगा- साहित्य उसी को गाएगा, यह अलग बात है कि साहित्य अपनी सद्वृत्तियों से समाज और राष्ट्र में परिवर्तन की भूमिका प्रस्तुत करता है। अगर समाज साहित्य राष्ट्रीय चेतना से ओतप्रोत नहीं है तो साहित्यकार का एक उद्‌बोधन उसमें नवरक्त का, नवप्राणों का संचार कर देता है।

'जो भरा नहीं है भावों से, बहती जिसमें रसधार नहीं
वह हृदय नहीं है पत्थर है, जिसमें स्वदेश का प्यार नहीं।'

गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही' राष्ट्रीय चेतना का संबंध सामुहिक जीवन, सामूहिक उन्नति और सामूहिक आत्मगौरव से है। अपने देश के लिए अनन्य प्रेम भक्ति में, अपनी सभ्यता और संस्कृति के प्रति गौरव की भावना में, देश की स्वतंत्रता की रक्षा में, विदेशी शासन के प्रति घृणा में, द्वेष में, अपने देश की सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक दशाओं के सुधार के प्रयत्न आदि में यह राष्ट्रीय चेतना/भावना प्रस्फुटित, पल्लवित और पुल्पित होती है। राष्ट्रीय भावना/देश प्रेम की भावना इस प्रकार अनेक रूपों में अभिव्यक्त होती है।

परतंत्र देश में जब राष्ट्रीय चेतना का विकास होता है तो उसका स्वर कुछ और होता है। यह स्वर इस बात पर निर्भर करता है कि देश की स्थिति क्या है? अगर समाज ने परतंत्रता स्वीकार कर ली है और परतंत्रता से मुक्ति के विचारों को तिलांजलि दे दी है तो साहित्य में हार की, गुलामी की भावना प्रबल हो जाती है। हारी हुई मानसिकता राजा/शासक के गुणगान में अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझ लेते हैं, भाग्य विधाता की जय-जयकार में कसीदे कढ़े जाते हैं, जन-मन का अधिनायक भी जय जय की पराजित ध्वनि सुनकर गर्व से सिर ऊँचा कर लेता है, सर की उपाधि का पट्टा गले में पड़ जाता है। यहाँ आकर सोच नपुंसक और निरीह हो जाती है, लेकिन जब परतंत्रता से निकल कर स्वतंत्रता की सोच हुँकार भरती है तो परिदृश्य बिल्कुल बदल जाता है, पराजित वाणी में खलबलाते लहू का ज्वार समा जाता है, शिराएँ फड़फड़ाने लगती हैं, धड़ और जान की बाजी लगाकर कविता माँ रणचंडी का रूप उठाकर तांडव कर उठती है। यौवन नाच-नाच कर गा उठता है।

'मेरा रंग दे बसंती चोला'
'और एक तमन्ना सबके सर पर चढ़कर बोल उठती है–
सरफरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है
देखना है जोर कितना बाजुए कातिल में है।'

दिग् दिगंत लहू के रंग से लाल हो जाता है, कविता पूछ उठती है कि वीरों का कैसा हो वसंत? यह लहू का फाग ही तो उनका वसंत है। देश प्रेम जब परवान चढ़ता है, शहादत भीतर की चेतना को झकझोरती है, शंकर के तांडव पर ज्वालाएँ फूट पड़ती हैं, माँ काली का खप्पर लबालब भरने लगता है तो सेल्यूलर जेल के काले सींखचे लाल हो उठते हैं, शहीदों के श्वास से, घनघनाते कंठ की हुँकार से न जाने कितने सावरकर, न जाने कितने अमानवीय यातनाएँ सहते वीरों का सिंहत्व भारत माता की जय बोल उठता है, समाधि में छिपी राख की ढेरी में स्वतंत्रता की दिव्य भारतीय मंगल गीत गाने लगती है, स्वातंत्र्य वेदी पर चिता पर चढ़ी आहुति के समान वीरांगना ज्वाला सी चमक उठती है। न जाने कितने भगत सिंह, न जाने कितने चंद्रशेखर, न जाने कितनी लक्ष्मीबाई आजादी का स्वप्न लेकर शहीद हो गईं। देश आजाद होगा तो शहीदों का खून भी सार्थक हो उठेगा, उनकी चिताओं पर हर बरस मेले लगेंगे–

'शहीदों की चिताओं पर लगेंगे हर बरस मेले।
वतन पर मरनेवालों का यही बाकी निशाँ होगा।'

राष्ट्रीय चेतना की दृष्टि से स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व तक का काल बहुत महत्वपूर्ण है। साहित्य–धारा सहस्रधारा होकर बही है। पूरा राष्ट्र एक सम पर खड़ा है, शहीद केसरिया बाना पहन रहा है तो कविता एक वातावरण बना रही है। प्रकृति का एक–एक कण जागृत है, मातृभूमि पर एक–एक फूल अपना बलिदान कर देना चाहता है–

'चाह नहीं मैं सुरबाला के गहनों में गूँथा जाऊँ,
चाह नहीं प्रेमी माला में बिंध प्यारी को ललचाऊँ।
मुझे तोड़ लेना वनमाली! उस पथ में देना तुम फेंक।
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने, जिस पथ जावें वीर अनेक।'

–माखन लाल चतुर्वेदी

जब कवि हुँकार उठता है तो भला कौन होगा जिसकी शिराएँ न फड़क उठें, लहू न खलबला उठे–

'हिमाद्री तुंग शृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती

स्वयं प्रभा समुज्ज्वला स्वतंत्रता पुकारती।
अमृत्य वीर प्रभु हो, दृढ़ प्रतिज्ञ सोच लो
प्रशस्त पुण्य पंथ है, बढ़े चलो-बढ़े चलो।'

–जयशंकर प्रसाद

'गगन उगलता आग हो,
लहू का अपने फाग हो
अड़ो वहीं, गड़ो वहीं
बढ़े चलो, बढ़े चलो।
अशेष रक्त तोल दो
स्वतंत्रता का मोल दो
कड़ी युगों की खोल दो
डरों नहीं, मरो वहीं
बढ़े चलो, बढ़े चलो।'

–सोहन लाल द्विवेदी

भारतेंदुकालीन कविता की अपेक्षा द्विवेदीयुगीन कविता राष्ट्रीयता की दृष्टि से अधिक सशक्त और महत्वपूर्ण है। भारतेंदु-युग में राष्ट्रीयता की भावना है तो सही पर वह कुंठित और निराश अधिक है, राजतंत्र भी साथ-साथ है, भारत दुर्दशा पर आँसू तो है पर प्रयत्न नहीं है, लेकिन द्विवेदीकालीन कविता में दुर्दशा पर आँसू नहीं समाधान के अंगार हैं। विदेशी शासकों की अमानवीयता, बर्बरता और अत्याचार के प्रति सजग/सचेत साहित्यकार विद्रोह की आग सुलगाने में तत्पर हो जाता है। कविता अतीत में वर्तमान, कल्पना से यथार्थ, निराशा से आशा, अविश्वास से विश्वास, उपादेश से कर्म और आत्महीनता से आत्मगौरव की ओर अग्रसर हो जाती है। श्रीधर पाठक, रामनरेश त्रिपाठी, सियारामशरण गुप्त, मैथिलीशरण गुप्त, जयशंकर प्रसाद, निराला, माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्रा कुमारी चौहान आदि अनेकानेक कविताओं की रचनाओं में मातृभूमि के प्रति सच्ची भक्ति प्रकट हुई है। कवि अपनी काल्पनिक आँखों से भारत माँ की बेड़ियों को काटता देख चुका है, स्वतंत्रता की सुनहली भोर उनकी आँखों में उतर आई है। कवि खुली आँखों से भारत माँ का भव्य और अद्भुत रूप देख रहा है, उसे लगता है कि प्रकृति के सभी उपादान माँ का शृँगार कर रहे हैं।

'नीलांबर परिधान हरित पट पर सुंदर है
सूर्य-चंद्र युग मुकुट मेखला रत्नाकर है

नदियां प्रेम प्रवाह, फूल तारे मंडन है
बंदीजन खग वृंद, शेष-फण सिंहासन है।'

-मैथिलीशरण गुप्त

लेकिन भला संसार में किसकी इतनी हिम्मत है जो माँ की ओर अपनी क्रूर कुदृष्टि उठा सके-

'कौन मेरे प्राण रहते देख सकता है इसे।' -मैथिलीशरण गुप्त

कवि उत्सुक है-

'वंदना के इन स्वरों में एक स्वर मेरा मिला लो
हों जहाँ बलि शीश अगणित, एक सिर मेरा मिला लो।'

-सोहन लाल द्विवेदी

'कवि कारा तोड़कर पत्थर से जलधार लाना चाहता है-
तोड़ो तोड़ो तोड़ो कारा, पत्थर की निकले फिर गंगा जल धारा।'

-निराला

लंबे संघर्ष के बाद देश आजाद हुआ। चारों ओर खुशियाँ मनाई गईं। भारत को खंडित आजादी मिली। देश को दो भागों में बाँट दिया गया हिंदुस्तान-पाकिस्तान। लाखों-लाखों लोग इधर से उधर हुए, सांप्रदायिक विद्वेष की आग में न जाने कितने झुलसे, मरे, घायल हुए, लुटी-पिटी मानवता ने लाख-लाख आँसू बहाए, फिर भी देश की आजादी का जश्न लोगों ने मनाया और कामना की-

'झंडा ऊँचा रहे हमारा
विजयी विश्व तिरंगा प्यारा, झंडा ऊँचा रहे हमारा

निराला ने गाया-

जागो, जागो आया प्रभात
बीती वह बीती अँध रात।
भारत पर ज्योतिर्मय पूर्वांचल प्रपात
बाँधो बाँधो किरणें चेतन
आती भारत की ज्योतिर्धन महिमा बल।'
'संकुचित खोलती श्वेत पटल
बदली कमला तिरती सुखजल
प्राची दिगंत उर में पुष्कल रवि-रेखा।'

आजादी के साथ जनता ने जो उम्मीदें बाँधी थीं, वे क्षीण होने लगीं। राम राज्य कल्पना बनकर रह गया। नेताओं में आजादी की तपःपूत

पीढ़ी जैसे-जैसे अस्ताचल को जाती चली गई, स्थानापन्न नई पीढ़ी आजादी के लिए की गई तपस्या को, संघर्ष को भुनाने में लग गई, स्वार्थ का आवरण चारों ओर से लिपटने लगा, कुर्सी और उससे जुड़ी राजनीति धीरे-धीरे बदसूरत और बदसूरत होती चली गई। चीन से मिली हार ने भारतीय अस्मिता और अस्तित्व को झकझोर कर रख दिया। अनेक बार के पाकिस्तान आक्रमणों ने और बाद में आतंकवादी हरकतों ने आजादी को कभी सुख से जीने नहीं दिया। विदेशी आक्रांताओं से जूझने वाली कविता पाक और नेताओं के चारो ओर घूमने लगी। मंचीय कवि हाथ-पैर फेंक कर, ऊँचे स्वर में पाक को मिटाने की बात करने लगे-'इस्लामाबाद तो रहेगा पर पाकिस्तान नहीं रहेगा' जैसे जुमले उठाए जाने लगे। नेताओं के भ्रष्ट आचरण भी कविता के विषय बनने लगे और इन सब चक्करों में मैं समझता हूँ राष्ट्रीयता की धारा कुंठित बनकर, बदलकर कहीं और खो गई।

मैं समझता हूँ केवल विदेशी आक्रांताओं से मुक्ति ही राष्ट्रीय चेतना नहीं थी। आजादी से पहले और आजादी के बाद अनेक ऐसे मोर्चे हैं जिनपर विजय पाना अभी शेष है। नैतिक, सामाजिक, आर्थिक राजनीतिक, धार्मिक जैसे अनेक क्षेत्रों में सही दिशा में बढ़ने की आवश्यकता है। आज भारत का पढ़ा-लिखा समाज काफी प्रबुद्ध है और होना भी चाहिए, वह खुली आँखों से सब देख रहा है, उसे चाहिए कि जहाँ भी जो अनपेक्षित है, उसका कारगर उपचार करे। एक बात तो तय है, इतने वर्षो बाद और इतने लंबे संघर्ष बाद मिली आजादी की ओर अब कोई आँख उठाकर नहीं देख सकता। हालांकि आज विश्व की अनेकानेक शक्तियाँ निरंतर उन्नतशील गतिमान भारत को ऊँचा उठते देखना नहीं चाहतीं- पर इससे क्या होता है, मैं और हम तो पूरी तरह सन्नद्ध हैं। देश के हर मोर्चे पर मेरी सार्थक उपस्थिति है। आँधियों का मुख मोड़ने के लिए मेरी हिमालयी ऊर्जा और आकाशीय संकल्प प्रतिज्ञाबद्ध है-

'सामने कर्त्तव्य-पथ, फिर ठहरना रुकना भला क्या?
दहकते अणु से गगन में मोर का संकल्प लिख दें।
वक्त पर लिख दें कि तांडव अब मचेगा इस धरा पर
भाल पर नव कार्य का, नव तेज का आह्वान लिख दें
देश मेरे, आज निर्णय की प्रतीक्षा रक्त को है
मंदिरों में आरती की ज्योति नव जलने लगी है।'

राष्ट्रीय एकता : हिंदी और दक्षिण भारत

डॉ. निर्मला एस. मौर्य

क्या आपने कभी सोचा है कि ईश्वर अपने ही द्वारा निर्मित सृष्टि को विनाश की ओर जाता देख कर क्या सोचता होगा? उसने एक सुंदर सृष्टि की कल्पना करते हुए संवेदनाओं से परिपूर्ण मानव-जाति और अनेकानेक जीव-जंतुओं का निर्माण किया। सृष्टि के इन सभी जीवों के लिए आहार-व्यवस्था करते हुए प्रकृति का निर्माण किया। जल, पृथ्वी, वायु, आकाश, अग्नि जैसे तत्वों को बनाकर ईश्वर ने कब यह सोचा था कि ये तत्व एक दिन मनुष्य के विनाश के कारण बनेंगे। धरती एक ही है, किंतु मनुष्य की विचारधारा और अति महत्वाकांक्षा ने उसे अनेकानेक टुकड़ों में बाँट दिया। आज हम अपने चारों ओर धरती के इस बँटवारे को लेकर नर-संहार और विनाश को देखते ही नहीं, अपितु महसूस करते हैं। जैसे-जैसे मानव विकास करता गया वैसे-वैसे उनकी आशाओं और आकांक्षाओं का क्षितिज व्यापक होता गया। अग्नि, चक्का और भाषा इन तीन चीजों ने मनुष्य को विकास के पथ पर तेजी के साथ विस्तार किया। भाषा मनुष्य के व्यक्तित्व और संवेदना की अभिव्यक्ति का माध्यम है।

किसी भी राष्ट्र की चेतना उस राष्ट्र की भाषा में निहित होती है। भाषा ही देश को पहचान और महत्व प्रदान करती है। राष्ट्र अपनी भौगोलिक एवं ऐतिहासिक सीमाओं में आबद्ध रहता है। जब उसकी यह एकता और अखंडता टूटती है तो उसे पराधीन होते देर नहीं लगती। भारत जैसे विशाल भू-भागवाले देश की नियति यही रही है कि कभी संस्कृति, कभी भाषा और कभी धर्म के नाम पर फूट डालकर शासन करने वाले शासन करते रहे हैं और भारतवासी गुलामी को बेबस होकर सहते रहे। आज देश स्वतंत्र है और उसे स्वतंत्र हुए अट्ठावन वर्षो का समय हो चुका है। इन अट्ठावन वर्षो में एक ओर हमने बहुत कुछ खोया तो बहुत कुछ पाया भी।

राष्ट्रीय एकता पर बात करने से पूर्व यह, जान लेना अति आवश्यक है कि राष्ट्र क्या है और किसी भी व्यक्ति के लिए राष्ट्र की क्या महत्ता है? राष्ट्र शब्द एक ऐसा व्यापक शब्द है जो अपने में विशाल और गंभीर अर्थ समेटे है। राष्ट्र विभिन्न जातियों, धर्मो, संस्कृतियों, परंपराओं एवं भाषाओं व बोलियों के समूह का नाम है। इनके एक रहने पर राष्ट्र मजबूत

बनता है। कोई व्यक्ति अपने राष्ट्र के नाम पर ही अपनी पहचान बनाता है। जब भारत के संदर्भ में बात होती है तो एक विशाल जनसमुदाय हमारे नेत्रों के समक्ष घूम जाता है जिसमें विभिन्न धर्म, भिन्न संस्कृतियाँ समाहित हैं। राष्ट्रीय एकता तभी रहती है जब कोई भी भाषा-भाषी समुदाय विभाजित न हो, किंतु आज स्थिति यह है कि एक भाषा बोलने वाला समुदाय भी विभाजित है, आंतरिक रूप से कमजोर है। कहने को मनुष्य अति आधुनिक हो गया है, किंतु उसके विचार आज भी बाबा आदम के जमाने के हैं।

जब राष्ट्रवाद, राष्ट्रीयता या अंतरराष्ट्रीयता की बात की जाती है तो तीन बातें स्पष्ट हो जाती हैं- राष्ट्रवाद विश्व-राजनीतिक चिंतन प्रक्रिया की आधुनिक अवधारणा है, जो बीसवीं शताब्दी के अधिकांश देशों में जागृत रहा है। हर एक राष्ट्र का व्यक्ति अपने राष्ट्र को दिलोजान से चाहता है और प्यार करता है। उनकी यही भावना उन्हें राष्ट्रीयता की ओर ले जाती है। जब व्यक्ति का चिंतन मात्र अपने राष्ट्र तक सीमित न रहकर भूमंडलीकरण की ओर मुड़ जाता है तब उसकी भावना अंतरराष्ट्रीयता से जुड़ जाती है। राष्ट्रीयता एक संकुचित विचार है जो मनुष्य को केवल अपने राष्ट्र तक सीमित करता है जबकि अंतरराष्ट्रीयता एक उदात्त विचार है जो मनुष्य को केवल अपने राष्ट्र के बारे में ही नहीं, बल्कि संपूर्ण भूमंडल पर सोचने को विवश करता है।

कोई भी भाषा देश की राष्ट्रीय चेतना और भावात्मक एकता के लिए अत्यंत आवश्यक है। जब भारतीय भाषाओं के साथ-साथ दक्षिण भारतीय भाषाओं की बात इस संदर्भ में की जाए तो यह स्पष्ट हो जाता है कि दक्षिण भारतीय भाषाएँ हिंदी की भगिनी भी हैं। हिंदी में पाँच भाषाएँ और उपभाषाएँ और अट्ठारह बोलियाँ हैं। इन अट्ठारह बोलियों के अंतर्गत अनेकानेक उपबोलियाँ भी हैं। भाषा लहरों के समान होती है। दक्षिण भारतीय भाषाओं में इतनी शक्ति है कि वे ऐतिहासिक एवं परंपरागत चेतनाओं को प्रकट करने में पूरी तरह क्षमतावान हैं। संप्रेषण की विशेषता मात्र हिंदी में ही नहीं दिखाई देती है, बल्कि दक्षिण भारतीय भाषाएँ अपनी इसी विशेषता के कारण पूरी तरह सक्षम हैं। पूरे देश में आपसी संबंधों के गहनीकरण के लिए हिंदी के प्रयोग के साथ-साथ दक्षिण भारतीय भाषाओं का योगदान आवश्यक हो जाता है। अपनी मातृभाषा के अलावा प्रांतीय स्तर की प्रमुख भाषाओं में से किसी एक का थोड़ा ज्ञान रखने से लाभ ही होगा। दक्षिण भारत में हिंदी भाषा, त्रिभाषा व द्विभाषा के रूप में अपना दायित्व निभा

कर राष्ट्र को एक सूत्र में बांधने में प्रयत्नरत है। दक्षिण भारत में हिंदी अतिप्राचीन काल से फलती-फूलती रही है। उत्तर से दक्षिण की ओर आने वाले तीर्थयात्रियों, व्यापारियों के कारण यहाँ सदैव ही हिंदी को किसी न किसी रूप में जाना जाता रहा है।

तमिलनाडु, आंध्रप्रदेश, केरल और कर्नाटक जैसे राज्यों में हिंदी, हिंदी प्रचारकों और विद्वानों के द्वारा खूब फल-फूल रही है। इस हिंदी के प्रचार को शीर्ष की ऊँचाई तक पहुँचाने के लिए संपूर्ण दक्षिण भारत में ऐसी अनेक हिंदी प्रचार संस्थाएँ हैं जो वर्षो से इस कार्य में अति ईमानदारी के साथ लगी हुई हैं। दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा जो दक्षिण के सभी प्रांतों में स्थित है उन्नीस सौ अट्ठारह से हिंदी प्रचार-प्रसार में लगी हुई है। पूरे दक्षिण में हजारों प्रचारक हिंदी की उन्नति में नि:स्वार्थ भाव से जुटे हैं। इस प्रसिद्ध संस्था द्वारा हिंदी प्रचार का कार्य अधिक बढ़ जाने के कारण तथा चारों प्रांतों में प्रचार कार्य को नवीन गति देने के लिए विजयवाड़ा, मदुरई, तिरुवनंतपुरम, एरणाकुलम तथा बंगलूर में सभा की शाखाएँ स्थापित की गईं। प्रारंभ से ही कर्नाटक, केरल और आंध्र प्रदेश में हिंदी का प्रचार कार्य जितना आसान था उतना तमिलनाडु में नहीं था, क्योंकि तमिल भाषा का व्याकरण हिंदी से अत्यधिक भिन्न है। हिंदी की तुलना में तमिल में बारह स्वर एवं अट्ठारह व्यंजन होते हैं। इसमें अल्पप्राण ध्वनियों की अपेक्षा महाप्राण ध्वनियाँ होती हैं। अत: हिंदी भाषा को सीखने और बोलने में तमिल भाषा-भाषी को अनेक कठिनाईयों का सामना करना पड़ता था। धीरे-धीरे यहाँ हिंदी का वर्ग प्रारंभ हुआ और लोगों ने बड़े चाव से हिंदी सीखनी प्रारंभ की। उन्नीस सौ चौबीस में तिरुच्चिरापल्ली में प्रांतीय शाखा खोली गई। क्रमश: तिरुनेलवेली, कोयम्बटूर, उदकमण्डलम आदि स्थानों पर हिंदी का प्रचार चलता रहा और उन्नीस सौ छत्तीस में दक्षिण भारत हिंदी-प्रचार-सभा की तमिलनाडु शाखा स्थापित हुई। यहाँ से हिंदी के प्रचार का जो पावन कार्य प्रारंभ हुआ वो आज तक चला आ रहा है। आज की स्थिति यह है कि तमिलनाडु के स्कूलों और कॉलेजों में हिंदी को द्वितीय या तृतीय भाषा के रूप में पढ़ाया जा रहा है। सन् 1964 से सभा के अंतर्गत उच्च शिक्षा और शोध संस्थान का कार्य प्रारंभ हुआ और धीरे-धीरे चारों प्रांतों में प्रांतीय स्नातकोत्तर विभाग प्रारंभ हुए जहाँ एम.ए. और एम.फिल. के नियमित वर्ग संचालन के साथ-साथ पीएच.डी. एवं डी.लिट. शोधकार्य संपन्न हो रहे हैं तथा स्नातकोत्तर अनुवाद डिप्लोमा तथा स्नातकोतर पत्रकारिता डिप्लोमा के

पाठ्यक्रम चलाये जा रहे हैं। सरकारी और गैरसरकारी संस्थानों में कार्यरत लोग भी हिंदी को जानना और समझना चाहते हैं, अत: वे इन पाठ्यक्रमों से जुड़ते हैं। बोलचाल की हिंदी भी सिखाई जाती है। यही नहीं हिंदी शिक्षक तैयार करने की दृष्टि से बी.एड. एवं शिक्षा स्नातक विद्यालय भी चलाए जा रहे हैं।

इसी प्रकार आंध्र में भी हिंदी का प्रचार और प्रसार द्रुतगति से हो रहा है। काकिनाड, विजयवाड़ा, राजामुन्द्री, गुंटूर और नेल्लूर जैसे शहरों के साथ-साथ हैदराबाद में हिंदी प्रचार-प्रसार प्रगति के पथ पर अग्रसर है। आंध्र में हिंदी-प्रचार के लिए कई कार्यक्रम चलाए जाते हैं जैसे हिंदी महासभाओं का आयोजन, हिंदी प्रचारक सम्मेलन, हिंदी प्रचार सप्ताह, हिंदी महाविद्यालय, हिंदी नाटकों का प्रदर्शन साहित्य प्रकाशन आदि।

कर्नाटक में मैसूर हिंदी प्रचार सभा ऐसी पहली संस्था है जो हिंदी प्रचार-प्रसार में लगी हुई है। कर्नाटक की यह विशेषता रही है कि हिंदी प्रचार के लिए प्रतिवर्ष हिंदी शिविरों का आयोजन किया जाता है। अनेक पत्र-पत्रिकाओं ने हिंदी के प्रचार में भरपूर सहयोग दिया है। गुलबर्गा, कोडगु, तुमकूर, बेलगाम, धारवाड़ आदि के हिंदी प्रचारक सतत प्रयत्नशील हैं। केरल में हिंदी की स्थिति सबसे अच्छी है। वहाँ की आम जनता में हिंदी का प्रचार-प्रसार है। कालिकट, कोल्लम, ट्रिचूर, चेंगन्नूर, कोट्टायम, हरिप्पाड आदि स्थानों से हिंदी प्रचार प्रसार चल रहा है। दक्षिण में हिंदी की स्थिति को मजबूत बनाने में कई अन्य संस्थाओं एवं पत्र-पत्रिकाओं का अविस्मरणीय योगदान रहा है। दक्षिण में हिंदी की स्थिति को और मजबूत करने के लिए कुछ सुधार आवश्यक है। जिस प्रकार कोई भी भाषा सामान्य जन की भाषा होती है उसी प्रकार हिंदी भी सामान्य जन की भाषा है अत: दक्षिण में उसका प्रचार-प्रसार सामान्य जन द्वारा ही संभव है। संपर्क भाषा के रूप में भले ही हिंदी का प्रयोग निरंतर प्रगति के पथ पर है फिर भी अपनी विकास यात्रा में हिंदी के शिक्षण में बदलाव लाने की आवश्यकता के साथ-साथ भाषिक ईमानदारी की भी आवश्यकता है।

भारत की विभिन्न राज्यों की भाषाएँ वहाँ की राजभाषाएँ भले ही हों, किंतु जब राष्ट्र और राष्ट्रीयता की बात होगी तो सभी जातियों को मिलाने वाली केंद्रीय भाषा हिंदी की ही बात होगी। हिंदी सांस्कृतिक, सामाजिक और सार्वभौमिक जीवन-मूल्यों की आधारशिला है। यहीं हिंदी का राष्ट्रीय महत्व के परिप्रेक्ष्य में विकास भी संभव है। दक्षिण भारत में हिंदी के प्रति जो रुचि दिखाई देती है उसमें निरंतर वृद्धि हो रही है और एक दिन

ऐसा अवश्य आयेगा जब हिंदी भारत के हर जन की माथे की बिंदी होगी। सरकारी दफ्तरों, कंप्यूटर, इंटरनेट, प्रशासन, मंत्रालयों आदि में हिंदी का प्रयोग बढ़ रहा है। जब सभी भाषाओं के लोग कँधे से कँधा मिलाकर चलेंगे तभी राष्ट्रीय स्तर पर हिंदी को पहचान मिलेगी और उसमें निखार आयेगा।

भारत की भांति रूप में अनेक भाषाएँ हैं, किंतु वहाँ की राष्ट्रभाषा के रूप में रूसी को ही महत्व दिया जाता हैं। एक न एक दिन कुछ ऐसी ही स्थिति भारत की हो ऐसी सभी भारतवासियों की कल्पना होनी चाहिए, परंतु यह तभी संभव है जब पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण अर्थात् भारत के चारों कोने एकाकार हो जायेंगे। भाषा का विवाद और सत्ता की राजनीति नहीं होनी चाहिए। भारत की किसी भी भाषा का मुकाबला एक दूसरे से नहीं, अपितु अँग्रेजी से है। दक्षिण में वर्तमान स्थितियाँ पर्याप्त संतोषप्रद हैं। यहाँ अनुवाद तथा तुलनात्मक साहित्य के द्वारा भी हिंदी और दक्षिण भाषाओं का विकास हो रहा है। सबसे बड़ी विडंबना तो यह है कि जिनके पास कुछ क्षमता होती है उन्हें दायित्वपूर्ण कार्य सौंपा नहीं जाता और उन नामधारी लोगों को कार्यभार दिया जाता है जिनमें न तो उत्साह होता है न लगन। अपने ही तुच्छ स्वार्थो में लिप्त ऐसे लोग राष्ट्र या राष्ट्रीयता की बात तो दूर भाषा के विकास में भी कोई रुचि नहीं लेते। हिंदी भाषियों का कर्त्तव्य भी यही बनता है कि वे अधिक से अधिक भारतीय भाषाओं को सीखकर अपनी सच्ची आत्मीयता का परिचय देते हुए हिंदी साम्राज्यवाद के आरोप को मिथ्या प्रमाणित करें। हिंदी के विरोधियों को भी अपने मस्तिष्क से यह निकाल देना चाहिए कि हिंदी को राष्ट्रभाषा का गौरव प्रदान करने से किसी भी भाषा को नीचा देखना पड़ेगा अथवा दूसरे भाषा-भाषियों को असुविधा होगी।

स्वामी दयानंद सरस्वती ने गुजराती होने पर भी न केवल राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी की जोरदार हिमायत की थी, बल्कि अपना प्रसिद्ध ग्रंथ सत्यार्थप्रकाश भी हिंदी में लिखा था। महात्मा गाँधी का हिंदी प्रेम एवं सार्वजनिक जीवन में अँग्रेजी प्रभुता का विरोध सर्वविदित है। अनेक वर्षो पहले एक हिंदी प्रेमी ने इच्छा व्यक्त की थी कि वह हिंदी साहित्य को विश्व की नित्य और अखंड विभूति से शक्ति, सौंदर्य और मंगल का प्रभूत संचय करके एक स्वतंत्र नवनिधि के रूप में प्रतिष्ठित देखना चाहते हैं। हिंदी को एक स्वतंत्र नव निधि के रूप में प्रतिष्ठित करने का रास्ता वही है जो भारतेंदु बाबू ने दिखाया था-

'विविध कला शिक्षा अमित, ज्ञान अनेक प्रकार।
सब देसन से लै करहूं, भाषा माहि प्रचार।।'

महाराष्ट्र, आंध्रप्रदेश, केरल, गुजरात आदि प्रदेशों के लोगों ने भाषा के आधार पर राज्यों के पुनर्गठन की माँग की। भारत जैसे विशाल देश में राष्ट्रीय योजनाएँ बनाना, राष्ट्रीय नीति निर्धारित करना केंद्रीय शक्ति का कार्य है और इस राष्ट्रीय ढाँचे के भीतर नीतियों को कार्य रूप में परिणत करना, आवश्यकतानुसार उसमें परिवर्तन करना राज्यों का काम है। राष्ट्रीय एकता के लिए यह परम आवश्यक हो जाता है कि किसी एक भाषा को संपर्क भाषा व राष्ट्रभाषा माना जाए तथा अन्य भाषाएँ उसकी सहभागिनी बनें। हिंदी उस उत्तरदायित्व को बखूबी निभा रही है। बापू ने हिंदी जैसी बहुजन की भाषा को समग्र जन की भाषा बनाने का जो संकल्प लिया था उसे हर भारतवासी को नहीं भूलना चाहिए। हिंदी की मूलशक्ति उसकी संप्रेषण क्षमता है। इसी आधार पर वह देश के लोगों को जोड़ रही है जो उसकी क्षमता का प्रमाण है। भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस का निर्माण वह आधार बिंदु है जहाँ से चलकर भारतीय आजादी का काफिला अपनी मंजिल पर पहुँचा। भारतीय राष्ट्रीय एकता की जागृति में इस संगठन का बहुत बड़ा हाथ है। गाँधी पूर्व, गाँधी युग एवं उनके पश्चात् तक की हिंदी पर दृष्टि डाली जाए तो यह स्पष्ट हो जाता है कि इस विकास यात्रा में हिंदी ने अपनी विशिष्ट भूमिका निभायी है। दक्षिण के अनेक हिंदीतर नेताओं, कवियों ने अपनी बात हिंदी में कहने का प्रयास किया। हिंदी में लेख लिखे गये, भाषण दिये गये तथा हिंदी पत्रकारिता को अपनाकर इस यज्ञ को नई ऊर्जा प्रदान की गई। हिंदीतर प्रदेशों को अहिंदी भाषी न कहकर हिंदीतर प्रदेश कहा जाये तो अधिक उचित होगा, क्योंकि भारत में कोई ऐसा प्रदेश नहीं जहाँ हिंदी की पहुँच न हो। जनजागरण के लिए दक्षिण भारत में कम प्रयास नहीं हुआ। मीडिया के विभिन्न रूपों द्वारा हिंदी का खूब प्रचार-प्रसार हुआ और आज भी हो रहा है।

हिंदी और भारतीय लोकमानस एक दूसरे से इस प्रकार जुड़ें हैं कि उन्हें अलग करना नामुमकिन है। भारत ग्राम-प्रधान देश है। राष्ट्रीय आंदोलन का आधार सदैव ही भारतीय जनमानस रहा है। जब कोई भावना जनभावना बनकर उभरती है तब उसका प्रभाव अत्यंत व्यापक होता है। हिंदी में आने वाली नई जनसंस्कृति ने राष्ट्रीयता की एक नई भावना का अभ्युदय किया है। सांस्कृतिक एवं सामाजिक स्तर पर भी एक व्यापक परिवर्तन दिखाई दे रहा है। भूमंडलीकरण के कारण दूरियाँ सिमटती जा रही हैं। जनता की

भागीदारी बढ़ रही है। हिंदी धीरे-धीरे शक्ति संचय कर रही है। दक्षिण में हिंदी का शंखनाद हो रहा है। अपने संपूर्ण तेवर के साथ हिंदी विकसित हो रही है। यह भी अपने आप में अध्ययन और शोध का विषय है कि दक्षिण में हिंदी की रोशनी किस रूप में बिखर रही है। भारत भले ही अनेकानेक प्रांतों में बँटा है और इस देश में भाषाएँ चार भाषा परिवारों से संबंधित हैं। फिर भी बहुभाषा-भाषी देश होते हुए उसका एकसूत्र में बँधे रहना अनेकता में एकता की स्थिति तथा भावनात्मक एकता को दर्शाता है। भारतीय संस्कृति की विशाल एवं प्रगाढ़ भावना में वैविध्य के चित्र अधिक हैं। व्यक्ति अनेकानेक भाषाओं को सीखकर जहाँ राष्ट्र को एक सूत्र में बाँधने का प्रयास करता है वहाँ भाषा को विकसित होने में देर नहीं लगती। राष्ट्रीय एकता के विकास में हिंदी के साथ-साथ दक्षिण भारतीय भाषाओं का विशेष योगदान दृष्टिगोचर होता है।

हिंदी काव्य में राष्ट्रीय चेतना के स्वर

माधुरी शास्त्री

कोई भी देश राष्ट्र तब कहलाता है जब उसमें सांस्कृतिक और भावनात्मक एकता के ऐसे सूत्र हों जो देशवासियों को राष्ट्रीयता की चेतना में बाँधे रखते हों। अनेक देश भौगोलिक दृष्टि से बिखरे हुए हैं पर उन सब बिखरे द्वीपों को मिलाकर एक राष्ट्र इसलिए बनता है, क्योंकि उन सबमें सांस्कृतिक एकता होती है- जैसे इंडोनेशिया। भौगोलिक दृष्टि से एक होने पर भी सांस्कृतिक दृष्टि से अलग-थलग पड़े देश राष्ट्र नहीं कहलाते-एक देश में अनेक राष्ट्र हो जाते हैं जैसे एशिया और यूरोप द्वीप तो एक हैं, किंतु उनमें अनेक राष्ट्र हैं।

किसी राष्ट्र की स्वतंत्रता को अक्षुण्ण बनाये रखने में वहाँ के नागरिकों की राष्ट्रीयता की चेतना सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। आज देशों के राजनीतिक राष्ट्रीयता के विकास के साथ-साथ उसकी केंद्रीय चेतना को प्रतिबिंबित करने के लिए अनेक प्रतीक भी विकसित हो गये हैं। इन प्रतीकों में राष्ट्रध्वज, राष्ट्रगान, राष्ट्रचिन्ह एवं राष्ट्रभाषा का स्थान इस दृष्टि से एक जैसा है। आचार्य देवेन्द्र नाथ शर्मा ने लिखा है कि राष्ट्र-ध्वज एक वस्त्र खंड मात्र नहीं है वह राष्ट्र की एकता का प्रतीक है। राष्ट्रीयता का दूसरा प्रतीक हमारा राष्ट्रगान है। राष्ट्रगान दूसरे गानों की तरह केवल संगीत नहीं है, बल्कि उससें भी बढ़कर है, वह राष्ट्र की आत्मा की गूँज है जिसे सुनते ही कोटि हृदय तक ताल पर थिरकने लगते हैं।

इस प्रकार राष्ट्र चेतना को जागृत करने में उस राष्ट्र के साहित्य की सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका होती है। हमारे देश में जब राष्ट्रभक्त स्वतंत्रता-संग्राम लड़ रहे थे तब उन्हें प्रेरणा देने वाला साहित्य विगुल भरी कविताएँ बंगला आदि भाषाओं में तो लिखी ही गई थीं जिनमें हमारा राष्ट्रगान 'जन गण मन' और राष्ट्र गीत 'वंदे मातरम्' शामिल है। हिंदी में इतनी प्रेरक और रोमांचक कविताएँ और गीत लिखे गए जिन्होंने सारे देश में एक क्रांति की लहर जागृत कर दी। ऐसे कवियों में ही एक हैं सुभद्रा कुमारी चौहान जिन्होंने विदेशी सत्ता के विरूद्ध पहला स्वाधीनता-संग्राम लड़ने वाली झाँसी की रानी को प्रतीक बना कर आल्हा नामक वीर गेय छंद में यह कविता लिखी थी-

'सिंहासन हिल उठे, राजवंशियों ने भृकुटी तानी थी
बूढ़े भारत में भी आयी, फिर से नई जवानी थी।

गुमी हुई आजादी की कीमत सबसे पहिचानी थी
दूर फिरंगी को करने की सबसे मन में ठानी थी।
चमक उठी सन् सत्तावन में वह तलवार पुरानी थी।
बुंदेलों हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वो तो झाँसी वाली रानी थी।'

बहुत कम लोगों को मालूम होगा कि कैप्टन रामसिंह ने प्रेरणादायक गीत 'कदम कदम बढ़ाये जा खुशी के गीत गाए जा' लिखा था जो लोकप्रिय प्रयाणगीत बना हुआ है। अब तो इसकी जानकारी धूमिल हो गई है। पूरा गीत इस प्रकार से है–

कदम कदम बढ़ाये जा खुशी के गाते गाये जा
ये ज़िंदगी है कौम की, कौम पे लुटाये जा।
तू शेरे हिंद आग बढ़ मरने से कभी न डर
उड़ा दे दुश्मनों के सर जोशे वतन बढ़ाये जा।
तेरी हिम्मत बढ़ती रहे खुदा तेरी सुनता रहे
जो सामने पड़े तेरे, तू खाक में मिलाये जा।
चलो दिल्ली पुकार के, कौमी निशाँ सँभाल के
लाल किले पे गाड़ के, लहराये जा, लहराये जा।

नेताजी सुभाष बोस का दिया हुआ नारा 'जयहिंद' और यह प्रयाण-गीत स्वतंत्रता संग्राम में वेद मंत्र की तरह बोले जाते थे।

इकबाल जैसे प्रसिद्ध उर्दू कवि ने 'सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा, हम बुलबुलें हैं इसकी ये गुलसिताँ हमारा' जैसी कविताओं ने भी राष्ट्रीय चेतना को आंदोलन में प्राण फूँके थे जो आजतक सूप्रसिद्ध प्रतीक गीत बना हुआ है। इसी प्रकार कविवर श्याम लाल गुप्त का गीत-'विजयी विश्वतिरंगा प्यारा' भी अत्यंत प्रेरणादायक है।

राष्ट्रीयता की भावना, अपने राष्ट्र के गौरवमय अतीत पर गर्व और स्वाभिमान की शक्ति, एकता का बल- इन सबकी चेतना फैलाने में साहित्यकार थे जो सीधे सीधे स्वाधीनता के सैनिकों को प्रेरित करने वाले गीत लिखते थे जिन्हें यहाँ उद्धृत किया गया है। दूसरे वे स्थापित साहित्यकार थे जो भारत की गरिमा को उजागर करने वाला साहित्य लिख रहे थे। इनमें मैथिलीशरण गुप्त, जयशंकर प्रसाद, सुमित्रा नंदन पंत, निराला, सुभद्रा कुमारी चौहान आदि के नाम लिये जा सकते हैं। गुप्त जी ने भारत भारती नामक पूरा काव्य भारत के गौरवमय अतीत पर लिखा था। यह काव्य

सुप्रसिद्ध है अतः इस पर अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं।

प्रसाद जी ने अपने नाटकों में देश गौरव विदेशियों को भगाकर विजय प्राप्त करने की कथावस्तु पर अनेक नाटक लिखे हैं- चन्द्र गुप्त, स्कंद गुप्त, ध्रुव स्वामिनी आदि नाटक सुप्रसिद्ध हैं। उनके कुछ गीत कितने प्रेरणादायक हैं, उसका एक उदाहरण ही पर्याप्त होगा-

'हिमाद्री तुंग भृंग से, प्रबुद्ध शुद्ध भारती
स्वयं प्रभा समुज्ज्वला स्वतंत्रता पुकारती
अमर्त्य वीर पुत्र हो, दृढ़ प्रतिज्ञ सोच लो
प्रशस्त पुण्य पंथ है बढ़े चलो-बढ़े चलो।
असंख्य कीर्ति रश्मियाँ, विकीर्ण दिव्य दाह-सी
सपूत मातृभूमि के, सको न शूर साहसी
आराति सैन्य-सिन्धु में सुवाड़वाग्नि से जलो
प्रवीर हो जयी बनो, बढ़े चलो-बढ़े चलो।'

इसी प्रकार कवि सुमित्रानन्दन पंत ने 'वंदेमातरम्' को आधार बनाकर एक कविता लिखी थी जो बहुत प्रेरक रही-

'आओ मुक्त कंठ से सब जन
भू-मंगल का गाएँ गायन
वंदे मातरम्!
भू मन के टेरे जड़ बांधन
रुढि-रीति से मुक्त बने मन
दैन्य दुरित से हटे तमस धन
स्वर्ण-प्रभात-जड़ित हो मन
वन्दे मातरम्।
दिशा लोक श्रम से हो हर्षित
काल विश्व-रचना में योजित
भव-संस्कृति में देश हो ग्रंथित
जन-संपन, जगत मनुजोचित
वन्दे मातरम्।'

पुरानी पीढ़ी को आज भी याद है कि दो वरिष्ठ हिंदी साहित्यकारों की दो हिंदी कविताएँ किस प्रकार उस समय के स्वतंत्रता सैनिकों के प्राणों में जोश भर दिया करती थीं। इनमें एक थी प्रसिद्ध कवि निराला की कविता-'जागो फिर एक बार' और दूसरी थी रामधारी सिंह

'दिनकर' की दहाड़- 'सिंहासन खाली करो कि जनता आती है।' नई पीढ़ी इन्हें भूल न जाए इस दृष्टि से इनकी कुछ प्रेरणाप्रद पंक्तियाँ हम यहाँ उद्धृत करना चाहते हैं। निराला ने लिखा था-

'जागो फिर एक बार, समर में अमर कर प्राण
शेरों की मांद में, आया है आज स्यार। जागो फिर...
पशु नहीं, वीर तुम, समर-शूर क्रूर नहीं, काल चक्र में हो दबे

निराला की यह कविता बहुत लम्बी तन मन में जोश को संचार का करने वाली है।

सोहन लाल द्विवेदी उस पीढ़ी के सुपरिचित देश भक्त कवि थे उनकी कविता भी रोम-रोम में प्रेरणा फूँकने वाली कविता है देखे-

'हम मातृ भूमि के सैनिक हैं, आजादी के मतवाले हैं
बलिवेदी पर हँस-हँस कर, निज शीश चढ़ाने वाले हैं।
केसरिया बाना पहिन लिया, फिर प्राणों का मोह कहाँ?
जब बने देश के संन्यासी, नारी-बच्चों का मोह कहाँ?
जननी के वीर पुजारी हैं, सर्वस्व लुटाने वाले हैं।
अब देश-प्रेम की रंगत में, रंग गया हमारा यह जीवन,
उसके ही लिए समर्पित है, सब कुछ अपना यह तन-मन-धन,
आगे को बढ़ा चरण रण में, पीछे न हटाने वाले हैं।
हम मातृभूमि के सैनिक हैं, आजादी के मतवाले है।
संतान शूरवीरों की हैं, हम दास नहीं कहलायेंगे
या तो स्वतंत्र हो जायँगे, या रण में मर मिट जायँगे।
हम अमर शहीदों की टोली में, नाम लिखाने वाले हैं।
हम मातृभूमि के सैनिक हैं, आजादी के मतवाले हैं।

'भारत-भूमि-वंदना' में बंकिम चंद्र चट्टोपाध्याय, रवींद्र ठाकुर, भारतेंदु हरिश्चन्द्र, सत्यनारायण कविरत्न, श्रीधर पाठक, मन्नन द्विवेदी, मैथिलीशरण गुप्त, सियाराम शरण गुप्त, माखन लाल चतुर्वेदी, जयशंकर प्रसाद, निराला, वालकृष्ण शर्मा 'नवीन', (कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ, जिससे उथल-पुथल मच जाए) सुमित्रानंदन पंत, सुभद्रा कुमारी चौहान, रामधारी सिंह दिनकर, गोपाल प्रसाद व्यास, राम कुमार वर्मा एवं नरेन्द्र शर्मा आदि के नाम स्वर्णाक्षरों में चेतना के ओजस्वी स्वर हर युग की आने वाली पीढ़ियों को सौगात के रूप में दिए हैं।

ये कुछ गिने चुने उदाहरण हैं उन कालजयी काव्य पंक्तियों

के, जिन्होंने राष्ट्रीयता की भावना भरकर हमारे स्वतंत्रता आंदोलन में जान डाली थी। बिना राष्ट्रीयता की भावना के कोई भी स्वाधीनता आंदोलन कभी सफल नहीं हो सकता। उस आंदोलन के समय जो राष्ट्रीय चेतना फैली या पनपी थी उसका प्रभाव आज भी बना हुआ है। आज उस भावना में क्षुद्र राजनीति ने भी स्थान पा लिया है इसलिए उसका रंग कुछ दूसरा ही हो गया है। स्वतंत्रता संग्राम में जागी राष्ट्रीयता खरा सोना थी जिसे इन कवियों ने चमकाया था। इसलिए हमने इन्हें उद्धृत करना उचित समझा।

हमें कितना मुश्किलों से, कितनी अमूल्य विभूतियों की कुर्बानियों के पश्चात् परतंत्रता से त्राण मिला है इस बात को स्पष्ट करते हुए मौजूदा पीढ़ी और आने वाली पीढ़ियों के लिए मैंने भी सचेत रहने को कुछ गुजारिश इन पंक्तियों में की है, ताकि उसकी अखंडता पर कोई आँच न आने पाये–

तोड़ दी हमने जंजीर देश के उत्थान को
थाम लो मरत्तक उठाकर जी के अभियान को।
या ढँके इक आवरण सदियों से भारत भूमि को
कालिमा वह हट चुकी है देख लो नव अरुण को।
आ न जाए वह बवंडर उड़ गया कुछ दूर जो
खींच दो ऐसी दीवारें चूम लें नव गगन को।
गूँथ लो इक माल्य में इस प्रेम–बंधन, ऐक्य को
हो अमन अब इस चमन में, दूर कर दें हनन को।
देश गौरव लक्ष्य हो पूरा करें पितृ ऋण को
ज्ञान दीपक से हटा दें तिमिर के आवरण को।

उर्दू शायरी में सामाजिक एवं राष्ट्रीय चेतना

चंद्र मौलेश्वर प्रसाद

बीसवीं शताब्दी के आते-आते राष्ट्र में आजादी की सुगबुगाहट एक ज्वलंत रूप लेने को बेचैन थी। स्वतंत्रता संग्राम की पहली क्रांति अपना रंग ला चुकी थी और आम जनता में बेदारी आ रही थी। उधर पश्चिम में ही मेहनतकश को जागृत करने के लिए मार्क्स, लेनिन, गोर्की जैसे साहित्यकार अपना कार्य कर चुके थे। ऐसे में भारत के साहित्यकार भी कहाँ चुप रहते! उन्हें भी अपनी कलम के जोर पर लोगों में जागृति लाना था। कार्य में उर्दू शायरों ने बड़ी सजगता से अपनी भागीदारी निभाई जिसका जीता जागता प्रमाण है उनकी जीवनी और कृति।

मुगलिया सल्तनत के अंतिम दौर में उर्दू शायरों में जाम-ओ-मीना और हुस्न-ओ-इश्क का नशा उतर चुका था। उन्होंने जब ख्यालों की दुनिया से बाहर निकल कर यथार्थ के धरातल पर कदम रखा तो उनकी आँखे खुल गईं। उन्हें उस आम आदमी से जुड़ना था जिनका जीवन गुलामी की जंजीरों में जकड़ा था। कुछ तरक्की पसंद शायरों ने साहित्यकारों को साकी और प्याले की रंगीन दुनिया से बाहर निकल आने का आह्वान किया। 'बर्क' देहलवी, हाली, इकबाल, चकबस्त, जोश... न जाने ऐसे कितने शायरों ने उर्दू साहित्य का मुँह यथार्थ की ओर मोड़ा। जहाँ चकबस्त ने यह कहा-

'मिटेगा दीन थी और आबरू भी जाएगी
तुम्हारे नाम से दुनिया को शर्म आएगी।
वहीं 'इकबाल' ने रोष भरे स्वर में नौजवानों को ललकारा-
अगर अब भी न समझोगे तो मिट जाओगे दुनिया से
तुम्हारी दास्तां तक भी न होगी दास्तानों में।'

आखिरी मुगल बादशाह और उर्दू के अजीम शायर बहादुर शाह जफर को बंदी बनाने के बाद पूरे देश में अँग्रेजी राज्य के विरूद्ध माहौल बनने लगा। इस विदेशी प्रहार का असर न केवल जनता पर, बल्कि देशी साहित्यकारों पर भी पड़ा। विदेशी शासन के खिलाफ लोगों का भड़कना स्वाभाविक था। इस आग में घी डालने का काम साहित्यकारों ने किया। सभी भाषाओं, धर्मों और जातियों के नेताओं और साहित्यकारों ने स्वतंत्रता संग्राम की मशाल जलाई। उर्दू साहित्य से जुड़े रचनाकार भी इस अभियान में पीछे नहीं थे। उनके व्यक्तित्व और कृतित्व के माध्यम से समाज

और राष्ट्रीय चेतना जगाने में उनकी भूमिका देखी जा सकती है।

ऐसे ही कुछ साहित्यकार थे-

मौलाना 'होली'-(1840-1916) मौलाना अल्ताफ हुसैन 'होली' इस्लाम का पाबंदी से पालन करने वाले व्यक्ति थे, यद्यपि वे मिर्जा गालिब के शिष्य थे। गालिब न तो नमाजी थे और न ही उन्होंने कभी रोजे रखे। उन्होंने सामाजिक रीति-रिवाजों का भी कभी पालन नहीं किया था और धार्मिक उसूलों के खिलाफ उम्र भर शराब पीते रहे, जबकि मौलाना 'होली' मुसलमानों की दयनीयता और दुर्दशा पर चिंतित थे। 'होली' ने उस समय विप्लव-गान छेड़ा जब अधिकतर शायर शराब और शबाब का गुणगान कर रहे थे। उन्हें शायरी के जिस दौर से गुजरना पड़ा था उसका जिक्र वे इस प्रकार करते हैं-'शायरी की बदौलत चंद रोज झूठा आशिक बनना पड़ा बीस वर्ष की उम्र में चालीस वर्ष तक तेली के बैल की तरह इसी एक चक्कर में फिरते रहे। जब आँख खुली तो मालूम हुआ कि जहाँ से चले थे, अब तक वहीं है। मगर जो कदम बीस वर्ष से एक चाल से दूसरी चाल न चला हो और जिनकी दौड़ गज-दो-गज जमीन से महदूद रही हो, उनसे इस वसीअ मैदान में काम लेना आसान नहीं था। कौम की हालत तबाह है, अजीज जलील हो गए हैं, इल्म का खात्मा हो चुका है। रस्मो-रिवाज की बेड़ी एक-एक के पाँवों में पड़ी है।'

किनारा है दूर औरा तूफाँ बर है
जुमाँ है यह हर दम कि अब डूबता है
नहीं लेते करवट मगर अगले-किश्ती
पड़े सोते हैं बेखबर अहले-किश्ती।

'अहले-किश्ती' को जगाने के लिए 'होली' ने पुराने ढर्रे की शायरी को प्रणाम किया और उसे एक नया रूप देकर इस क्षेत्र में एक आदर्श स्थापित किया। उस समय के समाज में गिरते जीवन-मूल्यों का वर्णन होली ने इस प्रकार किया-

'न कौमों में इज्जत न जलसों में वकअत
न अपनों से उल्फत न गैरों से मिल्लत
मिजाजों में सुस्ती, दिमागों में नखबत
ख्यालों में पस्ती, कमालों में नफरत।'

होली ने अपनी रचनाओं के माध्यम से समाज में जागृति लाने की पहल की और वे इस मुहीम में अकेले ही निकल पड़े, पर वे जानते

थे कि इस अहम काम में उनके साथ लोग जुड़ते जाएंगे।

जो चाहे पलट दें यही सब की काया
कि एक-एक ने मुल्कों को है जगाया
अकेलों ने ही काफिलों को बचाया
जहाजों को है जौर-कूं ने तिराया,
यूँ ही काम दुनिया का चलता रहा है,
दिये से दिया यूँ ही जलता रहा है।

1. **संगीत-शक्ति**

अकबर इलाहाबादी-(१८४६-१९२१):

सैयद अकबर हुसेन 'अकबर' इलाहाबादी उर्दू शायरी के हास्य-व्यंग्य के प्रथम रचनाकार माने जाते हैं, जिन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से यह जता दिया कि 'हर समय मनहूस सूरत बनाए रखना ठीक नहीं और विषम परिस्थितियों में भी मुस्कराया, हँसा जा सकता है। अँग्रेजी शासन-काल में 'अकबर' एक जज के ओहदे पर रहते हुए भी विदेशी शासन पर व्यंग्य कसने से नहीं हिचकिचाए।

'नेशनल वकअत के गुम होने का है 'अकबर' को गम
ऑफिशल इज्जत का उसको कुछ मजा मिलता नहीं।'

भारतीय सामाजिक संस्कृति पर हावी होती विदेशी भाषा और संस्कृति को 'अकबर' नहीं सहन कर पाते तो अपने व्यंग्य-बाण चलाते थे।

'हम ऐसी कुल किताबें काबिले-जब्ती समझते हैं,
कि जिनको पढ़ के, लड़के काबिले-जब्ती समझते हैं,
कि जिनको पढ़ के, लड़के बाप को खब्ती समझते हैं।

उन्होंने अँग्रेजों को भी अपने तंज से छूट नहीं दी, यहाँ तक कि लार्ड कर्जन को भी नहीं बख्शा।

'कर दिया 'कर्जन' ने जब, मुर्दो की सूरत देखिफ'
आबरू चेहरे की सब, फैशन बनाकर पोंछ दिया।

एक बार कर्जन ने हिंदुस्तानियों को जब झूठा कहा तो उन्होंने यह कह कर अपनी भड़ास निकाल ली-

'झूठे हैं हम तो आप हैं झूठों के बादशाहं!'

अपनी तहजीब से दूर होती महिलाओं को अँग्रेजी मेमों का अनुसरण करते देख 'अकबर' ने यह सवाल उठाया-

'बेपर्दा नजर आई, जो कल चंद बीबीयों
'अकबर' जमीं में गैरते-कौमी से गड़ गया
पूछा जो उनसे – 'आपका पर्दा कहाँ गया?'
कहने लगीं, कि 'अक्ल दे मरदों के पड़ गया।'

'अकबर' एक तरक्की पसंद शायर थे और वे चाहते थे कि हमारी लड़कियों के लिए पढ़ाई जरूरी है, परंतु वे यह भी चाहते थे कि महिलाएँ अपनी संस्कृति को भी नहीं भूलें।

'तालीम लड़कियों की जरूरी तो है मगर
खातून-खान हों, वे सभा की परी नहीं।'

2. **सद्गृहस्थ**

सामाजिक चेतना जगाना और हमारी संस्कृति से जुड़े रहना ही उनकी लेखनी का मकसद रहा, पर उन्होंने अपनी बात हँसते-हँसते कही। हिंदू-मुस्लिम समस्याओं को वे धर्म से अलग करके देखते थे और यह दर्शाया कि यहाँ के लोगों के दुख-दर्द एक समान हैं।

'अय बरहमन! हमारा-तेरा है एक आलम
हम ख्वाब देखते हैं, तू देखता है सपना।'

'इकबाल' (१८७५-१९३७):

स्यालकोट (पंजाब) में जन्मे डॉ. सर शेख मोहम्मद 'इकबाल' बचपन से ही मेधावी थे और स्कूली-जीवन से ही शेर-ओ-शायरी करने लगे थे। एम.ए. की शिक्षा तक पहुँचते पहुँचते उन्होंने देश की हालात को समझा, कौमों की एकता पर जरूरत महसूस की और इस दिशा में अपनी कलम को मोड़ा। उन्हें अपने देश की धरोहर और इतिहास पर बहुत नाज था।

यूनानियों को जिसने हैरान कर दिया था
सारे जहां को जिसने इल्मो-हुनर दिया था
मिट्टी को जिसकी हक ने जर का असर दिया था
तुर्को को जिसने दामन हीरों से भर दिया था
मेरा वतन वही है, मेरा वतन वही है।

यदि 'इकबाल' ने देश को केवल कौमी तराना 'सारे जहाँ से अच्छा, हिंदोस्ताँ हमारा' ही दिया होता तो भी उन्हें सदा याद किया जाता, परंतु उन्होंने कौमी एकता, देश का गौरव और आजादी की लड़ाई के लिए कई एसी रचनाएँ दी हैं कि उन्हें साहित्य और समाज सदा आदर से याद रखेगा

और समय-समय पर उनकी रचनाओं को उद्धृत किया जाएगा। देश को वे जिस बुलंदी पर देखना चाहते थे उसका वर्णन उन्होंने अपनी कविता में इस तरह किया है-

'दुनिया के तीरथों से ऊँचा हो अपना तीरथ
दामने-आसमाँ से उसका कलस मिला दे
वतन की फिक्र कर नादाँ! मुसीबत आने वाली है
तेरी बरबादी के मशविरे हैं आसमानों में
न समझोगे तो मिट जाओगे ऐ हिंदोस्ताँ वालो!
तुम्हारी दास्ताँ तक भी न होगी दास्तानों में।।'

यह दुर्भाग्य की बात है कि ऐसा वतन-परस्त शायर जब विलायत से लौटा तो उस पर सांप्रदायिक रंग चढ़ चुका था। अब वह बाज और खंजर की बातें करने लगा। उसके अंतिम दौर का अधिकांश लेखन मुस्लिम दृष्टिकोण को लेकर लिखा गया है।

'चीनो-अरब हमारा, हिंदोस्ताँ हमारा
मुस्लिम हैं हम, वतन है सारा जहां हमारा
तेगों क़े साये में हम पल कर बड़े हुए हैं
खंजर हिलाल का है कौमी निशां हमारा।'

'इकबाल' के इस बदलाव को देखकर ही आनंद नारायण 'मुल्ला' ने कहा था- हिंदी होने पर नाज जिसे कल तक था, हिजाजी बन बैठा अपनी महफिल का रिंद पुराना, आज नमाजी बन बैठा।

'चकबस्त' (१८८२-१९२६):

पादरियों के नित नये प्रचार और अँग्रेजी भाषा, शिक्षा व सभ्यता के असर को देखते हुए देश के हिंदू, मुस्लिम, सिख, जैन आदि सभी भारतीय सभ्यता के लोग चिंतित थे और एकजुट होकर विदेशी भाषा और सभ्यता का मुकाबला करने के लिए कमर कस रहे थे। इस आंदोलन को हवा देने वालों में पं. ब्रजनारायण 'चकबस्त' का नाम अग्रणी है। 'चकबस्त' और 'इकबाल' ऐसे दो कवि थे जिन्होंने देशवासियों को जागृत किया और जनता में देश-भक्ति की लहर पैदा कर दी। 'चंकबस्त' के बारे में लिखते हुए प्रो. 'एजाज' कहते हैं-'उनका पैमाना-ए-दिल कौमी जज्बात से लबरेज था। मौका मुनासिब पाया, जज्बाती रंग देकर इतनी दिलकश नज्मों में दुनिया के सामने 'होम रूल' के मतालिब पेश किए कि अवाम व खास, दोनों में उनकी शायरी की चर्चा होने लगी। 'चकबस्त' की नज्मों में

खाली जोश व नुमाइश ही नहीं, बल्कि इन्कलाब की दिलचस्प अहमियत और हिम्मत अफजाई भी मौजूद है।'

लखनऊ की प्रथम श्रेणी के वकीलों में उस समय 'चकबस्त' का शुमार किया जाता था। बचपन से ही शेर-ओ-शायरी का शौक रहा। अपने क्लास में उन्होंने मुनासिब हिंदी शब्दों का प्रयोग भी किया। 'चकबस्त' का शुमार उन शायरों में होता है जिन्होंने धर्म के नाम पर नहीं, अपितु देश के नाम पर नौजवानों को ललकारा और आजादी का परचम लहराने का आह्वान किया।

'गुल शमए-अंजुमन है, गो अंजुमन वही है
हुब्बेवतन नहीं है, खाके-वतन वही है
बरसों से हो रहा है नामो-निशाँ हमारा
कुछ कम नहीं अजल से ख्वाबेगराँ हमारा
इक लाश-ए-बेकफन है हिंदोस्ताँ हमारा।'

(1. बुझा हुआ 2. स्वदेश प्रेम 3. अस्त-व्यस्त हाल 4. मौत 5. नींद)

अँग्रेजों की अराजकता और आजादी के मतवालों पर हो रहे जुल्मों को देखते हुए 'चकबस्त' चुप नहीं रह सके। झूठे मुकदमों में बिना जुर्म के साबित हुए ही सजा सुनाने पर वे कह उठे-

'उसे यह फिक्र है हरदम नया तर्जे-वफ क्या है?
हमें यह शौक है देखें सितम की इंतहा क्या है
गुनहगारों में शामिल हैं गुनाहों से नहीं वाकिफ
सजा को जानते हैं हम, खुदा जाने खता क्या है?'

इसी अराजकता को देखते हुए 'चकबस्त' ने 'होम रूल' का मुद्दा उठाते हुए शहीदों का वास्ता देकर जवानों को ललकारा था-

'वतन परस्त शहीदों की खाक लाएँगे
गरीब माँ के लिए दर्द दुख उठाएँगे
यही पयामे-वफा कौम को सुनाएँगे
तलब फिजूल है काँटों की फूल के बदले
न लें बहिश्त भी होम रूप के बदले।'

उर्दू साहित्य के ये वो शायर हैं जिन्होंने देश को आजाद होते हुए नहीं देखा था। आजादी से पहले ही वे काल के मुँह में चले गये। कुछ तो ऐसे भी शायर हुए हैं जिन्होंने न केवल देश की आजादी के लिए कलम चलाई, बल्कि स्वतंत्रता संग्राम में भाग लिया और जेल भी गए। देश की

स्वतंत्रता के साथ-साथ वे उस खौफ़नाक नजारे के भी चश्मदीद गवाह रहे जिसने इस देश को मजहब के नाम पर बाँट दिया।

'जोश' मलीहाबादी, फैज अहमद 'फैज' फिराक गोरखपुरी मखदूम मोहियुद्दीन, मजाज लखनवी, 'साहिर' लुधियानवी, अली सरदार जाफरी, कैफी आजमी न जाने कितने शायरों ने जनता की भावनाओं को अपनी लेखनी के माध्यम से उजागर किया।

सागर निजामी ऐसे शायर थे जिन्होंने मजहब के नाम पर देश को बाँटने वालों को अपने करीब आने नहीं दिया जबकि उन्हें हर प्रकार का लालच देकर उनकी तंगहाली का लाभ उठाने के प्रयास किए गए। परंत देश की आजादी के बाद आज की पीढ़ी के नेताओं के किरदार को देखते हुए वो पूछ बैठे-

'क्या यही है? मेरे महबूब वतन के रहबर
खुदगरज खुदनिगर-ओ फितना-ओ शर के पैकर
कुफ्रो-इस्लाम के ताजिर यह मुहज्जिब रहजन
जिनके किरदार से मरऊब थीं अगवामो-उमम
उन्हीं अस्लाफ की औलाद है यह अहले-सितम
गो यह इखलाक-ओ-मुसावत से घबराते हैं
फिर भी स्टेज पै तहजीब के गुन गाते हैं।'

(1. अपनी चिंता करने वाले 2. कौ और उम्मतें प्रभावित)

'जोश' मलोहाबादी उन शायरों में से हैं जिन्होंने देश की आबादी के लिए पस्त कौम को यूँ ललकारा-

'इस हर्फे गर्म सुनते ही लौ दे उठे दिमाग
हिंदोस्तान में वो हरारत कहाँ है 'जोश'?

उन्होंने देश को जब हिंदू-मुस्लिम के नाम पर बँटते हुए देखा तो कह उठे-

फर्ज भी कर लूँ कि हिंदू हिंद की रुसवाई है
लेकिन इसको क्या करूँ, फिर भी वाह मेरा भाई है।
'बाज आया मैं तो ऐसे मजहबी ताऊन से
भाइयों का हाथ पर हो भाइयों के खून से।'

'फिराक' गोरखपुरी भी देश के बँटवारे को देखते हुए 'जोश के जज्बात से सहमत होते हुए कहते हैं-

'मजहब कोई लौटा ले और उसकी जगह दे दे

तहजीब सलीके की, इंसान करीने के।'

देश के बँटवारे के बाद उर्दू शायरों की कलम मजदूर, मजबूर और मजलूम की ओर मुड़ी जिनकी न गरीबी दूर हुई और न उनका शोषण कम हुआ। उनके लिए आजादी कोई मायने नहीं रखती। जिस माँ की छाती में मासूम बच्चे को पिलाने के लिए दूध भी न हो, उसे देखकर अली सरदार जाफरी जैसा शायर कैसे चुप रह सकता था?

'छातियाँ आज मेरी सूख गई हैं लेकिन
आँखें सूखीं नहीं अब तक मेरे लाल
दर्द का चश्म-ए-बेताब रवाँ है इनसे
मेरे अश्कों ही से तू प्यास बुझा ले अपनी...'

अपनी प्रगतिशील सोच के कारण जब उन्होंने सरकार के खिलाफ कलम उठाई तो जेल भी जाना पड़ा था। अप्रैल 1950 में सेंट्रल जेल, नासिक में लिखी कविता से कैदी-जीवन की झलक मिलती है।

'आहनी कड़ो का शोर
बेड़ियों की झँकारें
कैदियों की साँसों की
तुंदों-तेज आवाजें
जेलरों बदकारी
गालियों की बौछारें.....

अली सरदार जाफरी के समकालीन शायर साहिर लुधियानवी भी प्रगतिशील विचारों के हामी थे। उन्होंने गरीबी और जात-पात की दीवारों से मानवता को बँटते हुए देखा।

'नौ-ए-इंसा में ये सरमाया-ओ-मेहनत का तजाद
अम्ना-तहजीब के परचम तले कौमों का फसाद
हर तरफ आतिशो-आह का ये सैलाबे-अजीम
नित नये तर्ज पे हुई दुनिया तकसीम।'

आज प्रेम भी दौलत की तराजू में तोला जाता है तो साहिर जैसे शायर को यह मुफ्लिसी का मजाक उड़ाना लगता है।

'ताज तेरे लिए मजहारे उल्फत ही सही,
तुझको इस वादिये रंगीं से अकीदत ही सही,
मेरे महबूब कहीं और मिला कर मुझसे..
एक शहंशाह ने दौलत का सहारा लेकर,

हम गरीबों की मुहब्बत का उड़ाया है मजाक।'

सरहद के उस पार, फैज अहमद 'फैज' भी अपने देश के फौजी कर्नल रहने के बावजूद, प्रगतिशील विचारों के कारण जेल भेजे गये। वे मजबूर और शोषित की ताकत को पहचानते थे और जानते थे कि यदि ये लोग एकजुट हो जाएँ तो क्या कुछ नहीं कर सकते-

'यह मजलूम मखलूक गर सर गर सर उठाये
तो इंसान सब सरकशी भूल जाये
यह चाहे तो दुनिया को अपना बना लें
यह आकाओं की हड्डियाँ तक चबा लें
कोई उनको अहसासे-जिल्लत दिला दे
कोई उनकी सोई हुई दुम हिला दे।

'मजाज' लखनवी ने इस सामाजिक सिक्के के दूसरे पहलू पर प्रकाश डालते हुए सरमायेदारी पर यूँ कहा था-

'ये वो आंधी है जिसकी रौ में मुफलिस का नशेमन है
ये वो बिजली है जिसकी जौ में हर दहकाँ का खिरमन है।
यह अपने हाथों में तहजीब का फानूस लेती है
मगर मजदूर के तन से लहू तक चूस लेती है।'

आजादी के बाद गरीबी और शोषण के मुद्दों पर उर्दू शायरों का चिंतन छाया रहा। गरीब का मार्मिक चित्रण 'सीमाव' अकबराबादी ने इस तरह किया था-

'गर्द चेहरे पर, पसीने में जबीं डूबी हुई
आँसुओं में मुहनियों तक आस्तीं डूबी हुई
पीठ पर नाकाबिले-बर्दाश्त इक बारे-गराँ
जोफ से लरजी हुई सारे बदन की झुर्रियाँ
इसके दिल तक जिंदगी की रौशनी जाती नहीं
भूल कर भी इसके होठों पर हँसी आती नहीं।'

गरीब को यह समझ लेना चाहिए कि उसका उद्धार उसी के हाथों में है। उसे अपना हक लेने के लिए खुद ही अपनी लड़ाई लड़नी पड़ेगी। 'निसार' इटावी मानते हैं-

'वही हकदार है, किनारों के
जो बदल दें बहाव धारों के।'

परंतु आज भी गरीबों का कारवाँ भटक रहा है जिसे देखकर

कमर हाशमी जैसे शायर गमजदा हैं।

'भटक रहे हैं अभी कारवाँ गरीबों के
लरज रही है जबीं आस्मानो-अंजुम की
तरस रहे हैं खुशी के लिए हजारों दिल
अभी लबों को इजाजत नहीं तबस्सुम की।'

बशीर बद्र जैसे तरक्की पसंद शायर दौलत के वर्चस्व को समाप्त करने की बात करते हैं।

'जो गरीबों का लहू पी के हुए सर-ब-फलक
वही ढाते हैं, शहंशाहों के अहराम मुझे
मुफलिसों की नई दुनिया को बनाने के लिए
क्रिस्रे-शाही के गिराने हैं, दरो-बाम मुझे।'

न जाने ऐसे कितने प्रगतिशील कवि गरीबी और शोषण दूर करने के लिए कलम निरंतर चलाते रहे। गरीबी की दलदल से अभी देश निकल ही नहीं पाया है कि समाज और देश का भ्रष्टाचार का दैत्य खाये जा रहा है। समाज के घटते जीवन-मूल्य, नेताओं की अनैतिकता और भ्रष्टाचार के महौल में उन महान हस्तियों की अस्थियाँ अब कब्र में करवट ले रही होंगी जिन्होंने देश के लिए चिंतन किया, यातनाएँ भोगी और कुर्बान हुए। इस आजाद देश में अभी भी गुलामी की जंजीरें लटक रही हैं, कलमकार उन मुद्दों को उजागर कर रहे हैं, समाज-सेवी और साहित्यकार दुखी हैं, परंतु इस स्थिति में भी 'शाहबाज' अमरोही जैसे शायर अपनी बात हँसते हुए कह जाते हैं-

'देखा जो मुझको कोर्ट में कहने लगे क्लर्क
यारो! शिकार आया है इसको खसोट लो.....
जुम्मन ने काँप कर कहा यारो करो न शोर
जो कुछ भी तुमको लेना है पर्दे की ओट लो
नत्थू कड़क के बोले कि डर की है बात क्या
अपना ही अब तो राज है डंके की चोट लो!

अध्याय : तीन
भारतीय संस्कृति और राष्ट्र चेतना

अमर गीत

डॉ. धर्मेन्द्र नाथ 'अमन'

दिव्य गानः वंदेमात्रम् (१८७५)

मस्तिष्क में चलचित्र की भांति जब स्मृतियाँ उभरती हैं राष्ट्रीय आंदोलन की, तो आज भी शरीर रोमांचित हो जाता है। मातृभूमि के प्रति समर्पण और विदेशी सत्ता द्वारा भारतवासियों पर थोपी गई दासता से मुक्ति की प्रबल इच्छा से प्रेरित ये गीत हमारी अमूल्य धरोहर हैं। आज उन सभी गीतों को गाना या याद रखना संभव नहीं। अनगिनत गीत जो अलग-अलग भाषाओं में रचे गये तथा विभिनन धुनों में संगीतबद्ध हुए वह तो अब समय-समय पर धीरे-धीरे अतीत में गुम हो रहे हैं। स्वतंत्र भारत के लोगों ने फिल्मी गीतों पर आधारित अंताक्षरी को तो पंसद किया, परंतु उन गीतों को विस्मृत कर दिया, जिन्होंने हमें आजादी के पथ पर अग्रसर किया, हमारे हृदय एवं मस्तिष्क को राष्ट्रीय चेतना से परिपूर्ण किया था।

हममें से कितने अपने बच्चों को भारतीय गौरव गाथा के उन गीतों को सिखाते हैं, स्वतंत्रता महासंग्राम के दौरान किस मस्ती से आजादी के दीवाने गाते थे 'मेरा रंग दे बसंती चोला'। कहाँ गई वह 'सरफरोशी की तमन्ना', जिससे वातावरण गुँजरित हो जाता था। पंजाबी गीत 'नई रखनी सरकार जालिम नई रखनी' का अन्याय से जूझने का वह दृढ़ निश्चय आज कहाँ लुप्त हो गया? कितनी पीड़ा होती है जब वंदे मातरम् जैसे गीत की पवित्रता, सौम्यता, भक्ति-भावना किसी आधुनिकता के दीवाने संगीत निदेशक की चमक दमक, रंग-विरंगी रोशनी की चकाचौंध, उछल-कूद अंदाज में नृत्य और ताल की धमा-चौकड़ी की भेंट चढ़ जाती है। क्या अधिकार है हमें इन गीतों के साथ मंजाक करने का? यह हमारी वह दौलत है जिसके साथ छेड़-छाड़ करने का न तो किसी को हक है और न ही इजाजत।

स्वतंत्रता महासंग्राम का जीवंत और अविच्छेद्ध अंग 'वंदे मातरम्'

कोटि-कोटि हृदयों का प्राण स्पंदन, राष्ट्रीय चेतना का महामंत्र और विदेशी शासकों के मन में भय संचारित करने वाले दो शब्द 'वंदे मातरम्' भारतीय राष्ट्रीयता के उत्थान काल की कितनी स्मृतियाँ संजोये हुए हैं जब गोलियों का सामना करती तरुणाई, जेल की दारुण यातनाएँ भोगते

भारतीय वीर और वीरांगनाएँ, लाठियों के ताबड़तोड़ वारों से खून से लतपथ जवानी, अर्थियों के पीछे चलते लंबे जुलूस और फाँसी के फंदे के चूमने वाले क्रांतिवीर किस श्रद्धा से कहते थे 'वंदे मातरम्'।

वंदेमातरम् जैसे दिव्य गीत की रचना श्री बंकिम चंद्र चटर्जी ने सन् 1875 में की थी। वंदेमातरम् के व्याख्याकार महर्षि अरविंद ने अपने प्रबंध 'ऋषि बंकिम चंद्र' में बंकिम बाबू की तीन विशेषताएँ बताई हैं। प्रथमत: समस्त रचनाओं का श्रेष्ठ भाव है स्वदेश धर्म, द्वितीय वह नव प्रेरणा के राष्ट्र गुरु हैं, तृतीय उनका सर्वोत्कृष्ट अवदान है 'जननी जन्म भूमि का मातृरूप दर्शन।'

सन् 1875 से लेकर 1881 तक यह श्रेष्ठ कृति केवल पन्नों तक ही सीमित रही। लोगों को इसकी जानकारी तक न थी, लेकिन 1881 में 'बंगदर्शन' पत्रिका (जिसके बंकिम बाबू चार वर्षो तक संपादक रहे थे) में इसका प्रकाशन हुआ, तो लोगों का ध्यान इधर आकृष्ट हुआ। पत्रिकावालों ने बंकिम बाबू से कहा कि केवल इस कविता से पत्रिका का पेट नहीं भरेगा इसलिए उपन्यास शुरु कीजिये। 'आनन्द मठ' उपन्यास छपना शुरू हुआ तो 'वंदेमातरम्' गीत उसमें सम्मिलित कर दिया गया जिससे इस गीत को ख्याति मिली। इसमें अँग्रेजी सत्ता के विरोध में सशस्त्र सन्यासी यह रचना गा-गाक़र बस्तियों, पहाड़ों एवं वनों को गुँजा देते थे। अब साहित्य जगत में इस गीत की चर्चा होने लगी। सन् 1882 से 1894 तक इस उपन्यास के पाँच संस्करण प्रकाशित हुए और बंकिम बाबू के ये शब्द सत्य सिद्ध हुए 'मेरी सारी कृतियाँ गंगा में डुबो दो तो कोई हानि नहीं होगी, परंतु यह एक शाश्वत गीत बचा रहेगा तो मैं देश के हृदय में जीवित रहूँगा।

वंदे मातरम् मूल गीत में पाँच पद हैं जिनमें से निम्नांकित दो पदों को राष्ट्र-गीत का दर्जा दिया गया है। इनमें भारत माता के स्नेहमयी रूप की कल्पना की गई है:-

वंदे मातरम्
सुजलां, सुफलां, मलयज शीतलाम्
शस्यश्यामलां मातरम्।
वंदे मातरम्।
शुभ्रज्योत्सनां पुलकित यामिनीम्
फुल्ल-कुसमित द्रुम दल शोभिनीम्।

सुहासिनीं, सुमधुर भाषिणीम्
सुखदां, वरदां, मातरम्।
वंदे मातरम्।

इन पंक्तियों में अच्छे जलवाली, अच्छे फलोंवाली, ठण्डी हवाओंवाली श्यामवर्ण भारतमाता की कल्पना की गई है। ऐसा देश जो चंद्रमा के प्रकाश से शोभायमान है जिसमें तरह-तरह के फूल खिले हुए हैं। मृदुभाषी, मधुर मुस्कानवाली, सुख देने वाली, वरदान देने वाली माँ है भारत माँ।

कोटि कोटि कंठ-कलकल निनाद कराले
कोटि कोटि भुजैर्धृत खर कर वाले।
अबला केनो माँ ऐतो बले।।
बहुबल धारिणीं, नमामि तारिणीं
रिपुदल वारिणीं मातरम्।
वंदे मातरम्।

इन पंक्तियों में थोड़ा संशोधन कर दिया गया था। बंकिम बाबू ने मूल गीत में केवल उस समय की बंग प्रांत की जनसंख्या का उल्लेख किया था। लेकिन उसको राष्ट्रीय स्वरूप देने के लिए तीस करोड़ की बात कही गई। बाद में यह संख्यावाली सीमा हटाकर कोटि-कोटि शब्द का प्रयोग किया गया। ऐसी माँ जिसकी करोड़ों कंठ जय-जयकार कर रहें हों, करोड़ों हाथ सुरक्षा के लिए तैयार हों, कैसे अबला हो सकती है। बहुबल धारण करने वाली, तारने वाली माँ को नमस्कार। शत्रुओं को समाप्त करने वाली माँ हम तुम्हारी वंदना करते हैं।

तुमि विद्या, तुमि धर्म
तुमि हृदि तुमि मर्म्
त्वं हि प्राणा: शरीरे
बाहु ते तुमि माँ शक्ति
हृदये तुमि माँ भक्ति
तोमारई प्रतिमा गड़ि मंदिरे-मंदिरे।
वंदे मातरम।

तुम्हीं विद्या हो, तुम्हीं हृदय और उसका मर्म हो। तुम्ही शरीर के भीतर प्राण हो, तुम्हीं बाजुओं में शक्ति हो, तुम्हीं हृदय में भक्ति हो, तुम्हारी ही मूर्ति मंदिरों में स्थापित है।

त्वं हि दुर्गा दशप्रहरणधारिणी
कमला, कमल दल विहारिणी
वाणी विद्यादायिनी नमावमि त्वां
नमामि कमलाम्, अमलाम्, अतुलां
सुजलां, सुफलां मातरम्
वंदे मातरम्
श्यामलां, सरलां, सुस्मितां भूषितां
धरणी भरणीं मातरम्
वंदे मातरम्।

इस पद में कवि भारत माँ की कल्पना दुर्गा और कमला, वाणी और विद्या देने वाली सरस्वती के रूप में करता है।

वंदे मातरम् के संबंध में महात्मा गाँधी लिखते हैं, इसको सुना तो मैं आत्मविभोर हो गया। मुझ पर जादु का सा असर हुआ। हमारा झंडा और यह गीत जब तक जिंदा रहेंगे तब तक राष्ट्र जिंदा रहेगा। महान वैज्ञानिक जगदीश चंद्र बोस का विचार था-'वंदे मातरम्' सामान्य कविता नहीं है जनता के हृदय में प्रकट होने वाला यह राष्ट्रगीत है। इस गीत के माध्यम से बंकिम चंद्र ने हमें मातृभूमि की सर्वश्रेष्ठता का दर्शन कराया है।' महाकवि टैगोर 'वंदे मातरम्' शब्दों के प्रभाव का उल्लेख करते हैं-'इससे विरोधियों का हृदय परिवर्तन हो जायेगा और वे इन शब्दों पर फिदा हो जायेंगे। महर्षि अरविंद की भविष्यवाणी सिद्ध हो गई उन्होंने कहा था, एक दिन वंदे मातरम् राष्ट्र धर्म की दीक्षा देने वाला मंत्र बन जायेगा।

वंदेमातरम् की गौर-गाथा

महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर के संगीत शिक्षक श्री यदु भट्ट ने इस गीत को प्रथम बार स्वर दिया। स्वयं महाकवि टैगोर ने सन् 1896 में काँग्रेस अधिवेशन में वंदेमातरम अपनी ही स्वरलिपि में गाया था। सन् 1901 के बाद से तो यह राष्ट्रगीत काँग्रेस के अधिवेशनों में नियमित रूप से गाया जाता रहा।

सितंबर 1905 में बंगाल विभाजन के विरोध में जो आंदोलन चला उसमें दो शब्द वंदे मातरम् राष्ट्रीय जयघोष के रूप में मुखरित हुए और पूरे देश में ये राष्ट्रीय जागृति के बीज-मंत्र के रूप में शीघ्र ही फैल गये। पूर्व बंगाल के लैफ्टिनेंट गवर्नर फुलर ने इस गीत पर प्रतिबंध लगा दिया। सुरेंद्रनाथ बनर्जी के नेतृत्व में कार्य कर रही बंग-भंग विरोधी

समिति ने इस प्रतिबंध के विरोध की घोषणा की। विदेशी सरकार जितना ही दमन करती, जनता में उसकी प्रतिक्रिया उतनी ही तीव्र होती थी।

14 सितंबर 1906 को बारिसाल में सम्मेलन के अवसर पर जो जुलूस निकाला गया सरकार ने उस पर हिंसक हमला करवाया, क्योंकि वंदे मातरम् गाने पर सरकार की निषेद्ध आज्ञा का उल्लंघन किया गया था। अमृत बाजार पत्रिका के तत्कालीन संपादक ने पहले ही गर्जना की थी भले ही हमारा सिर फोड़ दिया जाए परंतु हम वंदेमातरम् गायेंगे ही। पुलिस के बर्बरतापूर्ण लाठी चार्ज से घायल खून से लथपथ लोगों को जब अधिवेशन स्थल पर लाया गया तो हजारों प्रतिनिधियों ने खड़े होकर गाया वंदे मातरम् और इसका जादुई प्रभाव देश भर पर पड़ा।

6 अगस्त 1906 को विपिनचंद्र पाल ने अंग्रेजी दैनिक वंदेमातरम् का प्रकाशन शुरू किया जिसका संपादन भार बाद में महर्षि अरविंद ने संभाला। लाला हरदयाल ने स्विटजरलैंड से वंदेमातरम् नाम का पत्र निकाला। लाला लाजपत राय ने हिंदी में इस नाम का अखबार निकाला। वंदेमातरम् नामक एक अखबार बंबई से गुजराती भाषा में निकाला गया। वंदेमातरम् का उद्घोष पूरे भारतवर्ष में होने लगा और इसका प्रयोग एक दूसरे के अभिवादन करने के रूप में भी प्रयोग हुआ।

क्रांतिकारियों ने फाँसी के तख्ते पर भी नारा लगाया वंदेमातरम्। ढींगरा के अंतिम शब्द थे वंदेमातरम्। नासिक में वंदेमातरम् का जयघोष करने पर वामनराव खरे, वीर सावरकर आदि नौ छात्र पकड़े गये। वंदेमातरम् की गर्जना करने वाले इन वीरों के मुकद्मे का नाम ही 'वंदेमातरम् कांड' पड़ गया। वीर वि.दा. सावरकर के जिन लेखों पर उन्हें कालेपानी भेजा गया था उनमें से एक था, 1907 में बंबई के एक समाचार पत्र में छपा उनका लेख 'वंदे मातरम्'। खुदीराम बोस (11 अगस्त 1908), राम प्रसाद बिस्मिल (16 दिसम्बर 1927), क्रांतिकारी सूर्यसेन (12फरवरी 1934) ने फाँसी स्थल जाते हुए वंदेमातरम् के जयघोष किये। बंगाल से उभरे ये शब्द समस्त भारतीय उपमहाद्वीप में फैल गये और वंदेमातरम् भारत माता की महानता, बुद्धि, विरासत और धीरता एक ही शब्द में समाहित हो गई।

वंदेमातरम् के अनुवाद भी हुए। महर्षि अरविंद ने अँग्रेजी कविता में सुंदर अनुवाद किया। उर्दू में अनुवाद हुआ 'ले सलाम-एक -मादरे हिंदोस्तान'। इसको स्वरलिपिबद्ध करने के कई प्रयास हुए। महान

गायक पं. विष्णु दिगंबर ने भी इसे स्वरबद्ध किया। रेडियो (आकाशवाणी), दूरदर्शन पर भी इसको संगीत निदेशकों ने स्वर दिया। सिनेमा में आनंद मठ नामक चलचित्र में इसकी धुन एक प्रयाग गीत (मार्चिंग सांग) की थी। ए. आर. रहमान ने भी इसको नये ढंग से प्रस्तुत किया।

स्वतंत्रता आंदोलन के समय जब जुलूस में लोग चलते थे तो वे निर्भीक होकर गाते थे-

हम गरीबों के गले का हार वंदेमातरम्
छीन सकती ही नहीं सरकार वंदे मातरम्
सिर-चढ़ो के सिर में चक्कर इससे आता है जरूर
कान में पहुँची जहाँ झंकार वंदेमातरम्

इस समूह गीत में वंदेमातरम् को 'लाडला त्योहार', जल्लाद को 'चुनौती' और जालिमों के जुल्म को कपूर की तरह उड़ा देने वाला बताया गया है। वंदेमातरम् पर एक और समूह गीत प्रस्तुत है-

कौम के खादिम की है जागीर वंदेमातरम्
मुल्क के है वास्ते अक्सीर वंदेमातरम्
कत्ल कर हमको कि ऐ कातिल हमारे खून से
तेग पर हो जायेगा तहरीर वंदेमातरम्
संतरी भी मुजतरिब है जबकि हर झंकार से
बोलती है जेल में जंजीर वंदेमातरम्
जुल्म से गर कर दिया खामोश मुझको देखना
बोल उठेगी मेरी तस्वीर वंदेमातरम्।

वंदेमातरम् वास्तव में राष्ट्र की संपत्ति थी, बेबसों का शस्त्र था और इसमें साम्राज्ञी दमन की तलवार को रोकने की शक्ति थी। यह वास्तव में हमारे मौलिक अधिकार स्वतंत्रता की अभिव्यक्ति है, जिसे कोई भी दमनकारी शक्ति छीन नहीं पाई।

स्वतंत्रता प्राप्ति की शुभ रात्रि को केंद्रीय विधानसभा में जो कार्यक्रम हुआ उसका शुभारंभ 11 बजे श्रीमति सुचेता कृपलानी द्वारा गाये गये वंदेमातरम् से ही हुआ।

विवाद :

दासता काल में भारतवासियों का जयघोष था 'वंदेमातरम्' जो स्वतंत्रता के इस बीजमंत्र का उत्कर्ष काल था, लेकिन स्वतंत्र भारत में उस पर उठते विवादों के बारे में जानकर मन में बहुत पीड़ा होती है। स्वतंत्रता

प्राप्ति के बाद हम मूल्यों में ह्रास देख रहे हैं। राष्ट्रीय चेतना की लौ कम हो रही है। कैसी विडंबना है कि जिस गीत ने हमारी स्वतंत्रता की लड़ाई में हमारे हृदय में जोश भरा, आजाद भारत में उसी पर प्रश्नचिन्ह लगाये जा रहे हैं। बुनियादी समस्याओं को नजरअंदाज करके व्यर्थ के विवादों से सस्ती शोहरत प्राप्त करने के प्रयास किये जा रहे हैं। केरल, कर्नाटक में विवाद उठे तो देश के कुछ भागों में इसकी तीव्र प्रतिक्रिया हुई, वंदेमातरम् आंदोलन शुरू हुए। उत्तर प्रदेश के आगरा नगर में तो 54 व्यक्तियों को वंदेमातरम् कहने पर धार्मिक कट्टरपंथियों द्वारा पैदा की गई कठिन परिस्थितियों का सामना करना पड़ा। यहाँ तक कि उन्हें धर्म से बाहर करने और उनके विवाहों तक को अकलत करने की धमकियाँ दी गई।

वंदेमातरम् गान पर दो प्रकार की आपत्तियाँ उठाई जाती हैं एक तो 'वंदे' शब्द पर, क्योंकि केवल प्रभु की ही वंदना की जा सकती है। डाक्टर सर मोहम्मद इकबाल ने जब अपनी एक काव्य रचना में कहा 'खाके-वतन का, मुझको हर जर्रा देवता है' तो उस पर आपत्ति क्यों नहीं उठाई गई। एक इरानी मुस्लिम कवि ने लिखा है- 'जवाने-पार्सी इरां परस्तद' (ईरान के युवक ईरान की पूजा करते हैं) क्या उसकी निंदा की जानी चाहिए?

दूसरी आपत्ति है, इसमें भारत की दुर्गा, कमला, सरस्वती, काली आदि देवियों के रूप में वंदना की गई। हमारे राष्ट्र गान में वंदेमातरम् गीत के केवल शुरू के ही दो पदों का ही चयन किया गया जिनमें भारत का यह स्वरूप नहीं है। आक्षेप करने वाले भूल जाते हैं कि स्वतंत्रता के महासंग्राम में जब हिंदू, मुस्लिम, सिख, ईसाई, आदि सभी धर्मों, संप्रदायों के लोग कंधे से कंधा मिलाकर देश की आजादी के लिए लड़ रहे थे तो किसी ने भी इस प्रकार के बखेड़े नहीं खड़े किये। उस समय जलसे, जुलूस, कारागारों सभी जगहों में सभी लोगों का एक जयघोष होता था 'वंदे मातरम्'। आज कट्टरपंथी, स्वार्थी तत्व लोगों को भड़काने के लिए ऐसे षड्यंत्र रचते हैं तो वे लोग उस समय के लोगों की लगन, निष्ठा और समर्पण को भूल जाते हैं। मौलाना एल करीम ने ठीक ही कहा है 'यदि यह गीत इस्लाम विरोधी होता तो खिलाफत आंदोलन में क्यों गाया जाता? क्यों वंदेमातरम् के गगनभेदी नारे लगाये जाते?' श्री रामानंद चट्टोपाध्याय ने अपने अभिमत को व्यक्त करते हुए कहा है- 'यद्यपि सरसरी तौर पर देखने पर वंदेमातरम् प्रतिमा व्यंजक अथवा प्रतिभा प्राणेदित्त लग समता है, किंतु असल में वह ऐसा

है नहीं। यह गान न तो विद्वेष-प्रसूत है और न विद्वेषजनक ही।'

स्वतंत्रता संघर्ष में मौलाना अबुल कलाम आजाद, मौलाना मोहम्मद अली, मौलाना शौकत अली, मौलाना हसरत मोहनी इत्यादि नेताओं की मौजूदगी में झंडासलामी, सम्मेलनों, जुलूसों में वंदेमातरम् गाया गया, लेकिन किसी ने आपत्ति नहीं उठाई, क्योंकि वे जानते थे कि यह क्रांति गीत है, जो देशभक्ति का प्रतीक है मूर्ति पूजा का नहीं। यह भारत माता की महानता को परिलक्षित करता है। इस गीत में देश के स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण शरीर का वर्णन और सत्य सार्थक किया गया है।

डॉ. चक्रपाल सिंह ने ठीक ही लिखा है 'शब्दों के दार्शनिक बिंबों को स्थूल भौतिक अवधारणाओं में बाँधना अनैतिक है। इन नैतिक बिंबों ने तो हमें जीने की प्रेरणा दी है।' यह सांप्रदायिक कट्टरपंथियों का प्रयास है लोगों को भड़काने का, मौलिक समस्याओं से ध्यान हटाने का और अपना स्वार्थ सिद्ध करने का। आज देश को सुदृढ़ बनाना है तो वंदेमातरम् की भावना को और अधिक संजीव बनाना होगा।

तराना-ए-हिंदी सारे जहां से अच्छा हिंदोस्तां हमारा (१९०४)

'आपको अंतरिक्ष से भारत कैसा लग रहा है?' भारत की प्रधानमंत्री श्रीमति इंदिरा गाँधी ने श्री राकेश शर्मा से प्रश्न किया तो रूसी अंतरिक्ष यान सोयुज टी-11 में पृथ्वी से हजारों मील दूर अंतरिक्ष में चक्कर काट लगा रहे थे। उत्तर मिला 'सारे जहां से अच्छा हिंदोस्तां हमारा' अर्थात् डॉ. सर मोहम्मद की उर्दू कविता तराना-ए-हिंदी को यह गौरव प्राप्त हुआ कि वह चाँद-तारों की दुनिया में अर्थात् आकाश में गुँजरित हुई। माँ वसुंधरा की गोदी में स्थित सुजला, सुफला, शस्यश्यामला कर्मभूमि, पुण्यभूमि भारत के पुत्र-पुत्रियों के कंठों से भी यह कविता रसधार रूप में प्रवाहित हुई।

गणतंत्र दिवस हो या स्वतंत्रता दिवस, यह कविता रेडियो, दूरदर्शन पर सुनाई जाती है। स्कूली बच्चे हों या संगीत के कलाकार, अपनी मधुरवाणी में यह तराना प्रस्तुत करते हैं। सेना या पुलिस के बैंड भी समारोहों में इसी धुन के स्वर बिखेरते हैं। लोग इस कविता को तथा इसकी धुन को पसंद करते हैं लेकिन कितने लोगों को इस कविता की पृष्ठभूमि की जानकारी है।

डॉ. सर मोहम्मद इकबाल (उर्दू के प्रसिद्ध कवि) ने इस कविता की रचना सन् 1904 में की थी। वह गर्मी में अपने बड़े भाई शैख अता मोहम्मद के पास मिलने गये थे जो उन दिनों एबटाबाद में एस.डी.ओ.

मिलिट्री वर्कस थे। इस कविता की संभवत: यहीं रचना हुई और 10 अगस्त 1904 को डॉ. इकबाल ने मुंशी दया नारायन निगम की पत्रिका 'जमाना' कानपुर में प्रकाशन के लिए इसे भेजा। मुंशी दया नारायन निगम ने इस कविता को इस टिप्पणी के साथ प्रकाशित किया(उसका अनुवाद प्रस्तुत है) 'हिंदुस्तानी भाषाओं और विशेषकर उर्दू में देशभक्ति और जोश के साथ ऐसी कविताएँ कम ही लिखीं गई होंगी जिसमें देश को विशेषताओं के वर्णन के साथ-साथ इंसान की सर्वोच्च देशभक्ति की भावना का लिहाज हो। इंग्लैंड में ऐसे गीत हर व्यक्ति की जुबान पर होते हैं और वहाँ के वासियों के हृदय पर इनका एक विशेष प्रभाव होता है। युद्ध काल हो या शांति का समय इन गीतों के कारण देश प्रेम उनके हृदय में ताजा रहता है फिर कोई कारण नहीं कि डॉ. इकबाल की यह नज्म जो उन्होंने हमारे प्यारे और पुराने देश पर लिखी है, लोकप्रिय और लाभकारी सिद्ध न हो। हमारे मतानुसार यह कविता छोटे-बड़ों सामान्य और विशिष्टजनों सभी में लोकप्रिय होने योग्य है।'

डॉ. इकबाल ने अपनी कविता का शीर्षक 'हमारा देस' के नाम से प्रकाशन के लिए भेजी थी। कुछ समय बाद इसमें संशोधन किये गये। इसका शीर्षक 'हमारा देस' से बदलकर तराना-ए-हिंदी रखा गया। इस प्रकार काव्य पंक्तियों में भी कुछ परिवर्तन हुए जैसे पहले कवि ने लिखा था-

'पंजाब क्या, दकिन क्या, बंगाल, ओ बंबई क्या
हिंदी हैं हम वतन है हिंदोस्तां हमारा
मजहब नहीं सिखाता आपस में बैर रखना
हिंदी हैं हम वतन है हिंदोस्तां हमारा
इस प्रकार अंतिम पंक्ति को भी सुधारा गया
इकबाल कोई महरम अपना नहीं जहां में
मालूम क्या किसी को दर्दे-निहां हमारा
परिवर्तित रूप यह था
इकबाल कोई अपना महरम नहीं जहां में
मालूम क्या किसी को दर्दे-निहां हमारा

लाला हरदयाल (सुविख्यात क्रांतिकारी) जो उस समय लाहौर में एम.ए. के विद्यार्थी थे, उन्होंने यंगमैन्स एसोसिएशन की स्थापना की। डॉ. इकबाल उस जमाने में गर्वमेंट कॉलेज लाहौर में प्राध्यापक थे। लाला हरदयाल ने जब अपनी संस्था का उद्घाटन समारोह किया तो डॉ.

इकबाल को उसका अध्यक्ष बनाया। तीन बजे दिन में यह जलसा प्रारंभ हुआ तो बजाय अध्यक्षीय भाषण देने के डॉ. इकबाल ने यह कविता पढ़नी शुरू कर दी जिसे मोहम्मद उमर नाम के फर्स्ट ईयर के विद्यार्थी (लेखक नाटक सागर) ने वहीं नोट किया और बाद में साफ-साफ लिखकर मौलाना शर्र लखनवी की पत्रिका 'इत्तहाद' में प्रकाशन के लिए भेज दिया। लेकिन उसमें बहुत ही अशुद्धियाँ थीं जिसकी आलोचना हुई। जब इकबाल सन् 1913 में श्रीनगर (कश्मीर) गये तो वहाँ हाउस बोट में ठहरे थे। एक दिन एक शिकारा (छोटी नाव) निकट से गुजरा जिसमें दो-तीन बच्चे यही गीत गा रहे थे।

इस गीत में डॉ. इकबाल अपने आपको भारत में बाहर से आया मानते हुए लिखते हैं-

'ए आबरोदे-गंगा वह दिन है याद तुझको।
उतरा तेरे किनारे जब कारवां हमारा।'

इसमें आर्यो का भारत आने का इशारा है या और किसी का, यह स्पष्ट नहीं है।

उर्दू के मशहूर शायर प्रो. फिराक गोरखपुरी इकबाल के संबंध में लिखते हैं कि उनका व्यक्तित्व विभक्त था अर्थात् उसमें एक धारा राष्ट्रवाद की थी तो दूसरी संप्रदायवाद की। 'हमारा देस' या तराना-ए-हिंदी के रचयिता ने वर्षो बाद तराना-ए-मिल्ली लिखा जिसके दो शेर प्रस्तुत हैं।

चीनो-अरब हमारा, हिंदोस्तां हमारा
मुस्लिम हैं हम वतन है, सारा जहां हमारा
तेगों के साये में हम पलकर जवां हुए हैं
खंजर हिलाल का है, कौमी निशां हमारा

इकबाल के इस चिंतन का यह पहलू भी है कि उन्होंने ऑल पार्टिज मुस्लिम कांफ्रेंस में अपने अध्यक्षीय भाषण में मुस्लिम प्रांतों को भारतीय संघ में खुद मुख्तार बनाने की बात की थी। सारे जहां से अच्छा हिंदोस्तांवाली कविता में 9 शेर (18 काव्य पंक्तियां) हैं जिनको उसी क्रम में प्रस्तुत किया जा रहा है जिस क्रम में डॉ. इकबाल ने अपने हाथ से 10 अगस्त 1904 को लिखकर 'जमाना' नामक पत्रिका कानपुर में प्रकाशन के लिए भेजा था।

'हमारा देस'

1. सारे जहां से अच्छा हिंदोस्तां हमारा।
   हम बुलबुलें इसकी यह गुलस्तिां हमारा।

2. गुर्बत में हों अगर हम रहता है दिल वतन में।
समझो वहीं भी हमें भी दिल हो जहां हमारा।
3. पर्वत वह सबसे ऊंचा, हमसाया आस्माँ का,
वह संतरी हमारा वह पास्बां हमारा।
4. गोदी में खेलती हैं जिसके हजारों नदियां।
गुलशन है जिनके दम से रशके-जिनां हमारा।
5. ऐ आबरोदे-गंगा वह दिन है याद तुझको।
उतरा तेरे किनारे जब कारवां हमारा।
6. मजहब नहीं सिखाता आपस में बैर रखना।
हिंदी हैं हम वतन है हिंदोस्तां हमारा।
7. यूनानो, मिस्र, रूमा सब मिट गये जहां से।
अब तक मगर है बाकी नामो-निशां हमारा।
8. कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी।
सदियों से आस्माँ है ना मेहरबां हमारा।
9. इकबाल कोई अपना मेहरम नहीं जहां में।
मालूम क्या किसी को दर्दे-निहां हमारा।

आजाद भारत में इस तराने की धुन बहुत अच्छी बनाई गई है 'हिंदी हैं हम' को तीन बार दोहरा कर इसमें जोर पैदा किया गया है जो हमारे भारतवासी होने के गर्व और संकल्प की अभिव्यक्ति करता है। मजहब नहीं सिखाता में एकता का संदेश है जो समस्त भारतवासियों को धार्मिक संकीर्णताओं से ऊपर उठकर एक होने की बात करता है।

कुछ लोगों ने आलोचना की कि 'सारे जहां से अच्छा हिंदोस्तां हमारा' कहना भारतीय चिंतन के अनुकूल नहीं है। हम तो मानते हैं 'उदार चरितानाम वसुधैव कुटुम्बकम' पूरे संसार को एक परिवार मानने वाला देश किसी को श्रेष्ठ और किसी को निम्न कैसे मान सकता है। कुछ विचारकों को तो इस चिंतन में यूरोपीय (विशेषकर जर्मनी) के चिंतन की झलक नजर आई। भले ही आलोचनाएँ हों, आपत्तियाँ हों, मगर सत्य है यह कि स्वतंत्रता पूर्व और स्वतंत्र्योत्तर काल में इस तराना-ए-हिंदी का जादुई प्रभाव रहा है जो आज भी दिलो-दिमाग को छूता है।

राष्ट्रगान : जन-गण-मन (१९११)

जन-गण-मन हमारा राष्ट्रगान है जिसकी रचना नोबल

पुरस्कार विजेता गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर ने सन् 1911 में की थी। कुछ लोगों ने इस कृति को राष्ट्रगान के रूप में अपनाने पर आपत्ति उठाई थी। उनका तर्क था कि वंदेमातरम् जैसी कविता को गौण करके एक ऐसी कविता को सर्वोच्च स्थान देना जो विदेशी शासक के आगमन पर लिखी गई हो, उचित नहीं है। स्वतंत्रता महासंग्राम 'वंदेमातरम्' की छाया में लड़ा गया, लाखों लोगों को इस महान गीत ने प्रभावित किया, लेकिन जब हम स्वतंत्रता पाने के निकट पहुँचे तो इसे राष्ट्रगान का स्थान नहीं दिया गया। आज जन-गण-मन की देश-विदेश में धूम है परंतु वंदेमातरम् गाने वाले कम ही मिलते हैं और ऐसे लोग तो और भी कम हैं जिन्हें वंदेमातरम् के पांचों पद कंठस्थ हों। आलोचकों के अनुसार यह भाग्य की विडंबना है कि ब्रिटिश सम्राट के स्वागत के कार्यक्रम के लिए लिखा जाने वाला गीत सर्वोच्च है और स्वतंत्रता की प्रेरणा देने वाला महामंत्र 'वंदेमातरम्' गौण और विवादों के घेरों में है। आलोचकों की इस बात को समझने और उसका उचित जवाब देने के लिए इस गीत की पृष्ठभूमि को जानना अति आवश्यक है।

पृष्ठभूमि

सन् 1911 के दिल्ली दरबार के बाद ब्रिटिश सम्राट जार्ज पंचम का स्वागत कार्यक्रम कलकत्ते में आयोजित होना था। बंगाल के एक सुप्रसिद्ध व्यक्ति (जिनका नाम टैगोर ने नहीं बताया संभवत: सुरेंद्र नाथ बनर्जी होंगे) महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर के पास आये और उनसे निवेदन किया कि वह सम्राट के लिए गीत लिखें। रवींद्र बाबू मुर्रव्वत के कारण उनसे इंकार तो नहीं कर सके, परंतु ऐसा गीत लिख दिया जिससे सम्राट के स्वागत कार्यक्रम के आयोजकों ने पसंद नहीं किया और उसकी बजाय एक हिंदी गीत उस अवसर पर प्रस्तुत किया गया।

टैगोर द्वारा रचित यह गीत किसी भाग्य विधाता की ओर इशारा कर रहा है इसके संबंध में यहाँ तनिक गहराई से सोचने की जरूरत है। क्या पर्वत, सागर, सुगंधित हवाएँ, पंख-पखेरू आदि किसी नश्वर व्यक्ति का गुणगान करते हैं? वास्तव में टैगोर ने पूरी कविता सृष्टि रचयिता परमेश्वर की स्तुति में लिखी थी। इसीलिए इस कृति को टैगोर के निवास स्थान पर एक धार्मिक आयोजन में गाया गया। शांति निकेतन में वसंत ऋतु के अवसर पर आयोजित होने वाले शरद उत्सव पर भी इसे प्रस्तुत किया गया था। सन् 1917 के काँग्रेस अधिवेशन में इसको गाया गया। उस अधिवेशन की जो कार्यवाही लिखी गई उसमें इस गीत को देव स्तुति या प्रभु स्तुति गीत

कहा गया है।

जन-गण-मन रचना के आलोचक यह भूल जाते हैं कि रवीद्रनाथ ठाकुर ने 1905 के बंग-अंग-भंग विरोधी आंदोलन में सरकार का विरोध ही किया था। शांति निकेतन के प्रति विदेशी सरकार का रवैया क्या था? यह विज्ञप्ति द्वारा सरकारी कर्मचारियों को कहा गया था कि वे अपने बच्चों को विश्व भारती शांति निकेतन में न भेजें। सरकार के विरोध में लिखने वाला, सरकार की नजरों में खटकने वाली संस्था का संस्थापक भला सम्राट की स्तुति क्यों लिखेगा?

जन-गण-मन का अधिनायक कौन है? स्वयं टैगोर ने 1937 के एक पत्र में लिखा है 'जो लोग इसे सम्राट की प्रशंसा समझते हैं उन पागलों को मैं क्या कहूँ।'

एतराज करने वालों को स्वयं ही विचार करना चाहिए कि वह जन-जन के दिलों पर कब्जा करने वाले कौन हैं जिसे भारत भाग्य विधाता के नाम से कवि ने संबोधित किया है? पंजाब, सिंधु, गुजरात, मराठा, द्रविड़ उत्कल बंगाल, हिलोंरे लेता चंचल सागर, उँचे पहाड़, तेजी के साथ बहती ग़ंगा यमुना किसके गुण गाते हैं? कौन जन-जन का मंगलदायिक है? ऐसा कोई भी सम्राट नहीं हो सकता। वास्तव में यह सृष्टि-रचयिता परमेश्वर की स्तुति है।

नेताजी सुभाषचंद्र बोस ने आजाद हिंद फौज के लिए रवींद्रनाथ ठाकुर के इस बंगला गीत को पसंद किया, इसका सरल हिंदू अनुवाद आजाद हिंद रेडियो के मुमताज हुसैन ने किया और धुन बनाई कैप्टिन राम सिंह ने। उनका साथ दिया संगीतज्ञ गुप्ता जी ने। स्वरबद्ध करते समय फौजी मानसिकता का भी ध्यान रखा गया था। 3 या 4 अक्टूबर 1943 की रात दो बजे इसकी धुन बनी। मेस में रखे पियानो को देखकर 'जय हो' को 'ब्लो' करने का विचार आया। रात को ही पूरे आर्केष्ट्रा को जगाकर लाइन-अप किया गया और धुन तैयार की गई। सुबह इसे मेजर जनरल मोहन सिंह को सुनाया गया। टेलीफोन पर नेताजी को सूचना दी गई। एक सप्ताह पश्चात् जब नेताजी वापस आये तो उन्हें यह धुन सुनाई गई वह बहुत प्रसन्न हुए और आजाद हिंद फौज के लिए इस धुन को अपनाया गया। इसे नाम दिया गया कौमी तराना।

कौमी तराना

शुभ सुख चैन की बरखा बरसे

भारत भाग है जागा
पंजाब, सिंध, गुजरात, मराठा
द्रविड़, उत्कल बंगा
चंचल सागर, विंध्य हिमाचल
नीला यमुना गंगा
तेरे नित गुन गायें, तुझसे जीवन पायें
सब जन पायें आशा
सूरज बनकर जग पर चमके
भारत नाम सुभागा
जय हो, जय हो, जय हो, जय-जय-जय-जय
हो भारत नाम सुभागा
सबके मन में प्रीत बसाये'
तेरी मीठी वाणी
हर सूबे के रहने वाले
हर मजहब के प्राणी
सब भेद और फक्र मिटा के
सब गोद में तेरी आके
गूँथे प्रेम की माला
सूरज बनकर जग पर चमके
भारत नाम सुभागा
जय हो, जय हो, जय हो, जय-जय-जय-जय
हो भारत नाम सुभागा
सुबह सवेरे पंख पंखेरू
तेरे ही गुन गायें
बास भरी भरपूर हवाएँ
जीवन में ऋतु लायें
सब मिलकर हिंदी पुकारें
जय आजाद हिंद के नारे
प्यारा देश हमारा
सूरज बनकर जग पर चमके
भारत नाम सुभागा
जय हो, जय हो, जय हो, जय-जय-जय-जय

हो भारत नाम सुभागा।

भारत के विभाजन के पूर्व जिन प्रदेशों का इस गीत में उल्लेख है आज उनमें से कुछ दूसरे देश की सत्ता में हैं तथा पंजाब और बंगाल का विभाजन हो चुका है। उत्तरपूर्व में एक स्थान पर जब राष्ट्रगान गाया गया तो कुछ लोग मौन हो गये उनसे कारण पूछा गया तो उन्होंने कहा इस गीत में हमारे प्रदेश का नाम ही नहीं है। उन्हें समझाया गया यह स्वतंत्रता पूर्व लिखा गीत है। उस समय बहुत से प्रदेश या तो थे ही नहीं या दूसरे प्रांतों का हिस्से थे।

राष्ट्रगान में समस्त राज्यों या केंद्र शासित प्रदेशों का उल्लेख करना संभव भी नहीं है क्योंकि राज्यों के नाम या सीमाएं बदलती रहती हैं, इस कारण हर बार राष्ट्रगान में परिवर्तन नहीं किया जा सकता। उत्तर मिला कि वंदेमातरम् की तरह ही ऐसा गीत क्यों नहीं अपनाया गया जो प्रदेशों की जकड़बंदियों की बजाय संपूर्ण भारत का उल्लेख करे।

कैसी विचित्र बात है कि हिंदुस्तान और पाकिस्तान दोनों साथ आजाद हुए परंतु दोनो के राष्ट्रगान अपनी राष्ट्रीय भाषाओं में नहीं हैं। पाकिस्तान का राष्ट्रगीत फारसी में है और भारत का बंगाली भाषा में।

राष्ट्रगान

जन-गण-मन अधिनायक जय हे
भारत भाग्य विधाता
पंजाब सिंधु गुजरात मराठा
द्राविड़ उत्कल बंग
विन्ध्य हिमाचल यमुना गंगा
उच्छल जलधि तरंग
तव शुभनामे जागे
तव अशुभ आशिष माँगे
गाहे तव जय गाथा
जनगण मंगलदायक जय हे
भारत-भाग्य विधाता
जय हे, जय हे, जय हे
जय, जय, जय, जय हे।

भारत की संविधान सभा में जन गण मन को राष्ट्रगान के रूप में मान्यता दे दी गई। सन् 1946 में संयुक्त राष्ट्र में इसको सरकारी

रूप से राष्ट्रगान के नाम से भेजा गया था। आज यह धुन देश-विदेश में हर जगह गूँज रही है। राष्ट्रगान 52 से लेकर 57 सेकेण्ड में गाया जाता है तथा इसके गाने के नियम कायदे हैं। होशियार सीधे खड़े होकर, जिधर गाना गाया जा रहा है उधर मुँह करके साथ मिलकर इसको गाना चाहिए। एक प्रदेश में एक धार्मिक संप्रदाय के अभिभावकों और स्कूल प्रबंधकों ने अपने विद्यार्थियों के राष्ट्रीय गान गाने पर रोक लगाई, क्योंकि धार्मिक रूप से उनके यहाँ गाना वर्जित है। हमें राष्ट्र के गौरव को बनाये रखना है तो हदबंदियों, संकीर्णताओं से ऊपर उठना होगा। आशा है कि हम अपने इस मौलिक कर्त्तव्य का ध्यान रखेंगे और राष्ट्रगान तथा राष्ट्रीय ध्वज को पूरा सम्मान देंगे, क्योंकि ये हमारे राष्ट्र के गौरव के प्रतीक हैं।

धर्म और उसका राष्ट्रीय स्वरूप

डॉ. श्रीरंजन सूरिदेव

धर्म का उद्देश्य जितना ऊँचा होता है, उसकी क्रियाशीलता भी उतनी ही अद्भुत और प्रभावकारी होती है। धर्म की प्रेरणा से मनुष्य जितना कठोर हो जाता है, उतना और किसी प्रेरणा से नहीं। इसी प्रकार, धर्म की प्रेरणा से मानव जितना कोमल हृदय का हो जाता है, उतना और किसी प्रवृत्ति से नहीं। यही नहीं, किसी धर्म में विश्वास करना देशभक्ति का या राष्ट्र प्रेम का एक अंग हो जाता है। इस दृष्टि से धर्मों में सामंजस्य का विधान या समन्वय की स्थापना अतिशय कठिन काम है।

अनेकता में एकता और एकता में अनेकता भारतीय धर्म की विशेषता है। हम सब मनुष्य एक होते हुए भी आपस में अलग-अलग हैं। मनुष्य-जाति की दृष्टि से हम सब मनुष्य एक हैं, परंतु व्यक्ति की दृष्टि से सब अलग-अलग हैं। मनुष्य पुरुष होने के नाते स्त्री से भिन्न है, किंतु मनुष्य होने के नाते स्त्री-पुरुष एक ही हैं। मनुष्य होने के नाते अन्य जीव-जन्तुओं से वह पृथक् है, परंतु प्राणी होने के नाते सब जाति एक समान है। समत्व की यह दृष्टि ज्ञानयोग का विषय है। ज्ञानयोग के ही माध्यम से हम मानव-जाति और प्राणिजगत् में एकत्व का दर्शन कर सकते हैं। प्रत्येक वाणी, अर्थात् पेड़-पौधे, कीट-पतंग से लेकर मानव जैसे श्रेष्ठ जीव में एक ही प्रभु विराजमान हैं। प्रत्येक जीव के आत्मा की परमात्मा को जान लेना, एकाकार हो जाना या उसका साक्षात्कार करना- यही धर्म है। धर्म केवल सुनने या मान लेने की चीज नहीं है। समस्त मन-प्राण से विश्वास की वस्तु के साथ हो जाना ही धर्म है।

धर्म ही जातीय या राष्ट्रीय जीवन की मूलभित्ति है। धर्म ही राष्ट्रीय जीवन का प्राण है। जीवन का अस्तित्व धर्म से अविच्छिन भाव से जुड़ा हुआ है। जिस प्रकार मछली पानी में अपनी शक्ति से प्रेरित है, पानी की भूमिका उसके तैरने की क्रिया में एक सहायक की है उसी प्रकार मानव के उत्कर्ष और विकास की प्रक्रिया में धर्म की भूमिका एक सहायक की होती है। मानव बिना धर्म के अपनी गति की क्रिया नहीं कर सकता। संसार का प्रत्येक गत्यात्मक स्थिति धर्म की सहायता से ही संभव है।

धर्म के अनेक रूप हो सकते हैं, पर सबकी लक्ष्य एक ही है-मोक्ष प्राप्ति हेतु सभी धर्मोपासक भिन्न-भिन्न मार्गों से इसी एक लक्ष्य

पर पहुँचते हैं। ये मार्ग मुख्यत: चार हैं : कर्ममार्ग, भक्तिमार्ग, योगमार्ग और ज्ञानमार्ग। ये मार्ग भी एक दूसरे से सर्वथा अलग नहीं हैं, वरन् एक मार्ग का तिरोभाव दूसरे में हो जाता है। मार्ग के ये विभाग मनुष्य के प्रधान गुण या उसकी प्रमुख प्रवृत्ति के अनुसार किये गये हैं। अन्यथा कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं होता, जिसमें कर्म करने के अतिरिक्त दूसरी कोई क्षमता न हो, जो अन्य भक्त होने के अतिरिक्त और कुछ न हो, अथवा जिसके पास केवल ज्ञान के सिवा और कुछ न हो या फिर योग को छोड़कर और कोई समर्थ्य न हो। निश्चय ही, ये चारों मार्ग एक लक्ष्य पर पहुँच कर एक हो जाते हैं। सारे धर्म और कर्म अथवा उपासना और अराधना की समस्त साधन-पद्धतियाँ हमें उसी एक लक्ष्य, यानी मोक्ष की ओर ले जाती हैं।

मुक्तिलाभ की चेष्टा की अभिव्यक्ति प्रत्येक धर्म में पाई जाती है। यही सारी नि:स्वार्थता की, सारी नैतिकता की आधारशिला है। समग्र रूप से नि:स्वार्थ और नैतिक हो जाना ही जीवन का चरम लक्ष्य है। केवल अपने शरीर की रक्षा करना क्षुद्र व्यक्तित्व का लक्षण है। इसलिए समस्त दार्शनिक और नैतिक शिक्षाओं का लक्ष्य है-व्यक्तित्व को क्षुद्रता से मुक्त कर अनन्त विस्तार में विलीन कर देना। जो संपूर्ण रूप से नि:स्वार्थी हो जाता है, वह विश्व के साथ एकरूप हो जाता है। इस प्रकार की वैश्विक एकरूपता की प्राप्ति सब धर्म का लक्ष्य है।

नि:स्वार्थ कर्म द्वारा मानव-जीवन के चरम लक्ष्य, मुक्ति को प्राप्त कर लेना ही कर्मयोग है। हमारा प्रत्येक स्वार्थपूर्ण कार्य अपने इस लक्ष्य तक हमारे पहुँचने में बाधक होता है। ठीक इसके विपरीत प्रत्येक नि:स्वार्थ कर्म. हमें अपने चरम लक्ष्य की ओर आगे बढ़ता है। अतएव नैतिकता की यही परिभाषा हो सकती है कि जो स्वार्थी है वह अनैतिक है और जो नि:स्वार्थी है वह नैतिक है।

आज समाज में मध्यमवर्ग की स्थिति अत्यंत दयनीय है। न तो वह उच्चवर्ग की भाँति सुविधा-भोगी है और न निम्न वर्ग की भाँति श्रमजीवी। सुविधा और श्रम की दुविधा से ग्रस्त मध्यमवर्गीय जन सामाजिक रूढ़ियों और धार्मिक आडंबरों से मुक्त नहीं है। उच्च वर्ग की प्रभुता और प्रदर्शन की होड़ में भी यह पीछे नहीं रहना चाहता। परिणामत: वह वर्ग दुहरी मार और भार से त्रस्त है।

गृहस्थों की बात छोड़कर हम यदि देश-विदेश के बृहत् साधु समाज की जीवन प्रक्रिया को देखें तो पता चलेगा कि जिन साधकों

ने बाहरी परिग्रह को छोड़कर वैराग्य धारण किया है, उनमें से अनेक कमोवेश आंतरिक परिग्रह से ग्रस्त हैं। उनमें विवेक तो है सच्चा वैराग्य नहीं है। अपेक्षित सद्विवेक से वे वंचित हैं। उन्होंने बाहरी संसार छोड़ा है, पर भीतर के संसार के प्रति उनकी आसक्ति विस्तृत और प्रगाढ़ है। इसी का परिणाम है कि समाज और देश में सांप्रदायिक विद्वेष फैलता जा रहा है, धर्म के नाम पर युद्ध, हुठाग्रह और आतंकवाद का बोल-बाला है।

अनुभूति के स्तर पर कई बार ऐसा प्रतीत होता है कि व्यक्ति जब वैराग्य मार्ग की ओर बढ़ता है, तब कंचन और कामिनी को छोड़ने में अधिक अंत:संघर्ष नहीं करना पड़ता। परंतु यश की महत्वाकांक्षा से ऊपर उठने में अधिक अंत:संघर्ष करना पड़ता है। जो साधक आत्मदर्शन की अपेक्षा आत्मप्रदर्शन में उलझ जाता है, वह आन्तरिक चेतना से जुड़कर भी साधना नहीं कर पाता। उसका पूरा जीवन कीर्तिकामना की पूर्ति में ही लगा रहता है। आज धर्म और अध्यात्म के क्षेत्र में पूजा-पाठ, प्रतिष्ठा समारोह, भोज-भण्डारा, भक्तों की भीड़ आदि के जो प्रसंग सामने आते हैं, उनमें आत्मदर्शन का भाव अधिक रहता है। धर्म के उपदेशक धर्मस्थलों में अपरिग्रह का उपदेश तो अवश्य करते हैं, पर स्वयं प्रतिष्ठा पाने की महत्वाकांक्षा के परिग्रह से वे मुक्त नहीं हो पाते।

धर्म के क्षेत्र में ही नहीं, राजनीतिक स्तर पर भी जो राष्ट्र विश्व-शांति के लिए कार्यरत हैं, वे भी वैचारिक परिग्रह से त्रस्त हैं। शस्त्रीकरण, गुटबंदी, शीत-युद्ध की लहर आदि सबका मूल कारक तत्व परिग्रह की वृत्ति है। आज व्यक्ति ही नहीं, विश्व के राष्ट्र भी उपभोक्ता संस्कृति के प्रति आग्रहशील हैं और संपूर्ण ज्ञानविज्ञान की संस्कृति इंद्रियों के विषय-सेवन के क्षेत्रों को विस्तृत करने और विषयवासना के सुखों की माँग की वृद्धि करने में लगी हुई है। जबतक उपभोग के स्थान पर उपयोग की दृष्टि का विकास नहीं होता, तबतक वस्तु, व्यक्ति और विचार तीनों स्तरों पर परिग्रह की जकड़ बढ़ती जाएगी।

आज के जीवन-व्यवहार में महावीर का अपरिग्रह-सिद्धांत अधिक प्रासंगिक है। अपरिग्रह के सिद्धांत को चरितार्थ करने के लिए इच्छाओं को नियंत्रित करना या परिग्रह को परिमित करना आवश्यक है। परिमाण से अधिक की प्राप्ति का उपयोग अपने लिए नहीं, वरन् समाज के लिए होना चाहिए। यह दृष्टि जिस मनुष्य में विकसित हो जाती है, उसमें शेष सृष्टि के साथ सहानुभूति, प्रेम, एकता, समता और सेवा का भाव सहज

ही जागरित होता है। इस भावना के जागरित होने पर अहिंसा, अनासक्ति, वैचारिक उदारता और अपरिग्रह की साधना का विकास स्वत: होता चलता है।

धर्म के तहत, राष्ट्रीय स्तर पर अपरिग्रह का विचार आज के युग की अपरिहार्य आवश्यकता है। सभी धर्मों और दर्शनों में अपरिग्रह की वृत्ति को सच्ची शांति और अखंड आनंद का मूल उत्स माना गया है। यह ज्ञातव्यह है, वस्तुओं का संग्रह परिग्रह नहीं है, उनपर स्वामित्व परिग्रह है, समुदाय अथवा संप्रदाय परिग्रह नहीं है। सांप्रदायिक परिग्रह है, विचारों का बैविध्य और बाहुल्य परिग्रह नहीं है, उनके प्रति कदाग्रह ही परिग्रह है। सच तो यह है कि आग्रह से रहित परिग्रह जीवन और समाज के प्रति एक विकासवादी दृष्टिकोण है।

महावीरस्वामी से स्वामी विवेकानंद तक सभी भारतीय धर्मचिंतकों ने परिग्रह को दु:ख का कारण कहा है। परिग्रह से राष्ट्र की जनता का दु:ख बढ़ता है। इसके विपरीत अपरिग्रह-धर्म को अपनाने से जनता के कष्ट का निवारण होता है और दु:ख-निवारण ही राष्ट्रीय धर्म का सच्चा रूप है। कहा भी गया है : 'परस्स अदुक्खकरणं धम्मो।' पर दु:ख का निवारण ही, या दूसरे को दु:खविहीन करना ही धर्म है। (वसुदेवहिण्डी)

मनु ने भी धर्म की परिभाषा करते समय धर्म के राष्ट्रीय स्वरूप को निरूपित किया है। उसके अनुसार धर्म का रूप मनुष्य के आधार, संस्कार आदि के माध्यम से व्यक्त होता है। वह ब्रह्मज्ञान का अंश है। राग-द्रेष और संशय से रहित वे वेदविद् सज्जनों द्वारा नित्य अनुष्ठित और उनके द्वारा मन से स्वीकृत लोकहित और परलोक के साधनभूत सदाचार ही धर्म है।

भारतीय संस्कृति में राष्ट्रीयता की परिकल्पना

कुमार रवीन्द्र

भारतीय संस्कृति का मूलभाव वह आस्तिक संचेतना है, जिससे हम मनुष्य को, मनुष्य होने को परिभाषित करते हैं। यह संचेतना उस आस्था से उपजी है कि मनुष्य मूलत: दैवी संपदा का प्राणी है और उसकी आत्मा का स्वरूप सत-चित् है। यह आस्तिक संचेतना उसके सभी सोचों और अर्थातों में देखी जा सकती है। हमारी राष्ट्रीयता की परिकल्पना में भी इसी सात्विक मूलभाव की अभिव्यक्ति होती है। जब हम किसी राष्ट्र की परिकल्पना करते हैं, तो उसमें हम किसी निश्चित सीमाबद्ध भौगोलिक इकाई और उसमें रहने वाली जनसंख्या की ही बात नहीं सोचते हैं, अपितु इनसे अतिरिक्त उन मूलभूत आदिम संचेतनाओं और संज्ञानों की बात अधिक सोचते हैं, जो उन जनसमुदाय को उस भौगोलिक इकाई से जोड़ते हैं और जिनसे उक्त जनसमुदाय की अस्मिता अन्य इलाकों में रहने वाले अन्य जनसमुदायों से अलग दिखती है और जिनमें उस समुदाय को सांस्कृतिक मानते हैं और यही वह पहचान है, जिससे उसकी एक अलग राष्ट्र की चेतना बनती है। प्रत्येक राष्ट्र की अपनी अलग आस्तिकता होती है, जिसे उसकी राष्ट्रीयता कहा जाना चाहिए। राष्ट्रीयता की यह चेतना कुछ दिनों में नहीं बनती, कुछ वर्षो-दशकों या सदियों में नहीं बनती है, अपितु यह किसी जनसमूह के आदिम अवचेतन में अवस्थित प्रागैतिहासिक सामूहिक चेतना के रूप में दिखती है जिसके बनने में युगों-युगों लगे होंगे और इसके बनने की प्रक्रिया निरंतर चलती रहती है, यानि यह एक प्रवहमान धारा के रूप में उक्त जनसमूह की विरासत के रूप में वर्तमान तक पहुँची है और भविष्य में भी नई आकृतियाँ लेती निरंतर विद्यमान रहेगी। वस्तुत: राष्ट्रीयता कभी मरती नहीं, उसका संवर्धन-प्रवर्धन होता रहता है। हर समुदाय या जनसमूह की आदि-स्मृतियाँ इतिहास से बहुत पहले की होती हैं और वे उसकी पौराणिक आख्यायों के रूप में व्यक्त होती रहती हैं। हर समाज के अपने कुछ मिथक पुरुष होते हैं, जो इन पौराणिक आख्यायों के महानायक होते हैं और जिनके चरित्र में उस समाज की समग्र आस्तिक संचेतना केंद्रीभूत होकर व्यक्त होती है। संस्कृति का भाव इन्हीं आदि स्मृतियाँ किंवा मिथक पुरुषों की पौराणिक उपस्थिति से निर्मित होता है। आदि युग में विभिन्न इलाकों में जब अपने सामूहिक जीवन का विकास आदिम मानवों ने किया होगा, तब उन्होंने अपनी व्यक्तिगत और क्षेत्रीय आवश्यकताओं के अनुरूप समाज के निर्माण हेतु कुछ सांस्कृतिक

प्रणालियों और रीति-रिवाजों की भी संरचना की होगी। ये सांस्कृतिक पद्धतियाँ कुछ दैविक या आर्य पुरुषों की प्रेरणा या उनके जीवन के कार्यकलापों पर आधारित रही होगी हालांकि इनका प्रस्फुटन अकस्मात नहीं हो गया होगा। हर समाज में अपने पर्व त्योहार होते हैं, जिनमें उसकी सांस्कृतिक अभिचेतना की अभिव्यक्ति होती है और ये पर्व प्रागैतिहासिक काल की उसकी जातीय स्मृति से जुड़े होते हैं अस्तु ये उस संज्ञान के संकेतक चिन्ह होते हैं, जिससे उस समूह की जातीय अस्मिता की अलग पहचान बनती है। एक ओर तो यह अस्मिता क्षेत्रीय जातीय होती है, दूसरी ओर इसके माध्यम से मनुष्य होने का उस संज्ञा से उपजता है, जो अन्य पशु-पक्षियों से उसे अलगाता है, साथ ही उसे संपूर्ण स्थावर-जंगम सृष्टि और पदार्थ जगत से जोड़ता भी है। इस प्रकार हम पाते हैं कि राष्ट्रीयता का भाव दो स्तरों पर किसी समुदाय को दर्शाता है- एक ओर यह उसे अन्य मानव समुदायों के बरक्स अलग पहचान देता है, दूसरी ओर उसकी अस्मिता को उसके क्षेत्र की नदी-पर्वत-सागर आदि से बने परिवेश से जोड़ कर समग्र पदार्थ जगत से संयुक्त भी करता है। हर समुदाय की राष्ट्रीय सांस्कृतिक अवचेतना में ये दोनों धरातल एक साथ उपस्थित होते हैं। यही विरोधाभास मानुषी आस्तिकता को विशिष्ट बनाता है। एक और बात मनुष्य में आकर्षण-विकर्षण की विरोधी भाव स्थितियों की उपस्थिति भी एक साथ होती है। इसी से अपने और पराये, स्व एवं अन्य के बोध उपजते हैं। इसी के कारण अन्य समुदायों, उनकी सांस्कृतिक-सामाजिक चेतना से क्रिया-प्रतिक्रिया कै द्विविध आयाम विकसित होते हैं और कई बार सांस्कृतिक संघर्ष की प्रक्रिया से इन चेतनाओं का सम्मिश्रण भी होता है। प्रकटतः यह पारस्परिक संघात दोनों समाजों को राष्ट्रीयता-घातक लग सकता है, किंतु अपने औदात्य स्वरूप में रत राष्ट्रीयता को उदात्त एवं उदार बना कर उसका उन्नयन करता है, उसे समृद्ध बनाता है। इससे दोनों ही राष्ट्रों की अस्मिता अधिक समृद्ध, आकर्षक और विकासशील होती है, जिससे उसमें एक गहन गरिमा दृष्टि समाहित हो जाती है। हाँ, यह जरूर है कि संश्लेषण की इस प्रक्रिया में दोनों ही समुदायों के आदिम आग्रह कुछ हद तक खंडित होते हैं और एक नए समीकरण का उदय होता है, जिसमें दोनों के सांस्कृतिक विरसे एकबद्ध होते हैं। हो सकता है इससे एक तीसरी अस्मिता की उद्भावना हो, जिसमें दोनों समुदाय अपने को ठगा महसूस करें। इस प्रकार हम पाते हैं कि राष्ट्रीयता केवल भौगालिक-ऐतिहासिक चेतना तक सीमित रहने वाला संभावना नहीं है, वह एक जटिल मानसिकता है, जिसमें कई अपरिभाषित गुत्थियाँ एवं

ग्रंथियाँ होती हैं।

भारतीय संस्कृति में राष्ट्रीयता की उद्‌भावना सर्वप्रथम मनीषा के द्वारा अपने आदिग्रंथों वेदों में की गई। ऋग्वेद की ऋचाओं में राष्ट्र भाव को परोक्ष रूप से कई ढंगों से उद्‌भासित किया गया है। प्रकृति और निसर्ग के प्रारूप देवों की स्तुति करती ऋचाओं प्रतीक रूप में राष्ट्रपुरुष की विविध सामर्थ्यों अथवा राष्ट्र के स्थूल सूक्ष्म अभिरूपों को ही परिभाषित करती हैं। इंद्र की वृष्टि और कृषि के आराध्य देव के अतिरिक्त राजा की शक्तियों से समाहित राष्ट्र पुरुष के रूप में ही प्रस्तुति हुई है। अन्य देवों यथा वरुण, अग्नि और वायु की पराशक्तियों का जयगान भी इसी सर्वसमर्थ सर्वशक्तिमान रूप को व्याख्यायित करता है। बाद में यही परिकल्पना उपनिषदों के ब्रह्म-निरूपण और पुराणों के अवतार पुरुषों की अवधारणा का आधार बनी। एक पराक्रमशील, उद्यमी राष्ट्र का विजयोन्मुख आस्तिक भाव ही भारतीय मनीषा के प्रथम उन्मेष का मूलाधार बना। यही प्रागैतिहासिक राष्ट्र-भाव भारतीय पर्व-त्योहारों और उपासना-उत्सवों का सूक्ष्म विश्लेषण-विवेचन करें, तो हम पाएँगे कि उनके मूल में किसी न किसी राष्ट्रीय अस्मिता को ही अंततः परिभाषित और रेखांकित किया गया है। हर भूमिखंड की अपनी अलग विशेषता होती है, जिससे उसके आवासियों की सांस्कृतिक चेतना की निर्मिति होती है। भारत भूमि की सांस्कृति चेतना का मूलाधार है उसकी विविध-विशद एवं समृद्ध प्राकृतिक संपदा यानि उसके नदी, पहाड़-पठार-विस्तृत मैदान-मरूस्थल-सागरीय तटबंध, उसके विशिष्ट ऋतु-प्रसंग और इन सबसे जुड़े मानुषी उल्लास और आस्था के रूपक ऋतु-पर्व और पीढ़ी दर पीढ़ी सहस्त्राब्दियों में संचित अवचेतनीय सहभाव जिनमें ये सभी सम्मिलित हैं और इनके अतिरिक्त भी बहुत कुछ ऐसा जो अकथ-परिभाषित रह जाए, एक सांझी संघर्षरत उत्साह चेतना, जिससे भारतीयता का बोध होता है। इसी संघर्षशील अर्ध्वोन्मुखी चेतना की अभिव्यक्ति हम अपनी पुराकथाओं, अपने पौराणिक संदर्भो एवं अपने इतिहास में पाते हैं। राष्ट्र-निर्माण की कितनी ही जानी-अनजानी पुराकथाएँ हमारे राष्ट्रीय अवचेतना में समाहित हैं, चाहे वह सृष्टि हित के लिए सदाशिव के विषपान का प्रसंग हो या दधीचि के राष्ट्रहित हेतु आत्म-बलिदान का या सत्ता-संघर्ष में राम के वनवास का या स्वयं की महत्वाकांक्षाओं से परे हटकर कुल के कल्याण हेतु गंगापुत्र भीष्म की प्रतिज्ञा का या गंगा को धरती पर लाने के भगीरथ प्रयास का- एक बात जो इन सभी प्रसंगों को शुद्ध भारतीय अस्मिता का प्रतीक अपनाती है, वह है इन सभी महानायकों की राष्ट्र

दृष्टि। इसके अतिरिक्त तमाम अल्पश्रुत प्रसंग जिनमें राष्ट्रहित हेतु सत्ता के मदांध स्वरूप को निरंतर अनुशासित करने-रखने की ऋषि कुल के प्रयास के आख्यान हैं। राजा बेन के विरूद्ध ऋषि प्रज्ञा द्वारा त्याग देने या दंडित करने का प्रसंग भी है। तात्पर्य यह है कि राष्ट्रहित सर्वोपरि है और यदि शासक वर्ग के किसी कृत्य से उसका हनन होता है, तो राजा को दंडित करने, अनुशासित करने का अधिकार प्रजा-वर्ग को है, इस सिद्धांत की पुष्टि हमारे इन पुराख्यानों पे बार-बार हुई है। राष्ट्र के प्रति शासक के उत्तरदायित्व भाव को राजा के शासनारोहण के लिए वचनों में हम बड़े ही सशक्त ढंग से प्रस्तुत पाते हैं। उन शास्त्र वचनों में राजा अपने कर्त्तव्यों की व्याख्या करते हुए उनमें चूक होने पर अपने लिए कठोर दंड-संहिता का भी विधान करता है और एक व्यक्ति के रूप में स्वयं को और अपने परिवार के सदस्यों को अभिशापित करता है। मेरी दृष्टि में, विश्व के किसी भी राष्ट्र के संविधान में ऐसी कठोर दंडसंहिता नहीं पाई जाती है। आज के हमारे संविधान की प्रजातांत्रिक शपथ उस मुकाबले में बहुत ही दयनीय लगती है। राष्ट्र-हित के प्रति संपूर्ण समर्पण की यह भावना भारतीय संस्कृति की महती उपलब्धि है, इसमें कोई दो राय नहीं है।

यही आदिम (भारतीय) राष्ट्रीय संचेतना हमारी पूजा-क्रियाओं और धार्मिक अनुष्ठानों में भी अभिव्यक्ति पाती है। हमारे हर अनुष्ठान में इसी राष्ट्रीय संचेतना को रूपाकार करती दैवी संपदा का आह्वान मंत्रोच्चार के द्वारा किया जाता है। सबसे पहले नवग्रह मंडल, फिर 'क्षिति-जल-पावक-गगन-समीरा' पंचमहाभूतों का समुच्चय रूप पृथिवी-मंडल और इन पंचमहाभूतों से सर्जित संपूर्ण प्राणि सृष्टि, फिर 'जंबू द्वीपे-भारत खंडे' के भौगोलिक राष्ट्र पुरुष, जिसके सप्त पर्वत एवं सप्त नदियाँ उसके दैहिक स्वरूप की संरचना करते हैं, का आह्वान कर उनकी उपासना से ही हमारी किसी भी पूजा क्रिया का आरंभ होता है। हमारी राष्ट्रीय अस्मिता की प्रतीकात्मक रूप में दैहिक अनुभूति इन्हीं आह्वान मंत्रों के माध्यम से होती है। भारत राष्ट्र की भौगोलिक देह का एक और रूपक है शिव की तांडव मुद्रा में। यदि हम उस मुद्रा को भारत के कश्मीर से कन्याकुमारी और कच्छ से कोलकाता तक विस्तृत मानचित्र के समकक्ष रख कर देखें, तो हमारे राष्ट्र की भौगोलिक देह का यह रूपक पूरी तरह स्पष्ट हो जाता है। भारत राष्ट्र का यह सदाशिव रूप सर्वमंगलकारी और विषपायी आशुतोष-वरदानी है तो महासंहारक प्रलयंकर त्रिनेत्र भी। शिव का तीसरा नेत्र अमृतदायी और संहारक दोनों ही है। वस्तुतः शिव भारत की संपूर्ण राष्ट्रीय अस्मिता का

प्रतिनिधित्व करते हैं। वे भारत के सर्वाधिक लोक सम्मत देव हैं। एक ओर हिमाद्रि और उससे उपजी जलधाराओं, विशेष रूप से गंगा की विधि धाराओं के संयोजक रूपक हैं वे, तो दूसरी ओर दक्षिणीय पठार के आ-सिंधु विस्तार को भी वे अपनी तांडव मुद्रा में समाहित करते हैं। पूरे उत्तर में अक्षितिज विस्तृत हिमालय का रूपक उनकी अलक जटाओं के नृत्यमुद्रा में छिटके-छिताए स्वरूप में अभिव्यक्त होता है। दूसरी ओर उनकी नृत्यवत बाहों और चतुर्दिक व्याप्त हस्त मुद्राओं में पूरब से पश्चिम तक विस्तृत सिंधु गंगा का मैदानी विस्तार रूपायित होता है। नीचे नृत्यागत जंघाओं और पदों-पदतलों में दक्षिणी पठार आकार लेता है। इस प्रकार हम पाते हैं कि शिव राष्ट्र की देह-प्राण-आत्मा तीनों को परिभाषित करने वाले देवता हैं। वे ही लिंग रूप में हमारी वासनाओं के पूजनीय उदात्त स्वरूप के रूपक हैं। उनका आशुतोष स्वरूप हमारी आध्यात्मिक प्राकृतिक संपदा के प्रतीक पुरुष भी वही हैं। भारत की राष्ट्रीय संचेतना का यह रूपक सच में अनूठा है, प्रणम्य है।

भारतीय लोक-मानस में प्रमुख एवं अभिन्न रूप से अवस्थित जिन दो मिथक पुरुषों की परिव्याप्ति हम घर-घर में पाते हैं, वे राम और कृष्ण नाम के दोनों अवतार पुरुष अपने व्यक्तित्व में हमारी राष्ट्रीय अस्मिता का ही रूपक हैं। उन्होंने अपने कृतित्व के द्वारा इन्हीं जीवन मूल्यों को परिभाषित एवं स्थापित किया है, जिनकी अवधारणा हमारी राष्ट्रीय संचेतना का सूत्राधार है। राम के चरित्र में आसुरी संपदा के प्रतीक बाह्य आक्रांता रावण के विरूद्ध लोक मानस को जाग्रत कर, उसके संगठित अभियान की आख्या में इन्हीं सर्वजन सुख्य मूल्यों की विजयगाथा को प्रतीक रूप से प्रस्तुति हुई है। राम राज्य की परिकल्पना आज भी हमारे लिए आदर्श बनी हुई है। इन्हीं मूल्यों की प्रतीति कृष्ण के चरित्र में भी उद्‌भासित हुई है। कृष्ण की चारित्रिक परिकल्पना वस्तुतः अद्‌भुत है। एक ओर वे मानव-मन में बसी अभीप्साओं-वासनाओं के उदातीकृत रूपक हैं, वंशीवादक-रासरचैया हैं, तो दूसरी ओर मनुष्य में छिपी आसुरी वृत्तियों के दमनकर्ता और संहारक भी। वे जो जहाँ भी प्रताड़ित-तिरस्कृत हैं, उसके उद्धारक-प्रपोषक देव भी हैं। गीता के दशम-एकादश अध्यायों में अपनी विभूतियों का दर्शन-प्रदर्शन करते हुए कृष्ण ने जिस आद्यसत्ता को परिभाषित किया है, वह और कोई नहीं, हमारी संपूर्ण राष्ट्रीय अस्मिता का ही रूपायन है। समर्थ समग्र अस्ति का यह सर्वव्यापी भाव ही भारत की राष्ट्रीय इयत्ता की मुख्य पहचान है। राष्ट्र-पुरुष भारत का यह ऋषि आकलन हमारी अस्मिता की सबसे सटीक व्याख्या है।

सर्वांग-सुंदर, सर्वगुण संपन्न सोलह कलाओं का अधिष्ठाता यह अवतार पुरुष और कोई नहीं हमारा राष्ट्रपुरुष ही है, जिसका सर्वशक्तिमान विश्वरूप ही हमारी अस्मिता का श्रेष्ठतम स्वरूप है। भारतीय मनीषियों ने व्यक्ति, राष्ट्र की इयत्ता एवं संपूर्ण प्राणिजगत की इयत्ता को एकात्म माना है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की अभीप्सा हमारी वैयक्तिक एवं राष्ट्रीय अस्मिता को समग्र मानव जाति से जोड़ती है। इसी चिंतन आयाम से उपजी है हमारी 'सर्वजनहिताय सर्वजनसुखाय' ऋषि कामना। व्यक्ति और राष्ट्र अन्योन्याश्रित है। व्यक्ति के संस्कार के माध्यम से ही राष्ट्र का, पूरी मानव जाति और अंततः संपूर्ण प्राणि जगत और सृष्टि मात्र का विकास कर सकते हैं। व्यक्ति को षोडष संस्कार सृष्टि के समग्र विकासक्रम से उसे जोड़ने की प्रक्रिया का अंग है। संपूर्ण सृष्टि के कल्याण भाव से उपजा व्यक्ति एवं राष्ट्र भाव का पोषक तत्व है। यही है राष्ट्रीय अस्मिता का मूलमंत्र। हमारा विस्तारवाद भौगोलिक-राजनीतिक-आर्थिक उपनिवेशवाद नहीं है। वह सांस्कृतिक धरातल पर मनुष्य की जिजीविषा और जिज्ञासा के अनंत विस्तार का अभियान है, जिसमें कोई भी वहिष्कृत नहीं है, सभी मानव किंवा सभी प्राणी सम्मिलित हैं। यही है हमारा शुद्धात्मा राष्ट्रवाद और यही है भारतीय संस्कृति में उद्भासित राष्ट्रीयता की चरम परिकल्पना।

सांस्कृतिक राष्ट्रवाद
डॉ. श्यामसुंदर घोष

राष्ट्रवाद एक लंबे अरसे तक एक संकुचित अवधारणा माना जाता रहा। मानववाद, विश्ववाद और कम्युनिष्ट विचारधारा के प्रसंग में इसकी संकीर्णताएँ गिनाई जाती रहीं। पर जब भी ऐसा किया गया विरोधियों के सामने राष्ट्रवाद की पश्चिमी अवधारणा ही छाई रही। उसी की त्रुटियों को उन्होंने सभी देशों के राष्ट्रवाद से जोड़ कर देखा। उन्होंने यह कभी नहीं सोचा है कि भारतीय राष्ट्रवाद एक जमाने से यूरोपीय या अमरीकी राष्ट्रवाद से बहुत भिन्न रहा है। वह न तो मानववाद का विरोधी रहा है और न विश्ववाद का। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' जिसका मूलमंत्र रहा हो वह राष्ट्रवाद संकुचित और संकीर्ण कैसे हो सकता है? लेकिन अँग्रेजी पढ़े-लिखे लोगों को तो यूरोपीय या अमरीकी राष्ट्रवाद से ही परिचय कराया गया था। फिर वे अपने राष्ट्रवाद पर कैसे गौर करते, उसकी विशेषताएँ पहचानने की जहमत कैसे उठाते?

भारत में एक समय था और वह समाज अब भी जारी है, जबकि अपने धर्म, अपनी परंपरा, अपने रहन-सहन, जीवन-शैली, विचार-प्रणाली की जो जितनी ही निर्मम आलोचना कर सकता था, वह उतना ही आधुनिक प्रगतिशील और बौद्धिक समझा जाता था। इस धारणा के तहत लोगों ने अपने धर्म-मजहब, देवी-देवताओं पूजा-पाठ और धार्मिक कर्मकांडों की खूब खिल्ली उड़ाई। आज भी यह प्रवृत्ति कम नहीं हुई है। ऐसे में कोई अपने को देश-भक्त कहे, राष्ट्रवादी बताये तो यह शर्तिया उसका आधुनिक और दकियानूस होना है। मै आज भी कई ऐसे अभिभावकों को जानता हूँ जो अपने पाल्यों को धर्म के खाने में कुछ नहीं लिखने के लिए प्रेरित करते हैं। वे मानते हैं कि यदि उनका पुत्र या पुत्री धर्म के खाने में हिंदू या सनातन लिख देंगे, तो उनका बेड़ा ही गर्क हो जाएगा। इस संबंध में मुझे बनारस की एक सांझ का स्मरण हो रहा है। जब बनारस के कुछ तथाकथित प्रगतिशील बुद्धिजीवी अपने कुछ टिप्पणी अँग्रेज और अमरीकन पर्यटकों के सामने अपने हिंदूपन को नकार रहे थे और उसकी ऐसी-तैसी कर रहे थे तभी एक अँग्रेज हिप्पन ने अपने जूठे भांड़ को पानी से धोकर उससें गर्मा-गर्म चाय लेकर अपने हिंदूपन को नकारने वाले एक बुद्धिजीवी के आगे कर दिया। इस पर उन महोदय ने चायवाले से डाँट लगाई-क्यों पहलवान अब बनारस में भाँड़ का इतना अकाल हो गया कि जूठे भांड़ में चाय देते हो, इस पर अँग्रेज हिप्पिन ने खिल-खिलाकर, व्यंग्य करने के अंदाज

में कहा- डीयर यू आर हिंदू। अपने हिंदूपन को नकारते हो, पर अपने संस्कार को क्या करोगे कि जो मानता है कि मिट्टी का बर्तन एक बार मुँह से लगाने से जूठा हो जाता है, उसे फेंकना ही उचित है, उसे दुबारा काम में नहीं लाना चाहिए जबकि हम विदेशी जूठे मिट्टी के भाँड़ को धोकर अपने झोले में रख लेते हैं, फिर बार-बार उसका उपयोग करते हैं। तब उस बौद्धिक मित्र का चेहरा देखने लायक था। उस हिप्पिन ने तो उन्हें शीशा दिखाया था, लेकिन उन्हें लगा था कि उनके चेहरे पर कालिख मल दी गई है।

भारतीय राष्ट्रवाद की अवधारणा को पुष्ट और प्रचलित करने में अनेक मुश्किलें हैं। सबसे बड़ी दिक्कत यह है कि हिंदू मुस्लिम एक नहीं हो रहे हैं। हम एक कौम थे हम एक कौम हैं, एक कौम रहेंगे, यह बात आज बहुत लोग नहीं मान रहे, नहीं मानेंगे। अँग्रेजों ने अपनी विभाजक शासन नीति के तहत दो राष्ट्रों के सिद्धांत को बढ़ावा दिया। अँग्रेज तो चले गये, पर वे अपनी राजनैतिक औलाद छोड़ गये। वे आजादी के बाद, जनतंत्र युग में, खूब फूले-फले हैं। कौम को बाँटने के मामले में ये अँग्रेज के कानकाटने वाले प्रमाणित हुए हैं। अँग्रेजों को कुछ डर-भय, लोक-लाज था। लेकिन हमारे अबोध सियासत दायरें को क्या कहा जाए कि वे आज भी घृणा, नफरत और हिंसा के कार्य को अपना ट्रम्प कार्ड मान रहे हैं। इसे केवल चुनावों के अवसर पर ही नहीं, बारहों मास फेंटते और खेलते रहते हैं।

गैरमुल्की-शासन, शासित मुल्क पर, अपनी पकड़ मजबूत करने के लिए दमनकारी शासन नीति के अलाप विध्वंसक कूटनीति का भी प्रयोग करते हैं। वे जनता को विभाजित करने, उन्हें सदा-सदा के लिए विखंडित करने और रखने की योजना के तहत एक ओर तो बहुसंख्यक जनों का मनोबल तोड़ने की कोशिशें करते हैं इस क्रम में वे अल्पसंख्यकों को प्रलोभन की राजनीति के सहारे हैं, दूसरी ओर इसे बहुसंख्यकों से मिलने नहीं देना चाहते। वे बहुसंख्यक आबादी को दोयम दर्जे का नागरिक प्रमाणित करने के लिए अल्पसंख्यकों को पहले दर्जे का नागरिक मानने का दिखावा और ढोंगे करते हैं। अँग्रेजों ने अपने शासन काल में यही किया। उन्होंने अल्पसंख्यकों का कितना भला किया, यह तो इतिहास जानता है, पर उन्होंने उनके मन में यह गांठ जरूर बैठा दी कि अल्पसंख्यक ही पहले इस देश के शासक रहे हैं, उन्होंने भी बहुसंख्यकों पर राज किया है। इसलिए वे बहुसंख्यकों से बराबर विशिष्ट हैं। उनकी यह विशिष्टता कायम रहनी चाहिए। इस प्रकार अँग्रेजों ने अल्पसंख्यकों के मन में खामगाह एक ग्रंथि का निर्माण

कर दिया है।

आजादी मिलने के बाद देशी शासकों ने भी ऐसा ही किया। वे भी जनता को कमजोर और विभाजित देखना चाहते थे। इसी में उसका कल्याण था। हर देश के शासक चाहे वे देशी हो या विदेशी जनता को अपने पीछे-पीछे घूमते देखना चाहते हैं। वे जनता को अपना मालिक नहीं समझते। केवल भाषणों, और दिखाने के अवसरों पर ही जनता की दुहाई देते हैं, अन्यथा वे चाहते हैं कि जनता उनकी पिछलग्गू बनी रहे, उनके झंडे ढोती रहे, उनके पैरों तले बिछती रहे। आजादी के बाद के वर्षों में सभी राजनेताओं ने यही चाहा है, यही किया है। उन्होंने अल्पसंख्यकों के मन में भय और असुरक्षा की गुंथि बैठा करके उसे बहुसंख्यकों से निरंतर दूर करने की दुरभिसंधियां भी की है। उन्होंने बहुसंख्यक समाज को नाना प्रकार के सिद्धांतों और कल्याणकारी योजनाओं के नाम पर विभाजित और कमजोर किया है। कभी किसी वर्ग के हाथ में कोई झुन-झुना थमाया है तो कभी उसके लिए कोई झूठमूठ का यूटापिया खड़ा किया है। इस प्रकार उन्होंने भारतीय राष्ट्रवाद को निरन्तर कमजोर किया है।

राजनैतिक पार्टियों ने अपने वोट बैंक को अधिकार के लिए लड़ना नहीं सिखाया। उन्हें रियायत के लिए लड़ने का आदी बना दिया। जब आप रियायत के आदी हो जाते हैं, जब आपको रियायत का चस्का लग जाता है, तो आप राजनैतिक रूप से कमजोर हो जाते हैं। तब कोई भी, कोई झुनझुना दिखा कर आपको लुभा सकता है और आपका इस्तेमाल कर सकता है। मुझे यह देखकर आश्चर्य है कि गुजरात दंगों के मामले में अल्पसंख्यक आयोग को यह चिंता उतनी नहीं कि अपराधी दंडित हों, ऐसी कारगर व्यवस्था हो फिर ऐसी आगजनी, लूटपाट और छुरेबाजी न हो, बेकसूर लोग, महिलाएँ और बच्चे न मारे जाएँ। आयोग की चिंता ज्यादातर इस बात को लेकर है कि मुआवजे की रकम कैसे दूगनी हो, कैसे विशेष आर्थिक पैकेज मिले। मानो इंसान की जान की कोई कीमत ही नहीं हो। यदि आप सैकड़ों की जान गंवाकर लाखों-करोड़ों पाकर संतुष्ट हो जाते हैं, तो तैयार रहिये कि नृशंस समाज-व्यवस्था फिर हर्जाने की रकम थमाकर अपने को निरापद समझ सकती है।

देश को आज कट्टरपंथियों से उतना खतरा नहीं है जितना कि ढोंगियों से है। कट्टरपंथियों से आसानी से निबटा जा सकता है। उनका खुला खेल फर्सुखाबादी होता है, जबकि ढोंगी लोग ज्यादा रंगे स्यार होते हैं।

ये बड़ी-बड़ी सिद्धांत की बातें करते हैं गरीबों और मजदूरों के भले की दुहाई देते हैं, जबकि इनके इरादे कुछ और होते हैं। ये मुँह में रहीम और बगल में छुरी वाले लोग होते हैं। इन्हें केवल अपने पद और अपनी पार्टी की चिंता होती है। और पार्टियाँ भी कैसी? इनकी मर्जी की गुलाम। अपनी पार्टी में ये किसी और को उभरते नहीं देख सकते। इन्हें केवल अपने प्रांत की चिंता होती है। कोई केवल बंगला को लेकर मरता है, कोई केवल तमिलनाडु पर बलि-बलि जाता है। किसी को केवल महाराष्ट्र की चिंता है, तो कोई पंजाब के लिए जमीन-आसमान एक किये रहता है, कोई बिहार को अपनी जागिर समझता है तो किसी की नजर मध्य प्रदेश पर टिकी रहती है। ये भारतीय राष्ट्रवाद को पुख्ता उतना नहीं करते, जितना कि उसे समय-असमय हिलाते रहते हैं। इनका राजनैतिक छल-प्रपंच, बड़बोलापन, अहंकार विधानसभा से लेकर सांसद गलियारे तक गूँजता रहता है। ये एलानिया तौर पर किसी पार्टी को सत्ता से कोसों दूर रखने का दाबा करते हैं, मानो ये ही देश के एकमात्र कर्णधार हों। जनता सोचती है हम तो इनके लिए कुछ हैं ही नहीं। हम में तो कोई दमखम ही नहीं है कि हम सोचें कि किसे सत्ता से दूर रख जाय और किसे सत्ता के करीब आने दिया जाय। ये जनता को मुँह चिढ़ाते हैं, ये जनता के स्वयमू कमांडर हैं ये जनता को भेड़-बकरी समझते हैं, उसे हाँकने में विश्वास करते हैं। जिस देश के सियासतदान ऐसे हों, उसे भगवान बचाये।

यह भारत जैसे अति उदारवादी देश में ही संभव है कि जुमा-जुमा कुछ कब्लाई विदेशी महिला भारत की एक प्रमुख राजनीतिक संस्था के वरिष्ठ और अनुभवी नेताओं के स्वतंत्र चेता नेताओं को पार्टी छोड़ने पर विवश करें और बाकी नेताओं को अपना बंधुआ बना कर रखें और जनतंत्र की बात करें और देश के शीर्ष प्रशासनिक पद पर कब्जा करने की बात सोचें। मुझे तो आश्चर्य होता है कि काँग्रेसवालों को क्या हो गया है कि गाँधी परिवार की देशी खांटी पुत्रवधू को पूछते नहीं और सोनिया गाँधी को सिर माथे पर बैठाने के लिए बेचैन हैं। मेनका गाँधी सोनिया गाँधी के बराबर बेहतर विकल्प है। काँग्रेस में ही नज्मा हेप्तुल्ला सोनिया गाँधी से कहीं बेहतर विकल्प है। सोनिया गाँधी में तो भारतीय नारी के एक भी लक्षण नहीं हैं। वह जिस ढंग से देश के बुजुर्ग प्रधानमंत्री पर ओछी टिप्पणियाँ करती हैं वह बताता है कि उनमें भारतीय नारी की शालीनता नहीं है। यहाँ बुजुर्गों को सम्मान देने की परम्परा रही है। इस मामले में उन्हें सुषमा स्वराज से सीख लेनी चाहिए। सुषमा भी अपने विरोधियों से कारगर ढंग से पेश आती हैं, पर

क्या मजाल कि कोई उनके बात-व्यवहार पर उंगली भी उठा सके। सोनिया गाँधी तो राजनैतिक विरोध के क्रम में शालीनता की सारी सीमाएँ लांघ जाती हैं। ऐसी महिला को यदि सत्ता-शीर्ष पर बैठा दिया जाए, तो वे तो और भी बेलगाम हो जायेंगी। मेरा ख्याल है कि सोनिया गाँधी ने अपने अल्प राजनैतिक जीवन में विरोधी दल के नेता और प्रधानमंत्री के खिलाफ जितनी कटु और व्यक्तिगत ओछी टिप्पणियाँ की हैं, उतनी और किसी राजनैतिक हस्ती ने कभी नहीं की हैं। मेरे विचार से सोनिया गाँधी भारतीय राष्ट्र के लिए एक गम्भीर खतरा हो सकती है। महिलाओं का अपने मैके से स्वाभाविक प्रेम और पक्षपात होता है। कोई आश्चर्य नहीं कि सोनिया गाँधी के प्रभावकारी पद पर आते ही उसके विदेशी रिश्ते गुल खिलाना शुरू कर दें। हमें अपने संविधान में यह संशोधन जरूर लाना चाहिए कि विदेशी मूल के लोग, भले ही उन्होंने भारतीय नागरिकता ग्रहण कर ली हों, देश के सर्वोच्च संवैधानिक पदों पर न आने पायें। हमें पी. एन. संगमा जैसा साहस और सोच तो दिखाना ही चाहिए।

हिंदुस्तान में धर्मनिरपेक्षता की बात बहुत हुई। अब राजनीति निरपेक्ष बात होनी चाहिए। जिसे देखो, वही राजनीति की बात कर रहा है और वह भी सांप्रदायिक राजनीति की बात, ओछी राजनीति की बात। यह राजनीतिक हमारा कल्याण कम करती है, विभाजन और विनाश ज्यादा करती है। ऐसी राजनीति को हाशिये पर डालने की बात होनी चाहिए। देश का कल्याण बराबर राजनीति ही नहीं करती, वह बराबर केन्द्र में नहीं रहती। भारत में तो धर्माचार्यो-साधु-संतों ने अधिक सकारात्मक भूमिका निवाही है। लोग धर्म की शरण गये हैं, संघ की शरण गये हैं, संस्कृति की शरण गये हैं। भारत की सत्तर प्रतिशत जनता अब भी राजनीति को अपने जीवन्-मरण का प्रश्न नहीं मानती। प्राचीन भारतीय समाज-व्यवस्था के बारे में जिन इतिहासकारों और समाज-शास्त्रियों ने लिखा कहा है उन्होंने भी बताया कि जब कोई सेना राजनीतिक अभियान पर निकलती थी तब भी भारत के मजदूर-किसान खेतों में निरपेक्ष भाव से अपना काम करते थे। उसका ऐसा राजनीति-निरपेक्ष दृष्टिकोण आज भी बहुत हद तक कायम है। सत्तालोभी राजनेता उसे अपना तामझाम, लाव-लश्कर झंडा ढोने पर राजनैतिक नारा लगाने पर मजबूर करते रहते है। यह अकाण नही है कि भारत की सभी सरकारों ने केंद्रीग और प्रांतीय बजट में शिक्षा पर बहुत कम खर्च करने का प्रावधान रखा, वे आज भी ऐसा ही कर रहे हैं। शिक्षा से जनता में चेतना आती है, उनका चारित्रिक गठन होता है, उसका मेरूदंड मजबूत होता है। वे मनुष्यता

भाईचारे न्यायव्यवस्था की मजबूती के लिए लड़ना भिड़ना शुरू करते हैं। उन्हें वृहतर मानवीय प्रश्न और प्रसंग आंदोलित करने लगते हैं। तब वे टुटपुंजिये राजनेताओं के बंधुआ बनने से इनकार करने लगते हैं। इसलिए आज के राजनीतिज्ञ एक ओर तो शिक्षा के प्रति उदासीन हैं, दूसरी ओर जनता को निरंतर राजनैतिक झुनझुना थमा कर अपनी ओर आकर्षित करने की चेष्टा में लगे रहते हैं। इसके लिए वे नितांत भोड़े उपक्रम करते हैं, वाग्जाल का मोहक चंदोवा तानते हैं, उन्हें अपने राजनैतिक दंगल और कीर्तन में शरीक करने की पुरजोर कोशिशें करते हैं। उनकी राजनैतिक नाटकबाजी, राजनीति शैली की फूहड़ नौटंकी, उनका गालबजाऊ, लोक रिझाऊ छैला-नाच, शहर-कस्बे, गाँव-गली में चलता ही रहता है। जनता इससे तंग आ चुकी है। उनका रहन-सहन सुरक्षा के ताम-झाम लगुवों-भगुवों की फौज, फेटे, बल्लभ-वर्छे के पीछे कितनी काली कलाकारों, बुद्धिजीवियों को भी बुद्ध और चाटुकारे बना रखा है।

भारतीय राष्ट्रवाद को मजबूत करने के लिए यह आवश्यक है कि एक कौम का जो कृत्रिम विभाजन हुआ है उसे ठीक किया जाय। इस क्रम में सबसे पहले हिंदी और उर्दू के पार्यक्य को समाप्त करना होगा। मैं जानता हूँ कि भारतीय राष्ट्र के विभाजन की नींव फोर्ट विलियम कॉलेज में रखी गयी थी। अँग्रेजों ने अपनी भाषा-नीति द्वारा फूट का प्रथम विष वृक्ष वोया था। उर्दू, जो हिंदी की एक शैली मात्र थी, जिसे तब मौलवी शैली और पंडित शैली कहकर जाना और माना जाता था। उसे मुसलमानों की भाषा बनाने का षडयंत्र अँग्रेजों ने ही किया। उर्दू असल में मौलवी शैली नहीं, मुंशी शैली थी। वह यहाँ के कामकाजी मुसलमानों और कायस्थों, लालाओं की भाषा थी। उसे अँग्रेजों ने षड्यंत्र कर मुसलमानों की भाषा कहकर निरूपित किया। भाषा का समाज निर्माण और संगठन में एक महत्वपूर्ण भूमिका होती है। उसे अँग्रेजों ने समझा था। हम हिंदुस्तानियों ने इसे नहीं समझा, न अब भी समझ रहे हैं। भारतीय राष्ट्र को मजबूत करने क़े लिए यह आवश्यक है कि हिंदू-मुस्लिमों को एका हो, वह खूब मजबूत हो। उर्दू हिंदी का भेद मिटे, चटसार, शालाएँ, गुरुकुल, पंडित टोल और मदरसों, मिशन स्कूलों को एक कर एक समन्वित शिक्षा-प्रणाली का गठन और प्रचार हो, उसी के तहत राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली विकसित और निरूपित हो। इससे भी आवश्यक है कि हिंदुस्तान पाकिस्तान एक हो। यह विभाजन ही कृत्रिम है। मेरा ख्याल है कि दोनों देशों की जनता इसका स्वागत करेगी।

पाक अधिकृत कश्मीर प्राप्त करना एक छोटा लक्ष्य है। पाकिस्तान को दुनिया के नक्शे से मिटाने की बात नहीं होनी चाहिए, विलय होने की बात होनी चाहिए, महासंघ निर्माण से शुरुआत करनी चाहिए। इतिहास में असंभव घटनाएँ घटती रही हैं। सिंध हिंद से एक होने को बेताब हो, तो बीच में पंजाब कैसे बाधक हो सकता है। हमारी सीमाएँ हिंदुकुश तक थी, काबुल और गांधार तक हमारी पहुँच थी। यह सब एक भाईचारे की डोर में बँधना चाहिए। जबतक पाकिस्तान और हिंदुस्तान अलग-अलग रहेंगे, दक्षिण एशिया में चैन न होगा, सांप्रदायिक झगड़ा, द्वेष और खिच-खिच बराबर लगा रहेगा। इससे छोटी संस्कृतियों, कश्मीरियत, लद्दाखी, सिंहधी, बलूची आदि को भी खतरा बना रहेगा। इसलिए विलय की तैयारी, विलय के लिए यह विजय या विनाश के लिए नहीं, एक दीर्घकालिक कारगर कूटनीति और युद्ध के लिए हमें मानसिक रूप से तैयार होना चाहिए। इसमें किसी की हार या जीत नहीं है, सबकी जीत ही जीत है। पाकिस्तानियों (केवल कहने के लिए) को पूरा हिंदूस्तान मिल जाएगा। इससे अधिक उन्हें और क्या चाहिए?

जब किसी देश की राजनैतिक पीढ़ी दुर्लभ ऐतिहासिक अवसरों को नहीं पहचान पाती, उसका सदुपयोग नहीं कर पाती, तो उसके दुष्परिणाम भावी पीढ़ियों को झेलने पड़ते हैं। बंगला देश की मुक्ति के रूप में भारतीय उपमहाद्वीप को एक अनोखा राजनैतिक अवसर प्राप्त हुआ था। तब यदि भारत के नेतृत्व ने, इसके विपक्ष ने, दूरगामी दृष्टि का परिचय दिया होता, तब आज न तो पाकिस्तान के कारण कोई समस्या होती और न बंगला देश के कारण। बंगला देश की मुक्ति भारतीय सेना के सहयोग से संभव हुई थी। तब इंदिरा गाँधी इस स्थिति में थी कि वे भारत, पाकिस्तान और बंगलादेश के महासंघ का प्रस्ताव रख सकती थी और उस पर पूरी दृढ़ता से अमल कर सकती थी। तब न तो पाकिस्तान इस स्थिति में था और न बंगलादेश कि महासंघ के प्रस्ताव का विरोध करता। पाकिस्तान को अपने नब्बे हजार युद्धबंदियों को मुक्त कराना था। और बांग्लादेश तो तब भारत का मुखापेक्षी था। यदि उस समय इन तीनों देशों का महासंघ बन गया होता तो न कश्मीर की समस्या होती न तो आतंकवाद की और न घूसपैठ की। यह फैसला तीनों देशों की जनता के हक में होता। तब हमारा राष्ट्रवाद कितना मजबूत होता, कल्पना करना कठिन है। लेकिन जो तब नहीं हुआ, वह कभी नहीं होगा, ऐसा सोचना और मानना ठीक नहीं। मुझे तो भारतीय उपमहाद्वीप महासंघ ही सभी समस्याओं का निदान प्रतीत होता है। जो यह कहेंगे कि एक

महासंघ-सोवियत संघ अलग-अलग हो गया, तो फिर एक ओर महासंघ-भारतीय उपमहाद्वीपीय संघ कायम हो सकेगा, रह सकेगा। इसके क्या आधार हैं? दुनिया में राजनैतिक व्यवस्थाएँ अपनी जमीनी हकीकतों के कारण बनती-बिगड़ती हैं। कोई जरूरी नहीं कि यदि सोवियत संघ सफल न हुआ, तो हम भी सफल न होंगे। भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश एक ही सांस्कृतिक इकाई हैं। इनके जुड़ने के आधार ज्यादा पुख्ता हैं। हमें इस दिशा में सोचना चाहिए और ऐतिहासिक अवसरों की खोज करनी चाहिए। मौका आने पर चूकना नहीं चाहिए। हम भारत के लोग बहुत संतोषी जीव हैं। छोटी सी उपलब्धि को ही बहुत मान लेते हैं। हमने बांग्लादेश को अस्तित्व में ला दिया, जुल्फिकार अली भुट्टों को शिमला समझौता करने पर विवश कर दिया, इतना काफी समझा गया। इंदिरा गाँधी भी इसी से खुश और संतुष्ट थी और भारतीय विपक्ष भी इसी को काफी मानता था। लेकिन संतोषी स्वभाव व्यक्ति के प्रसंग में तो ठीक है, लेकिन यह राष्ट्र के प्रसंग में उचित नहीं होता। हमने जो ऐतिहासिक भूल की उसी का परिणाम है कि आज बंगलादेश की सीमा अशांत है, हमारे जवान वहाँ बेरहमी से कत्ल किये जा रहे हैं, पूर्वोत्तर के उग्रवादियों को वहाँ पनाह और सुविधाएँ दी जा रही हैं और पाकिस्तान जो कुछ कर रहा है वह तो जगत-विदित है।

राष्ट्रवाद के कई घटक हो सकते हैं-भौगोलिक, राजनैतिक, ऐतिहासिक और सामयिक आदि। पर उसका सबसे महत्वपूर्ण घटक सांस्कृतिक ही होता है। यदि किसी राष्ट्र की कोई दीर्घकालीन सांस्कृतिक पीठिका नहीं है, तो वह बहुत दरिद्र राष्ट्र माना जायेगा। इस दृष्टि से यदि विचार करें तो पाकिस्तान और बांग्लादेश पर नये सिरे से विचार होना चाहिए। पाकिस्तान 14 अगस्त 1947 में, एक नये देश के रूप में, विश्व के मानचित्र पर अवतरित हुआ। तो क्या उसका राष्ट्रीय जीवन वहीं से प्रारंभ माना जाएगा? पाकिस्तान बनने के पूर्व भारत की सांस्कृतिक विरासत में उसका जो हिस्सा रहा, क्या वह उसे नगण्य मान कर छोड़ देगा? तो फिर सांस्कृतिक पीठिका के रूप में उसके पास क्या होगा? क्या वह सिंधु घाटी मोहनजोदड़ो, हड़प्पा, तक्षशिला और अनेक ऐतिहासिक अवशेषों को अपने से अलग कर सकेंगे?

इतिहास और भूगोल दोनों मिलकर एक सुदृढ़ सांस्कृतिक पीठिका तैयार करते हैं। क्या पाकिस्तान के पूर्वरूप हिंदवी को बिल्कुल भुला देगा? क्या वह भूगोल को संस्कृति की एकमात्र सीमा मानकर भारत

में स्थिति ऐतिहासिक और सांस्कृतिक धरोहरों को बिल्कुल भुला सकेगा? वहाँ के लोगों में भी तो एक सांस्कृतिक ललक और प्यास है। वे भी तो भारत से जुड़ना चाहते हैं। विभाजन के बाद, आधी सदी से ज्यादा बीत जाने पर भी, पाकिस्तान का राजनैतिक नेतृत्व दृढ़ पुरातन सांस्कृतिक सेतु को भंग नहीं कर सका है। आज भी लेखकों, शायरों, शासकों और खिलाड़ियों की आवाजाही और भारत में उनके समान धर्माओं के साथ उसे आत्मीय संबंध इस बात की गवाही देते हैं कि वे आज की राजनीति के समक्ष भले ही थोड़ी देर के लिए हार गये हों, पर वे भी सांस्कृतिक एक्य के एक सुमधुर युद्ध के लिए कृत संकल्प हैं।

जो बात पाकिस्तान के बारे में सही है, वही बात बांग्लादेश के बारे में भी कही जा सकती है। बांग्लादेश भारत से भिन्न कहाँ है? वह तो भारत के और भी निकट है। वह तो इंदिरा गाँधी की एक ऐतिहासिक भूल हुई कि उन्होंने बंगबंधु मुजीबुर्रहमान से भारत बांग्लादेश महासंघ का समझौता नहीं किया। वे बंग्लादेश को स्वतंत्र कराकर ही मगन हो गई। उन्होंने दूर दृष्टि से काम नहीं लिया। यदि उस समय भारत बांग्लादेश महासंघ बन गया होता तो मुजीव परिवार की वैसी नृशंस हत्या भी नहीं होती और बांग्लादेश जबतक भारत के लिए सिरदर्द भी न होता।

आज दक्षिण एशिया में जो भी राजनैतिक भूस्थितिक आतंकवादी समस्याएँ हैं उसका एक ही निदान है, भारत पाकिस्तान बांग्लादेश का एक्य। इनके विलय के लिए किया जानेवाला कठोर ऐतिहासिक श्रम, समझबूझ, पूर्ण उदात्त मानवीय दृष्टिकोण और चेष्टा, इसके बिना इन तीनों ही देशों का भविष्य संकटपूर्ण है और रहेगा। भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश महासंघ का निर्माण होगा ही-चाहे आज हो या कल, या वर्षो बाद। यह आसानी से हो या काफी जद्दोजहद के बाद या जागतिक परिस्थितियों के दबाव में आकर हो। यह भविष्यवाणी भी है, सपना भी और परिकल्पना भी। समय बताएगा कि यह सच होता है या नहीं।

भारतीय संगीत और राष्ट्रीय एकता

डॉ. आरती श्रीवास्तव

राजनीतिक अवधारणा के रूप में राष्ट्रवाद का अविर्भाव भले ही पश्चिम की देन हो, लेकिन भारतीय चिंतकों, ऋषियों, दार्शनिकों ने राष्ट्र को एक सांस्कृतिक चेतना के रूप में माना। पाश्चात्य चिंतन पर औद्योगिक क्रांति के परिणामों, मंडियों की खोज, पूँजीवादी होड़ और सत्ता प्राप्ति की लालसा की छाप पड़ी और इसे (राष्ट्रवाद) एक राजनीतिक शस्त्र के रूप में विकसित किया गया। भारत में राष्ट्रवाद का यह रूप यूरोपीय शक्तियों के आगमन से जुड़ा हुआ है।

भारत में राष्ट्र की संकल्पना एक सांस्कृतिक विरासत के प्रति चेतना और अस्मिता के प्रति जागरूकता के रूप में बहुत प्राचीन है। वैदिक ऋषि कहते हैं 'वयं राष्ट्रे जागृताम परोहितां' अर्थात परोहित (राष्ट्र को आगे बढ़ाने वाले चिंतनशील व्यक्ति) सदैव जागरूक रहें। संगीत तो राष्ट्रीय सांस्कृतिक विरासत के प्रति हमारी चेतना का पालन है उसे तो सदैव ही जागरूक और गतिशील रहना ही चाहिए।

संस्कृति राष्ट्र की आत्मा होती है। एक विशेष भूखंड पर रहने वाले लोगों में उस धरती और उसके वासियों के प्रति लगाव होना स्वाभाविक है। इसी से राष्ट्रीय मूल्यों का बोध होता है। अथर्ववेद में कहा गया है। 'माता भूमि पुत्रो अहं पृथिव्याः' रामायण में श्री रामचन्द्र जी कहते है 'जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' यह आत्मीयता समाज में मूल्यों का विकास करती है जिनका स्वाभाविक रूप से अनुपालन अनुरक्षण और संवर्धन होता है, जिससे संस्कृति का निर्माण एवं विकास होता है। सभी लोगों की प्रवृत्ति इन मूल्यों में निरंतर बनी रहे, कोई दुराव, टूटन न आने पाये तथा आस्था और सुदृढ़ हो यही मूल रूप से एकता की भावना है।

भारत में विविधता है, परंतु यहाँ के ऋषि मानस ने इसमें मौलिक तत्व की खोज की, क्योंकि विभिन्नता के भीतर एकता की भावना निहित है। भारतीय चिंतक मानते हैं कि सृष्टि में कुछ ऐसा भी है जो देश और काल की परिधि से परे है। यही मूल चेतना सर्वज्ञ, सर्वव्यापी तथा सर्वशक्तिमान है। भारतीय संस्कृति इसी निःस्सीम, शाश्वत के साथ एकाकार हो जाने को जीवन को चरम लक्ष्य मानती है। अध्यात्म की सुदीर्घ परंपरावाले देश भारत को इसी ने एकता का आधार प्रदान किया है। आत्मवत् सर्वभूतेषु अर्थात एक तत्व का दर्शन ही अभीष्ठ रहा है। 'वसुंधैव

कुटुंबकम' का चिंतन, एकात्म मानव दर्शन इसी का तात्रिक परिणाम है। भारतीय ऋषियों और संतों ने स्वं को पूर्ण के साथ जोड़ने अर्थात परमतत्व के साथ जुड़ने को जीवन का ध्येय बतलाया।

जब 'एकोहं ब्रह्म द्वितीय नास्ति' को अपना लिया तो पूरा संसार अपना है, सभी अपने हैं। वह 'पुरुष' सभी में विद्यमान है 'पुरुष एवेंद सर्वम' (ऋग्वेद 10/90/2) या 'ईश्वर : सर्वभूता हृद्येशदर्जुन तिष्ठिति(श्री भगवद् गीता 18/61) में विश्वास रखने वाला तो विविधता, विभिन्नता में भी एकता को देखेगा 'ईशावास्यमिंद सर्वम यत्यकिंच्च जगत्था 'जगत' (ईशावास्थोपनिषद) को हृदय को धारण करने वाले की किसी से कोई दूरी नहीं हो सकती। इसलिए ऋषियों ने सांस्कृतिक आधार को अपनाकर एकता को और सुदृढ़ किया, क्योंकि राजनीतिक सत्ता तो बदलती रहती है पर सांस्कृतिक एकता अधिक स्थिर, स्थाई और विकासशील होता है। अन्य देशों ने राजनीतिक सत्ता के आधार को अपनाया। परिणाम यह हुआ कि वे अपनी संस्कृति की रक्षा अधिक समय तक नहीं कर पाये और उनका भौगोलिक एकता भी अक्षुण्ण नहीं रह सकी। हमारे देश ने भी जब जब राजनीतिक सत्ता को आधार बनाया, विभाजन हुआ और विवादों, संकीर्णताओं में घिरा।

भारतीय संस्कृति के उन्नायकों ने विभाज्य से परे अविभाज्य को, विवाद्य के पीछे अविवाद्य को अपनी दृष्टि में रखा, अध्यालुन्मुख विकास का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए व्यष्टि और समष्टि में तारतम्य स्थापित किया। व्यक्ति के जीवन का लक्ष्य परम तत्व के साथ जोड़ने के साथ-साथ ऋग्वेद व सामूहिकता को बढ़ावा देने और आपस में एकता लाने के लिए यह भी कहा 'सं गच्छध्वं, सं वदध्वं सं वा मनासिजानतम' हम मिलकर सोचें, मिलकर बोलें और प्रार्थना करें कि हमारा लक्ष्य एक हो अर्थात् एकता का आधार केवल वाह्य न होकर अभ्यांतरि का भी रहा है इसीलिए यह अधिक गहरा और मन के निकट है। राष्ट्रीय एकता के रूप में कोई भी कारक तभी अधिक सक्षम हो सकता है जब वह राष्ट्र की संस्कृति के साथ निकट से जुड़ा हो। संगीत भी इस क्षेत्र में तभी कारगर हो सकता है जब उसमें राष्ट्रीय संस्कृति प्रतिबिंबित हो। संगीत में तो सम्मोहिनी शक्ति होती है, जो सभी को प्रभावित करती है।

भारत अध्यात्म प्रधान देश है। यहाँ की संस्कृति में आध्यात्मिकता विद्यमान है। यहाँ का संगीत भी अध्यात्म से जुड़ा हुआ है। संगीत में लौकिक और पारलौकिक दोनों ही प्रकार की अनुभूति है। संस्कृत

साहित्य इस तथ्य का प्रतिपादन करता है कि 'नादाधिना मिदं जगत्' नाद को ब्रह्म माना गया। उपनिषदानुसार राष्ट्र और ध्वनि का सार 'ऊँ' है। स्वामी शिवानंद ने इसे आत्मा का संगीत कहा, सूफियों ने इसे सौते सरमदी का नाम दिया। मनुष्य तो संगीत के साथ जन्मा है। मानव का अंतर्मन आत्मा के सूक्ष्म संगीत से प्रतिध्वनित है जिसे ध्यानावस्थित होकर सुना जा सकता है। जब आत्मा में यह स्वर मुखरित होता है तो साधक को दिव्य आनंद की अनुभूति होती है। संगीत का जन्म भाषा से कहीं पहले हुआ था। इसके द्वारा प्राणियों में भावों और भावनाओं का आपस में आदान-प्रदान होता था।

भारत में संगीत की समृद्ध और समोन्नत परंपरा है जिसको देवी-देवताओं के साथ जोड़ा गया है। यह परंपरा ब्रह्मा जी द्वारा निरूपित वेदों से मिलती है। विद्या की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती है और इसका प्रयोग गंधर्वो द्वारा होता था तथा संगीत गंधर्व कला कहलाया। सिंधुघाटी और हड़प्पा सभ्यता काल में सांगीतिक चित्रित अवशेष मिलते हैं। ब्रह्मा जी ने इस कला को भरत मुनि को सिखाया था। वैदिक काल में साम गायन का प्रचलन था। भगवद् उपासना के लिए मार्गी संगीत और जन-मन-रंजन के लिए देशी गान का प्रयोग होता था। देशी गान लोकरुचि अनुसार परिवर्तन हुए। धीरे-धीरे जन-मन-रंजन संगीत गणिकाओं, राजनर्तकियों, दरबारी गायकों के अधीन हो गया। राजदरबारों और सामंती परंपराओं ने संगीत को प्रभावित किया। संगीत में पवित्रता के स्थान पर रसिकता बढ़ी और यह सूरा-सुंदरी के साथ जुड़ गया। लोक संगीत भी पनपा जिसपर स्थानीय शैलियों, रीति-रिवाजों और भाषा का प्रभाव पड़ा।

भारतीय संगीत में समय के साथ परिवर्तन आये, परंतु इसकी मौलिक एकता बनी रही। मुसलमान शासन काल में भारतीय संगीत में नयापन आया यद्यपि इस्लाम में गाने बजाने पर प्रतिबंध था, परंतु फारस देश के संगीत का उत्तर भारत, जो मुस्लिम शासकों के अधीन था, पर विशेष प्रभाव पड़ा। यहाँ तक कि दक्षिण भारतीय संगीत उत्तरी भारतीय गायन से भिन्न हो गया। देवालयों की जगह राजाश्रम ने संगीत को मनोरंजन की ओर अग्रसर किया। अधिकांश मुस्लिम शासक संगीत प्रेमी थे। उनके दरबारों में नर्तकियों, गायकों, वादकों को संरक्षण मिला जहाँ संगीत का प्रयोग प्रभु को प्रसन्न करने के लिए होता था, अब बादशाहों, जागीरदारों की वाह-वाह और पुरस्कार पाने के लिए प्रस्तुत किया जाने लगा। सामंती प्रभाव के कारण गायक या वादक मुश्किल बंदिशों-तानों आदि का प्रयोग करके धाक

जमाने की कोशिश करने लगे। घरानों का जन्म हुआ और प्रयास यही रहा कि दूसरों तक संगीत की जानकारी न पहुँचे। बंदिशों में भी बादशाहों की प्रशंसा को अपनाया गया ताकि शासक प्रसन्न हो जायें।

फारस के संगीत के प्रभाव से भारतीय संगीत में नये, नये प्रयोग हुए, नये रागों, नये वादों, नये ढंग की प्रस्तुति का प्रयोग हुआ। अमीर खुसरो ने वाद्यों में ढोलक, तबला और सितार, रागों में मुंजीर सरपर्दाह गाए, जील्फ, यमन साज़गिरि, फरगाना, ग़नम, उरएक, मुवाफिक, वाखर्ज, फरोदस्त, मुनअम (संगम), मंठा आदि का आविष्कार किया। गायकी में तराना छोटा ख्याल कल्बाना और तालों में त्रिताल, आड़ा चौताल, सूल फाक, झूमरा आदि को प्रारंभ किया। अमीर खुसरो ने भारत की प्रशंसा की। वह देशभक्ति को ईमान मानते थे। वह भारतीय परंपरा और परिवेश से प्रभावित हुए थे। उन्होंने हिंदू मुस्लिम मेल-जोल से भारत में समन्वित संस्कृति का बीजारोपण किया। उन्होंने काव्य क्षेत्र में ग़ज़ल फारसी मिश्रित छंद, पहल ढकोसले या अनमेलियाँ, कह मुकरती, दो सुखना आदि कई प्रयोग किये। खुसरो भारतीय संगीत को अन्य सभी देशों के संगीत से उत्तम मानते थे। उनका कथन था कि यहाँ का संगीत जब अरब, मिस्र देश पहुँचता है, तो वहाँ के गाने वालों की जबान खामोश हो जाती है।(नूर-सिपहर ग्रंथ)। आज भी इनकी लिखी कव्वालियाँ जब गाई जाती हैं, तो लोग आत्मविभोर हो जाते हैं।

'बहुत कठिन है डगर पनघट की'

या 'छाप तिलक सब छीनी रे मोसे नैना मिलाय के'

मुगल शासकों ने संगीत को विशेष रूप से प्रोत्साहन दिया। अकबर के दरबार में मियाँ तानसेन के गायन की चहुँओर धूम थी। उन्होंने कितने ही रागों का अविष्कार किया। जैसे मियाँ की मल्हार, मियाँ की तोड़ी, राग दरबारी आदि। उनकी बहुत सी बंदिशों में एकता झलकती है। देवी-देवताओं की स्तुति है। मशहूर यह है कि तानसेन स्वामी हरिदास जी के शिष्य थे। वह अपने साथ सम्राट अकबर को स्वामी जी का गाना सुनाने ले गये थे। लखनऊ वासी उस्ताद खुर्शीद अहमद खाँ उस पूरी घटना को उसी बंदिश के साथ सुनाते थे जिसे गाते-गाते तानसेन ने जानबूझकर गलती की और स्वामी जी ने किस प्रकार उसमें सुधार किया। (उस्ताद खुर्शीद अहमद खाँ जब किसी को अपना शिष्य बनाते थे तो उससे 16 लड्डू स्वामी, 8 लड्डू मियाँ तानसेन, 4 लड्डू अपने उस्ताद के नाम से बँटवाते थे और स्वयं चार लड्डू लेकर सबमें बाँट देते थे)

जहाँगीर के दरबार में तानसेन के दामाद बिलास खाँ, छतर खाँ, मक्कू खाँ और शाहजहाँ के दरबार में दिरंग खाँ, लाल खाँ (तानसेन के पुत्र) थे। औरंगजेब जिसने 50 वर्ष की अवस्था के पश्चात् दरबार में गायन पर प्रतिबंध लगा दिया था अपनी ढलती जवानी तक संगीत में सराबोर रहा। उसने खुशहाल खाँ को गुण समुद्र की तथा मृदंगवादक कृपा को मृदंग राय की उपाधि से विभूषित किया। उसके दरबार में हिंदू मुसलमान दोनों ही संगीतज्ञ थे। बिसराम खाँ, रसबीन खाँ, हयात, सरस नैन, सुखी सैन, भूपत नायक, पूरन आदि कलाकार औरंगजेब को पसंद थे। औरंगजेब ने दया शिकोह से दो नर्तकियाँ भी माँगी थी। इस सम्राट की स्तुति में ध्रुपद बंदिशों की रचना भी हुई थी। मोहम्मद शाह रंगीले के दरबार में अदारंग और सदारंग के अतिरिक्त और कई नामी नर्तकियाँ गायक और वादक जैसे हररंग, दिलरंग, कुँवर श्याम आदि मध्यकाल में भारतीय शास्त्रीय संगीत में हिंदू मुसलमान दोनों ही कलाकारों की लंबी सूची है। गोपाल नायक, बैजू बाबरा, रामदास, दिवाकर राजा सूरसेन आदि कितने ही हिंदू कलाकारों के नाम उपरोक्त मुस्लिम कलाकारों के साथ लिखे जा सकते हैं।

मध्यकाल में राजदरबारों से बाहर समाज में भी संगीत अपना रंग जमा रहा था विशेषकर सूफियों की महफिलों, उर्सो, समाधियों-मजारों पर कव्वाली का बोलबाला था, जिससे सूफी तो ध्यानावस्थित हो जाते थे और श्रोताओं को भी आध्यात्मिक अनुभूति होती थी। हाल और काल का रंग जमता था। जो काव्य रचनाएँ गाई जाती थीं उनमें फारसी, उर्दू, हिंदी, बृज भाषा के शब्दों का प्रयोग आध्यात्मिक संदर्भ में किया जिनका गूढ़ अर्थ होता था। इन महफिलों में विभिन्न समुदाय और विभिन्न वर्गो के लोग सम्मिलित होते थे। अजमेर के ख्वाजा गरीबनवाज मुइनुद्दीन चिश्ती, दिल्ली के निजामुद्दीन औलिया, देवा शरीफ के हानी वारिस अली शाह आदि के उर्सो में हिंदू मुसलमान सभी शरीक होते हैं। इस संगीत से आपस में मेलजोल बढ़ता रहा है। सूफियों ने सुलह कुल (पूर्ण शांति) एवं प्रत्येक वस्तु में नूरेइलाही देखने का पैगाम दिया।

भक्ति आंदोलन ने भी संगीत को आध्यात्मिक ऊँचाईयाँ प्रदान कीं। कीर्तन, भजन गायन, सस्वर जय और मंत्रोच्चारण में संगीत का उपयोग हुआ। भक्ति आंदोलन का आधार था :

'जात-पात पूछे न कोये हरि को भजे सो हर को होये,

भक्ति आंदोलन से सौहार्द, मैत्री का वातावरण कायम हुआ,

नैराश्य दूर हुआ। जातिवादी संकीर्णताओं के विरूद्ध आवाज उठी। मीरा, तुलसी, कबीर, नानक, चैतन्य महाप्रभु, जयदेव, शंकदरेव, महाराष्ट्र के नामदेव, संत ज्ञानेश्वर, संत रैदास, संत तुकाराम आदि ने अपने भजनों से समाज में प्रभुसमर्पण, सबमें प्रभुदर्शन, दया, करुणा की भावनाओं को जागृत किया, ई स्फूर्ति प्रदान की संत तुकड़ों जी महाराज के भजनों का प्रचार करनेवाली मंडलियाँ विदर्भ क्षेत्र में आज भी सक्रिय हैं जो मानव प्रेम का संदेश दे रही हैं। आज देश भर में स्काउट व गाइड संत तुकड़ों जी यह भजन गा रहे हैं जो एकता का पैगाम देता है :

'हर वेश में तू, हर भेष में तू,
तेरे नाम अनेक तू एक ही है'

देश भर में रामलीलाओं, रासलीलाओं के आयोजन में मनोरंजन के साथ ही सामंजस्य निर्माण होता था तथा जन साधारण को एकता का संदेश मिलता था जो जन-जन को आंदोलित करता था। लोक संगीत की अपनी ही महिमा है। यह जन साधारण के अधिक निकट होने के कारण बहुत प्रभावकारी होता है। इस लेख की अपनी सीमाएँ हैं इसलिए विस्तार से चर्चा संभव नहीं है। आल्हा गायन, बाउल गान, पंजाब के वारिसशाह की हीर आदि ने जन-जन के हृदय पर अपना जादुई प्रभाव छोड़ा है। चैती, बिदेसिया, बिरहा कजरी, रसिया, दादर, कहरवा आदि सभी का अपना योगदान है।

आधुनिक काल के संगीत पर पाश्चात्य संगीत का प्रभाव पड़ा है। गायन शैली में बदलाव आया, नये-नये वाद्यों का प्रयोग शुरू हुआ। बड़े-बड़े आर्केस्ट्राओं ने अपना रंग जमाया। बीथोवन, मोजार्ट, जाज आदि शैलियों का प्रभाव पड़ा। भारतीय शास्त्रीय संगीत में लय(melody) स्वरमाधुर्य पर बल दिया जाता था जबकि पाश्चात्य संगीत में (harmony) स्वर संदिति को ध्यान में अधिक रखा जाता था। पॉप म्यूजिक ने संगीत में थिरकन का आधार बनाया। जहाँ संगीत में नयापन आया, वहीं विरोध के स्वर भी उभरे।

भारत में शास्त्रीय संगीत को घरानों से बाहर लाकर जन साधारण तक वैज्ञानिक ढंग से पहुँचाने के लिए पं. विष्णु नारायण भारतखण्डे और पं. विष्णु दिगंबर जी ने बहुत प्रयास किये। जगह-जगह सम्मेलन किये, व्याख्यान दिये और संगीत संस्थाएँ स्थापित कीं जिनमें हिंदू-मुसलमान, सिख, ईसाई सभी धर्मानुयाइयों को शिक्षा दी जाती थी।

उस दौर में अँग्रेजी शासन के विरोध में भी स्वर उभरे। मध्यकाल में संगीत ने जातिवाद, सांप्रदायिक संकीर्णताओं के खिलाफ एकता,

समन्वय का संदेश दिया था, अब संगीतज्ञ राजनीतिक एकता व राष्ट्रीय चेतना के प्रसार के लिए कटिबद्ध हो गया। राष्ट्रवाद एक राजनीतिक अवधारणा बना और विदेशी शासन के विरूद्ध आंदोलन हुआ। देशभक्ति और सरकार विरोधी काव्य रचनाएँ सामने आईं उन्हें जलसे, जुलूसों में गाया गया। वंदे मातरम, झंडा गीत जन-जन की जबान पर थे। लाठियों के प्रहारों, जंजीरों की झंकारों पर गीत गाये गये 'नई रखनी सरकार जालिम नई रखनी' या 'जब वी लगन आजादी दी लग ई जिनां मनां दे विच', क्रांतिकारियों के स्वर गूँजे, पूरे देश जोश से भर गया 'सरफरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में हैं' या 'मेरा रंग दे बसंती चोला', 'छीन सकती ही नहीं सरकार वंदे मातरम्', 'बढ़ चले तिरंगा झंडा ले, दिल्ली सर करने निकल चले'। इस प्रकार के गीत, ग़ज़ल, रसिया आदि वातावरण में गूँजने लगे। आजाद हिंद फौज के गाने हिंदू, मुस्लिम, सिख, ईसाई सभी मिलकर गाते थे यह गाने राष्ट्रीय एकता की भावना का नवसंचार करते थे जैसे :

'कदम कदम बढ़ाये जा, खुशी के गीत गाये जा।
यह जिंदगी है कौम की तू कौम पर लुटाये जा।

या

'सब भेद-फर्क मिटाके गोद में तेरी आके गूँथे प्रेम की माला'

इस लेख में चित्रपट संगीत का उल्लेख करना आवश्यक है। आधुनिक प्रचार माध्यमों ने संगीत को जन-जन तक पहुँचाया है। ऑडियो तथा वीडियो कैसेट, सीडी द्वारा संगीत की गूँज घर-घर में है। दूरदर्शन, आकाशवाणी से संगीत कार्यक्रम प्रसारित होते हैं। लेकिन आज सिनेमा का जादू सबके सिर चढ़वाया है। चित्रपट संगीत का हर जगह बोलबाला है। बड़े-बड़े नाम इस उद्योग के साथ जुड़े हैं। संगीत निदेशकों में नौशाद अली, रवि, शंकर जय किशन, सी. रामचंद्रन, जयदेव, वसंत देसाई, रौशन, भरत व्यास, एस. डी. बर्मन, लक्ष्मीकांत प्यारेलाल, उषा खन्ना, सी. एच.आत्मा, मीनाकपूर, रविन्द्र जैन, खैयाम, अनिल विश्वास आदि के योगदान की कौन उपेक्षा कर सकता है।

गायक गायिकाओं में कुंदन लाल सहगल, के.सी.डे मन्ना डे, हेमंत मुखर्जी, मोहम्मद रफी, किशोर कुमार, महेन्द्र कपूर और महिलाओं में लता मंगेशकर, नूरजहाँ, गीतादत्त शमशाद, सुरैया बेगम, मुबारक बेगम, आशा भौंसले, सुमन कल्लानपुर, अमीरबाई, मीना कपूर वगैरह कितने ही नाम हैं, जिन्होंने संगीत को निखार दिया।

आर्केस्ट्रा, रिकार्डिंग के बढ़िया प्रबंध, अनुभवी निर्देशन और अच्छे गायकों ने चित्रपर संगीत की लोकप्रियता को! बढ़ाया है। मुख्य गीत के साथ पार्श्व संगीत, साज पर नेपथ्य में धुनों का प्रयोग, गाने के साथ संगीत का समन्वय गीत को निखार देता है। सामूहिक जीवन का सजीव चित्रण और समाज को प्रतिबिंबित करने वाली फिल्में लोकप्रियता का सर्वोत्तम माध्यम बनीं। एक ओर तो चित्रपट संगीत व्यक्ति को आनंद प्रदान करता है तो दूसरी ओर उसको समाज के साथ एक सूत्र में बाँधता है और जनजीवन को समरस सामाजिक जीवन में परिवर्तित करता है।

चित्रपट संगीत शास्त्रीय और लोक संगीत दोनों से ही अलंकृत होता है। शहरों की ओर ग्रामीण क्षेत्रों में संगीत का समन्वय हुआ। इसने देशप्रेम की भावना को जागृत किया। ग़ज़लों, गीतों, कब्बाली द्वारा एकता की भावना को जनसाधारण तक पहुँचाया गया। कहीं पहाड़ी राग के स्वर हैं तो कहीं शिवरंजनी में ग़ज़ल की बहार। कहीं राजस्थानी लोकगीत का जादू है तो कहीं भांगड़ा अपना रंग जमा रहा है। ठुमरी, कहरवा, दादरा की परंपरागत शैली के साथ ही प्रयाण गीत, समूह गान की गूँज है। अब तो पॉप संगीत ने गाने को शरीर की थिरकन के साथ जोड़ दिया है।

चित्रपट पर अनेक गीत ऐसे गाये गये जिन्होंने राष्ट्रीय भावना को सुदृढ़ किया जैसे स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व एक फिल्मी गीत बहुत मशहूर हुआ था।

दूर हटो ए दुनियावालों
हिंदुस्तान हमारा है
जहाँ हमारे मंदिर मस्जिद सिखों का गुरद्वारा है
दूर हटो ऐ दुनियावालों....

आज भारत स्वतंत्र है इसलिए देशप्रेम के गाने, एकता के गीत और भी आवश्यक हैं कुछ गाने निम्नलिखित हैं–

मेरे देश की धरती सोना उगले, उगले हीरे मोती (पूरब पश्चिम)
जहाँ डाल–डाल पर सोने की चिड़ियां..(सिकंदरे आजम)
यह देश है वीर जवानों का (नया दौर)
कर चले हम फिदा जानो तन साथियों (हकीकत)
इस देश को रखना मेरे बच्चों संभाल के...
इस धरती से तिलक करो यह धरती है बलिदान की...
नये दौर में लिखेंगे फिर से नई कहानी, हम हिंदुस्तानी...(जागृति)

दिल दिया है जां भी देंगे ऐ वतन तेरे लिए (कर्मा)

अब कोई गुलशन न उजड़े अब वतन आजाद है...

देश पर जब संकट आया, चित्रपट की दुनिया से जुड़े लोगों ने आगे बढ़कर कार्य किया है। सन् 1962 की लड़ाई के बाद एक गीत उभरा 'ऐ मेरे वतन के लोगों जरा आँख में भर लो पानी'। कारगिल की लड़ाई पर फिल्मी गाने देशभर में गूँज उठे। संगीत की शक्ति ने देशभर में जोश भर दिया। फिल्मों में देश के विभिन्न क्षेत्रों के लोक संगीत द्वारा वहाँ के उत्सव, भाषा, रीति रिवाज, त्यौहार उत्सव, ऋतुओं, पर्वो से जन जन को परिचित कराया। राजस्थानी घूमर नृत्य, बृज की होली, गुजराती इंडिया, पंजाबी भंगड़ा, हिमाचली नृत्य गीत, खेत खलिहान गीत, झांकी गीत आदि का प्रयाग फिल्मों में प्रचुरता से किया गया। भक्ति संगीत, भजन आदि के साथ कजरी, चैती, लवणी, मल्हार, झूला गीत, विवाह और विदाई आदि के गीतों ने लोगों की एक दूसरे के प्रति निकटता बढ़ाई।

भारत के संगीत के प्रचार-प्रसार में हिंदू-मुसलमानों ने मिलकर कार्य किया है। फैय्याज खाँ, अब्दुल करीम खाँ, अमीर खाँ, बड़े गुलाम अली खाँ, निसार हुसैन खाँ, रहीम फहीमउद्दीन डागर, अलाबांदे खाँ तथा सोहन सिंह, पं. जसराज, किशोरी अमोनकर, प्रवीण सुलताना, हीराबाई, बड़ोदकर, निर्मला देवी, पं. भीमसेन जोशी, कुमार गंधर्व, पं. दत्तात्रेय पलुस्कर महफिलों की जान थे। वादकों में भी उस्ताद बिस्मिल्लाह खाँ (जिनके दादा रसूलबख्श महाराजा डुमरांव के मंदिर में शहनाई बजाते थे) सितार वादकों में उस्ताद विलायत हुसैन खाँ, अब्दुल हलीम जाफर खाँ, पं. रविशंकर, निखिल बनर्जी के नाम सुप्रसिद्ध हैं। संतूर वादक पं. शिव कुमार महफिल में अपना कमाल दिखाते हैं। तबलावादकों में पं. कण्ठे महाराज, बनारस के पं. किशन महाराज, शांता प्रसाद, महाराज बीरू मिश्र, चतुर लाल, लखनऊ के आबिद हुर्सन खाँ, कलकत्ते के करामात हुसैन और हीरो गांगोली, मेरठ के हबीबुद्दीन खाँ, पंजाब घराने के काले खाँ, अल्लाह रखा, जाकिर हुसैन, मुरादाबाद के अहमद जान थिरकवा सुविख्यात हैं। बालयन में बी.जी. जोग, एन. राजन ने अपनी पहचान बनाई है। मृदंगवादकों में कोदऊ सिंह, पं. सखाराम, गोपाल दास, सरोद वादकों में अलाउद्दीन खाँ, अली अकबर खाँ, हाफिज अली खाँ और उनके पुत्र उस्ताद अमजद अली खाँ सुविख्यात रहे हैं।

संगीत के इस इन्द्रधनुष ने सांप्रदायिकता की संकीर्णताओं को हटाया है। आज हिंदू और मुसलमान विभिन्न घरानों की तामील हासिल

करते हैं। बंदिशें भी ऐसी होती थीं जिनमें अवतार, पीर, फकीर गुरु की स्तुति होती थी। जैसे राग यमन का एक ख्याल है 'आले-नबी औलादे अली पर, वारि वारि जाऊँ जेहरा के फर्जन्द हसन हुसैन पर। इस प्रकार राग भैरव, भैरवी में शिव और देवी पार्वती की स्तुति, मुसलमान गवैये भी गाते हैं। राम-कृष्ण, राधा जी पर अनेक ध्रुपद हैं तथा घमार में होली की धूम है जिसे सभी गायक इन्हें गाते हैं।

सन् 1945 में लखनऊ में आयोजित एक सम्मेलन में फैय्याज खाँ ने होरी गाई 'कैसी मचाई कान्हा ने बृज में होरी' और तबले पर संगत कर रहे थे अहमद जान खाँ साहब। इसी प्रकार शंकर-शंभू कव्वाली गाते थे तो उसमें पैगम्बर मोहम्मद, इमाम हजरत अली, हसन-हुसैन की प्रशंसा होती थी। ध्रुपद, घमरा, तराना, छोटा और बड़ा ख्याल, ठुमरी, दादरा, भजन, ग़ज़ल आदि किसी एक संप्रदाय की विरासत नहीं हैं लखनऊ में जन्माष्टमी से छठ तक अर्थात छः दिनों तक ठाकुर द्वारे में मुस्लिम गायक गाना सुनने और अपना गाना सुनाने जाते थे। मैंने एक मुसलमान गायक को राग केदर में यह छोटा ख्याल तन्मयता से गाते सुना है :

'कान्हा रे नंद नंदन........'

स्वतंत्र भारत में लोकतंत्रीय मूल्यों को अपनाने का प्रभाव संगीत कला पर भी पड़ा। यह राजदरबारों, सामंती प्रभावों से निकल जन साधारण के पास पहुँच रही है। अभिजातीय वर्ग और घरानों की कैद से संगीत मुक्ति पा रहा है। संगीत के लिए सरकार भी प्रयास कर रही है। संगीत अकादमियों की स्थापना, सम्मेलनों का आयोजन तथा कलाकारों को सम्मानित किया जा रहा है। संगीत में नये-नये परिवर्तन भी हो रहे हैं। लेकिन भारतीय संगीत में जो विवादों से परे और विभाजन से परे.... के प्रतिबिंबित करने की जो शक्ति है वह और विकसित होनी चाहिए। उसे नजरअंदाज नहीं किया जाना चाहिए। संगीत हृदय की भाषा है। यह आत्मा की प्रतिध्वनि है जिसमें संकीर्णताएँ नहीं हैं। यह रूप विकसित होता तो संगीत राष्ट्रीय एकता ही नहीं विश्व चेतना और विश्व एकता को समृद्ध और सुदृढ़ करेगा। यह व्यक्ति को स्वरों का माधुर्य और व्यक्तियों को समरस सामूहिक जीवन प्रदान करता रहेगा। जरूरी है कि हम प्रेम से गाएँ, प्रेम से बजाएँ, प्रेम से सुनें और सुनायें तथा संगीत में प्रेम का दर्शन करें।'

राष्ट्र के सांस्कृतिक मूल्याँकन में लोक साहित्य की भूमिका

डॉ. किशोर काबरा

लोक साहित्य मानवीय संवेदनाओं और संचेतनाओं का अलिखित जीवन इतिहास है। लोक साहित्य लोक जीवन का दर्पण ही नहीं दर्पण में दिखाई देने वाला प्रतिबिंब भी है। सामान्य मनुष्य के सुख-दु:ख राग-विराग, प्रेम-घृणा, जीत-हार, संयोग-वियोग आदि के वर्ण, वर्ग और लिंग के असमान रेगिस्तान में लोक साहित्य एक लहलहाता नखलिस्तान है जो सदियों से समय के सार्थवाह को सुखद विश्राम प्रदान करता आ रहा है। समस्त विश्व की एकता के बीज यदि कहीं छिपे पड़े हैं तो वह लोक साहित्य की सोंधी सोंधी माटी है, जहाँ प्रेम और पीड़ा के गंगा-यमुनी अश्रु प्रवाह का संस्पर्श पाकर वे अँकुरित ही नहीं होते, बल्कि पल्लवित, पुष्पित और फलित होकर पुनः बीज के रूप में संपूर्ण विश्व में फैल जाते हैं।

गाँधी जी ने कहा है कि लोक साहित्य में जन साधारण का हृदय बोलता है। उन्होंने लोकगीतों की मोहकता से इतने अधिक प्रभावित हुए थे कि वास्तविक कविता के लिए उन्होंने लोकगीतों को आधार माना। लोक साहित्य की इसी प्रभावशीलता ने साहित्य में प्रिमिटिविज्म (आदिमवृत्तिवाद) को जन्म दिया। महान अमेरिकन लेखक थोरो ने इसलिए ग्रामीण विश्वविद्यालयों की कल्पना की थी। हमारे यहाँ 'लोक' शब्द साँस्कृतिक वाचक और संस्कृति शब्द लोक वाचक है। आश्चर्य है कि ये दोनों शब्द एक दूसरे के पूरक भी हैं और विलोम भी। 'लोक' का सामान्य अर्थ संपूर्ण मानव सृष्टि है, किंतु विशेष अर्थ में उसे ग्रामीण, अशिक्षित, असंस्कृत एवं सभ्यता से दूर वनप्रांतों एवं अँचलों में रहने वाले सामान्य जन एवं उसके परिवेश का पर्यायवाची माना गया है। 'संस्कृति' को सुरुचि एवं परिष्कृत कृति का पर्याय माना गया है। 'संस्कृति' को सुरुचि एवं परिष्कृत कृति का पर्याय माना गया है। जहाँ वह श्रेष्ठ कर्मों एवं विचारों का समुच्चय तथा संस्कारों का समन्वय कहलाती है, वहीं वह भौगोलिक खण्ड से जुड़ी होने के कारण संवेदनाओं की स्वाभाविक प्रस्तुति और भावों की प्राकृतिक अभिव्यक्ति बन जाती है। इस तरह लोक और संस्कृति एक दूसरे से कार्य-कारण की तरह जुड़े हैं।

'संस्कृति' शब्द की व्युत्पत्ति 'सम्' उपसर्ग, 'कृ' धातु और 'क्तिन्' प्रत्यय से हुई है जिसका अर्थ है- संस्करण, परिष्करण, परिमार्जन।

शुद्ध वैदिक शब्दावली में इसका समानार्थी 'कृष्टि' शब्द है, जिसका अर्थ है कृषि। यह अँग्रेजी के 'कल्चर' से मिलता-जुलता है, क्योंकि वह लैटिन शब्द 'कुल्तुस्' से बना है, जिसका अर्थ भी भूमि जोतना या कृषि करना है। वैसे 'कल्चर' इस समय कृषि के अर्थ में भी प्रयुक्त है। वस्तुतः हम श्रेष्ठ विचारों एवं कर्मों को लोक की भूमि पर बोकर नई पीढ़ी के लिए उन्नत जीवन-मूल्यों की फसल तैयार करते हैं संस्कृति के रूप में। पहले संस्कृति आरण्यक थी, वन्य थी, ग्राम्य थी, कृषि से जुड़ी थी। वह नागर तो बाद में बनी। इस तरह मूल शब्द अपना अर्थ खो बैठा और अब नृत्य, संगीत, साहित्य और कला से जुड़ी हुई बातें ही संस्कृति में रह गई हैं। पहले पूरा जीवन था, उसी तरह जिस तरह आज भी 'लोक' में पूरा जीवन है।

साहित्य और संस्कृति का अन्योन्याश्रित संबंध है। सम्यक् अति, सुधरी हुई कृति या हितकारी कृति ही संस्कृति है तो साहित्य भी हित का भाव ही रखता है। संस्कृति यदि साहित्य का प्राण है तो साहित्य संस्कृति का आधार है। संस्कृति मानवता का मेरुदंड है, शिष्टता, सौजन्य एवं शील का आधार शिला है। यह पूर्व संचित परंपराओं का कोष है। संस्कृति के 5 अवयव हैं-धर्म, दर्शन इतिहास, वर्ण और संस्कार। ये पाँचों साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्त होते हैं। संस्कृति का निर्माण आचार से होता है, आचार का विचार से उद्भव होता है। जब आधारभूत केंद्रीय विचार नष्ट हो गई हैं या दूसरी संस्कृतियों में विलीन हो गई हैं। किसी देश या जाति के जीवन मूल्यों को सार्वदेशिकता या सार्वभौमिकता तभी प्राप्त होती है, जब उनमें शाश्वती के तत्व होते हैं। भारतीय संस्कृति में वसुधैव कुटुंबकम्, सर्वे भवन्तु सुखिनः, तेन त्यक्तेन भुंजीथाः, सर्वभूत हिते रताः जैसे मूलाधार हैं, इसलिए वह नित नवीन है, पुरातन होते हुए भी सनातन है। उसमें समायोजन और संयोजन की अद्भुत क्षम्ता है। रामधारी सिंह 'दिनकर' ने इसलिए 'संस्कृति के चार अध्याय' में भारतीय संस्कृति को सामासिक और सर्वग्राही कहा है।

लोक साहित्य सामान्य जनसमूह के द्वारा निर्मित उस साहित्य को कहते हैं, जो एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक मौखिक रूप में यात्रा करता हुआ आगे बढ़ता है। हमारे यहाँ 'श्रुति' और 'स्मृति' की कल्पना इसीलिए की गई है। लोक-साहित्य का फलक बहुत बड़ा है। इसमें गीत, कथा, नाट्य, संगीत उक्ति आदि के साथ चित्र, मूर्ति जैसे स्थिर माध्यम भी सम्मिलित हैं। वस्तुतः अभिव्यक्तिमूलक सभी ललित एवं मूर्त कलाएँ इसमें आ जाती हैं। लोक-साहित्य के विषय में एक चीनी विचारक का कथन है कि वह किसी

एक व्यक्ति का निर्माण नहीं होता, न ही किसी एक व्यक्ति के द्वारा उसका प्रयोग होता है। वह लोक द्वारा, लोक के लिए किया गया सामूहिक अभिव्यक्ति-यज्ञ है। जनसामान्य की लोकभाषा का यह अलिखित साहित्य और संसृति को परिपुष्ट करता है और नित नूतन रूप धारण करके आगे बढ़ता रहता है।

हमारा भारतवर्ष लोक-साहित्य का जन्म स्थल है। डॉ. थॉमसन के मतानुसार भारतवर्ष की कई लोक कथाएँ पूरे विश्व में नए-नए रूप धारण करके भ्रमणे कर रही हैं। ये एक मुँह से दूसरे मुँह तक और एक कान से दूसरे कान तक निरंतर यात्रा कर रही हैं। हमारे वेद-पुराण, रामायण, महाभारत, कर्पूरमंजरी, दशकुमार चरित्र, कथा सरित्सागत, बेताल पच्चीसी, सिंहासन बत्तीसी, हितोपदेश, पंचतंत्र और ऐसे कितने ही ज्ञात-अज्ञात संस्कृत ग्रंथ हैं जिनके आधार पर निर्मित हुई लोक कथाएँ-लोक गाथाएँ देश, काल एवं स्थिति के अनुसार अपना रूप-रंग बदलकर लोककंठ पर बसी हुई हैं। कितने ही लोकगीत अपने स्वर-ढाल बदलकर अलग-अलग अँचलों में गाए जा रहे हैं। यह लोक-साहित्य इतिहास के अँधेरे को दूर करता है, सांस्कृतिक मूल्यों की सुरक्षा करता है और नए इंद्रधनुषी रंग पोत कर उन्हें युगानुरूप बनाता है। लोक कथा हो या लोकगीत, सब यहाँ लोककंठ पर विराजमान हैं। सर्जक अँधेरे में लुप्त हैं, मात्र लोककथा, लोकगीत ही जीवित हैं। इन लोककथाओं, लोक गीतों और लोकोत्सवों में नृवंश शास्त्र, समाज शास्त्र, मनोविज्ञान, नादवैभव, संगीत तत्व, शब्द संपत्ति और लोकरुचि का ऐसा समन्वय हुआ है कि लोक साहित्य को यदि लोक शास्त्र कहें तो अनुचित नहीं होगा।

लोक-साहित्य में सुरक्षित सांस्कृतिक मूल्यों का जब हम अवलोकन करते हैं तो ज्ञात होता है कि जीवन के संपूर्ण अस्तित्व को उसके सभी आयामों के साथ स्थान मिला है लोक साहित्य में। पहले हम लोक गीतों को लेते हैं। मन के राग और विराग जब चेतन जगत में अभिव्यक्ति नहीं प्राप्त करते, तब वे अचेतन मानस में गीत बनकर अँकुरित होते हैं और स्वर का साथ पाकर पल्लवित-पुष्पित होते हैं। लोक गीतों में मानवीय संवेदनाओं के अनेक आयामी शब्द चित्र गाँव-गलियों के चौपालों में जन्म लेकर खेत-खलिहानों, महल-मकानों और अपने बेगानों तक फैल जाते हैं। हरी-भरी वसुंधरा की सुहागिन मुस्कान, कमनसीब, विधवा पगडंडी की वैरागिन पीड़ा, कुंआरी गुलमुहर की हथेली पर लगी मेंहदी की सलज्ज आकांक्षा, जीवन और मृत्यु की श्वेत-श्याम आँख-मिचौनी-अर्थात् व्यक्ति से

लेकर समष्टि तक के समस्त आरोह-अवरोह एवं सुख-दुख लोकगीतों के प्राणों में व्याप्त हैं। मानव के अश्रु और उत्सव लोकगीतों की ओट पाकर जीवन के शाश्वत आनंद की पृष्ठभूमि बन गए हैं।

नारी के लिए तो लोकगीत ही अपने को अभिव्यक्त करने का एकमात्र साधन है। स्त्री जिन बातों को संकोच या लज्जावश किसी के सामने कह नहीं पाती, उन्हीं बातों को गीतों के माध्यम से बड़ी सरलतापूर्वक कह देती है। वस्तुतः लोकगीत नारी-जीवन का कंठहार हैं।

निमिया और अम्बुना की छाया में खेलने वाली कन्या नवयौवना हो गई है। उसके मन में जीवन-सारथी की एक तस्वीर उभरती है, पर अपने अंतर की बात वह किससे कहे? कन्या के इस ऊहापोह के गीतों ने हल कर दिया। राजस्थानी कन्या अपने पिता से गीत की आड़ में कहती है कि बाबुल, मेरे लिए लंबा, ठिगना या काला वर मत ढूँढ़ना और तो और गोरा वर भी मत ढूँढ़ना, क्योंकि-

लांबो मत हेरो सागर चूंट ल्याव,
ओछो मत हेरो पंगात्या गुड़ जाव।
कारो मत हेरो कुल ने जलाव,
गोरो मत हेरो नजर लग जाव।

गुजरात की अल्हड़ बाला भी लगभग ये ही भाव व्यक्त करती हैं-

एक गोरो ते वर मत जोशों रे मामा,
गोरा ने नित्य नजरो लागशे।

मुझे तो ऐसे सांवरिया की तलाश है, जिसके रूप-यौवन का वर्णन मेरी सहेली ने किया है-

एक केड़े पातलियों ने मुखड़े शामलिये।
ए वर मारी सहियरे वखाणियो।
एक पाणी भरती पाणियारिए वखाणियो,
ने भले रे वखाण्यो मारी भाभी ए।

विवाह मंडप तन गया है। मेहमान आने लगे हैं, लेकिन जब तक गणेश जी न आएँ, तब तक कोई भी माँगलिक कार्य नहीं हो सकता। कौरवी महिलाएँ 'गणपत' को बुला रही हैं-

आज मेरे ग्यान गणपत आएँ
गणपत आए मेरे सिर पै बैठे
अच्छे-च्दे साल-दुसाले उढ़ाए।

गणपति को ही नहीं, वैवाहिक मंगलाचार में सभी जातियों को न्यौता दिया जाता है। विवाह के अवसर पर गाए जाने वाले लोक गीतों में जाति और वर्ण समन्वय का जो रूप दिखाई देता है, वह अद्‌भुत है। मालवा की स्त्रियाँ गा रही हैं-

चालो गजानन, खेराती के चालां,
तो आछा-आछा तोरण बंधावां।
चालो गजानन, सोनीड़ा चालां,
तो आछी-आछी रकमाँ गाढ़ावां।

ये लोकगीत ही हैं, जिनमें शुक दुल्हे की खोज करता है, सारस-हंस बरातियों की अगवानी करते हैं, कौआ मेहमानों को निमंत्रण देता है, देवी-देवता और झाड़-पान वर-वधू को आशीर्वाद देते हैं। सप्तपदी हो रही है। दुल्हा-दुल्हन के फेरे हो रहे हैं। गढ़वाली महिलाएँ आँखों में आँसू लेकर गा रही हैं-

पेलौ फेरौ लाड़ी कन्या कुंवारी
दूजो फेरौ लाड़ी माँ की दुलारी,
सातों फेरौ लाड़ी हे चुकी तुम्हारी।

धड़कते दिल से नववधू डोली में बैठती है। माँ अपने दिल के टुकड़े को परदेसी जमाई के हाथों सौंप रही है और आँखों की गंगा-यमुना में पत्थर दिल को पिघलाने वाला गीत गा रही है-

ओ सासू गार मती दीजो,
ओ म्हारी चंपक लाड़क बेटी,
ईन पापड़ दे रे पढ़ाई।

'गाय अबे दीकरी दोरे त्यां जाय' जैसी कहावत को जीने वाली गुजराती कन्या विदा होते समय अपने दादाजी से कहती है-

दादा ने व्हाला दीकरा,
अपने दीघां परदेस।

बिसुरती हुई सखियाँ भी उपालंभ देती हैं-

एक आव्यो तो परदेसी पोपटो,
बेजी रमतां तो माँडवे रे,
धुतारो धूती गयो।

एक 'माँ' नामक स्त्री, बेटी नामक स्त्री को विदा कर रही है अश्रु का उपहार देकर, एक 'सास' नामक स्त्री गीतों की आरती सजा कर

दरवाजे पर स्वागत कर रही है। स्त्री कितने अंतर्द्वंद्वों में जी लेती है। हास और रूदन का मिश्रित परिणाम ही है स्त्री का नाम। अब सुहाग-सेंदूर देने की रस्म अदा की जा रही है। बुंदेलखंड में सुहाग एक पतिव्रता धोबिन के द्वारा दिया जाता है। एक कथा में कहा गया है कि गंगा मैया की परमभक्त एक धोबिन ने अखंड पतिव्रत के प्रभाव से अपने मृत पति को जीवित किया था, परिणामस्वरूप चिरसौभाग्य-कामिनी के लिए धोबिन भी आराध्य बन गई। बघेली के इस 'सोहाग गीत' में यही बात कही गई है-

अरे, धोबिया के द्वारे चंदन बड़ा रुखड़ा,
अरे, ओही तरे जोग बिकाय राजा के सोहगवा।

संयोग श्रृंगार के माँसल दृश्यों की भी कमी नहीं है लोकगीतों में। दांपत्य जीवन की स्वभाविक चेष्टाओं, मान-मनौवलों, शिकवा-शिकायतों एवं रतिक्रीड़ाओं का अवगुंठित रूप देश के सभी लोकगीतों में भरा पड़ा है। पत्नी पति से शिकायत कर रही है-

कदे ये न माणी भंवरजी पीलंग पैजी,
हाँजी ढ़ोल, कदे ये न करी मणवार,
कदे ये न तोडी कस कांचली जी।

दांपत्य-जीवन के खट्ठे-मीठे अनुभवों को मिथकीय संस्पर्श देकर लोकगीत में गुजराती स्त्रियाँ कहती हैं-

लविग केरी लाकड़िये रामे सीता ने मार्या जो,
फूल केरेदडू लिये सीता एवेरवाल्यां जो।

प्रियतम यदि अशक्त है, या कन्या का बेमेल विवाह हुआ है तो जीवन भर रोने के सिवाय और क्या बचता है? स्त्रियाँ व्यंग्य करती हैं-

दारी बागड़ सरीखी नार, बालम छोटा-सा,
मर जावे तारा माय न बाप,
लाजां मति मारो भरतार, बालम छोटा-सा।

पति को पत्नी रोष में भरकर पीहर से पत्र लिखती है-

बाड़ी सूखे बापड़ी, कुएं सुखे कचनार,
गोरी सुखे बाप के, हीण पुरुष की नार।

पुत्र-प्राप्ति नारी-जीवन की चरमोपलब्धि है। पुत्र-प्राप्ति के लिए बघेली स्त्री गंगा मैया से प्रार्थना करती है-

ना मेरे सास ससुर दुःख नाहीं नहियर दुःख भय हो,

गंगा माँ मोर प्रभु परदेस, कोंख दुःख परिगा हो।

एक मालवी स्त्री पुत्राकांक्षा लेकर देवी के मंदिर में जाती है और उसके यहाँ पालना बाँधकर प्रार्थना करती है-

एक बारूड़ा के कारणे म्हारा सुसराजी बोले म्हने बोल,
एक बारूड़ा के कारणे म्हारा सायबजी लावे लोढ़ी सौत,
माता म्हारी एक बालूड़ा देय।

सूनी गोद पीड़ा बड़ी मर्मांतक है। एक निमाड़ी अपुत्रा स्त्री रो रही है-

माता छात्या लीप्या हो म्हारा ओटला,
माता, द नहिं म्हारो खेलणहार।

देवी-देवताओं के आशीर्वाद और व्रत-उपवास की कृपा से स्त्री गर्भवती हो गई। नौ मास तक गर्भ धारण करने वाली नारी विभिन्न इच्छाओं एवं लालसाओं के मध्य गुजरती है। एक मालवी गीत में गर्भवती की मनोदशा का सुंदर चित्रण हुआ है-

पेले मास आँबा जांबू मन जावा हो लाग्यो,
दूसरा में आलस दिन, तीसरा में आवे झीणी नींद,
चौथा में बाग-बगीचा की सैर, पाँचवाँ में भावे दाख-चिरोंजी,
छट्टा में खाटा बोर
सातवाँ में पूजी अगरणी, आठवाँ में लूची लापसी,
और नवमें मास में-

पुत्र जन्म पर पूरे परिवार में आनंद-उल्लास छा जाता है। माँ गीतों की लहरियों में अपनी प्रसव पीड़ा भूल जाती है। यदि पुत्री का जन्म होता है तो परिवार में उदासी के बादल घिर आते हैं। समाज में कन्या को वांछनीय सम्मान नहीं मिलता, यह बात नारी अपने जीवन के अनुभवों से जानती है। वह कहती है-

जो हम जानती कि धिया कोंख जनमि है,
पिअती हम मरिच झरार ए।

स्त्री के त्याग, तप और बलिदान को पुरुष ने हमेशा नकारा है। उसके दर्द की कथा को सबने कल्पित कहकर ठुकराया है, इसीलिए प्रत्येक युवती भगवान से यही प्रार्थना करती है कि-

तिरिया जनम जनि दइयो मोरे राम!

स्त्री के लिए पति का सुख और पुत्र का मुख स्वर्गीय सुख

माने जाते हैं। पति चाहे जहाँ रहे, दिन भर चाहे जहाँ काम करे, किंतु शाम को घर लौट आए- यही उसकी लालसा है। उसकी एक रात के सामने पति की नौकरी पासंग भर भी नहीं है। एक मालविका परदेश जाने वाले अपने पति से कह रही है-

लाख टका की थांकी नौकरी, करोड़ां मुहरां की म्हारी रात,
मत जाओ पिऊ परदेश, छोड़ी गोरी को हाथ।

गुजरात की ललना भी पिया को अपने से अलग नहीं कर पाती-

तमने व्हाली दरबारी चाकरी रे,
अमने व्हालो तमारो जीव
गुलाबी, नहिं रे जावा दउुं तमने नौकरी।

राजस्थानी लोकगीत में निकट ही नौकरी कर लेने की बात कही गई है-

नेड़ी तो नेड़ी करजो पियाजी चाकरी जी,
सांझ पड्यां घर आय जाओ गोरी रा बालमाँ जी।

लेकिन पुरुष कभी परवाह नहीं करता स्त्री के अंतर्मन में छिपी पीड़ा की। वह तो चला गया है परदेश। छत्तीसगढ़ी विरहिणी अपने पति के पास शुक्र को भेजती है, ताकि वह उनका संदेश लेकर आए-

रे सुअना, पिया के संदेश लेई आव,
राजा मोर गंए हवे अती बनीजवर।

लो, काली-काली घटाएँ नभ को आक्रांत कर रही हैं। बेचारी वियोगिनी नारी धैर्य कैसे धारण करे? मैथिली लोकगीतों में वियोगिनी की साड़ी भीग रही है, पर पति परदेश में विराजे हैं-

कारी-कारी बदरी उमड़ि गगन माझे
लहरि बहे पुरवइया
मत बदरा बूंद-बूंद झहरह
धराए पलंग पर भीजत कुसुम रंग सड़िया।

भादों मास में मयूर की 'टहुक' सुनकर कुमाऊंनी नारी का मन भी पिया-पिया बोल उठता है-

भादोई भवन भयो घनघोरा,
पिहु-पिहु बोले बन काई मोरा।

वियोग एक पक्षीय नहीं होता। गोरी यदि सूनी सेज पर आँसू बहा रही है तो प्रियतम भी सेना में रक्तरंजित हो रहे हैं :

गोरी तो भीजे पिया गोखड़े जी,

आलीजो भीजे फौजां माय।

प्रियतम लौट आइए! उजड़े हुए हुए गाँव फिर बस जाएँगे, किंतु गया हुआ यौवन लौटकर नहीं आने वाला है-

ऊजड़ खेड़ा फेर बसे जी,
हाँजी, निरधनिया धन होय
जौवन गयो न पाछो बावड़े जी,
अब घर जाओ झूरे धण एकली जी।

पति की अनुपस्थिति में उसके प्रतिरूप पुत्र को लोरियाँ गाकर सुलाया जा रहा है। लोकगीतों में लोरियों और बालगीतों की कमी नहीं है। गुजरात में लोरियों को 'हालरड़ाँ' कहते हैं। एक हालरड़े में माँ अपने पुत्र को रन्नादे का प्रसाद मानकर कहती है-माँ, तुने पलने में पोढ़ने वाला बालक देकर मेरे वंध्यत्व का कलंक मिटाया है-

घेर ने पछवाड़े रूड़ूं घोड़ियुं,
पारणानो पोढनार दीधो रन्नादे
वांडिया मेणां माँए भांगिया
धोया-धपोयो मारो साड़लो,
खोलानो खूंदनार दीधो रन्नादे,
वांझिया मेणां माँए भाँगिया।

एक अन्य गीत में माँ बच्चे को सुलाते हुए कहती है-

साव सोना नुँ मारूँ माटड़ियुं
ने घूघरिया घमकारा, बाला पोढ़ो ने
चार पाए चार पूतकियुँ
ने मोरवाए बे मोर, बाला पोढ़ो ने

बालक खेल-खेल में बड़ा हो रहा है। वह अपने साथियों के साथ खेलकूद में मग्न है। वह बादलों को देखकर रींझता है और उन्हें बुलाता है-

आव रे बरसात,
ऊनी-ऊनी रोटली ने कारेला नुं शाक
थारी माँ ने बीछूं काट्यो दौड्यो-दौड्यो आव

छोटे-छोटे बच्चे अपने खेल में विभिन्न सार्थक-निरर्थक शब्दों से बने लघु गीतों का प्रयोग करते हैं। बालक गा रहे हैं-

चांदा बाबा पोली दे, घी की कचौरी दे,

आदो लाडू भावे नी, दादाजी परणावे नी,
झम्मक लाडी आवे नी।
ब्रज के बालक तालियाँ बजाकर नाच रहे हैं-
आटे-बाटे दही चटाके,
बन फूले बंगाली फूले।
बाबा लाए तोराई, भुंजि खाई भोराई।

बालक का मुँह देखकर विरहिन अपने दिन काट रही है और एक दिन वह देखती है कि प्रियतम सौत लेकर घर आ गए हैं। लोक गीतों में सौतिया डाह का भी वर्णन हुआ है। पत्नी नाराज है। उसे अपने पति पर शंका है। प्रियतम को उसकी नई प्रेमिका संकेत करके बुलाती है, पर यह अपनी विवाहिता से डरता है-

चतुर म्हारे सेजों आजोजी,
मै सेजां फिरूँ अकेली
पपठया बोलू जी
भाएली म्हारी, किस विध आवां ए,
म्हारी परणी करे लड़ाई।

नारी का सौंदर्य ही उसकी शक्ति है। वह पति को अपने सौंदर्य से आकर्षित करना चाहती है। वस्त्र, आभूषण, बेंदी, कंकू, सिंदूर, मेंहदी, महावर, उबटन, मिस्सी आदि कई सौंदर्य प्रसाधनों से वह बन-ठन कर पति का दिल जीतना चाहती है।

लोक-जीवन में ससुराल, सास-ननद आदि अत्याचार के प्रतीक बन गए हैं। पीहर की मुग्धा सद्यः विवाहिता नवयुवती ससुराल में एकदम नवीन अजनबी वातावरण को आत्मसात् नहीं कर पाती। जिस सास ने वधू-जीवन में अपनी सास के अत्याचार सहन किए, वह उनका बदला अपनी नई-नवेली बहू से लेती है। इस हवन में ननद और पड़ोस की गलित-यौवनाएँ आहूतियाँ देती हैं। दुर्भाग्य से यदि पति ने भी अपनी माँ, बहन और पड़ोसी चाचियों का पक्ष लिया तो पीड़ित एवं क्रुद्ध वधू कुंठा और ढीठता की कोठरी में बंद होती चली जाती है। वधू-वर्ग की संपूर्ण प्रतिशोधात्मक एवं आक्रोशपूर्ण भावनाएँ सास एवं ननद के प्रति अभिव्यक्त हुई हैं-

लाडू म्हारा ससराजी ने पेड़ा देवर जेठ,
सास हमारी सूगली ने कई नणदल खारी सेन।

स्त्रियाँ तीज-त्यौहार एवं पूजा-अर्चना को जीवन में अनिवार्य मानती। होली, राखी, दीपावली, गणगौर, करवाचौथ आदि पर्वो पर उनके गीतों की पवित्रता चौपालों, मंदिरों एवं गली-मुहल्लों में गूँज उठती है-

रामा के हाथ ढोलकिया सोहे, लछिमन हाथ सहनाई
भरत के हाथ मुरलिया सोहे, सत्रुहन बीन बजाई
अवध माँ खेले श्री रघुनाई, संग में लिए जानकी माई।

बहन के मन में भाई के प्रति स्नेह सरोवर लहराता है। रक्षाबंधन, भाई दूज आदि कई प्रसंगों पर वह अपने वीरा के गीत गाती है। विवाह के समय तो बहन अपने भाई को याद करती ही है-

वीरा चालो रे दुखणी बहेनी ने घेर,
उतारा देस्यूं ऊँचा ओरडा

भाई के स्वागत में गुजराती बहन पलक-पाँवड़े बिछाकर खड़ी है। वह उसके लिए सुमधुर भोजन बनाने की तैयारी करती है-

रांधीस रांधीस रे वीरा, कमोदुना कूर,
पासेर रांधीस काजू खीचड़ी
पापड़ सेकीस रे वीरा पूनम केरो चाँद
ऊपर आदू ने गरमर आथणो।

भाई से बीकानेरी चूनर मँगाने का आग्रह किया जा रहा है एक राजस्थानी बहन के द्वारा-

छीपां रो घर चौवटे रे वीरा
असी तो छपाज्ये म्हारे चूँदड़ी,
जसी धणा दी दाल ओ वीरा,
चूंदड़ लाजे रेशमी।

विवाह में मोसरा लाने वाले भाई की प्रतीक्षा में बहन द्वार पर खड़ी है-

बागाँ में बाज्या जंगी ढोल, शेरां में बाजे शहणाई,
आयो म्हारो जामण जायो वीर, चूँदड़ लायो रेशमी।

लोकगीतों में कृषि एवं उसके संवाहक किसान का भी यत्र-तत्र वर्णन हुआ है। कहावतों एवं लोकोक्तियों में कृषि कर्म से संबंधित बातें अनायास ही आ गई हैं। घाघ एवं भडुरी की उक्तियाँ तो जैसे कृषि-वेद ही है। गाँववालों को अपने गाँव, प्रदेश और खेत-खलिहान से प्राणाधिक प्रेम होता है। एक कांगड़ी लोकगीत में वहाँ के निवासी कह रहे हैं-

जी, मेरा कांगड़ा देस निआरा,

डुगी-डुगी नदियाते सैली सैनी धारा।

इसी प्रकार कुलूघाटी के निवासी अपने प्रांत को सर्वश्रेष्ठ मानते हैं-

ऋषि मुनी राँ उतरा खौंडा देवादेवी राँ प्यारा,

देशा-देशा ने शोभला देश कुलूँ राँ प्यारा।

राष्ट्रप्रेम एवं राजनैतिक चेतना के स्वर भी गीतों में झंकृत हुए हैं। पंजाबी लोकगीतों में चरखे की घूँ-घूँ से स्वतंत्रता-प्राप्ति की बात कही गई है। भोजपुरी महिलाएँ चरखा कात कर युग-परिवर्तन की बात कह रही हैं-

सखियाँ, सब मिली आवहु हो,

चरखा चलावहु, हाथ बटावहु, युग पलटावहु हो।

भक्ति और दैन्य को भी लोकगीतों में आश्रय मिला है। एक अवधी लोकगीत में रेल और मानव-जीवन का रूपक इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है-

प्रभु ने कैसी रेल बनाई।

तन की गाड़ी, मन का वेग ले जाई।

पानी रुधिर अपार भरौ है, मन का वेग ले जाई।

साँस की सीटी बजाई।

मध्यप्रदेश के निमाड़ जिले में किसी वृद्ध व्यक्ति या संत की मृत्यु पर भजन ही गाए जाते हैं। लोग झाँझ-मँजीरे बजाते हुए श्मशान तक जाते हैं। इन गीतों को मसाणिया नारद गीत कहते हैं। एक गीत में कहा गया है-

पिंजरा से पोपट उड़ी गया,

अरे, बैठा जमना किनार

पोपट, थारे कारणें अरे, खासा लगाया बाग,

पढ़ो रे पोपट, श्री राम का।

वस्तुतः लोकगीतों में मानवीय चेतना और साँस्कृतिक मूल्यों के स्वर अहर्निश गूँजते रहते हैं। पनघट से मरघट तक लोकगीतों की रजनीगंधा पीर फैली हुई हैं। मानव यदि गा न सका होता, तो शायद यह विक्षिप्तों की दुनिया होती।

लोकगीतों की तरह लोक कथाओं का भी अपना साँस्कृतिक वैभव है। कथा सब वाड्मयों की आद्या है। लोक कथाएँ लोकशिक्षण भी करती हैं और लोकरंजन भी। यूरोप के कई लोक-साहित्य-समीक्षकों ने लंबे

अभ्यास के बाद यह स्वीकार किया है कि वहाँ की अनेक लोक कथाओं का जन्म भारत में हुआ है। यहाँ की कई पौराणिक कथाएँ, दंतकथाएँ एवं पशुकथाएँ वहाँ की परीकथाएँ बन गई हैं। प्राकृत-अपभ्रंश की कई नीति कथाएँ लोक आकर घुलमिल गई हैं। 'वृहत्कथा' तो जैसे आधार ही हो गया है यहाँ ही कुछ लोक कथाओं का। हमारी लोक कथाओं में परंपरागत चिर-परिचित पात्र होते हैं- आलौकिक वीरता से युक्त नायक, अपूर्व सुंदरी नायिका, देवी-देवता, दैत्य, जादूगर, विमाता, दुष्टमंत्री, दैत्य पुत्री, ईर्ष्यालु रानियाँ और वे सब, जिनकी सहायता के कथा जन्म ले, बढ़े, फले-फूले, चरमोत्कर्ष पर पहुँचे और अन्त में 'खाया पीया और राज किया' या 'खाधुं -पीधुं अने मजा करी' पर समाप्त होती है। गुजरात में कई लोक कथाएँ घर-घर चलती हैं, जैसे-चालो ने पूतली आपणे घेर, मन-सागरो, हंसावली पद्मनी, जैमंगला हाथी। हास्य-कथाएँ भी खूब हैं, जैसे- आनंदी कागलो, अवलचंडी स्त्री, हस्तां-हस्तां माँ आदि। यहाँ की लोक कथाओं में शाक्त, वैष्णव, सीदी, सूफी एवं स्वामिनारायण संस्कृति का प्रभाव है। सभी कथाएँ यथार्थ से आदर्श क्री ओर जाती हैं तथा अन्त में मानवीय गुणों और सांस्कृतिक मूल्यों की सुरक्षा करते हुए समाप्त होती हैं।

लोक कथाओं की तरह लोक कथा गीतों का भी यहाँ फैलाव है। उनमें वैर और प्रेम, पुरस्कार और तिरस्कार, दगा और दिलावरी, युद्ध और मैत्री, हास्य और रूदन-सब कुछ है। सोरठी गीत कथाओं के विषय में झवेरचन्द मेघाणी ने लिखा है, 'प्रेम और करुणा में समाप्त होना यहाँ के लोक कथा-गीतों का मूल है। इस प्रेम को पागल प्रेम या पहाड़ी प्रेम भी कहा जा सकता है।' एक कथागीत की आप कल्पना कीजिए, जिसमें नेसड़ में रहने वाली आयर कन्या 'नागमद' सवियाणा शहर में घर का ताया हुआ घी बेचने जाती है, बनिए की दूकान पर। साथ में उसकी कई सहियरें हैं। बनिया घी परख कर तोल रहा है। उसी समय बांका वीर 'नागवाला' घोड़े पर चढ़कर वहाँ से निकलता है। बड़ी प्रशंसा सुनी है उसकी नागमद ने। वह उसे एकटक देखती है। बनिया कह रहा है, 'ऐ बाई, इधर ध्यान रख। तेरे घी की धार नीचे गिर रही है, तावड़ी में नहीं गिर रही है।' लोक कथा-गीतकार कह उठता है-

ढोल्याँ जाव रे घी, आजूनां उतारणां
धनवारो धन दि, निरख्योवाला नाग ने।

घी ढुल रहा है, रूप भी ढुल रहा है। विवेक भी है। नागवाला ढाल अपने मुँह के आगे कर लेता है। नागमद कहती है, 'अरे

ढाल तो अलग करले! हाथों को हथकड़ी और पाँवों को बेड़ी पहना सकते हैं, पर आँखों का क्या करूँ। यह प्रथम-दृष्टि का प्रेम है, यह पहाड़ी प्रेम है। यह प्रेम लगभग समस्त गीतकथाओं में है। हाँ, यह अलग बात है कि ऐसा पागल प्रेमियों का रावण हत्या पर कामठी घुमाकर रूणझुम-रूणझुण स्वर में गीत कथा सुनाने वाले, बीच-बीच में भाषा और कथा के वैचित्र्य से कथा को लाड़ लड़ाने वाले चारण, देवी पुत्र, कथक, बजवैये, रावलिये, भाट, ढाढी आदि गीत कथा कहने वालों की लंबी परंपरा है। गुजरात में प्रचलित कथात्मक लोकगीतों में सोढ़ानों संग्राम, भगीरथनों, अवतार, मायानु दान, जतिनो अवतार, देवा-कोटिला, वीरांगना हाड़ी रानी आदि प्रसिद्ध हैं। इन सबमें दो बातें प्रमुख हैं- चतुराई भरा कथा-तत्व और नाट्यात्मक निरूपण। सौराष्ट्र में कथागीतों के पाँच प्रकार हैं- रासड़ा, गरबा, गरबी, पवाड़ा और शलोखा। रासड़ा में सामाजिक जीवन की कथाएँ, भाई-बहन का प्यार आदि केंद्र में होते हैं। गरबी पुरुष गाते हैं, गरबा स्त्रियाँ गाती हैं। इन्हें अनुष्ठान गीत भी कहते है। जो नवरात्रि में या किसी माँगलिक पर्व पर गाए जाते हैं नृत्य के साथ। इस प्रकार गरबा-गरबी और रास गीत प्रकार भी हैं और नृत्य प्रकार भी। पवाड़ा दक्षिण गुजरात में अधिक प्रचलित है, जो महाराष्ट्र की देन है। इनमें ऐतिहासिक पात्रों का जीवन-चरित्र होता है। सूरत जिले में गोपी नायक का पवाड़ा घर-घर गाया जाता है। शलोखा उत्तर गुजरात की आजणा जाति में अधिक प्रचलित है। 17वीं शताब्दी में पवाड़ों के प्रचलित होने की बात इतिहास स्वीकार करता है। इसी तरह 'गरबा' शब्द वल्लभ मेवाड़ा के समय से चलता है। 'रासेड़ा' के लिए तो यहाँ तक कहा जाता है कि यूरोप का 'बेले' उसी का पाश्चात्य रूप है। अरब में पुत्र जन्म पर गाए जाने वाले गीतों पर कच्छ के 'गगो' का प्रभाव है। उत्तर भारत के 'सोहर' की तरह गगो में भी वात्सल्य और मातृत्व की मीठी महक है।

अब लोकनाट्य की बात कर रहा हूँ। इस विधा में गीत, संगीत, कथा एवं अभिनय-चारों का समन्वय होता है। 'काव्येपुनाटकं रम्यं' की तरह पूरे लोक-साहित्य में सबसे अधिक प्रभावपूर्ण लोक विधा है लोकनाट्य। राजस्थान, मध्यप्रदेश एवं गुजरात की सीमारेखाओं में कई लोक नाट्य शैलियाँ प्रचलित हैं। तुर्रा-कलंगी, ख्याल, रामलीला, रासलीला, भवाई, पंडवानी आदि कई लोकनाट्य प्रकार हैं। तुर्रा-कलंगी में लोक कथाओं और पौराणिक कथाओं को गीतात्मक संवादों के माध्यम से खुले चौक में खुले मंच पर प्रस्तुत किया जाता है। ख्याल पर मराठी लोकनाट्यों का प्रभाव है। रामलीला और रासलीला पर पुराणों और लोक परंपराओं का मिश्रित प्रभाव

होता है। भवाई गुजरात का प्रसिद्ध लोकनाट्य है। भवाई यानी स्वांग। 14वीं शताब्दी में गुजरात-स्थित सिद्धपुर में असाइत नामक एक अभिनेता नर्तक थे, जिन्होंने 360 वेश रचे थे। उनके पुत्र माडण ने जो वेश बनाया था, उसे 'भावन' कहा गया। वहीं से भवाई का प्रारंभ हुआ। उसमें अड़वा और रंगला जैसे पात्रों के माध्यम से सामाजिक विरूपताओं का पर्दाफाश किया जाता है। मनोरंजन और शिक्षण दोनों का निर्वाह करता है भवाई। स्वांग खुले मैदान में होते हैं। दशहरा या दीपावली से गाँवों में 'भूंगल' नामक वाद्य बजने शुरू हो जाते हैं और स्वाँग करने वाली मंडलियाँ गाँव-गाँव घुमने लगती हैं। गुजरात के इस लोक नाट्य में रंगमंच की आवश्यकता नहीं पड़ती। तारों भरे आकाश की छाँव में मशाल या पैट्रोमेक्स के प्रकाश में बिना किसी टीमटाम के भवाई हो सकता है। इस लोकनाट्य में नुकड़ नाटक के तत्व विद्यमान हैं। गीत, संगीत, नृत्य और नाट्य की चाशनी में पगे स्वांगों में गुजरात ही नहीं, पूरे देश के लोक जीवन की धड़कन सुनाई देती है।

छत्तीसगढ़ और बुंदेलखंड की सीमा पर पंडवानी लोकनाट्य बहुत प्रचलित हैं। वस्तुतः इसमें गीत, नाट्य एवं कथा का लोक भोग्य रूप रहता है। अपने नामानुसार इसमें महाभारत की पांडव-कथा गद्य और पद्य के मिश्रित चम्पूरूप में (पड़ाव शैली में) लोक नृत्य और लोक संगीत का सहारा लेकर लोक रुचि से जोड़ी जाती है। कापालित शैली में कही जाने वाली एक कथा छत्तीसगढ़ में भगवान से लेकर सोरठी ब्रजगाट, लोरिकायन, अल्हा आदि ृतिकथाओं की परंपरा है ही, पर पंडवानी की बात ही अलग है। यह मुख्य रूप से प्रभावशाली गायन, आकर्षक वादन, रोमांचकारी व्याख्यान और अवसरानुकूल भाव प्रदर्शन से जुड़ा है। इस कापालिक गायनशैली को तीजन बाई जिस प्रभावपूर्ण ढंग से प्रस्तुत करती हैं उसे देखकर भारत ही नहीं, अन्य देशों के कला समीक्षक दंग रह जाते हैं। पंडवानी कथा-शैली की एक और चर्चित गायिका है शान्ताबाई चेलक। 15 वर्ष की उम्र में ही यह भारत के विभिन्न अँचलों में पंडवानी के कार्यक्रम प्रस्तुत कर रही है। महाभारत के 18 सर्गो की कथा 18 दिन तक चलती है और रोज छह से आठ घण्टे तक लोग दत्तचित्त होकर पंडवानी का आनंद लेते हैं। देवांगन भी प्रतिष्ठित पंडवानी गायक हैं, जिन्हें विश्वस्तरीय यश प्राप्त हुआ है।

लोकगीत, लोक कथा, लोक कथा-गीत एवं लोक नाट्य के अतिरिक्त लोक-साहित्य में अन्य कई विधाओं को भी प्रश्रय मिला है। लोक संगीत, लोक चित्र, लोकवाद्य एवं लोक मूर्तिकला के भी अपने-अपने आयाम

हैं। भारतवर्ष के विभिन्न अँचलों में बनने वाले मिट्टी के बर्तनों, देवी-देवताओं की मूर्तियों, पछाइयों, वस्त्रों आदि में लोक-साहित्य की छाँट मिलती है। लगता है, जैसे मोहन-जोदड़ों और हड़प्पा जीवित हो गए हों। बलिया देव, शीतला माता गोत्रज, चंदखा, पगला, संध्या, सरवण आदि की विचित्र ज्यामितिक आकृतियाँ अपने आप में बहुत कुछ कह जाती हैं। कहावतों और पहेलियों के क्षेत्र में भी लोक-साहित्य काफी समृद्ध हैं। उनमें लोक-कल्पना, लोकानुभव और सौंदर्य दृष्टि का समावेश है। अनुभव, समझदारी और परिपक्वता का जब भाषा में प्रवेश होता है तो संक्षेप में अपने विचारों को व्यक्त करने की कला का विकास होता है। रूढ़ि प्रयोग, कूटपद एवं क्लिष्ट प्रश्नोत्तर लोक-साहित्य को जीवंत रखते हैं।

लोक-साहित्य की गवेषणा, शोध-खोज, पर्यालोचना एवं संकल्प-व्यवस्था की भी लंबी कहानी है। कर्नल टॉड, फार्लस, टेसिटोरी, वेरियर, एल्विन एवं आर्चर जैसे विदेशी भाषाविदों तथा इतिहासज्ञों ने लोकसाहित्य को मिट्टी से उठाकर महलों तक चर्चित किया है। जर्मनी के डॉ. हैज और उनकी पत्नी बरड़ा की पहाड़ियों में जाकर माल धारियों के लोक साहित्य पर शोध करते रहे। चिली के डॉ. थॉमस पोरबंदर के आसपास घूमते रहे। डॉ. पाइपर लोक साहित्य के मोटिफ के लिए सौराष्ट्र में घर-घर चक्कर लगाते रहे। गोल्ड स्टेन के विद्यार्थी मिलर, पांबूजी की लोक कथा के लिए जामनगर के खेड गाँव स्थित भोपाओं के बीच रहे। कई भारतीय मनीषियों ओर शोधार्थियों ने भी लोक-साहित्य की सांस्कृतिक महत्ता को जनता के सामने रखने का भरपूर प्रयत्न किया। गुजरात के कई विद्वानों, चिंतकों, साहित्यकारों एवं शोध-समीक्षकों ने अपनी अस्मिता इसी कार्य को समर्पित कर दी हैं। झवेरचंद मेघाणी, दुलाभाई काग, गिजुभाई बधेका, पुष्कर चंद्राकर, जयमल परमार, दुलेराय कराणी, मकरंद दवे, शंकरभाई तड़वी, मोहन भाई नायक, मनजी भाई व्यास, अली भाई रूदात, जोरावरसिंह जादव-कितने नाम हैं समर्पित सारस्वतों के और यह सूची हमेशा अधूरी ही रहेगी, क्योंकि लोक-साहित्य की तरह लोक साहित्य के अध्येताओं की भी पूरी जानकारी कहाँ मिल पाती है?

यंत्रयुग ने पूरी मानवता को प्रभावित किया है। जब जीवन के शाश्वत मूल्य धराशायी हो रहे हैं, जब सांस्कृतिक धरोहर को ही नुकसान पहुँच रहा है तो लोक-साहित्य अपने आपको कैसे सुरक्षित रख सकता है? लोकगीतों की मधुरता में कमी आ रही है, लोक कथाओं की तन्मयता मे

विक्षेप पड़ रहा है, लोक नाट्य के तीखेपन को जंग लग रहा है, लोक संगीत-चित्र-मूर्ति आदि प्रहसन एवं मजाक के साधन रह गए हैं। लोक विश्वास खंडित हो रहा है, जीवन-मूल्य बदल रहे हैं। बेचारा लोक-साहित्य इस प्रदूषण को कैसे सहे? रेडियो, टी. वी. एवं सिनेमा-संस्कृति ने औद्योगीकरण तथा भौतिकवाद से हाथ मिलाया है, अतः विश्व के शाश्वत मूल्यों को कष्ट तो सहने पड़ेंगे ही। यह किसी प्रांत या प्रदेश का प्रश्न नहीं है, यह किसी देश या राष्ट्र का प्रश्न नहीं है, यह अंतर..ष्ट्रीय प्रश्न है, वैश्विक प्रश्न है। अब भारतीय संस्कृति या आर्य संस्कृति जैसी अलग से कोई बात रहने वाली नहीं है। अब मिश्रित संस्कृति पनप रही है, वर्णशंकर संस्कृति। अब विघटन के महाभारत में केवल कौरव ही नष्ट नहीं होंगे, पांडव भी क्षतिग्रस्त होंगे। राजनीति के अपराधीकरण और बहुराष्ट्रीय कंपनियों के औद्योगीकरण से लोक-साहित्य को बचा पाना कठिन है।

इस वैश्विक प्रश्न को उतना ही महत्व मिलना चाहिए, जितना बेकारी, बेरोजगारी, जनसंख्या, प्रदूषण आदि प्रश्नों को मिला है। अर्थ, केंद्रीत इस युग में और अनर्थ केंद्रीत आने जाने वाले युग में हम 'लोक' शब्द को बचा सकें तो इससे अधिक पुण्य-कार्य और क्या होगा? झवेरचंद मेघाणी के शब्दों में-जिन्हें कसूंबी का रंग लगा है, वे ही सिर-फिरे अलमस्त धरती माता के लाल 'लोक' को बचा सकेंगे-

जननीनां हैया माँ पोढ़ंता-पोढ़ंता कसुंबीनो रंग,
भगिनीनां कंठे थी अग्तां हालरड़ां माँ घोल्यो कसुंबीनो रंग,
ओ राज, म्हने लाग्यो कसुंबिनो रंग।

अध्याय : चार
राष्ट्र निर्माण और राष्ट्रीयता

राष्ट्र का विकास और नैतिक मूल्यों का तकाजा
प्रो. के. डी. गंगराड

आज भारत में भ्रष्टाचार तथा जनशोषण के लिए नौकरशाहों, व्यापारियों तथा राजनीतिज्ञों में सांठ-गांठ का बोलबाला है। विश्व के सर्वाधिक भ्रष्ट देशों में भारत भी एक है। जनता का अपनी किस्मत का फैसला करने वाले राजनेताओं में न तो भरोसा रह गया है और न विश्वास। अत: सवाल उठता है कि वर्त्तमान पीढ़ी किन जीवन मूल्यों पर अपनी दृष्टि केंद्रीत कर उन्हें भावी पीढ़ियों को दे जाए। इस सवाल का जवाब देना ही होगा। वर्तमान पीढ़ी अपने माता-पिता, अध्यापकों तथा राजनेताओं में से किसी में भी कोई अनुकरणीय आदर्श नहीं पाती। गाँधी के शब्दों में आदर्श व्यक्ति को स्फटिक की भाँति स्वच्छ (पारदर्शी), मेमने की तरह विनीत, सिंह की तरह वीर और बलिदान करने के लिए कटिबद्ध होना चाहिए।

समाज के सभी स्तरों जैसे कि परिवार, समाज, देश में असहिष्णुता दिखाई दे रही है परिवार टूट रहे हैं। इसका दुष्परिणाम भावी पीढ़ियों को जूझना पड़ेगा और वे हमारे इस अपराध को कभी माफ नहीं करेंगे। गाँधी जी के अनुसार हमें मूलभूत अधिकारों की बात करने के स्थान पर मूलभूत कर्त्तव्यों तथा दायित्व की बात करनी चाहिए। अधिकार का सच्चा स्रोत कर्त्तव्य है। यदि हम अपने कर्त्तव्यों का पालन करें, तो अधिकार स्वत: प्राप्त हो जाएँगे। गाँधी जी की दिव्य ज्योति प्रत्येक भारतीय की आत्मा में जगमगानी चाहिए। दूसरे लोग कुछ भी करें, हममें से प्रत्येक को अपने व्यक्तिगत, पारिवारिक तथा सामाजिक जीवन में पारदर्शिता, पवित्रता और ईमानदारी अपनानी चाहिए। ये स्वच्छ जनतांत्रिक और कुशल प्रशासन के मूलभूत तत्व हैं।

कर्त्तव्यों के पालन करने से ही व्यक्ति तथा समाज का अस्तित्व सुरक्षित रह सकता है, वे सुखी-संपन्न बन सकते हैं। कर्त्तव्य पालन से ही वह वातावरण बनता है जिसमें अधिकारों का उपयोग किया जा सकता है। अधिकारों की रक्षा के लिए बाह्य सत्ता या शक्ति भी आवश्यक है। ऐसी सत्ता के अभाव में अधिकतर केवल विचारों तथा इच्छा के विषय बने रहेंगे। अत: आवश्यक है कि पहले ऐसी सत्ता और उसकी क्षमता

सुनिश्चित की जाए और यह तभी संभव है जब हम अपने कर्त्तव्यों का पालन करें। इसी अर्थ में अधिकारों का स्रोत कर्त्तव्य कहा गया है। कर्त्तव्य पालन के लिए दूसरों पर निर्भर रहने की आवश्यकता नहीं है, जबकि अपने अधिकारों का उपयोग करने के लिए दूसरों की आवश्यकता होती है। गाँधी जी का विश्वास था कि उच्चतर विधान के अनुसार कर्त्तव्यों का पालन करना समाज के लिए परम आवश्यक है। यदि स्वार्थ और आत्मभोग ही हमारे जीवन का आदर्श वाक्य बन जाए तो न तो कोई समाज सुरक्षित रहा सकता है और न उन्नति कर सकता है, वह महान उपलब्धियों से सदा वंचित ही रहेगा।

समकालीन सामाजिक आँकड़े :

समकालीन अंतरराष्ट्रीय समुदाय से प्राप्त आधार सामग्री से पता चलता है कि समाज में स्थिरता और अवस्था बनाए रखने की हमारी क्षमता का लगातार ह्रास होता जा रहा है। वर्तमान समाज के संस्थापकों की अहिंसात्मक एकीकरण की जादुई शक्ति को घुन लग गया है, वह दिन-दिन क्षीण होती जा रही है। यह वह शक्ति थी, जिसने विषम वर्गो, संप्रदायों, जातियों को एकता की श्रृंखला में बाँधने में महत्वपूर्ण सफलता प्राप्त की। मानव जाति को एकता के सूत्र में बाँधने वाले सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्य जो अपरिहार्य माने जाते थे समाप्त हो रहे हैं तथा उनके स्थान पर विश्व के लगभग सभी देशों में विभाजन और खंडन करने वाली शक्तियाँ सिर उठा रही हैं। लगता है कोई बड़ी मूल्यवान, महत्वपूर्ण चीज हमारे हाथ से निकली जा रही है।

आर्थिक उदारीकरण एवं वैश्वीकरण के बावजूद सामाजिक संगठनों-परिवार, गाँव, कस्बे, जातीय दलों में और संप्रदायों के बीच भेदभाव की भावना बढ़ रही है जिसके परिणामस्वरूप वे टूट रहे हैं। सामूहिक प्रयत्नों का स्थान व्यक्तिगत प्रयत्न ले रहे हैं। मिलकर काम करने की भावना के कारण व्यक्ति-व्यक्ति के विरूद्ध हो रहा है, एक दल दूसरे दल के विरूद्ध उठ रहे हैं। यह क्षैतिज और लंबकीय अलगावाद तथा कथित सुबुद्ध जनों द्वारा समस्त संसाधनों पर एकाधिकार के कारण और अधिक बढ़ रहा है। ये संपन्न लोग नैतिकता एवं धर्म की चिंता न कर अधिकाधिक संपत्ति और सत्ता हथियाने में प्रवृत्त हैं। एक विचारक ने कहा था कि सत्य दुर्लभ वस्तु है, परंतु माँग की तुलना में उसकी आपूर्ति सदा अधिक होती रही है। यद्यपि चारों ओर देखने में लगता है कि सत्यमेव जयते का नारा गलत है, परंतु फिर भी कहीं न कहीं, किसी न किसी प्रकार कुछ ऐसा घटित हो रहा है कि मानव जाति

सत्य और अहिंसा के विषय में सोचने-विचारने और कहने के लिए बाध्य हो रही है। सत्य ही सुरक्षित रहेगा, शेष सब समय के ज्वार में बहकर नष्ट हो जाएगा।

वर्तमान राजनीतिक तथा विकास प्रक्रियाएँ सामूहिक ह्रास(पतन) के लिए उत्प्रेरक का काम कर रही हैं। आज समाज परिवर्तन तथा विकास की प्रक्रिया में निग्रह के स्थान पर शक्ति-संचय, नैतिकता की जगह धन-संपत्ति, मानवता के स्थान पर ज्ञानार्जन, सबकी भागेदारी और सहभागिता की जगह जनोत्तेजन को अधिक महत्व देता है। अत: उसे सामूहिक विवेक के अभाव में भारी कीमत चुकानी पड़ती है। दिन-ब-दिन हिंसा और अशांति की घटनाएँ इस बात का संकेत है कि हमारे नैतिक एवं धार्मिक मूल्य ध्वस्त हो रहे हैं। परस्पर विश्वास, श्रद्धा, व्यक्ति-व्यक्ति तथा समुदाय-समुदाय के बीच परस्पर सौहार्द एवं एक दूसरे की चिंता का अभाव इस बात का सूचक है कि सहिष्णुता, न्याय और नैतिकता का जो सुपरिचित मार्ग हमारे नेताओं ने दिखाया था उसे विश्व के सभी वर्तमान नेताओं ने त्याग दिया है।

गाँधी जी का मानना था कि सच्चे प्रजातंत्र का लाभ केवल कुछ थोड़े से लोगों को नहीं, बल्कि सबको पहुँचाना चाहिए। अपंग, अँधे और बहरे की सहानुभूति में उनका तनिक भी विश्वास न था। पर आज के नेता तथा राजनीतिज्ञ इसी सुगम मार्ग को अपना रहे हैं। समाज की संपूर्ण व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए कि हम अपने कार्यो द्वारा इस आदर्श को प्राप्त कर सकें। सच्चा प्रजातंत्र तभी स्थापित हो सकता है जब हमारा लक्ष्य पर्याप्त गंभीर हो तथा हम उसे प्राप्त करने के लिए उतावले हों। गाँधी जी जानते थे कि एक बार जनता जग जाए तो वह क्रांति पथ अपना लेगी। उनकी न्यूनतम आवश्यकताएँ पूरी करनी होंगी अन्यथा विद्रोह हो जाएगा। यह विस्फोट कोई भी विभत्स रूप धारण कर सकता है।

वर्तमान रूग्नावस्था तथा संकट से मुक्त होने का एक ही उपाय है- झगड़ों को दूर करने के लिए गाँधी जी के बताए मार्ग पर चला जाए। आर्नल्ड टायनबी ने ठीक ही लिखा है-मानव इतिहास में इस सर्वाधिक खतरनाक मोड़ पर मानव जाति की मुक्ति का भारतीय मार्ग ही सर्वश्रेष्ठ है-सम्राट अशोक और महात्मा गाँधी के अहिंसा के सिद्धांत तथा श्री रामकृष्ण का विभिन्न धर्मो में सामंजस्य का मार्ग। यही भावना और जीवन-दृष्टि अपनाकर संपूर्ण मानव जाति एक परिवार की तरह सुख-शांति से रह सकती

है, विकास कर सकती है, इस अणु-युग में सर्वनाश से बचने का एक मात्र विकल्प यही रास्ता है।

अहिंसात्मक आचरण :

अहिंसात्मक आचरण के लिए आवश्यक है मानव जाति की उच्चत्तम सभ्यता। सभ्यता का संबंध है आत्मा से। प्राचीन भारत अंतरिक्ष में उपग्रह स्थापित करने वाले वर्तमान भारत से कहीं अधिक सत्य था। जिस प्रकार संध्या समय सूर्यास्त की ओर ध्यान नहीं देते, उसी प्रकार प्रतिदिन दिन-दहाड़े बैंकों के लूटे जाने का समाचार हमारा ध्यान आकृष्ट नहीं करता। हमारे कानूनों ने अपराधियों को निर्भय बना दिया है और कानून पालन करने वालों का जीवन दुर्लभ कर दिया है। देश इस बात को भूल गया है कि अपराधों को रोकना केवल पुलिस का दायित्व नहीं, अपितु संपूर्ण समाज का कर्त्तव्य है। भारत के इतिहास तथा गीता से हमें, दो शिक्षाएँ सीखनी हैं-

1. भारतवासी सदा अपने शासकों से नैतिकता का पाठ पढ़ते आए हैं और वे उन्नति के उच्चत्तम शिखरों पर तभी पहुँचे हैं तब उन्होंने अपने महान शासकों और नेताओं के दिव्य प्रकाश का अनुसरण किया है।
2. प्रदेशों के पतन का कारण आपदाएँ या प्रतिकूल परिस्थितियाँ नहीं रहीं हैं, बल्कि नीच कार्य रहे हैं। सार्वजनिक संस्थाओं के पतन का कारण भ्रष्टाचार रहा है। गरीबी बहुत खतरनाक नहीं होती।

भारत के राजनेता नैतिक नेतृत्व देने की बजाय, जिसकी जनता आतुरता से प्रतीक्षा कर रही है, केवल एक ऐसी व्यवस्था बनाए रखने में संलग्न हैं, जो सामूहिक अविश्वास के कारण विषाक्त तथा व्यक्तिगत स्वार्थ भावना के कारण दूषित हो चुकी है। जनता को शासकों से दूर दृष्टि तथा कल्पना के स्थान पर मिल रहे हैं- धोखा, छल-कपट तथा धूर्तता। नागरिक का कर्त्तव्य मतदान करना नहीं है अपितु मत का प्रयोग विवेकपूर्ण करना है। मत देते समय उसे केवल विवेक का सहारा लेना चाहिए। उसे अन्य बातों की ओर ध्यान न देकर, दल विशेष का नाम देखकर केवल योग्यतम व्यक्ति के पक्ष में, अपना मत देना चाहिए। बदनाम दल का सुयोग्य प्रत्याशी अच्छे दल के निकम्मे प्रत्याशी से सदा बेहतर होता है।

समाजवादी नेता स्व. एन. जी. गोरे कहा करते थे- मुझे भावुकता से अधिक प्रिय है विवेक तथा मेरे लिए विचार से अधिक महत्वपूर्ण है कार्य। इसीलिए वह रामदास की तुलना में शिवाजी को, न्यायमूर्ति रानाडे की तुलना में ज्योति बा फुले को तथा जे. कृष्णमूर्ति की तुलना में मदर

टेरेसा को अधिक महान मानते थे।

गाँधी जी का विचार था कि अच्छे नागरिक का जीवन कर्म का जीवन है, देश की सेवा में रत रहना है। उन्होंने कहा था- मेरी पुस्तकें मेरे शरीर के साथ जलकर राख हो जाएँगी, मेरे वक्तव्य और मेरा लेखन नहीं, मेरे कर्म अमर रहेंगे।

भारत की सच्ची तस्वीर :

भारत में असहिष्णुता जिस प्रकार बढ़ती जा रही है, वह स्पष्ट है। अब असहमति संपादक को रोष भरा पत्र लिखकर या आमने-सामने तर्क-वितर्क कर प्रकट नहीं की जाती। झगड़ों तथा संघर्षो को निबटाने के लिए हिंसा का मार्ग अपनाया जाता है। 'नर्मदा बचाओ आंदोलन, के कार्यकर्ताओं को गुजरात में पीटा जाता है, भारतीय प्रशासनिक सेवा के अवकाश प्राप्त अधिकारी, अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों के पूर्व आयुक्त तथा भारतीय विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति बी. डी. शर्मा और पत्रकारों के साथ मध्यप्रदेश तथा उत्तरप्रदेश में मारपीट की जाती है। स्वभाव की उदारता, सहिष्णुता की जगह अधिकारवाद एक रात में नहीं आया है। बहु-संख्यक समुदाय के धार्मिक संघटन द्वारा सुख के सपने दिखाने का ही परिणाम है शारीरिक एवं मनोवैज्ञानिक आतंक का बढ़ता हुआ हिंसात्मक रूप।

वाणी की स्वतंत्रता के समर्थक भी बढ़ती हुई असहिष्णुता को देखकर कुछ भी कहने या लिखने के पहले एक बार पुनः सोचने के लिए बाध्य हुए हैं। असहिष्णुता का यह जहर केवल हिंदुओं में ही नहीं है। कुछ ही वर्ष पूर्व एक समाचार-पत्र उर्दू टाइम्स के कार्यालय को जला डालने का प्रयास किया गया, क्योंकि उसमें कुछ मुसलमान नेताओं की आलोचना करने वाला एक लेख छपा था।

अपराधियों तथा राजनीतिज्ञों का सांठ-गांठ संपूर्ण विश्व में है, यह कहकर टाल देने से राष्ट्र को और अधिक गुमराह किया जा रहा है। सांप्रदायिक हत्याकांड के लिए न केंद्रीय सरकार और न प्रादेशिक सरकारों से जवाब-तलब किया जाता है। देश के मतदाता भी दलबदल राजनेताओं को वापिस बुलाने की माँग नहीं करते। यदि कोई सांसद नकली हस्ताक्षर द्वारा दल में दरार डालता है और दलबदल कानून को चकमा देता है तो दंड पाने की जगह उसे ऊँचे पदों पर आसीन कर प्रतिष्ठित लोगों का अप्रत्यक्ष आशीर्वाद मिलता है। ढोंग और पाखंडता, जिन्हें नैतिक दृष्टि से

पतित समाज का चिन्ह माना जाता है, भारतीय राजनीति में अभी भी बोलबाला है। भारतीय राजनीति में बेईमानी और चापलूसी का राज है। क्या कोई भी राजनीतिक दल अपने सिद्धांतों पर डटे रहने का दावा कर सकता है?

वास्तविक कठिनाई :

वास्तविक कठिनाई यह रही है कि जनता ने स्वयं को न तो स्थानीय, न क्षेत्रीय और न अंतरराष्ट्रीय समुदाय से जोड़ा है। निष्ठुर प्रतियोगिता तथा भूमंडलीकरण ने लोगों को परस्पर सहयोग करने की बजाय एक दूसरे से आगे बढ़ने के लिए उकसाया है। इसका परिणाम यह हुआ कि प्रौद्योगिकी शिल्प, सेवाओं तथा वस्तु निर्माण के क्षेत्र में सुधार करने की जगह हम हिंसा करने तथा प्रतिस्पर्धी को मिटाने में लग गए हैं।

एक दूसरे के प्रति प्रेम, भाईचारा, सहयोग बढ़ाने के लिए आवश्यक है- सांप्रदायिक सद्भाव, सामाजिक समरसता तथा समूहों के बीच एकता की भावना। विभिन्न स्तरों पर साथ-साथ करने की प्रवृत्ति अनिवार्य है। यह भी कह सकते हैं कि जब सांप्रदायिक सद्भाव और समूहों के बीच सहयोग होगा तभी सभी स्तरों पर मानव जाति एकता के सूत्र में बँध पाएगी और वसुधैव कुटुंबकम की भावना फलीभूत होगी और हम अपने बीच की समस्याओं को, संघर्षों को हिंसा द्वारा नहीं शांतिपूर्ण तरीके से समाप्त कर पाएँगे। इसका अर्थ यह हुआ कि हम जीवन को व्यक्ति का नहीं, संप्रदाय का जीवन समझें, समान जीवन मूल्य अपनाएँ और सामूहिक जीवन में सभी की भागीदारी बराबर की हो।

समुदाय के निर्माण के लिए कोई एक अकेला तत्व नहीं होता। वह जटिल और अखंड प्रक्रिया होती है जिसके सभी अंग परस्पर संबद्ध होते हैं। इनमें परस्पर अंतः क्रिया होती रहती है और वे एक दूसरे को प्रभावित करते रहते हैं। अतः संपूर्ण के किसी एक अंग का चुनकर यह कहना कि एकीकरण या विघटन के लिए केवल वही प्रमुखतः उत्तरदायी है न संभव है न उचित ही।

जातियों, प्रजातियों और राष्ट्रीय समुदायों का जितना अधिक मिश्रण होगा, एकीकरण उतना ही कठिन होगा। एकीकरण के लिए आर्थिक मुद्दा महत्वपूर्ण नहीं होता। जितनी एकीकरण की भावना कम होगी गतिशीलता उतनी ही अधिक होगी। यदि समुदाय बढ़ता ही रहे तो सामाजिक समस्याएँ भी बढ़ती जाती हैं। सामूहिक एकीकरण को बढ़ावा देने वाले तथा रोकने वाले अनेक कारण होते हैं। हम इनके विषय में जो सामान्य

नियम बनाएँगे वे लचीले होंगे। केवल कुछ मामलों में और वह भी पर्याप्त सावधानी से अध्ययन करने के बाद ही यह कहा जा सकता है कि स्थानीय, क्षेत्रीय, राष्ट्रीय, अंतरराष्ट्रीय स्तर पर किसी स्थिति-विशेष में कौन सा एक कारण दूसरे की तुलना में अधिक महत्वपूर्ण रहा। ये कारण परस्पर जुड़े हुए हैं, एक दूसरे को प्रभावित करते हैं तथा एकीकरण की मात्रा को प्रभावित करते हैं।

कोई आर्थिक व्यवस्था अनन्य जाति और वर्ग के ढाँचे में अधिक भेदभाव को बढ़ावा दे सकती है, एक विशेष प्रकार की शिक्षा-पद्धति के कारण समुदाय के विभिन्न समुदायों में भेदभाव की भावना बढ़ सकती है। अतः कारणों को अलग-अलग कर बताना कठिन है। ये सब कारण परस्पर इतने घनिष्ट रूप से जुड़े हैं कि एक में हुआ परिवर्तन एक दूसरे को प्रभावित करेगा ही। भूमंडलीय स्तर पर सामूहिक एकीकरण के लिए बाधक तत्वों की पहचान करना अत्यंत कठिन कार्य है। सब एक दूसरे पर निर्भर है। अतः विश्व के विकसित तथा कम विकसित समुदायों को मिलजुल कर रहना सीखना होगा।

वर्तमान समस्याएँ :

सामान्य नागरिक अनुभव कर रहे हैं कि राज्य ने अपने अधिकार और अपनी शक्ति धीरे-धीरे गुंडों और मक्कारों को सौंप दी है। अब नगर पार्षद, विधानसभा के सदस्य और सांसद एवं मंत्री की वह इज्जत नहीं रह गयी है जो पहले कभी थी। सामान्य नागरिक की निगाह में न्यायालय और संसद बेईमानी, धोखेबाजी और धूर्तता पर न्याय की मुहर लगने वाले माध्यम मात्र रह गए हैं।

सत्ता की कुर्सी पर बैठे राजनीतिक दल तथा अन्य दलों के नेता भी अपने स्वार्थ के कारण यह नहीं समझते कि यदि राजनीति केवल अधिकाधिक मत पाने का मुद्दा बनी रही, तो कोई भी दल सफल होना तो दूर जीवित भी नहीं बच सकेगा। भारत में राजनीतिक स्थिति इतनी गंभीर हो गई है और राजनीति में अपराधीकरण इतना बढ़ गया है कि अपराधी ही राजनेता बन रहे हैं।

भारत में नागरिकता से युक्तिसंगत विकास को तीन बातों ने विकृत किया है। एक कारण है गरीबी, जिसके कारण आर्थिक सुरक्षा आवश्यक हो गई है और अमीर गरीब के बीच बढ़ती खाई। दूसरा कारण है जनसंख्या का तीव्रगति से बढ़ना और तीसरा कारण है जातिभेद। जनता के मन

पर इन दवाबों को कम करने की प्रक्रिया में एक आत्मकेंद्रीत समाज उभर कर आया है। यह समाज केवल अपना संकीर्ण स्वार्थ, अपनी प्रगति तथा अपनी महत्वाकांक्षाओं की परवाह करता है। यह अपवाद नहीं नियम बन गया है, जिसके भारी बोझ से सामान्य नागरिक दबे जा रहे हैं। वे अनुभव करने लगे हैं कि यदि हमने जनता के मन में दूसरों के लिए चिंता करने वाली जीवन-पद्धति में विश्वास न जगाया तो राष्ट्र बर्बाद हो जाएगा। (शामलाल, लाइफ एंड लैटर्स, व्हेयर वी कैन गो फ्राम हीयर? सोशल रजिस्ट्रार 1992 पर आधारित समीक्षात्मक लेख, संपादक लिओ पेनिच, मर्लिन प्रेस द टाइम्स ऑफ इंडिया, 8 मई 1993)

वास्तव में नीति पथ पर चलने वाला व्यक्ति वह है जिसे अपने साथियों के कल्याण और सुख की चिंता है। वह समाज के व्यापक हित के लिए अपने स्वार्थ के हित को कम महत्व देता है। उससे अपेक्षा की जाती है कि वह आत्मकेंद्रीत स्वार्थ त्याग कर, दूसरों के हित के कार्य करेगा और इसके फलस्वरूप हमारे परस्पर संबंध सद्भावपूर्ण बनेंगे। ये आदर्श और जीवनमूल्य व्यक्ति में उस समाज द्वारा उत्पन्न किए जाते हैं जिसमें वह रहता है। (दिलीप पाडवांवकर, ए रिव्यू एबाउट राव : नोइंग व्हेयर ही स्टाप्स, द टाइम्स ऑफ इंडिया, 15 मई, 1993)

अपनी व्यक्तिगत तथा सामूहिक अंतरात्मा की वाणी को सुनते हुए कार्य करने का नैतिक साहस हममें होना चाहिए। शांति, स्थिरता तथा एकता खरीदी नहीं जाती। मानव मात्र की आवश्यकताओं तथा दूसरों के अधिकारों एवं विचारों के प्रति आदरभाव उत्पन्न करके ही उनका संवर्धन किया जा सकता है। यदि जीवन के प्रति हमारी दृष्टि इतनी कठोर हो जाए कि हम दूसरों को पराया समझें, उन्हें अपना साथी मानव न समझें तो आधुनिक सभ्यता की ज्योति बड़ी तेजी से बुझ जाएगी।

यदि जो रामास्वामी के मामले में हुआ उसकी पुनरावृत्ति हुई तो स्पष्ट है कि राजनेता शीघ्र ही समझ जाएँगे कि उनके दिन केवल इने गिने रह गए हैं। राजनेताओं का भ्रष्टाचार इतना साफ दिखाई देने लगा है कि केवल ऊँचे नैतिक सिद्धांतों की दुहाई देकर छिपाया नहीं जा सकता।

हम भारतवासियों को वसुधैव कुटुंबकम की भावना को साकार करने के लिए एकजुट होना पड़ेगा। राजनीतिक दलों को भारत की एकता और अखंडता के लिए कार्य करना चाहिए। दुर्भाग्यवश लगभग सभी राजनीतिक दल चुनावों में अपने लाभ के लिए जाति, धर्म और भाषा के

नाम पर मत माँगते हैं। शासन की न्याय-तराजू के पलड़े धर्म, जाति, संप्रदाय और भाषा से ऊपर उठकर सभी के लिए समान होने चाहिए।

असफल समाज-व्यवस्था :

हमको यह समझ लेना चाहिए कि हम वक्तव्य-कला के लिए सभी संसाधनों को पूरी तरह दुह चुके हैं और अब इन भाषणों और घोषणाओं से हमारे कानों तथा नेत्रों को लुभाना कठिन है। आवश्यक यह है कि हम ऐसे समाज की स्थापना के लिए कार्य करें जिसमें प्रत्येक व्यक्ति का भोजन, कपड़ा और घर प्राप्त हो। हम ऐसे समाज की स्थापना के लिए आगे बढ़ें जिसमें सब एक दूसरे के साथ मिलजुलकर शांतिपूर्वक रहें, जहाँ सबके प्रति समान आदर-भाव हो, प्रत्येक व्यक्ति स्वयं को सुरक्षित अनुभव करे, जहाँ वह आत्मसम्मान और आत्मविश्वास के साथ जी सके और महसूस करे कि समाज को उसकी आवश्यकता है। सब जान गए हैं कि विश्व शांति स्थापित होने पर ही मानवजाति सुरक्षित और सुख अनुभव करेगी।

नई समाज-व्यवस्था में जाति, वर्ग, धर्म, रंग के आधार पर भेदभाव नहीं होगा, अमीर-गरीब के बीच खाई नहीं होगी। इस समाज की ओर हमें शांति के मार्ग से, बिना किसी से घृणा किए, बिना किसी को कष्ट पहुँचाए आगे बढ़ना है तो इस समाज में स्वस्थ और पुष्ट आर्थिक व्यवस्था होगी, लोग योजनाएँ बनाने तथा उसके कार्यान्वयन में भाग लेंगे। यह व्यवस्था नीचे से ऊपर, जनता से शासन की ओर उन्मुख होगी न कि ऊपर से नीचे की ओर। यही नई समाज-व्यवस्था स्थापित करने की अहिंसक दृष्टि है।

उपसंहार :

इस आलेख के विभिन्न उपविषयों में जिन सामान्य निष्कर्षो पर हम पहुँचे हैं, उन्हें सामाजिक शांति का निदान कहा जा सकता है। संघर्ष का कारण है मत वैभिन्य और विरोध जबकि एक दूसरे का हित करने की भावना, शक्ति-संतुलन और मतैक्य से सहयोग और समझौते के भाव उत्पन्न होते हैं। सहयोग तथा एक दूसरे की सहायता करना बहुत लाभप्रद होते हैं। परस्पर विरोधी दलों में जितनी अधिक एकता होगी उतने ही झगड़ों के हिंसात्मक हो उठने के अवसर कम होंगे।

शक्ति राजनीतिक भी हो सकती है और आर्थिक भी, वह तलवार की भी हो सकती है और कलम की भी या फिर जनता की आवाज

की भी। वह आत्मा की वाणी की भी हो सकती है, उसका आधार यह आत्मविश्वास था, हो सकता है कि मेरा मार्ग न्याय का मार्ग है। गाँधी जी की शक्ति का स्रोत यही आत्मविश्वास या जो उनके कार्यो में और उनके सत्याग्रह के प्रयोग में मिलता है। सत्याग्रह का अर्थ ही है सत्य का आग्रह।

नैतिक और धार्मिक मूल्यों के पीछे सत्याग्रह की शक्ति होनी चाहिए अन्यथा वे उस धनुष-बाण के समान हैं जिनका चलाने वाला ही नहीं है। शस्त्र में न अपनी शक्ति होती है, न लक्ष्य भेद के लिए सही दृष्टि और न कोई अपना उद्देश्य। राष्ट्रनेता का दायित्व है देशवासियों को एकता के सूत्र में बाँधना। उसे अपना यह दायित्व सदा याद रखना चाहिए। उसे केवल अपनी स्वार्थ-सिद्धि और आत्म हित के कार्यो में व्यस्त नहीं रहना चाहिए। उसे नागरिकों के प्रति उपेक्षा, उदासीनता का भाव नहीं अपनाना चाहिए। उसकी शक्ति आत्म-संतोष में नहीं कर्त्तव्य-पालन में है। ये गुण सभी छोटे-बड़े नेताओं में होने चाहिए। तभी वे जनता की सच्ची सेवा, राष्ट्र का निर्माण और विश्वशांति स्थापित कर सकते हैं। हमारा शासनाध्यक्ष उदात्त जीवन मूल्यों में आस्था रखने वाला होना चाहिए। हमें दार्शनिक सम्राट चाहिए जिसका चिंतन अनाविल और जिसका हृदय शुद्ध हो। इक्कीसवीं शताब्दी मतदाताओं तथा भारतवासियों को यही चुनौती देता आ पहुँची है। यदि चुनाव जीतकर सच्चरित्र और सुयोग्य नेता सत्ता में आएँगे तो वे इस चुनौती का सामना स्वीकार करते हुए राष्ट्र का मार्गदर्शन कर पाएँगे। यदि भारत मार्ग दर्शन की इस चुनौती को स्वीकार करे, तो वह शांति के लिए विश्व-नेता बन जाएगा।

राष्ट्र निर्माण में युवाशक्ति

मंजुला गुप्ता

प्रत्येक व्यक्ति के जीवन का स्वर्ण काल उसकी युवावस्था होती है। यह वह अवस्था है, जबकि मनुष्य शरीर से पुष्ट, मन से स्वस्थ और मस्तिष्क से अधिक क्रियाशील होता है। बुद्धि, शक्ति शारीरिक क्षमता के योग से निर्मित युवावस्था ही एक ऐसा समय है, जबकि मनुष्य अपने अनुसार कार्य कर सकता है और साथ ही साथ अपने पड़ोस, समाज और राष्ट्र के लिए भी अपनी सेवाएँ दे सकता है। युवा वर्ग से ही यह उपेक्षा की जा सकती है कि वह देश के विकास में सहायता प्रदान करे, नया रक्त, नई बुद्धि और नये मानस से बनी योजनाएँ जितनी अधिक स्वस्थ और प्रभावशाली हो सकती हैं उतनी अधिक प्रभावशाली किसी से नहीं। राष्ट्र और युवा वर्ग का घनिष्ठ संबंध है। प्रत्येक व्यक्ति जो इस धरती पर जन्म लेता है उसका अपनी जन्मभूमि के प्रति कोई न कोई पावन कर्त्तव्य होता है। जितना महत्व जन्मदात्ती माता का है उतना ही महत्त्व इस धरती का है जिस पर खेलते हुये मनुष्य के जीवन का विकास होता है। वास्तविकता यह है कि माता जन्म देती है और मातृभूमि हमें अपने प्यार भरे अंग में लेकर हमारा पालन-पोषण करती है। कवि मैथिली शरण गुप्त ने 'मातृभूमि' कविता में इसके महत्व को स्पष्ट किया है। ऐसी स्थिति में युवा वर्ग जिसमें की अधिकांशत: विद्यार्थी वर्ग ही आता है, मातृभूमि और राष्ट्र के प्रति यदि अपना दायित्व समझे तो अनेक समस्याएँ स्वत: ही हल हो जायेंगी। राष्ट्र और विद्यार्थी का अथवा राष्ट्र और युवा वर्ग का वहीं संबंध है, जो पिता-पुत्र अथवा माता-पुत्र का होता है। आज का विद्यार्थी कल का शासक है। आज का युवा वर्ग ही आगे चलकर इस देश. की बागडोर को अपने कँधों पर संभालेगा। समाज के अंतर्गत जो युवा वर्ग हैं उसे चाहिए कि वह केवल अपने लिए न जिये। उसे सदैव यह स्मरण रहना चाहिए समाज और राष्ट्र का भी उस पर कुछ अधिकार है।

भारतवर्ष में आजादी के बाद युवा वर्ग इस ओर विशेष सक्रिय नहीं रहा। स्वतंत्रता संग्राम में यदि देश के अबालवृद्ध सभी लोग जुटे हुए थे, तो उसमें भी युवा वर्ग और विद्यार्थी वर्ग की भूमिका ही प्रमुख थी। नेता सुभाषचन्द्र बोस, चन्द्रशेखर आजाद और भगत सिंह जैसे युवकों ने ब्रिटिश शासन की जड़ें हिला दी थीं। इन क्रांतिकारी तथा युवावर्ग के शीर्ष स्थानीय व्यक्तियों की प्रेरणा से अनेक युवा स्वतंत्रता-संग्राम में आगे आये। परिणामस्वरूप

भारत को आजादी का मुख देखने को मिला। आज भी आवश्यकता है कि हमारा युवा वर्ग राष्ट्र के लिए सोचे, कुछ ऐसा कार्य करे कि राष्ट्र का हित हो।

राजनीतिक स्तर पर हम कितने ही स्वतंत्र हो गये हों, किंतु आर्थिक और सामाजिक स्वतंत्रता अभी भी हमें प्राप्त करनी है। इतना ही नहीं राष्ट्रीय क्षितिज पर अनेक ऐसी समस्याएँ उभरी हुई हैं, जिनसे जूझना और उन पर काबू पाना युवा वर्ग के ही वश की बात है। यदि हम आत्मनिर्भर और सबल राष्ट्र की कल्पना करते हैं, तब तो यह और भी निश्चित हो जाता है कि इस दिशा में अधिकाधिक सहयोग युवा वर्ग ही दे सकता है। जितनी समस्याएँ हैं उन समस्याओं से सभी को जूझना पड़ता है। कुछ तो ऐसी हैं जो युवा वर्ग की ही हैं। ऐसी स्थिति में यदि युवा वर्ग आगे आकर, राष्ट्र के विकास में योगदान नहीं करेगा, तो फिर हमारा देश किस आशा पर आगे बढ़ सकेगा। आज जो जटिल समस्याएँ हमारे सामने हैं उनमें रिश्वतखोरी, कालाबाजारी, मिलावट, विश्वासघात, जुआ, शराबखोरी, दहेज प्रथा, भिक्षावृत्ति आदि ऐसी समस्याएँ हैं, जो प्राकृतिक प्रकोप के कारण उत्पन्न हुई हैं। इन सभी समस्याओं पर नियंत्रण पाना और सुलझाने के लिए युवा वर्ग को ही आगे आना चाहिए। राष्ट्र कोई ऐसी चीज़ नहीं है जिसे कुछ शासन के लोग ही लोगों के हाथों में सौंप कर चुप-चाप जीवन यापन किया जाये।

युवा शक्ति का राष्ट्र निर्माण में योगदान

राष्ट्र निर्माण में युवा शक्ति अनेक प्रकार से योगदान दे सकती है। उसका योगदान सामाजिक, राजनैतिक और शैक्षिक सभी क्षेत्रों में संभव है। जब तक सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से हमारा देश स्वतंत्र और आत्मनिर्भर न होगा, तब तक राष्ट्र निर्माण की कल्पना अधर में झूलती रहेगी। ऐसी स्थिति में युवा शक्ति का प्रथम कर्त्तव्य यह है कि वह गुमराह होने से बचे, उसमें कर्त्तव्य भावना का विकास हो, इसी कर्त्तव्य भावना से प्रेरित होकर युवा वर्ग परिवार, समाज और राष्ट्र के प्रति क्रियाशील हो सकता है। कर्त्तव्य भावना से जहाँ एक ओर अनुशासन का भाव उत्पन्न होता है वहीं दूसरी ओर नैतिक स्तर भी ऊँचा उठाता है। मनुष्य जब अपने कर्त्तव्य का पालन समुचित रीति से करने लगता है तो उसे आत्म संतोष प्राप्त होता है। अतः जब युवक-युवतियों में अनुशासन और कर्त्तव्य भावना विकसित होती है तो वे स्वतः ही राष्ट्र निर्माण के कार्यो में लग जायेंगे। कर्त्तव्य भावना एवं अनुशासन के बाद युवा शक्ति को चाहिए की वह दृढ़ संकल्प और कठोर परिश्रम की ओर अग्रसर हो। ऐसा करने से सफलता का वातावरण तैयार होता है। आज

स्थिति यह है कि हमारा युवा वर्ग व्यर्थ के कार्यो में लगा हुआ है। उसकी शक्तियाँ बिखरती जा रही हैं। यदि वह अपनी बिखरी हुई शक्ति को एकत्र करके राष्ट्र निर्माण के कार्यो में लगाये तो उसके स्वयं के हित में साथ-साथ देश का हित भी होगा। तब हमारा युवा वर्ग कर्त्तव्य अनुशासन, कठोर परिश्रम एवं दृढ़ संकल्प शक्ति से युक्त होगा, तो जो वातावरण बनेगा वह ऐसा ही होगा।

आर्थिक क्षेत्र में युवा शक्ति अपना योगदान एक दूसरे प्रकार से दे सकती है। यदि युवा वर्ग मिलकर संगठन बनाये और शक्ति केंद्रीत करता हुआ फिजूलखर्ची को रोकने का संकल्प करे तो राष्ट्र का बहुत बड़ा हित हो सकता है। ऐसी स्थिति में न केवल समाज समृद्ध बनेगा, अपितु उनमें चोरबाजारी, बेईमानी, कालाबाजारी और मुनाफाखोरी करने वाले भी सुधर जाएँगे। युवा शक्ति के द्वारा किया गया संगठित आंदोलन आज के विकृत और गुमराह समाज की तस्वीर बदल सकता है। युवा वर्ग चाहे तो समाज के अंतर्गत जो बुराईयाँ प्रचलित हैं, जो कुप्रथायें सिर उठा रहीं हैं और जो सामाजिक विकृतियाँ बढ़ती जा रहीं हैं उन्हें वह समाप्त कर सकता है। युवा मानस के समक्ष स्वार्थी और काला बाजारी करने वाले हलकों में तहलका मच जायेगा। ऐसी विकट स्थिति में जबकि देश अनेक समस्याओं से जूझ रहा हो, तब तो युवा शक्ति को आगे आकर सरकार को सहयोग करना ही चाहिए।

युवा पीढ़ी शैक्षिक जगत में भी योगदान दे सकती है। आज हमारे देश में अनेक ऐसे स्थान हैं जहाँ के लोग अशिक्षा और पिछड़ेपन के शिकार हैं। शिक्षित युवा वर्ग को चाहिए कि वह अपने घर-परिवार, आस-पड़ोस व गाँव-कस्बे एवं मुहल्ले के लोगों को साक्षर बनाये। यह शुभ बात है कि पिछले दिनों से राज्य सरकार ने साक्षरता अभियान छेड़ रखा है। इस अभियान में देश का युवा वर्ग पर्याप्त सक्रिय हैं। अनेक स्थानों पर युवक, युवतियाँ साक्षरता अभियान को प्रभावी बना रहें हैं। यदि देश के विकास में युवा वर्ग पिछड़ेपन को दूर कर सके, तो यह बहुत बड़ा कार्य होगा। हमारे देश की अधिकांश जनता ऐसी है, जो रूढ़ियों से ग्रस्त है और आज भी अपने पिछड़ेपन और अँधविश्वासों से मुक्त नहीं हो पायी है। युवा वर्ग के सम्मुख यह एक गंभीर चुनौती है। उसे चाहिए कि वह पुराने लोगों का पुराना मानस बदले और नये लोगों में वर्तमान परिवेश के अनुकूल आचरण करने की भावना पैदा करे। ऐसा करने से राष्ट्र का निर्माण बड़ी आसानी से सही दिशा में किया जा सकता है।

युवा वर्ग शारीरिक शक्ति का अक्षय भंडार है। उसे चाहिए

कि वह श्रम के महत्व को समझे और उसी के आधार पर उसे अपने जीवन में ऐसे कार्य करने चाहिए जिससे वह बेकार न रहे। अपने मन से विद्यार्थियों को यह भावना निकाल देनी चाहिए कि पढ़-लिख कर हम केवल नौकरी ही प्राप्त करेंगे। श्रम का महत्व पहचानना तथा उसे अपने जीवन को अंग बनाना, आज के युवा वर्ग के लिए बहुत आवश्यक है। नव निर्माण की अनेक दिशायें हैं। इन सभी दिशाओं में विद्यार्थियों को अपना सहयोग देना चाहिए। यदि युवा वर्ग पूरी लगन और निष्ठा से अपना कार्य करेगा तो देश का कल्याण निश्चित है। कृषि उद्योग, यातायात और वैज्ञानिक अनुसंधानों के कार्य जिस गति से हो रहे हैं उसी गति से युवा वर्ग को भी उसमें सहयोग करना चाहिए। आज नये कारखानों का निर्माण हो रहा है। विद्युत शक्ति उत्पादन भी तीव्र गति से किया जा रहा है और परमाणु शक्ति की खोज के निमित्त प्रयोगशालाएँ बन रही हैं। ऐसी स्थिति में नव निर्माण की इन सभी दिशाओं में युवा वर्ग ही अधिक सहायक हो सकता है।

वर्त्तमान परिस्थितियों में युवा वर्ग के पास ही इतनी शक्ति है कि वह गाँवों में जाकर, वहाँ की समस्याओं को समझें, उनका हल ढूँढ़ें। इससे ग्रामीण जनता में युवा वर्ग के प्रति आस्था बढ़ेगी। आज जो लोग यह कहते पाये जाते हैं कि आज की युवा पीढ़ी भटकन की शिकार बन गयी है, उसका आचरण भ्रष्ट हो गया है और उसके मन में संस्कृति और आदर्शो के प्रति कोई स्थान नहीं रह गया है वे ही जब देखेंगे कि युवा पीढ़ी ग्रामीण विकास के लिए, राष्ट्र उन्नति के लिए जीवन को सुखमय बनाने के लिए प्रयास कर रही है तो उनकी यह मान्यताएँ बदल जायेंगी।

वर्त्तमान संकटकालीन अवस्था में राष्ट्र के निर्माण और उसकी सुरक्षा के लिए युवा वर्ग का त्याग अत्यंत आवश्यक है। तन, मन और धन से युवा वर्ग को अपने देश के लिए कार्य करना है। विलासिता और फैशन परस्ती को छोड़कर अध्ययन में लग जाना है। देश की संपत्ति युवा वर्ग की संपत्ति है। उसका सदुपयोग किया जाना चाहिए। युवा वर्ग को चाहिए कि वह देश की सुरक्षा के लिए न केवल अपना चरित्र निर्माण करे, अपितु सैनिक शिक्षा भी ग्रहण करे, ताकि शत्रु हमारे सुंदर राष्ट्र की ओर, आँख भी न उठा सकें। राष्ट्र में एकता का विकास, आलस्य का त्याग करना अत्यंत आवश्यक है। अतः यही कह सकते हैं कि भारत जैसे विकासशील राष्ट्र में यदि युवा शक्ति हाथ बढ़ाए तो इस देश का स्तर काफी ऊँचा हो सकता है और उसे खोई हुई प्रतिष्ठा पुनः प्राप्त हो सकती है।

राष्ट्र के निर्माण में युवा शक्ति

पी. आर. वासुदेवन 'शेष'

सदियों की पराधीनता के बाद भारत स्वतंत्र हुआ है। पराधीनता की स्थिति में भारतवासियों को स्वेच्छापूर्वक अपनी उन्नति करने का अवसर प्राप्त नहीं था। विदेशी सरकार के दवाब के कारण भारतीय अपनी योग्यता के अनुसार कार्य नहीं कर पाते थे। देश में जो कुछ सार्वजनिक कार्य होता था उनमें प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में सरकार का स्वार्थ अवश्य रहता था। उस समय युवाओं का प्रयोग केवल उत्कृष्ट अधिकारी बनकर शासन को दृढ़ बनाए रखना था। आज की बदली हुई परिस्थितियों में भारतीयों की अवस्था तथा उनका उत्तरदायित्व भी बदल गया है। किसी भी राष्ट्र का निर्माण उस देश के युवाशक्ति के ऊपर निर्भर रहता है। युवा वर्ग ही एक ऐसा वर्ग है जिसमें से हर क्षेत्र में लोग जाते हैं। वर्तमान समय में भारत का नव निर्माण कार्य प्रारंभ हो गया है। यह कार्य युवा शक्ति के उचित और पूर्ण सहयोग के बिना सफलतापूर्वक नहीं हो सकता।

मानव जीवन की आवश्यक सुविधाएँ ही सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। वर्तमान युग विज्ञान अर्थवाद का युग है। भारतवर्ष की वैज्ञानिक और आर्थिक उन्नति नितांत आवश्यक है।

किसी विदेशी विद्वान ने कहा था कि भारत एक धनी देश है यहाँ गरीब लोग बसते हैं। इसका वास्तविक अर्थ यह है कि प्राकृतिक साधनों की प्रचुरता के कारण भी यहाँ के लोग क्षीण-हीन हैं। यदि इन साधनों का समुचित उपयोग किया जाए तो भारतवासी संपन्न हो सकते हैं। स्वतंत्र भारत में प्राकृतिक साधनों का प्रयोग करने का कार्य प्रारंभ हो गया है। इन सभी प्रयोगों की अंतिम सफलता युवाओं पर निर्भर है। जब युवा पूरी लगन और निष्ठा से अपने कार्यो को करेंगे तभी देश का कल्याण हो सकता है।

कृषि, उद्योग, यातायात तथा वैज्ञानिक अनुसंधानों के कार्य हो रहे हैं। कारखाने बन रहे हैं- विद्युत शक्ति का उत्पादन कार्य हो रहा है। परमाणु शक्ति की खोज तथा उपयोग के लिए प्रयोगशालाएँ बन रही हैं। सुरक्षा के साधन जुटाए जा रहे हैं। विदेशों में मैत्री संबंध दृढ़ करने के प्रयास हो रहे हैं। नव निर्माण की अनेक योजनाएँ प्रयोग में लाई जा रही हैं, किंतु

इनकी सफलता युवा वर्ग पर ही निर्भर है। सामाजिक और धार्मिक क्षेत्रों में भी परिवर्तन लाने के प्रयोग हो रहे हैं। समाज में कतिपय दुर्गुण अवश्य आ गए हैं जिनका सुधार भी आवश्यक है। समाज के ढाँचे को बिगड़ने से बचाना भी है। कोई भी सुधार अँधानुकरण के आधार पर नहीं होना चाहिए। सुधारों के भावी परिणामों को दृष्टि में रखकर आगे बढ़ना आवश्यक है।

भारतीय धर्म तथा संस्कृति की मूल विशेषताओं को ध्यान में रखकर उपयोगी सुधार होना चाहिए। चूँकि इन सभी गतिविधियों का अंतिम परिणाम तो आज की युवापीढ़ी को पूर्णतया भोगना पड़ेगा। अत: उन्हें विवेक से काम लेना आवश्यक है। युवा पीढ़ी ही सामाजिक और धार्मिक क्षेत्र में क्रांति ला सकते हैं।

आज संसार की राजनीतिक मान्यताएँ द्रुतगति से बदल रही हैं। यह परिवर्तन स्वतंत्र परंपरा तथा प्रजातंत्र भावना का समर्थन कर रही है। इस विचारधारा में व्यक्ति का महत्वपूर्ण स्थान है। इसमें व्यक्तित्व की उन्नति का स्वतंत्रता पर समुचित ध्यान दिया जाता है दूसरी विचारधारा राज्य में या पार्टी को ही सर्वस्व मानती है। इस साम्यवादी विचारधारा में शक्ति स्वतंत्रता के लिए स्थान नहीं है। यहाँ पर अधिनायकवाद दृढ़ होता जा रहा है। ये लोग वर्गहीन समाज की बात करते हैं। भारत में भी दोनों प्रकार की विचारधाराओं से संबंधित नीति चल रही है। युवा वर्ग को सोच-समझकर इन विचारों को भारतीय संस्कृति के अनुकूल बनाकर अपनाना चाहिए।

आज की युवा पीढ़ी का कर्त्तव्य अधिक गंभीर हो गया है। युवा वर्ग के सामने इतनी अधिक तथा परस्पर भिन्न विचारधाराएँ आती हैं उनके लिए उपयोगी विचार अपनाना कठिन हो गया है। अनेक प्रकार की पुस्तकें, अनेक प्रकार के वक्ता व अनेक प्रकार की समस्याएँ उनके सम्मुख आ रही हैं। ऐसी दशा में युवा वर्ग का यह दायित्व है कि जीवन की सर्वांगीण उन्नति पर उचित ध्यान दें। प्राचीन तथा आधुनिक विचारकों के विचारों को समझकर अपनाएँ। यदि भावुकता या आवेशवश किसी प्रकार पथ भ्रष्ट हो जाएँगें तो लाभ के बदले हानि ही उठायेंगे।

आज युवा पीढ़ी के समक्ष यह समस्या खड़ी हो गयी है कि वे किस विचारधारा को अपनावें तथा देश के नवनिर्माण में किस प्रकार सहयोग प्रदान करें। बहुत से नेता अपने ही ढंग से निर्माण कार्य को सामने रख रहे हैं। सरकार चलाने वाले नेता अपनी योजनाएँ लाद रहे हैं तथा निरीह समाज को अपनी चिंतन धारा पर चलाने का भरसक प्रयास कर रहे हैं।

कतिपय विरोधी नेता उसका तीव्र विरोध कर रहे हैं। वास्तविकता यह है कहने वाले अधिक हैं, सुनने वाले कम।

युवा वर्ग एक ऐसा समाज है जो भावावेश में आकर अनेक कार्य कर बैठता है और अपना तथा समाज का अहित कर देता है। फिर भी वह समाज क्षम्य समझा जाता है। युवा पीढ़ी को चाहिए कि वे अपने में अच्छा और बुरा समझने की क्षमता उत्पन्न करें और अपनी विवेक बुद्धि से ऐसे कार्यो को करे जो देश के लिए कल्याणकारी हों। युवा पीढ़ी को गाँवों में जाकर वहाँ की समस्याएँ समझना चाहिए और उनके विजन जानने का प्रयत्न करना चाहिए। उन्हें स्वयं कार्य करना चाहिए तथा दूसरों के लिए आदर्श उपस्थित करना चाहिए। इन कार्यो से ग्रामीण जनता में उनकी लोकप्रियता बढ़ेगी तथा विभिन्न प्रकार की प्रगतियों से परिचित होते जाएँगे। युवाओं को अपने पास पड़ोस में सहयोग तथा सद्भावना का वातावरण पैदा करना चाहिए जिससे विरोध मिटे तथा सहकारी भावना का विकास हो। सहकारिता के लाभों को समझना चाहिए।

युवाओं का यह भी परम कर्त्तव्य है कि सरकार की विभिन्न योजनाओं में सहयोग करें तथा उसमें यदि कहीं कमी या दोष दिखाई पड़े तो सामूहिक रूप से उसे हटवाने का उपाय करे। उन्हें बहुश्रुत बनना चाहिए तथा अनेक प्रकार के निर्माण कार्यों में सम्मिलित होना चाहिए। उन्हें स्वावलंबी तथा समाज सेवक बनने का प्रयास करना चाहिए। साथ ही साथ अपनी रुचि के अनुकूल विषय का गहन अध्ययन कर नवीन खोजों की ओर बढ़ने का प्रयास करना चाहिए। यही सब ऐसे कार्यक्रम हैं जिन्हें करके वे देश के निर्माण में सहायक बनेंगे।

युवा वर्ग ज्यों-ज्यों बढ़ता जा रहा है त्यों-त्यों देश के नव निर्माण का कार्य भी पूर्ण होता जा रहा है। परंतु अभी इस क्षेत्र में हमें बहुत कुछ करना है। युवा पीढ़ी तभी कार्यो को समझकर जब संसार पथ पर चलने लगेंगे तो सभी प्रकार के विकास कार्यो में पूर्ण सहयोग दे पाएँगे। यदि वे किसान बनते हैं तो कृषि के उत्कृष्ट नवीन साधनों को ठीक ढंग से उन्हें प्रयोग करना चाहिए। यदि वे कारीगर बनते हैं तो अपने पेशे को दक्षता से करें। यदि वे इंजीनियर बनें तो उत्कृष्ठ निर्माता बनें। यदि वे सरकारी कर्मचारी बनें तो निष्पक्ष तथा सेवा भाव से जनता एवं सरकार की सेवा करें। यदि वे खिलाड़ी बनें तो राष्ट्र की प्रतिष्ठा और गौरव को कायम रखने के लिए खेलें। यदि वे नेता बनना चाहें तो देश की जनता की निस्वार्थ भाव

से सेवा करें। यदि वे फौज में भर्ती होना चाहें तो देश पर अपनी प्राणों की बाजी लगाकर देश की सीमाओं की रक्षा करें। व्यापारी बनें या शिक्षक बनें तो युवा वर्ग निजस्वार्थ को दूर रखकर राष्ट्र हित को सर्वोपरि रखें। अगर वे वैज्ञानिक बनें तो नित नये उपयोगी अनुसंधान कर देश का नाम रोशन करें। युवा इन सभी से परे अच्छे एवं श्रेष्ठ नागरिक बनें। यह सभी कुछ वे तभी कर सकेंगे जब वे सुचारू ढंग से अध्ययन करें। अपनी प्राचीन परंपराओं की उत्तमता को बनाए रखते हुए नवीन बातों से लाभकर तत्वों को ग्रहण करेंगे। यदि वे अपने कर्त्तव्यों का निर्वह्ण उचित ढंग से नहीं करेगा तो सभी योजनाएँ निष्क्रिय हो जाएँगी। प्रगति का पथ रुक जाएगा। वर्तमान युग में युवा पीढ़ी का योगदान भावी भारत के निर्माण के लिए मील का पत्थर साबित होगा।

युवा पीढ़ी को पथ भ्रष्ट न होकर और विदेशों की चकाचौंध में न बहकर देशी चीजों में रुचि दिखाकर उसके विकास में कार्य करना होगा। भावी राष्ट्र का निर्माण युवा पीढ़ी के हाथों में है। संसद सदस्य के रूप में आज युवा पीढ़ी आ रही है। नयायुग का इतिहास उनके कार्यो द्वारा रचा जाएगा। नया एवं उज्ज्वल भारत आने वाली युवा पीढ़ी पर ही निर्भर है। अतः हम यह स्पष्ट तौर पर निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि राष्ट्र के निर्माण में आज की युवा पीढ़ी का सक्रिय एवं बेजोड़ योगदान है।

युवा शक्ति के बल पर ही
जग की आजादी चलती है
इतिहास उधर मुड़ जाता है
जिस ओर जवानी मुड़ती है।

ग्रामीण विकास और राष्ट्रीयता

सिद्धेश्वर

भारत को गाँवों का देश कहा जाता है, क्योंकि यहाँ छह लाख गाँवों में इसकी कुल आबादी के 70 प्रतिशत लोग गाँवों में रहते हैं। इसी के मद्देनजर बापू ने कहा था– 'भारत का आधार और आत्मा गाँव है। यदि भारत का विकास करना है तो गाँवों तथा ग्रामवासियों का विकास करना होगा।' बापू का सपना था कि ग्रामवासियों को आत्मनिर्भर बनाने के लिए गाँवों में लघु और कुटीर उद्योगों की स्थापना कर उन्हें एक स्वतंत्र इकाई के रूप में विकसित किया जाए। उनका आर्थिक दर्शन भी गाँवों को केंद्र में रखकर संपूर्ण भारत के विकास को त्वरित गति देने की हिमायत करता है। इसके पीछे उनकी यह सोच थी कि चूंकि भारत गाँवों का देश है इसलिए जबतक गाँव विकसित नहीं होंगे विकास का कोई भी उपक्रम भारत में नवनिर्माण की प्रक्रिया को सार्थक मुकाम तक नहीं पहुँचा पाएगा।

भारत जैसे विशाल देश में भौगोलिक, सामाजिक और आर्थिक स्थितियों में विभिन्नता के कारण ग्रामीण विकास के लक्ष्य को शीघ्र प्राप्त करना आसान नहीं है। इस परिप्रेक्ष्य में सचमुच ग्रामीण विकास को एक सतत प्रक्रिया के रूप में देखा जाना आवश्यक है।

बढ़ती आबादी, गरीबी, अशिक्षा, बीमारी, बेरोजगारी, भूमि तथा अन्य सभी संसाधनों का असामान्य बँटवारा, सामाजिक अन्याय जैसी अनेक समस्याएँ ग्रामीण विकास में बाधक हैं और इसका सीधा असर राष्ट्रीयता की भावना पर भी पड़ रहा है। देशवासियों में तेजी से लुप्त होती राष्ट्रीयता की भावना इस बात का द्योतक है कि स्वतंत्रता–आंदोलन के वक्त आजादी के दीवानों ने जो सपना देखा था वह आज भी अधूरा है। आखिर ऐसा क्यों?

आजादी के बाद गाँधी जी के आर्थिक दर्शन की लगातार अनदेखी होती रही और विकास की जो भी परियोजनाएँ बनायी गयीं उनमें खेती या सिंचाई सुविधाओं की बढ़ोतरी के अतिरिक्त गाँवों की अन्य जरूरतों को कोई खास तवज्जो नहीं दिया गया। परिणाम यह हुआ कि गाँव लगातार पिछड़ते गए और गाँवों में रहने वाले लोगों का जीवन बदहाल होता गया। सुविधाएँ और संसाधन शहरों को तो उपलब्ध कराए जाते रहे लेकिन गाँव उपेक्षित बने रहे। गाँवों में सुविधाएँ न होने के कारण वहाँ से शहरों की

तरफ पलायन की प्रवृत्ति बढ़ने लगी। तमाम दावे करने के बावजूद कृषि और किसान सरकारों की प्राथमिकता में नहीं रहे और गाँवों में रोजगार समाप्त होता गया। हताशा और बदहाली ने गाँवों से पलायन की गति को और तेज कर दिया। गाँवों की उपेक्षा से न केवल गाँव संकटग्रस्त होते गए हैं, बल्कि शहरों का ढाँचा भी चरमरा गया है। आबादी के अतिरिक्त बोझ ने शहरों की बुनियादी सुविधाओं को छिन्न-भिन्न कर दिया है। यही कारण है कि राष्ट्रपति डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम ने देश के छह लाख गाँवों में रहने वाले 70 प्रतिशत आबादी की बेहतरी के लिए नए प्रयोग और नए उपाय करने पर गौर किया।

दरअसल, आज का बदलता सामाजिक ढाँचा, शहरीकरण की आँधी, व्यवसायों का बदलता चरित्र और गति का अपने आप मे एक मूल्य की तरह स्थापित हो जाना, ये सब उस बुनियादी गतिशास्त्र के खिलाफ हैं जिसके आधार पर हमारा ग्रामीण समाज खड़ा है। आज जो अनुपयोगी है उसका भावात्मकता में अस्तित्व नहीं बचाया जा सकता। सच कहा जाय तो यह वह आदमखोर व्यवस्था है, जो उन सारे आधारों को लील रही है जिन पर इज्जत की जिंदगी जीने और ईमान की रोटी खाने की ललक रखने वाला इंसान खड़ा होता है। लड़ाई इस आदमखोर व्यवस्था के खिलाफ लड़नी होगी। इसकी व्यवस्था सोचनी, बनानी और समाज में स्वीकृत करानी होगी। यह होगा तो ग्राम समाज, गाय, बैलगाड़ी, रिक्शा बहुत कुछ बचेगा। इसके लिए हिम्मत के साथ कहना होगा कि जो विकास और व्यवस्था हमसे स्वावलंबन और स्वाभिमान छीनती है, हम उसे अस्वीकार करते हैं। यही बापू की लड़ाई थी और है।

गाँवों और शहरों के बीच बढ़ती दूरी :

गाँवों के देश कहे जाने वाले भारत में गाँवों और शहरों के बीच दूरियाँ लगातार बढ़ती जा रही हैं। गाँव की सिर्फ 5 प्रतिशत आबादी ही शहरों के आम आदमी की तरह खर्च कर पाती है। 90 के दशक के बाद ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी तेजी से बढ़ी है। नेशनल सैम्पुल सर्वे के अनुसार ग्रामीण इलाकों में औसत प्रत्येक महीना प्रति व्यक्ति खर्च 494 रुपए 90 पैसे हैं जबकि शहरों में एक साधारण व्यक्ति का औसत माहवारी खर्च 914 रुपए 57 पैसे हैं। इससे स्पष्ट है कि गाँव और शहरों के बीच खाई बढ़ी है।

आजादी के सत्तर वर्षो बाद इस देश में स्कूल, फैक्ट्री,

वर्कशॉप की तुलना में पूजा स्थलों में बढ़ोत्तरी हुई है। सन् 2001 की जनगणना के अनुसार देश में 24 लाख पूजा स्थल हैं। जबकि सिर्फ 22 लाख फैक्ट्री, वर्कशॉप और वर्कशेड हैं। इसी प्रकार सिर्फ 15 लाख स्कूल-कॉलेज हैं और इतने बड़े देश में केवल 6 लाख 4 हजार नर्सिंग होम व डिस्पेंसरी हैं। देश में कुल 22 लाख फैक्ट्री, वर्कशॉप में से केवल 9 लाख 87 हजार ही देश के देहाती इलाकों में हैं। स्वाभाविक है कि शहर की तुलना में गाँवों में रोजगार की संभावनाएँ कम होंगी। इसी प्रकार देश के कुल 15 लाख स्कूल-कॉलेज में से मात्र 2 लाख 67 हजार स्कूल-कॉलेज देहाती इलाकों में हैं और देश के 6 लाख अस्पतालों में से केवल 3 लाख 40 हजार ही देहाती इलाकों में हैं।

सन् 2001 के जनगणना के अनुसार देश के 72 फीसदी परिवार ग्रामीण इलाकों में रहते हैं, किंतु इन देहाती इलाकों के सिर्फ कुछ ही घरों में बिजली पहुँच पाई है और बाकी के घरों में आज भी रोशनी के लिए किरासन तेल का दीप या लालटेन जलाया जाता है। जहाँ तक पानी की पूर्ति का प्रश्न है देहात के सिर्फ 24 फीसदी घरों में ही पानी नल द्वारा पहुँच पाता है और बाकी लोग हैंड पंप, कुँओं आदि का पानी पीते हैं। इन देहाती इलाकों में 10 करोड़ 80 लाख परिवारों के पास शौच की व्यवस्था नहीं है।

विश्व बैंक के प्रमुख अर्थशास्त्री निकोलस एच. स्ट्रेन के अनुसार राष्ट्रीय विकास की गति, गरीबी उन्मूलन और सामाजिक कल्याण के राष्ट्रीय लक्ष्य को प्राप्त करना तबतक संभव नहीं होगा, जबतक कि पिछड़े राज्यों, क्षेत्रों और समुदायों की विशेष रूप से सहायता प्रदान नहीं की जाती है। क्षेत्रीय विषमता और शहर एवं गाँव के बीच की बढ़ती दूरी के चलन से क्षेत्रवाद और सामाजिक कटुता बढ़ेगी।

ग्रामीण विकास के मुद्दे पर केंद्र की काँग्रेसनीत संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन की सरकार द्वारा नई दिल्ली में आयोजित मुख्यमंत्रियों के सम्मेलन में प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह ने सही तस्वीर पेश की थी कि ग्रामीण योजनाओं पर हर साल 17 हजार करोड़ रुपए खर्च किए जाते हैं, फिर भी इसका पूरा इस्तेमाल क्यों नहीं हो पाता। इसकी जो भी वजह हो, एक वजह तो साफ है कि कृषि के क्षेत्र में जो योजनाएँ बनायी जाती हैं, वह शासनतंत्र पर हावी शहराती अधिकारी बनाते हैं। सरकार ने खाद पर चार साल के अंदर 55 हजार करोड़ रुपए की जो सब्सिडी दी है उसे भी कृषि के खाते में होती रही .है। यह दीगर बात है कि इसका 60 फीसदी हिस्सा

उर्वरक बनाने वाली कंपनियों को जाता है। बची 40 फीसदी का ही फायदा किसानों को मिल पाता है। मजाक तो यह है कि नौंवी पंचवर्षीय योजना में कृषि के क्षेत्र में निवेश घट कर 103 प्रतिशत रह गया है। क्या इसके बाद भी कृषि की उन्नति का सपना देखा जा सकता है? यह स्थिति हर हाल में बदलनी होगी, तभी भारत का सही मायने में कल्याण हो सकता है।

भूमंडलीकरण और भारतीय किसान :

मानव-समाज प्रारंभ से ही विकासोन्मुख, नई खोज व समृद्धि की ओर अग्रसर है। आज हम समुन्नत, समृद्ध, संपोषित विकसित भारत की कल्पना कर रहे हैं तथा अपने लक्ष्य को 2020 तक हासिल करने हेतु प्रयत्नशील हैं। वास्तव में हम विकसित राष्ट्र तभी बन सकते हैं जब हम अर्थव्यवस्था के प्रत्येक क्षेत्र तथा समाज के हर वर्ग पर समन्वित उपागम नीति को लागू करें। इस विकास के सफर में 20वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में विश्व मंच पर एक नई अवधारणा की पुष्टि हुई, जिसे भूमंडलीकरण कहा गया। बहुसंख्यक देशों ने इस पर चर्चा कर इसे अपनाया भी। कमोवेश भारत ने भी भूमंडलीकरण की अवधारणा को अपनाया तथा इसके नीति नियामक व संरचनात्मक संगठन विश्व व्यापार संगठन (डब्ल्यू.टी.ओ.) का सन् 1995 में सदस्य भी बना। परिणामस्वरूप देश के सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्रों में परिवर्तन होने के बाद हमारी अर्थव्यवस्था के मूल आधार कृषि व कृषक दोनों संक्रमण काल के दौर से गुजर रहे हैं। देश की 72 प्रतिशत कृषि पर निर्भर करने वाली जनता की भूमिका तथा उसकी दिशाएँ अभी स्पष्ट नहीं हो पाई हैं। भूमंडलीकरण के चलते हमारे देश में एक ओर जहाँ बेरोजगारी बढ़ी है, किसानों की दुर्दशा हुई और सहज मानवीय मूल्यों का ह्रास हुआ है, वहीं राजसत्ता अधिकाधिक बेबस हुई है। सरकारी नीतियों के निर्धारण में विश्व बैंक और अंतरराष्ट्रीय मुद्राकोश जैसी संस्थाओं और साम्राज्यवादी देशों की भूमिका निर्णायक सी हो गयी और सरकार उनके आगे घुटना टेकती रही है। बाजारवादी उपभोक्ता संस्कृति के लगातार बढ़ते प्रभाव की वजह से किसान-मजदूर के बच्चे भी लगभग पूरी तरह से आत्मकेंद्रीत और पश्चिमोन्मुख होते जा रहे हैं, जिसका प्रभाव हमारी राष्ट्रीयता पर काफी पड़ा है। उनकी देशभक्ति की भावना में लगातार कमी होती जा रही है और समाज के प्रति प्रतिबद्धता का अभाव दिख रहा है। कृषक समाज और विश्व व्यापार संगठन की वर्तमान नीतियों को समझा जाय तथा समन्वय स्थापित करके परस्पर विरोधी नीतियों पर पुनर्विचार

किया जाय, जो विकास, समृद्धि व उन्नति का कारक बने।

कृषक वर्ग को इस योग्य बनाया जाए ताकि भूमंडलीकरण की चुनौतियों का सामना कर सके। भारत जैसे कृषि प्रधान देश के किसानों को अनुदान कम मिलने की वजह से उत्पादन में कमी तथा उपलब्धता विगत उत्पादों की अंतरराष्ट्रीय स्तर पर कीमत बढ़ जाती है जिसके कारण निर्यात महंगा व कम हो जाता है। ऐसे में देश में जहाँ विदेशी मुद्रा की आवक कम होती है वहीं किसानों की क्रय शक्ति भी न्यून होती जाती है जिससे राष्ट्रीय बाजार में माँग न बढ़ने के कारण औद्योगिक उत्पादन में ह्रास होता है। सेवा क्षेत्र का विस्तार संकुचित होता जाता है और अंततः राष्ट्र आर्थिक मंदी का शिकार हो जाता है।

विकास के तमाम दावों और सूचना-संचार-क्रांति के दौर में भी भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ भारतीय कृषि है। आज भी मानसून के आगे-पीछे होने और कृषि उपज की मात्रा से संवेदी सूचकांक गोते लेते दिखाई पड़ते हैं, लेकिन व़ही किसान हाड़-तोड़ मेहनत के बावजूद अपनी जिंदगी को सुधार पाने में असमर्थ होकर दो जून की रोटी के लिए भी विवश हो आत्महत्या को मजबूर हैं। ऐसे मेहतनकश वर्ग की स्थिति को गीतकार बाबू राम शुक्ल ने अपनी पुस्तक 'संवेदन के मृगशावक' में कुछ इन शब्दों में बयान किया है।

'अब तो केवल
भूख उग रही
बेचैनी दिन-रात
जाग रही
भूमि पुत्रवर
धनिया-गोबर
यों ही फिर-फिर
छले गए।'

भूमंडलीकरण के इस दुष्काल में हमारा देसीपन जिस तेज रफ्तार से विलुप्त हो रहा है, उसने हर विचारशील और संवेदनशील व्यक्ति को अपनी सामर्थ्य सीमा में सोचने और कुछ करने को बाध्य कर दिया है।

ग्रामीण विकास का चीनी मॉडल :

भारत की तरह चीन भी गाँवों का देश है। चीनी इतिहास में चीनी किसानों का सामंतवादी और औपनिवेशिक शक्तियों द्वारा बड़े पैमाने पर

शोषण होता रहा, किंतु किसानों ने हर लूटेरों की ताकत का विरोध किया। इस विरोध में चीनी किसानों को अपने प्राणों को न्योछावर करना पड़ा, पर वे कभी पीछे नहीं हटे। अंततः किसानों को अपने महान नेता माओत्से तुंग के नेतृत्व में सन् 1949 में सफलता मिल ही गई, लेकिन सन् 1967-76 की सांस्कृतिक क्रांति ने चीन के ग्रामीण विकास का रथ मोड़ा और सन् 1980 के बाद जब माओत्से तुंग और सांस्कृतिक क्रांति का दौर समाप्त हुआ तब प्रारंभ हुआ चीन के ग्रामीण विकास का असली दौर। माओ के बाद तुंग श्याओ फंग के सत्ता में आने पर चीन के आर्थिक विकास ने एक लंबी छलांग लगाई। पिछले दो दशकों में एक बदले हुए चीन का मॉडल दुनिया के सामने है जिसने अपनी आश्चर्यजनक प्रगति से पूरी दुनया को चकित कर दिया है। दरअसल, तुंग श्याओ फंग के खुलेहाट और आर्थिक सुधार-नीति की वजह से चीन के नगरों की तरह गाँव भी आर्थिक इकाइयों में बदल गए हैं। अब कृषि उत्पादन के साथ-साथ इनसे संबंधित उद्योग भी गाँवों में स्थापित कर दिए गए हैं। इस तरह जिस क्षेत्र विशेष में जिस कृषि उपज की अधिकता है उससे जुड़े हुए उद्योग-व्यापार भी वहीं हैं। प्रत्येक कम्यून एक स्वायत्त इकाई की तरह काम करता है। उत्पादन से लेकर निर्यात तक की सभी गतिविधियाँ ग्रामीण उत्पादन-क्षेत्रों से संचालित होता है। गाँवों में ही हर तरह की सुविधाएँ उपलब्ध करा दी गई हैं। ग्रामीण जनता को वहीं रोजगार देकर शहरों में भीड़ बढ़ाने से रोक दिया गया है। सरकार जनसंख्या के अधिक घनत्ववाले क्षेत्रों के किसानों को कम आबादीवाले राज्यों में जमीन तथा आवश्यक सुविधाएँ देकर बसा रही है। इस तरह वहाँ संतुलन स्थापित करने का प्रयास हो रहा है, क्योंकि कृषि और ग्रामीण उद्योग दोनों को वहाँ प्रश्रय दिया जा रहा है। कृषि और ग्रामीण उद्योग का वह मणिकांचन सामंजस्य ही चीन की ग्रामीण अर्थव्यवस्था का मेरूदंड है।

जहाँ तक चीनी मॉडल के भारत के लिए महत्व का सवाल है, उपरोक्त व्यवस्था को देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि इसे अपनाने पर भारतीय गाँवों और वहाँ के किसानों का फायदा होगा। फिर भी भारत को स्वयं अपना स्वदेशी ग्रामीण विकास का मॉडल विकसित करना चाहिए। जहाँ तक मैं समझता हूँ स्वदेशी मॉडल ही ग्रामीण विकास की चुनौती स्वीकार करने में सक्षम हो सकता है। इसलिए समय का तकाजा है कि सरकार सोच-समझकर अपना एक स्वदेशी मॉडल तैयार करे ताकि ग्रामीण विकास के पथ पर यह देश अग्रसर हो सके।

जापान के 'एक गाँव-एक उत्पाद' की अवधारणा का अध्ययन :

द्वितीय विश्व युद्ध में तबाह हो जाने के बाद फिर से दुनिया के विकसित देशों में बहुत ही अल्प समय में शुमार होने वाले जापान की विकास योजनाओं का अध्ययन भारत भी करा रहा है। दुनिया में सर्वाधिक संपन्न गाँव जापान में है और वहाँ की 'एक गाँव-एक उत्पाद' योजना ने जापानी गाँवों की तस्वीर बदल दी है। इस अवधारणा की भारत में व्यवहार्यता, प्रासंगिकता तथा योजनीयता का अध्ययन केंद्रीय ग्रामिण विकास मंत्रालय करा रहा है। अध्ययन अनुकूल आने पर इसी तर्ज पर भारत के गाँवों के विकास का प्रारूप बनाया जाएगा।

भारत सरकार द्वारा उठाए गए इस कदम के लिए जाँच और अध्ययन कार्य जापान एक्स्टर्नल ट्रेड आर्गनाइजेशन (JETRO) तथा भारतीय उद्योग परिसंघ (C.I.I.) द्वारा संयुक्त रूप से किया जा रहा है। वाणिज्य और उद्योग मंत्रालय इस कार्य में एक माध्यम बना हुआ है।

'एक गाँव-एक उत्पाद' षी अवधारणा जापान में शुरू करने के मूल में ऐसे उत्पादों, उद्योगों का पता लगाना था, जो प्रत्येक क्षेत्र को अच्छी तरह से लाभ पहुँचा सके। जापान सरकार की इस योजना के प्रति एक सोच यह भी रही कि इससे लोगों के बीच स्वायत्तता और स्वैच्छिकता को बढ़ावा मिलेगा।

दरअसल जापान के 'एक गाँव-एक उत्पाद' (OBOP) सिद्धांत बहुत ही काबिलेगौर इस मायने में है कि इसके तहत गाँवों में वैश्विक रूप से स्वीकार्य उत्पाद बनाना है। क्षेत्र की क्षमता का उपयोग करते हुए अलग-अलग कार्यो के माध्यम से 'एक गाँव-एक उत्पाद' की अवधारणा को पूरा करना और लोगों में चुनौतीपूर्ण तथा सृजनात्मक भावना का विकास करने के प्रति उन्मुख बनाना भी इसी योजना का मूल सिद्धांत है। जापान में यह योजना वहाँ के सर्वांगीण विकास की धुरी बनी हुई है। इसके सिद्धांतों पर अमल कर वहाँ की सरकार ने एक तीर से कई निशाने साधे हैं। इसके प्रत्येक गाँव एक इकाई के रूप में पूरे देश में जानी जाती है। गाँव उत्पाद के नाम से भी प्रचलन में आ गए हैं और उनका विकास हुआ है। ग्रामवासियों को रोजगार, रोजगार के अवसर गाँव में ही मिलने से लोगों का पलायन शहरों की तरफ नहीं हो रहा है। इससे जनसंख्या को विकेंद्रीकरण पूरे देश में हुआ है, न कि सिर्फ शहरों में। यदि भारत सरकार द्वारा जापान के 'एक गाँव-एक

उत्पाद' की इस योजना का अध्ययन रिपोर्ट अनुकूल आता है और इस देश में भी इसी तरह की योजना को कार्यान्वित करने की दिशा में पहल की जाती है, तो अपने देश के गाँव भी जापानी गाँवों की तरह विकसित किए जाने की उम्मीद की जाती है।

उद्यमशीलता के एक रूप के बतौर जापान में यह योजना काफी सफल रहा था। अपने यहाँ खिलौनों से लेकर घड़ी और ट्रांजिस्टर तक जापानी इलेक्ट्रॉनिक सामान हम इस्तेमाल करते आए हैं, वे इसी प्रक्रिया में तैयार किए गए होते हैं। इसमें बड़ी-बड़ी कंपनियाँ असेंबलिंग का अपना सारा काम ग्रामीणों के जरिए कराती हैं। गाँववासियों को इसके लिए पहले विधिवत प्रशिक्षण दिया जाता है। फिर लोगों को पुर्जे बाँट दिए जाते हैं। फिर लोगों को पुर्जो को जोड़कर कोई खिलौना, कोई घड़ी या कोई ट्रांजिस्टर बनाते हैं। फिर धीरे-धीरे यह काम उनके लिए गेहूँ या चावल उपजाने जैसा हो जाता है और कोई एक गाँव किसी खास चीज का उत्पादन करने तथा उससे संबंधित कंपनी को आपूर्ति करने में महारत हासिल कर लेता है।

प्रोविजन ऑफ अरबन अमिनीटीज इन रूरल एरिया (पूरा) : राष्ट्रपति का फार्मूला

· राष्ट्रपति डॉ. अब्दुल कलाम की वैज्ञानिक सोच पर आधारित फार्मूला 'पूरा' यानी प्रोविजन ऑफ अरबन अमिनीटीज इन रूरल एरिया अर्थात् शहरों जैसी सुविधाएँ गाँवों में उपलब्ध करायी जाएँ तो गाँवों का विकास संभव है। राष्ट्रपति डॉ. कलाम ने वर्ष 2004 के प्रारंभ में चंडीगढ़ में हुई राष्ट्रीय विज्ञान काँग्रेस में विस्तार से एक फार्मूला प्रस्तुत किया था जिसके उपरांत क्षेत्रीय ग्रामीण विकास मंत्रालय ने इस फार्मूले को लागू करने की संभावनाएँ तलाशनी शुरू कर दी हैं।

इसमें कतई संदेह नहीं कि राष्ट्रपति के इस 'पूरा' फार्मूले के तहत ग्रामीण क्षेत्रों के विकास का अनूठा फार्मूला सुझाया गया है। उसमें इस बात को माना गया है कि गाँवों का विकास इसलिए नहीं हो पा रहा है, क्योंकि वहाँ शहरों जैसी सुविधाएँ उपलब्ध नहीं हैं। इसलिए गाँवों में चिकित्सक, शिक्षक, इंजीनियर जाना भी नहीं चाहते और खुद ग्रामीण लोग भी गाँवों से निकलकर शहरों में बसते जा रहे हैं। इसलिए सोच यह है कि जैसी सुविधाएँ शहरों में उपलब्ध हैं वैसी ही गाँवों में भी उपलब्ध करायी जाएँ।

प्रत्येक गाँव में शहर जैसी सुविधाएँ उपलब्ध कराना भी इतना आसान नहीं है, इसलिए 'पूरा' फार्मूले में इसके लिए चार उपाय

सुझाए गए हैं। इसके तहत साथ-साथ स्थित बीस-पच्चीस गाँवों के समूह बनाकर उन्हें परस्पर जोड़ा जाएगा। इन समूहों को चार तरीके से आपस में जोड़ा जा सकता है। एक भौतिक संपर्क बढ़ाकर इसके तहत गाँवों के समूहों को अच्छी सड़कों से जोड़कर एक रिंग रोड का निर्माण किया जाएगा ताकि उनमें परस्पर संपर्क बनाया जा सके। इसमें सड़क के साथ बिजली, परिवहन आदि की सुविधाएँ प्रदान करना भी शामिल हैं।

दूसरा डिजिटल संपर्क है। इसके तहत गाँवों के इन समूह को आधुनिक दूरसंचार और सूचना तकनीक सेवाओं से जोड़ा जाएगा। मसलन पीसीओ, साइबर कैफे आदि। तीसरा है ज्ञान आधारित संपर्क- इसके तहत इन गाँवों से बनने वाले रिंग रोड के दायरे में हर पाँच-सात किलोमीटर की दूरी पर स्कूल, उच्च शिक्षा केंद्र, प्रशिक्षण संस्थान, अस्पताल आदि का निर्माण शामिल है। चौथी है बाजार कनेक्टिविटी जिसके तहत इन गाँवों के दायरे में अच्छे बाजारों की सुविधाएँ उपलब्ध हो सकें तथा ग्रामीण अपने उत्पादों को इन बाजारों में बेच भी सकें।

किसानों व खेतिहर मजदूरों के लिए जिस तरह की सहूलियतें दिए जाने की चर्चा हो रही है उससे कृषि व ग्रामीण अर्थव्यवस्था का कायाकल्प हो सकता है। पर अगर आवंटित राशि भी बंदरबाँट करने वाले बिचौलिए की भूमिका को समाप्त करने की कोई प्रभावी व्यवस्था नहीं की गयी तो पूरे प्रयास पर पानी फिर जाएगा। आजादी के लगभग सात दशक बाद भी अगर ग्रामीण विकास नहीं हो पाया है तो योजनागत विसंगतियों के अलावा स्थानीय स्तर पर बिचौलियों से सरकारी अधिकारियों-कर्मचारियों की मिलीभगत इसके लिए ज्यादा जिम्मेदार है। हमारे सामने समस्या यह है कि इस देश की अधिकांश संवैधानिक सरकारी एवं गैर सरकारी संस्थाएँ काठ हो रही हैं। सचिवालय के देवता मुर्दा, राजनीति के देवता की निगाह में व्यक्ति केवल वोट और सरकार की दृष्टि में किसानों की मौतें सिर्फ आँकड़ें हैं। गरीब और किसान को 'धरती के देवता' धीरज नहीं देते। खलील जिब्रान 'धरती के देवता' में कहते हैं-'यह लपटों में जलती हुई मौत की दुर्गंध है। मैं अपना मुँह गंधहीन उत्तर की ओर कर लूँगा। यदि मर सकना मेरे बस में होता तो मैं जीना पसंद न करता।'

सन् 2000 के आँकड़ों के अनुसार वेतनभोगी, पूँजीपति, राजनेता, औद्योगिक घराने आदि सब मिलाकर लगभग 3 करोड़ लोग एक सौ पच्चीस करोड़ के देश में सुख और समृद्धि का जीवन जीते हैं और

दूसरी ओर लगभग एक सौ बाइस करोड़ लोगों का भविष्य अँधकारमय बना हुआ है। ये निराश लोग लड़ें तो कैसे? डॉ. धर्मवीर भारती के शब्दों में जब भी कोई व्यक्ति अनासक्त होकर चुनौती देता है इतिहास की उसी क्षण नक्षत्रों की दिशा बदल जाती है।

आज जब देश के 70 प्रतिशत ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वालों की यह दुर्दशा है तो उनसे देश के प्रति अपने कर्त्तव्य, निष्ठा, प्रेम और समर्पण की उम्मीद कैसे की जा सकती है और इन सभी की अभिव्यक्ति ही तो राष्ट्रीयता है। यह बात ठीक है कि परिवार एवं समाज के साथ-साथ देश के प्रति समर्पण का भाव यहाँ के हर नागरिक का परम कर्त्तव्य है, देश के प्रति प्रतिबद्धता स्वाभाविक है और नितांत अपेक्षित भी, पर जिस देश की 70 प्रतिशत आबादी आजादी के सत्तर साल बाद भी रोटी, कपड़ा और मकान जैसी अपनी बुनियादी सवालों से जूझ रही हो, हजारों किसान प्रतिवर्ष आत्महत्या के लिए विवश हो रहे हों, इन विषम परिस्थितियों में भला राष्ट्रवाद की अवधारणा कैसे अँकुरित होगी, यह सोचने का विषय है, क्योंकि देश से नागरिक की अपेक्षाएँ तो होती हैं, हालांकि यह भी सच है कि अपने नागरिक से भी देश की अपेक्षाएँ रहती हैं।

किसान-मजदूरों की इस दयनीय स्थिति को समय-समय पर रचनाकारों ने अपने लेखन में चित्रित किया है। प्रेमचंद से लेकर महाश्वेता देवी तक सभी प्रगतिशील और जनांदोलन से जुड़े भारतीय रचनाकारों ने अपनी रचनाओं के जरिए न केवल क्रांति का बिगुल फूँका है, बल्कि जनता में राष्ट्रीयता की भावना भी भरी है। प्रेमचंद के 'सवा सेर गेहूँ' कहानी में शंकर ने सवा सेर गेहूँ उधार लिया था और उसके एवज में उसे उम्रभर के लिए गुलामी की बेड़ी अपने पैरों में डालनी पड़ी थी। वह इस संसार से विदा हो गया पर 120 रुपए अभी तक उसके सिर पर सवार थे। पंडित जी ने उसके बेटे की गर्दन पकड़ी। यह कथा आज भी बदस्तूर बरकरार है। कल शंकर था आज बिरिज है। पर इस मायने में आज स्थिति थोड़ी बदली है कि प्रेमचंद के जमाने में किसान-मजदूर शंकर महाजनों एवं सामंतों की कारगुजारियों को चुपचाप सह लेते थे, किंतु आज का बिरिज पुलिस के पास जाने का साहस रखता है, कर्ज का हिसाब-किताब रखकर अपने पुरखों का कर्ज चुकाता है और अपने माँ-बाप को शहर ले जाने का सपना देखता है। यह गोदान के होरी के गाय पालने के सपने से कम दुर्लभ सपना नहीं है। यह सपना फणीश्वरनाथ 'रेणु' का 'मैला आँचल' के बावन

दास के सपने से भिन्न है, क्योंकि होरी और बाबन दास जहाँ संघर्ष करते-करते शहीद हो जाते हैं वही महाश्वेता देवी का पात्र बिरिज संघर्षरत है। कारण कि वह व्यक्ति ही नहीं, बल्कि एक आंदोलन का हिस्सा है।

उपर्युक्त तथ्यों को प्रस्तुत करने के पीछे मेरी मंशा यह रही है कि अदूरदर्शी और अपर्याप्त विकास से गाँवों का चेहरा उतना नहीं बदला, जितना बदलना चाहिए। लोगों में राजनीतिक चेतना जागृत हुई है, शिक्षा का प्रसार भी हुआ है, पर गरीबी, भूखमरी और बेरोजगारी पर अँकुश नहीं लग सका है, सरकारें गाँव के गरीबों और किसानों के उत्थान की दिशा में उतनी प्रयत्नशील नहीं दिखती जिससे लगे कि वाकई देश की खुशहाली का रास्ता खेतों और खलिहानों से होकर गुजरता है और भारत की आत्मा गाँवों में बसती है। गाँवों की सोंधी मिट्टी की सुगंध अब मिटती जा रही है। गाँवों की हवा में अब पूर्वी और सोरठी की मिठास नहीं तैरती। अश्लीलता ने आज गाँवों को भी अपने चपेट में ले लिया है और घर-घर में अश्लील कैसेट्स बज रहे हैं। आधुनिकता के अँधानुकरण में आज गाँव भी शामिल हो गये हैं। चारों ओर लूट-खसोट का आलम है। ग्रामीण समाज की स्थिति देखने से ऐसा लगता है कि शहर की सारी कुप्रवृत्तियाँ आज गाँवों की ओर स्थानांतरित हो रही हैं जिसके चलते गाँवों की राजनीति गंदी होती जा रही है और समाज में हमारे नैतिक मूल्यों का क्षरण हो रहा है। गाँवों का पूरा सामाजिक तंत्र जिस पर हम कभी नाज करते थे इस कदर भ्रष्ट हो गया है कि आज हर व्यक्ति अपने को ठगा-सा महसूस कर रहा है। समकालीन ग्रामीण समाज में व्याप्त आतंक और उससे मुक्त होने की छटपटाहट आज गाँव के लोगों में सहज दीख रही है। व्याप्त आतंक का चित्रण किसी कवि ने अपनी निम्न पंक्तियों में यों किया है-

'या तो तोड़ दे घेरा
या निर्माण करे नई पगडंडी का
जिससे होकर हम पहुँचे
उन चौराहों तक
जहाँ शाम की बेला में
बजते नहीं हैं झाल और ढोलक
अब तो
वहाँ बंदूकें रखी जाती हैं सिरहाने।'

इन सबों के बावजूद गाँव में अब भी बहुत कुछ ऐसा है

जो सुंदर है और हमारा ध्यान उस ओर जाना चाहिए। वैसी चीजें आज भी ग्रामीण समाज में बच रही हैं जो शहरों में नहीं दीखते।

भौतिकता की सबसे बड़ी त्रासदी यह है कि यह खंडित समाज के साथ-साथ खंडित चरित्र को भी जन्म देता है और उसे स्वार्थी व आत्मकेंद्रीत बनाता है। एक तो राजनीतिक दिशाहीनता और गाँवों में पैठी सामंती मानसिकता से ग्रामीण समाज त्रस्त है तो दूसरी ओर उपभोक्तावादी रुझान भी सामाजिक विकास में रूकावट उत्पन्न करने पर आमादा है। आज गाँवों की स्थिति यह है कि ग्रामवासियों की आवाज सुनने वाला कोई नहीं है। वहाँ के लोग अपनी आजीविका कैसे चलाएँ, यह सवाल उनके समक्ष यक्ष प्रश्न के रूप में खड़ा है और यह स्थिति कश्मीर से कन्याकुमारी तक फैले देश की तकरीबन 20 करोड़ ग्रामीण जनता की है और यह स्थिति तब है जब भारतीय संसदीय इतिहास में अबतक लोकसभा पर कृषि से जुड़े लोगों का ही वर्चस्व रहा है। आजादी के बाद देश में पहली लोकसभा के गठन से लेकर 14वीं लोकसभा तक सबसे ज्यादा कृषि से जुड़े जनप्रतिनिधि ही देश के निचले सदन यानी लोकसभा में पहुँचे हैं। लगभग यही स्थिति राज्यसभा में भी रही। विभिन्न राजनीतिक दलों और संसद में ऐसे लोगों की तादाद ज्यादा होने के बावजूद किसानों की दशा में उतना सुधार नहीं हो पाना लोगों को आश्चर्य चकित करता है।

यह सही है कि उदार आर्थिक नीतियों ने देश के कुछ प्रतिशत लोगों के जीवन स्तर और समृद्धि में पर्याप्त इजाफा किया है, लेकिन ऐसे लोगों की संख्या कहीं बहुत बड़ी है जिनके जीवन का अँधेरा और गहराया है। विश्व बैंक के अर्थशास्त्री श्री बारगिगोना ने स्पष्ट कहा है कि भारत का आर्थिक विकास न तो गरीबी उन्मूलक है और न ही रोजगारोन्मुख। ऐसे में चिंता का उठना स्वभाविक है कि सरकार की नीतियों के क्रियान्वयन की अंतिम परिणति क्या होगी? सच कहा जाय तो इसकी अंतिम जवाबदेही अंततः सरकार की होती है। सरकार इस दिशा में किसी सार्थक पहल को अपनी प्राथमिकता में कब शामिल करेगी?

किसानों के बीच फैल रहे असंतोष, क्षोभ और संघर्ष की नई समझ-बूझ एवं नई चेतना देने के लिए संपन्न नेतृत्व की ऐतिहासिक और सामाजिक जरूरत है। क्योंकि सबल संगठन के अभाव में किसान समाज अपनी समस्याओं का समाधान निकालने में असमर्थ सिद्ध हो रहा है। भारत का किसान अपने आप में एक जड़ और चेतनाहीन समुदाय है। अशिक्षित तो

है ही, अपने वर्गीय शत्रुओं के हमलों का प्रतिकार करने के मामले में भी निष्प्राण ओर शिथिल समाज है। किसान समाज चाहता है कि वह हिले-डुले नहीं और उसकी समस्याओं का हल कोई दूसरा निकाल दे। ऐसा कैसे हो सकता है? सरकारी कर्मचारियों एवं अधिकारियों ने संगठित होकर ही अपनी माँगों को मनवाने में सफलता पाई है।

राष्ट्र के सर्वांगीण विकास हेतु यह जरूरी है कि गाँवों को सर्वोच्च महत्व दिया जाय और ग्राम्य विकास कार्यक्रमों को प्राथमिकता एवं गुणवत्ता के आधार पर लागू किया जाए। सच कहा जाय तो गाँव आज भी आर्थिक और सामाजिक आजादी के लिए लालायित हैं। गाँवों के विकास का रास्ता वहाँ की प्रचुर संपदा को ध्यान में रखकर निर्धारित करने की आवश्यकता है।

प्रयास यह हो कि निरंतर बदलते परिवेश में सामाजिक बदलाव के साथ आर्थिक रूप से ग्रामीण समाज स्वावलंबी हो, हर हाथ को काम मिले और हर खेत को पानी तभी गाँव से शहरों की ओर पलायन रूक सकेगा और गरीब किसान एवं मजदूर आर्थिक रूप से संपन्न हो सकेंगे। आर्थिक रूप से संपन्न होने के पश्चात् समाज व देश के प्रति उनकी प्रतिबद्धता बढ़ेगी, यह मानकर चला जाता है।

अध्याय : पाँच
विविधा

'आमुक्त मालयदा' पर श्री वल्लभाचार्यजी का प्रभाव

डॉ. ए. बी. साई प्रसाद

सन् 1509 की बात है। तुंगभद्र नदी तट पर स्थित सभा मंडल में साहिती समरांगन चक्रवर्ती (सार्वभौम) माने जाने वाले विजय नगर साम्राज्य के अधीश श्रीकृष्ण देव राय विराजमान हैं। सभा-मंडल विविध संप्रदायों के आचार्यो से सुशोभित तथा शास्त्रार्थ को सुनने के लिए विजय नगर, कर्नाटक के बललारी जिले के डोसपेटा के पासवाला आजकल का हंपी गाँव में विद्वज्जन एकत्रित थे। एक ओर मध्व निम्बार्क रामानुज और विष्णु स्वामी संप्रदाय के आचार्य आसीन थे। दूसरी ओर शंकराचार्य के अद्वैतवाद को मानने वाले प्रकांड पंडित, शाक्त एवं शैव के उद्दण्ड प्रचारक थे। मध्य संप्रदाय के आचार्य व्यासतीर्थ वैष्णवों का प्रतिनिधित्व कर रहे थे। उनके तर्को को काटने के लिए अद्वैतवादी विद्यातीर्थ जी उद्यत थे। विद्यातीर्थ के कारण अद्वैतवाद जीतने लग गया था। वैष्णव आचार्य असहाय बनकर हाथ मिलाने लग गये थे। एक चमत्कार हुआ। वैष्णव पक्ष जीत गया। श्रीमती भललम्मगारू और श्री लक्ष्मण भट्ट के सुपुत्र श्री वल्लभाचार्य, जो कि तीस वर्ष के थे, तीसरी बार तीर्थ-यात्रा करते हुए सन् 1509 में विजय नगर पहुँच गये थे। वास्तव में वे अपनी माँ को अपने मायके में आधुनिक रायल सीमा का एक गाँव छोड़कर विजय नगर, जो विद्यानगर के नाम से भी प्रसिद्ध है, आये हुए थे। शास्त्रार्थ की बात सुनकर वेद और षड्दर्शनों के साथ-साथ शैव एवं वैष्णव आगमों के पंडित होने के कारण वे श्रीकृष्णदेव राय के सभा-मंडल पहुँच गये थे। मायावादियों के माया तर्क को खण्डित कर शुद्धाद्वैत की स्थापना करने में श्री वल्लभाचार्य सफल हुए। परम वैष्णव श्री कृष्ण देव राय महाप्रभु वल्लभाचार्य की विद्वता पर मुग्ध हुए। अपने ही हाथों से श्रीकृष्ण देव राय ने आचार्य जी का कनकाभिषेक किया। वृंदावन में श्रीकृष्ण मंदिर के निर्माण के लिए सिर्फ दो सिक्कों को आचार्य ने ग्रहण किया। श्री प्रभुदयाल मीतल के अनुसार आचार्य ने केवल 7 स्वर्ण मुद्रायें लेकर शेष को उपस्थित विद्वानों में वितरित किया था।

श्रीकृष्ण देव राय ने पता लगाया कि श्री वल्लभाचार्य के पूर्वज गोदावरी के किनारे पर वाले कांकरवाड़ नामक गाँव के निवासी थे। वे

वेलनाडु वंश के थे और भारद्वाज गोत्र के थे। श्री लक्ष्मण भट्ट तिरूपति के बालाजी के बहुत बड़े भक्त थे। श्रीकृष्ण देव राय को बताया गया कि श्री लक्ष्मण भट्ट ने अपने प्राणों को तिरूपति में ही त्याग दिया था। इतना ही नहीं, श्री वल्लभाचार्य ने दो बार भगवान बालाजी को श्रीमदभागवत पढ़ सुनाया था। अपने राज्य-काल में सात बार भगवान बालाजी के दर्शन करने वाले श्रीकृष्ण देव राय उक्त बात को सुनकर बहुत आनंदित हुए थे। उन्होंने अपने राज-दरबार में एक सम्मान-सभा का आयोजन किया। विभिन्न वैष्णव आचार्यो ने श्री वल्लभाचार्य को विष्णुस्वामी संप्रदाय शुद्धाद्वैत संप्रदाय का आचार्य घोषित किया। प्रस्तुत सभी आचार्यो की अनुमति से श्रीकृष्ण देव राय ने श्री वल्लभाचार्य को 'आचार्य चक्रभूज मणि जगतगुरु श्रीमदाचार्य महाप्रभु' की उपाधि से विभूषित किया। सन् 1479 के चैत्र या वैशाख कृष्ण पक्ष के एकादशी के दिन जन्में श्री वल्लभाचार्य जी के जन्मवृत्तांत के बारे में जानकर सन् 1474 या 1478 के माघ बहुल (कृष्ण पक्ष) अष्टमी गोकुलाष्टमी के दिन जन्में श्रीकृष्ण देव राम जान गये कि महाप्रभु वल्लभाचार्य दैवांश-संभूत है। संस्कृत, आंध्र एवं कन्नड़ भाषाओं के सुकवि होने के कारण श्रीकृष्ण देव राय ने महाप्रभु वल्लभाचार्य जी को अपने एक काव्य का प्रधान पात्र बनाना चाहा। विषय और समय का इंतजार वे करने लग गये थे।

उड़ीसा के कटक पर हमला करने के लिए सन् 1517 में श्रीकृष्ण देव राय विजयवाड़ा पहुँचे। एकादशी का दिन था। वे व्रत रख रहे थे। आधी रात के बाद श्रीकृष्ण देव राय ने अपने सपने में श्री काकुलम के आंध्रमहाविष्णु को देखा। श्री महाविष्णु के संस्कृत के प्रकांड पंडित श्रीकृष्ण देव राय को एक काव्य रचना तेलुगुभाषा में करने का आदेश दिया। तुमने मेरी कथा को लिखा। गोदा देवी, जो वास्तव में भूदेवी हैं और सीता की तरह अयोनिजा हैं के साथ मेरे विवाह को काव्य रूप में प्रस्तुत करो। श्रीकृष्ण देव राय की आँखे खुलीं। सपने की एक-एक बात याद आने लगी। उनका माथा ठनका। आठ साल पहलेवाली घटना और उनका संकल्प काव्य में वल्लभाचार्य जी को एक सदाबहार पात्र बनाने की दोनों ही बातें याद आ गयीं। आमुक्त मालयदा काव्य उनके मन में लहरें मारने लग गया था।

श्रीमहाविष्णु से दिए गये सूत्र को आगे बढ़ाने के लिए गुरुपरंपरा नामक ग्रंथ का अध्ययन गहराई से श्री कृष्णदेव राय ने किया। श्री महाविष्णु के द्वारा गोदा देवी का नाम लेने के पीछे ऐ लचीली कहानी छिपी

है। कृष्णवतार में एक बार कृष्ण कंस के दरवार की ओर जा रहे थे। सुदामा नामक एक फूल बेचने वाला युवक कृष्ण को एक माला देता है। कृष्ण उसे ले लेता है। पर सोचता है, मैं तो गोपीजन-वल्लभ हूँ। इस लड़के के बदले एक लड़की माला लाकर देती तो कितना अच्छा होता। कृष्णावतार में उनकी यह इच्छा पूरी नहीं हुई थी। इसलिए मेरे लिए बने हार को स्वयं गले में पहन कर बाद में निकालती थी उस छोकरी की कहानी काव्य-बद्ध करो।

आण्डाल मुझे और हम सब को पालन करने वाली की कथा श्री विलिलपुत्तूर के पेटिय आलवार से जुड़ी हुई है। महाप्रभु वल्लभाचार्य के सारे गुणों को श्रीकृष्ण देव राय ने पेरिय आलवार, जिस का नाम विष्णु चित्त था, में देखा। अपनी योजना के अनुसार काव्य लिखने की वे तैयारियाँ करने लग गये। वल्लभचार्यजी के प्रभाव के कारण श्री महाविष्णु से कहलवाते हैं कि जनता की भाषा, भारत की भाषाओं में मधुर भाषा तेलुगु में- देश भाषलन्दु तेलुगु लेस्सा लिखो। श्रीकृष्ण देव राय जानते थे कि शुद्धाद्वैत के प्रचार के लिए वल्लभाचार्य ने आम लोगों की भाषा चुनी थी। वल्लभाचार्य के प्रति आदर-भाव के कारण आमुक्त मालयदा को उन्होंने विष्णुचित्तीयम नामक एक दूसरा नाम भी दिया है। गोदा, कोता का संस्कृत रूप है। तमिल में कोता का अर्थ माला है। अपने गले में माला को डालकर बाद में भगवान को पहनाने वाली होने कारण उसका नाम चूडिकुडुत्त नाच्चियार हो गया था। इसका संस्कृत अनुवाद आमुक्त मालयदा है। वल्लभ-संप्रदाय में आत्म समर्पण भाव का अपना एक विशिष्ट स्थान है। वहाँ 'श्रीकृष्ण : शरणम् मम' का अभिप्राय कुछ इस प्रकार होता है- मैं कृष्ण की शरण में हूँ। सहस्रों वर्षो से मेरा श्रीकृष्ण से वियोग हुआ है। वियोग जन्य ताप और क्लेश से मेरा आनंद तिरोहित हो गया है। अतः मै भगवान श्रीकृष्ण को देह, इंद्रिय, प्राण, अंतःकरण और उनके धर्मस्त्री, गृह, पुत्र, क्त्ति और आत्मा सब कुछ अर्पित करता हूँ। हे कृष्ण मैं आप का दास हूँ, मैं आपका ही हूँ। श्रीकृष्ण देव राय के विष्णुचित्त इन गुणों से विभूषित है। उनका चरित्र-चित्रण करते हुए श्रीकृष्ण देव राय ने लिखा है।

'अंदुन्डुन् द्वय सद्म पद्मवदनुन्ड द्वंद्वडु'। विष्णुचित का मुख मण्डल कलम वैष्णवों के दो मंत्रों को श्रीमन्नारायण चरणों शरणम् प्रपद्ये और श्री मन्नारायणाय नमः आश्रम दे रहा है। वह सुख दुख जैसे द्वंद्वों से ऊपर रहता है। रोज योग नामक जंजीर से अपने हृदय में विष्णु नामक हाथी को बाँध रख चुका है। वेद वेदांतों को पढ़े बिना ही वह विष्णुचित्त ईश्वर को जान गया है।

यहाँ इस वाक्य पर ध्यान देना चाहिए। वल्लभाचार्य का पुष्टि मार्ग ज्ञान से अधिक भक्ति पर जोर देता है। मानस वाया कर्मणा समर्पण भाव रखने वाला ही भगवान को पा सकता है। वल्लभाचार्य जी की नियम निष्ठा से सुपरियत श्रीकृष्ण देव राय विष्णुचित्त के बारे में लिखते हैं- 'सुसंविदा लयुन्डु निष्ठ न्विष्णुचित्तंडनन्।'

वल्लभाचार्य ने श्री मद्भागवत के द्वितीय स्कंध, दशम, अध्याय के चतुर्थ श्लोक में प्रयुक्त पोषण तदनुग्रह के आधार पर अपने संप्रदाय को पुष्टि संप्रदाय कहा है। यह एक प्रकार से तमिलनाडु में प्रचलित तेनगल अर्थात् दक्षिणी संप्रदाय का ही एक रूप है। पुष्टिमार्ग की तरह वे भी सर्व सिद्धियों का हेतु भगवान का अनुग्रह समझते हैं। उनके अनुसार भगवान माँ-बिल्ली की तरह है। बिल्ली अपने नवजात शिशुओं को गर्दन से पकड़ कर सुरक्षित स्थान पहुँचाती है। ठीक उसी तरह अपने शरण में आंये हुए भक्त को विष्णु के अवतार श्रीकृष्ण भी सुरक्षित स्थान पर पहुँचाते हैं। तेनगल संप्रदाय में भी पुष्टिमार्ग की तरह जाति-पाति की परवाह नहीं करते। वडंगल अर्थात् उत्तरी संप्रदाय में अब्रह्मण को जब शिक्षा एवं उपदेश दी जाती है तब 'ओम' शब्द को वे नहीं सुनाते। जनता की भाषा की जगह वे पंडितों की भाषा को अधिक महत्व देते हैं। पर श्रीकृष्ण देव राय वल्लभाचार्य जी के प्रभाव के कारण संस्कृत के उद्भट्ट कवि होने के बावजूद भी तेलुगु में काव्य की रचना करते हैं। ज्ञान से बढ़कर भक्ति और सेवा पर ज्यादा जोर देते हैं। आमुक्त मालयदा का विष्णुचित वेद वेदांगों को जानता नहीं था। सूरदास की तरह वह 'मेरो मन, अनत कहाँ सुख पावै' को मानने वाला था।

विष्णु चित्त के जीवन में भी वल्लभाचार्य जी के जीवन में घटी जैसी घटना घटती है। देवदमन या श्रीनाथजी के नाम से प्रसिद्ध गोपाल कृष्ण वल्लभाचार्य को श्रवण शुद्ध एकादशी दिन सपने में दर्शन देते हैं। वे दर्शन-हेतु अपने पास आने का आदेश वल्लभाचार्य को देते हैं। वे आगे यह भी बताते हैं कि उनके सब गोपसखा फिर जन्म ले चुके हैं। उन सबको अपने सेवक बनाने के लिए कहते हैं ताकि वे फिर एकबार पहले जैसे उनसे खेल सकें। इसलिए वल्लभाचार्य जी भगवद् अनुग्रह नामक पुष्टि-मार्ग की स्थापना करते हैं। इस घटना को श्री कृष्ण देव राय ने अपने ढंग से अपनाया है। श्री विल्लि पुत्तूर के माननारू स्वामी विष्णु चित्त को मदुरै जाकर अन्य संप्रदाय के आचार्यों को हराकर खुद पांड्यराजा को

वैष्णव बनाने के लिए कहते हैं।

मन्नारू स्वामी के आदेशों को पालने के लिए विष्णु चित्त तैयार नहीं था। वह अपनी सीमाओं को जानता था। इसलिए वह कहता है, 'यह मेरे बस की बात नहीं हैं। यहाँ कृष्णदेव राय विष्णुचित्त के मुँह से भगवान की सेवा भक्त कैसे कर सकता है', के बारे में बताते हैं।

'गृह सम्मार्जनमो जल शरणमों शृंगार पलंकिका वहनम्बो, वनमालिका करणमो वाल्लभ्य लभ्य ध्वज ग्रहणम्बो व्यजनात पत्र धृतियो द्रागदीपिकारोपमो नृहरी वादमु नाकु! लेरे इतरूल् नीलीलकु न्नात्रमुल् अर्थात् घर साफ करना, पानी लाना, आपके श्रृंगार पालकी को उठाना, कद्दावर मालाओं को बनाना (गूँथना), अगर हक मिल जाय तो आपके ध्वज को ढाकना, पंखा चलाना, छत्री पकड़ना, जल्दी-जल्दी दीप मालिकाओं को प्रज्ज्वलन करना, बस मै मात्र इन कामों को जानता हूँ। हे नरसिंग मुझे वादों से कोई लेना-देना नहीं है। आपकी लीलाओं के लिए क्या कोई और पुत्र नहीं है। वल्लभाचार्य द्वारा प्रतिपादित आठों पहरों की सेवा का यहाँ एक प्रकार का वर्णन है। श्री मन्नारू स्वामी विष्णुचित्तको समझाते हैं। अरे ब्राह्मण तुम चुप-चाप चले जाओ, मैं सब कुछ तुम से करवाऊँगा। तुम मात्र श्रेय को लो। घबराओ नहीं, मैं हूँ न! तेलुगु में कुछ इस प्रकार हैं।

नी इच्चथे? भिन्नकपो
वोइ : मुनि प्रवर मिन्नुनोप्पिंतुन भू
नामकुसभ, निन्दुल्कै
थे थड्डमु वल दचल ने नुम्माइजन
(यहाँ ने नुम्माडन का अर्थ मैं हूँ न)

श्री मन्नास स्वामी की तरह श्री नाथ जी में भी वल्लभाचार्य जी से सहायता करने का वादा किया था। कुछ ऐसी ही घटना सिनाय पर्वत पर मोसस के साथ और मसीहा जरमिया के साथ भी घटी थी। यहाँ तक अद्भुत संयोग की बात देखने को मिलती है। सावन के शाकल एकादशी के दिन श्रीनाथजी ने महाप्रभु वल्लभाचार्य को सपने में दर्शन देकर गोप लोगों को अपने पास लाने का आदेश दिया था। श्रीकृष्ण देव राय को आजकल के विजयवाड़ा में एकादशी के ही दिन श्रीकाकुलम के श्री आंध्रमहाविष्णु आंडाल के साथ हुई अपनी कहानी को लिखने के लिए आदेश देते हैं। दोनों के जीवन में एकादशी का श्री वल्लभाचार्य जी का जन्म भी एकादशी पर ही हुआ था- अपना एक अलग महत्व है।

सन् 1509 में जिस ढंग से वैष्णवेत आचार्यों को श्री वल्लभाचार्य ने हराकर उनको नतमस्तक किया था उसी तरह श्रीकृष्ण देव राय का विष्णुचित्त पांड्य राजा के दरबार में अद्वैतियों, शैवों और बौद्ध शक्तों को हराता है। श्री वल्लभाचार्य के ब्रह्म तेज को देखकर श्री कृष्ण देव राय बहुत प्रभावित हुए थे। इसलिए उचित आसन पर बिठाकर उनका सम्मान श्रीकृष्ण देव राय ने किया था। उस सम्मान विधि का अपने काव्य आमुक्त मालयदा में विस्तार के साथ यों करते हैं पांड्य राजा विष्णु चित्त को देखकर आदर के साथ उठ खड़े होते हैं। उन को हीरे और जवाहरों से जड़े सोनें के आसन पर बिठाते हैं। इस आसन के बारे में श्री कृष्ण देव राय लिखते हैं 'औन्नत्य प्रोज्वल राजदत्त वर रत्न पीठ।' विष्णुचित्त ने वेदों की प्रामाणिकता को मानते हुए सांख्य अद्वैत मीमांस-वैशेषिकों को ब्रह्म-सूत्र से उदाहरण देकर हराया। वेदों को न मानने वाले बौद्धों को कठोपनिषद् के आधार पर जीता। चार्वाकों को ब्रह्म सूत्र के उदाहरणों से पराजित किया। यह सब श्री मन्नस स्वामी के 'नेनुन्नाडन (मैं हूँ न) के बल पर ही हुआ था। तेन्गल संप्रदाय के अनुसार हर संभव प्रयत्न ने भगवान भक्त की सुरक्षा करता रहा है।

श्रीकृष्ण देव राय जानते थे कि वल्लभाचार्य जी के पुष्टि संप्रदाय की नित्य सेवा विधि में वात्सल्य भक्ति का स्थान सर्वोपरि होता है। इसलिए श्री कृष्ण देव राय का विष्णुचित्त अपने आपको ब्रजांगना मानता था। इस बात की पुष्टि आमुक्त मालयदा की एक घटना करती है। विष्णु चित्त अवैष्णों को हराते हैं। पांठ्य राजा खुद वैष्णव बन इस वैष्णव शिखामणि को हाथी पर बिठाकर एक जुलूस निकालते हैं। राजपथ पर पहुँचने पर विष्णुचित्त ने इस जुलूस को देखने वाले श्री विष्णु को आसमान में देखा। और कोई होता तो हाथी से डिगाकर विष्णु को साष्टांग प्रणाम करता। अपने आपको यशोदा मानने के कारण ही विष्णुचित्त हाथी पर बैठे-बैठे विष्णु को आशीर्वाद देता है। सिर्फ बड़े ही छोटों को आशीर्वाद देते हैं। इसलिए उन्हें लोग पेरिया (बड़े) आलवार कहने लग गये थे।

नाम-सेवा और स्वरूप-सेवा पुष्टिमार्ग के अनुसार सेवा के दो रूप बनते हैं। इसमें स्वरूप सेवा के प्रकार तीन होते हैं। वे हैं तनुजा, वित्तजा और मानसी विस्संतान ब्राह्मण होने के कारण विष्णुचित्त वित्तजा को छोड़ कर बाकी दो सेवाओं को बड़ी निष्ठा के साथ किया करते थे। मानसी-सेवा के भी तरीके दो हैं। वे हैं मर्यादामार्गीय मानसी-सेवा और पुष्टि-वैष्णव श्रीकृष्ण देव राय सुपरिचित थे। श्रीकृष्ण देव राय जानते थे कि

वल्लभाचार्य जी भक्ति मार्ग में विश्वास रखने वाले थे। भक्ति के पक्षधारी होते हुए भी वे ज्ञान-मार्ग के विरोधी नहीं थे। पुष्टिमार्गीय मानसी-सेवा का प्रतिनिधित्व विष्णुचित्त करते हैं। वे अपने विशुद्ध प्रेम के द्वारा भगवान के अनुग्रह को प्राप्त करता है। श्रीकृष्ण देव राय मर्यादा-मार्गीय मानसी-सेवा के उदाहरण को भी प्रस्तुत करना चाहते थे। वे जानते थे कि इस पथ पर चलने वालों को शास्त्रों का गंभीर ज्ञान होना चाहिए। इसलिए अपने काव्य के चौथे अध्याय में ब्रह्मचारी यामुनाचार्य को प्रस्तुत करते हैं। अपने ज्ञान के बल पर प्राचीन काल के एक पांड्य राजा को वैष्णव बनाते हैं। यहाँ कृष्णदेव राय फिर एक बार वैष्णव संप्रदाय को जितवाते हैं। अगर विष्णुचित्त इस काव्य का भाव पक्ष है तो थामुनाचार्य कलापक्ष हैं।

वल्लभाचार्य जी जाति-पाति को मानने वाले नहीं थे। यह समभावना श्रीकृष्ण देव राय की भाती है। इसलिए मालदासरी नामक एक अछूत पात्र को आमुक्त मालयदा में मुख्यत्व प्रदान करते हैं। अग अछूत अपनी तनुजा और मानसी-सेवा के कारण खुद भगवान का प्रिय बनता है और शापग्रस्त राक्षस को शाप मुक्त कर देता है। इस अपाख्यान के द्वारा श्रीकृष्ण देव राय साबित करना चाहते हैं कि भगवद् भक्ति या सेवा के लिए हर एक जीव योग्य है।

श्रीनाथ जी वल्लभाचार्य को बताते हैं कि गोपी जन फिर से जन्म ले चुके हैं। उन्हें मेरे पास ले आओ। फिर एक उनसे खेलने की मेरी जी चाह रहा है। वल्लभाचार्य के जीवन की इस घटना को भी श्रीकृष्ण देव राय अपने काव्य आमुक्त मालयदा में स्थान देना चाहते थे। भूदेवी तुलसी वन में (श्री विल्लिपुत्तूर) अयोनिजा बनकर विष्णुचित्त को मिलती है। धर्म-पिता बन उस शिशु का पालन पोषण विष्णुचित्त करने लगता है। भूदेवी के भूमि पर अवतरित होते ही कुछ देव कन्यायें गोदा की सहेलियां बन जन्म लेती है। वे ये भी बताती हैं कि हे गोदा! इसके पहले तुम सत्यभामा थी। अब वह यदुवंश भूषण श्रीरंग में रंगनाथ बन गया है। तुम उससे शादी का लो। रंगनाथ गोदा का पाणिग्रहण करने के लिए तैयार हो जाता है। पर विष्णुचित्त उनसे कहते हैं। हे स्वामी मैं कन्यादाता हूँ। आप को पाणिग्रहण के लिए श्री वल्लिपुत्तूर आना पड़ेगा। गोदा की कहानी के द्वारा वल्लभाचार्य जी के मधुर भक्ति का भी श्रीकृष्णदेव राय प्रचार करते हैं।

वल्लभाचार्य जी के पुष्टि-मार्ग से प्रभावित श्रीकृष्ण देव राय ने पुष्टि-मार्ग का प्रचार अष्ट-छाप के कुंभन दास, सूरदास परमानंद दास

और कृष्णदास के पहले किया है। इतना ही नहीं, आंडाला के रूप में आगे आने वाली मीराबाई के लिए भी एक आदर्श को स्थापित करने में श्रीकृष्ण देव राय सफल हुए हैं। दक्षिण भारत के लोग खासकर आंध्र और कर्नाटक के लोग श्रीकृष्ण देव राय को कृष्ण का ही अवतार मानते हैं।

संदर्भ ग्रंथ–

हिंदी :

प्रभुदयाल मीतल   अष्टछाप परिचय, अग्रवाल प्रेस, मथुरा, 1950

डॉ. दीनदयाल गुप्त अष्ट छाप और वल्लभ-संप्रदाय, भाग-2
हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, संवत् 2004

तेलुग :

आचार्य तुम्मपूडि कोटेश्वर राव आमुक्त मालयद, मलयकूट पब्लिकेशंस
हैदराबाद, 2001

कोंतो वेकटेश्वर राव आमुक्त मालयद, प्रथम संस्करण
विशालांध्र पब्लिकेशंस, हैदराबाद 2001

आरूद्रा समग्र आंध्र सास्त्यिम, खंड : सात
थम शेषाचलम अण्ड कंपनी
मद्रास मयलीपट्टनम, सिकंद्राबाद
प्रथम संस्करण : अक्टूबर

राल्लपल्लिल अनंतकृष्ण सारस्वताल्लोकम, त्रिवेणी पब्लिषट्स
मछलीपट्टनम

थस जयप्रकाष तिरूण्पावै, दिव्या पब्लिकेषन्स
मदुरै- 625019, प्रथम संस्करण 2002

अँग्रेजी :

RamKrishna Gopal Bhandarkar Vaishnovision Sai Vision
and
Minor Religions Systems
Asian Educational Services
N. Delhi, Madras, Reprint
1995

Encyclopedia of Indian Literature Vol I, III & V
Sahitya Academy , New Delhi

लोकतंत्र और राष्ट्रीय चेतना

ज्योति शंकर चौबे

भारत में जिस लोकतांत्रिक व्यवस्था के बीच हम आज हैं, वह प्राचीन काल में भी किसी न किसी रूप में यहाँ मौजूद थी। सीमित परिवेश में ही सही, लेकिन ईसा पूर्व छठी शताब्दी में ही लिच्छिवि गणतंत्र की स्थापना यहाँ हो चुकी थी। भारत की इस एकमात्र आदर्श एवं समर्थवान गणतंत्र की राजधानी वैशाली थी। लेकिन आधुनिक काल में हम 1712 में जेनेवा में जन्मे जीन जेकर रूसो को गणराज्य के सिद्धांत का प्रतिपादन करने वाला मानते हैं। इस प्रकार 'जनता के प्रभुत्व' सिद्धांत के आविष्कारक होने का श्रेय रूसों को ही जाता है।

सर्वप्रथम उन्होंने ही जनता के प्रभुत्व सिद्धांत की घोषणा की। 'राजा तो प्रजा का सेवक है, स्वामी नहीं। उसकी आवाज ईश्वर की आवाज है। जनता की इच्छा के विरूद्ध किसी को उस पर शासन करने का अधिकार नहीं है। जैसे कोई मालिक अपने अयोग्य और दुष्ट नौकर को बदल देता है, उसी प्रकार प्रजा को अधिकार है कि अयोग्य या अत्याचारी शासक को बदल दे। प्रजा ही राष्ट्र का देवता है। उसके ईश्वरीय आवाज को दबाने वाले शासक को कठोर दंड मिलना चाहिए।' इन सिद्धांतों को मूर्त रूप देने के लिए उन्होंने कई पुस्तकें लिखीं और जनमानस के बीच एक वैचारिक क्रांति का सूत्रपात किया। फलस्वरूप अनेक देशों के अत्याचारी शासकों के विरूद्ध जनांदोलन प्रारंभ हो गए। हिंसात्मक एवं अहिंसात्मक क्रांतियाँ कर, जनमानस को अत्याचारी शासकों के विरूद्ध जनांदोलन का प्रारंभ स्वप्रेरित था।

हिंसात्मक एवं अहिंसात्मक क्रांतियों के द्वारा ही जनमानस ने अत्याचारी शासकों को सत्ता से हटाया। 1917 की रूसी जनक्रांति एवं अठ्ठारहवीं तथा रूस के तानाशाह शासक जार का सपरिवार मार डाला गया। इंग्लैंड के राजा के सारे अधिकार छीन लिये गए। राजा नाम मात्र का रह गया। फ्रांस की क्रांति से पूर्व अमेरिका में जनक्रांति के बाद सत्ता परिवर्तन हो चुका था और रूसो के सिद्धांतों पर आधारित संविधान स्वीकृत कर जनतंत्र की स्थापना की जा चुकी थी। आयरलैंड का स्वाधीनता संग्राम भी इसी वैचारिक क्रांति की देन था। अपनी लेखनी से वैचारिक क्रांति को हवा देने वाले पेरिस के समकालीन विज्ञान लेखक एवं विचारक फ्रांकई भारी आरूई (वाल्टेयर) ने भी आज के लगभग 300 वर्ष पूर्व तत्कालीन

राजतंत्र की अत्याचारी शासन व्यवस्था के विरूद्ध अपनी लेखनी द्वारा वैचारिक क्रांति को सुदृढ़ता प्रदान करने हेतु जन जागरण का शंखनाद किया था। आध्यात्मिक विचारकों के बीच भी यूनान के सुप्रसिद्ध संत सुकरात एवं उनके शिष्य प्लेटो तथा चीन के महान दार्शनिक कनफ्यूशियस ने भी राजसत्ता की निरंकुशता एवं अत्याचार के विरूद्ध आवाज उठाई थी और जन जागरण का प्रयास किया था। जीवन पर्यंत संघर्षमय परिवेश के पश्चात् रूसो की मृत्यु निराशा एवं अँधकार की घड़ियों में हुई। पत्नी भी उनका साथ छोड़ कर चली गई थी। वाल्टेयर को भी जीवन पर्यंत फ्रांस की निरंकुश राजसत्ता का कोपभाजन बनना पड़ा। सुकरात को अपराधी घोषित कर मृत्युदंड दिया गया। कन्फ्यूशियस ने भी जीवन पर्यंत संघर्षमय जीवन को गरीबी में गुजारा। चीन के एक अत्याचारी शासक ने तो कन्फ्यूशियस की मृत्यु के दो सौ वर्ष बाद उनकी लिखी सभी पुस्तकों को जलवा दिया तथा उनके अनुयायी विद्वानों को फाँसी पर लटकवा दिया। लेकिन रूसो की लेखनी तथा प्रतिपादित सिद्धांतों ने करोड़ों प्राणियों को मानवोचित शासन प्राप्त करने के लिए जो प्रेरणा दी उसके लिये मानव जाति सदा कृतज्ञ रहेगी और वे अपने सिद्धांतों के लिए सफल जननायक के रूप में याद किये जाते रहेंगे। वाल्टेयर की कलम ने सदा सुसुप्त अंतःकरण को जाग्रत करने का प्रयास किया। बीमारी की अवस्था में जीवन के अंतिम दिनों में भी उनकी कलम अविराम चलती रही। कन्फ्यूशियस के सिद्धांत आज भी चीन में ही नहीं सारे विश्व में आदरणीय एवं अनुकरणीय माने जाते हैं। सुकरात ने फाँसी की सजा के आदेशानुसार मृत्यु का सहर्ष आलिंगन कर प्रेम से विष का प्याला पी लिया, लेकिन जीवन के सत्य से अलग होकर उसकी उपेक्षा नहीं की।

लोकतंत्र के व्यावहारिक स्वरूप की अभी तक मानयता रही है कि जनता स्वयं प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से अपने प्रतिनिधियों द्वारा किसी समुदाय या वर्ग विशेष के लिए नहीं, अपितु समष्टि रूप से जनमानस के हित की दृष्टि से शासन करती है। लोकतंत्र में प्रभुसत्ता संपूर्ण जनता में निहित होती है और अपनी इच्छानुकूल प्रतिनिधियों के निर्वाचन के पश्चात् लोकतांत्रिक सरकार का गठन कर सामयिक समस्याओं के निदान एवं जन-आकांक्षाओं की पूर्ति हेतु सरकार पर अपना प्रभाव डालती है।

विभिन्न विचारकों एवं विद्वतजनों द्वारा लोकतांत्रिक व्यवस्था के संबंध में अनेक विचार आये हैं। लेकिन अब्राहम लिंकन द्वारा उद्धृत 'जनता की सरकार, जनता के द्वारा, जनता के लिये' ही सिद्धांत सर्वमान्य

है। विचारक एवं विद्वतजनों द्वारा उद्धृत निम्नलिखित विचारों के परिप्रेक्ष्य में भी हम जनतांत्रिक व्यवस्था की विभिन्न अवधारणाओं तथा व्यापकता का अवलोकन कर सकते हैं।

'भारत में लोकतंत्र का सुदृढ़ आधार केवल ऐसी स्वशासित ग्राम इकाइयाँ ही हो सकती हैं, जिनमें भेदों का अपेक्षाकृत कम होना तथा निर्दलीय लोकतंत्र की धारणा का सफल होना अपेक्षाकृत अधिक संभाव्य होगा'।

–जय प्रकाश नारायण

'स्वयं स्वराज्य अथवा स्वशासन शब्द में सत्ता के विकेंद्रीकरण की धारणा निहित है। इस सिद्धांत का प्रयोग सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक सभी क्षेत्रों में प्रत्येक संभव सीमा तक किया जाना चाहिए।'

– बिनोवा भावे

'लोकतंत्र का घोषित ध्येय यद्यपि ऐसे शासन की स्थापना करना है जो जनता का जंनता के द्वारा तथा जनता के लिए है। परंतु दल पद्धति के कारण जनता का जनता के द्वारा शासन तो बनाया ही नहीं जा सकता। दलीय शासन लोकतंत्र की अधिक से अधिक तीसरी शर्त पूरी कर सकता है।'

–एम. एन. राय

'विकेंद्रीकरण की प्रक्रिया से शासन से ऊँचे स्तर से नीचे स्तर की ओर व्यवस्थापन, न्याय अथवा प्रशासन संबंधी सत्ता के हस्तांतरण का ही बोध होता है।'

–लियोनार्ड डी. व्हाइट

'जहाँ भारत इस बात पर दृढ़ है कि जनता का विश्वास किया जाय, पाकिस्तान ने एक पढ़ाई जैसी व्यवस्था की स्थापना की है जिसका रूप दो भिन्न प्रकार के प्राणियों के उस शारीरिक गठजोड़ जैसा है, जिसमें सरकारी कर्मचारी तथा चुने हुए और नामजद गैर सरकारी लोग साथ-साथ जुड़े हुए हैं।'

–न्यूमन

'लोकतंत्र समाज का दर्शन एक प्रकार का बुद्धिवाद है।'

–जार्ज एच. सैनाइन

लोकतांत्रिक अवधारणाओं के आधार पर वैसे समाज का बोध होता है, जिसमें मानव का मानवीय मूल्य सुरक्षित होता है। सब व्यक्ति समान समझे जाते हैं। रंग, लिंग, संपत्ति एवं धर्म के विभेद के बिना वे समान अवसर एवं अधिकार का उपयोग करते हैं, लेकिन व्यवहार रूप में अभी तक अनुभवों के आधार पर ऐसी आदर्श व्यवस्था कल्पनातीत ही रही है। दलीय आधार होने के कारण सत्तारूढ़ वर्ग एवं उच्च कर्मचारी तथा शीर्षस्थ

नेतागण प्रभुसत्ता की धूरी बन जाते हैं। जनमानस समान सुअवसर एवं अधिकारों से अछूता रह जाता है। इस प्रकार लोकतांत्रिक व्यवस्था दलीय आधारित होने से विकृत रूप में दलीय अधिनायक तंत्र का रूप ले लेती है। फलस्वरूप अब विकेंद्रीत लोकतंत्रात्मक व्यवस्था की अवधारणायें प्रभावी होने लगी हैं। लोकतंत्रात्मक व्यवस्था में सर्वोच्च सत्ता का जनता में निहित होना ही केवल पर्याप्त नहीं है। शासन सत्ता के संचालन में जनता को अधिक से अधिक भागीदारी सुनिश्चित की जानी चाहिए। ऐसे समय में लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण एवं प्रशासनिक विकेंद्रीकरण में केवल शक्ति का विकेंद्रीकरण होता है। लोकतंत्रात्मक विकेंद्रीकरण में विकेंद्रीकरण स्वयं लोकतंत्र का होता है। विकेंद्रीकरण को लोकतंत्रात्मक बनाने में जनता की अधिक से अधिक भागीदारी प्रशासन के संचालन में होती है। संपूर्ण जनता की पूरी भागीदारी के बाद ही सामाजिक राज्य की सभी आवश्यकताओं की पूर्ति संभव हो सकती है। शासन के संचालन में जनता की अधिक से अधिक सक्रिय एवं क्रियात्मक भागीदारी के बाद ही लोकतंत्रात्मक आदर्शों के निकट पहुँचा जा सकता है।

रूस और चीन जैसे देशों में भी लोकतंत्रात्मक व्यवस्था है। वहाँ व्यवस्था का स्वरूप लोकतंत्रात्मक है, लेकिन शीर्ष एकात्मक है। शीर्षस्थ शासक वर्ग का निर्वाचन वहाँ भी जनता द्वारा ही होता है। नीति निर्धारण एवं निर्वाचन प्रणाली भी लोकतांत्रिक नियमों के अधीन ही होती है। शीर्षस्थ सत्ता अपने कार्यो के लिए जनता के सामने जिम्मेवार भी होती है और दुबारा निर्वाचन के समय अपने कार्यो का लेखा-जोखा जनता के सामने रखती है, लेकिन नेताओं के निर्वाचन एवं नीतियों के कार्यान्वयन में एकाधिकारवाद प्रभावी होता है।

वोलशेविक दल के सन् 1917 के छठवें अधिवेशन में स्वीकृत आधारों पर दलीय संगठन की लोकतांत्रिक केंद्रीकरण की व्यवस्था प्रभावी है जिसमें दल का संचालन करने वाले सभी जन प्रतिनिधि निर्वाचित होते हैं, जो अपने कार्यकाल के लिए अपने संगठन के सामने जिम्मेवार होते हैं। कठोर अनुशासन के बीच अल्पसंख्यकों को दल के अधीन रहना होता है। उच्चस्तरीय अंगों के निर्णय निम्नस्तरीय अंगों व दल के सदस्यों को अनिवार्य रूप से मान्य होते हैं। केंद्रीय लोकतांत्रिक व्यवस्था में वैयक्तिक अधिनायकवाद नहीं होकर संगठनात्मक अधिनायकवाद का स्वरूप प्रदर्शित रहता है। लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण में जनता लोकतंत्र के आदर्शों के अधिक निकट होती है।

निर्दलीय लोकतंत्र के स्वरूप की एक अवधारणा जय प्रकाश बाबू ने अपने जीवन काल में जन-मानस के सामने रखी थी जिसमें लोकतंत्र की इकाई के रूप में गाँवों का पुनर्निर्माण निर्दलीय लोकतंत्र का स्वरूप माना गया था। इसमें बतलाया गया था कि ग्राम समाज का गठन निर्वाचन के आधार पर नहीं कर प्रत्येक कुटुंब से एक-एक व्यक्ति को लेकर किया जाय। लेकिन इसमें ऐसा अंदेशा था कि कुटुंब के आधार पर एक-एक सदस्य से ग्राम समाज के गठन के पश्चात् भी समान हितों के आधार पर पुनः दलों में वे विभक्त हो सकते हैं और इससे निर्दलीय व्यवस्था का स्वरूप समाप्त हो सकता है। जिला, राज्य और केंद्रीय स्तर पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष चुनाव दलीय माध्यम के बिना होना संदिग्ध है।

प्रासंगिक संदर्भ में यह माना जा सकता है कि लोकतंत्र के संघीय शासन का स्वरूप अभी तक अधिक प्रभावी एवं सफल व्यावहारिक रहा है और यह लोकतंत्र के आदर्शो के अधिक निकट है। वैसे पश्चिमी देशों में संसदीय लोकतांत्रिक शासन प्रणाली तथा एकात्मक लोकतांत्रिक शासन प्रणाली कार्यरत है और अपने अपने परिवेश में अपने को सफल सिद्ध करने का प्रयास कर रही है। लोकतंत्र का सफल परिभाषित स्वरूप प्रोफेसर पुनताम्बेकर के द्वारा आता है जिसमें शासन के रूप में लोकतंत्र का स्वरूप अधिक स्पष्ट है। उन्होंने कहा है कि -

'लोकतंत्र शासन का वह रूप है जिसमें जनसमाज स्वयं एक निश्चित तथा प्रबंधोचित रूप धारण कर लेता है। उनकी इच्छा तथा अधिकार को क्रियान्वित करने के लिए उनका एक संगठन होता है। यद्यपि वह संगठन जनता की अल्प संख्या के हाथों में होता है। तथापि वह अल्प संख्या जनता का प्रतिनिधित्व करती है, उनके द्वारा निर्वाचित की जाती है तथा उन्हीं के द्वारा अपदस्थ भी की जा सकती है। उनके अपने कोई अधिकार नहीं होते। उनका अस्तित्व ही बहुसंख्या के लिए होता है। उन्हीं से वह उत्पन्न होती है और उन्हीं का वह प्रतिरूप होती है। वह शासन इसलिये करती है कि उन्हें बहुसंख्या का समर्थन और सहमति प्राप्त है।

व्यक्ति के व्यक्तित्व के मूल्य की समानता लोकतंत्र समाज का आधार है। डॉ. वेनी प्रसाद ने कहा है कि -यह जीवन का एक ढंग है। यह इस मान्यता पर आधारित है कि प्रत्येक व्यक्ति का सुख किसी भी अन्य व्यक्ति के सुख के बराबर महत्वपूर्ण है तथा किसी को भी अन्य किसी के सुख का साधन मात्र नहीं समझा जा सकता। 'इस प्रकार मनुष्य

का भौतिक एवं सामाजिक साम्य लोकतंत्री समाज का लक्ष्य है। डॉ. हर्नशा के अनुसार भी 'लोकतंत्री समाज वह है जिसमें समानता के विचार की प्रबलता हो तथा जिसमें समानता का सिद्धांत प्रचलित हो।' डायसी ने भी कहा है कि- 'लोकतंत्र वह समाज है जिसमें अधिकारों की साधारणतः समानता तथा अवसर की, विचारों की, भाषाओं की तथा आदर्शों की एकरूपता पाई जाती हो।' व्यक्तिवादी लोकतंत्र में जिसे आजकल पश्चिमी लोकतंत्र भी कहा जाता है। उसमें व्यक्ति रूप में उसके व्यक्तित्व को अधिक महत्व दिया जाता है। यह प्राचीनतम लोकतंत्र भी है। अमेरिका, इंग्लैंड और फ्रांस का लोकतंत्र इसी अवधारणा पर आधारित कहा जा सकता है।

चीन और रूस का समाजवादी लोकतंत्र जो कार्ल मार्क्स के सिद्धांतों पर आधारित है, वह पश्चिमी लोकतंत्र की शासन व्यवस्था को लोकतांत्रिक नहीं मानता। वह वर्ग विहीन शासन व्यवस्था को ही सच्चा लोकतंत्रात्मक स्वरूप मानता है। पश्चिमी लोकतंत्रवादी, समाजवादी लोकतांत्रिक व्यवस्था का विरोध इसलिए करते हैं कि उसमें व्यक्ति के व्यक्तित्व की महत्ता नहीं है। इनके अलावा बुनियादी लोकतंत्र एवं नियंत्रित लोकतंत्र की अवधारणायें भी अन्य देशों में मान्य हैं। पाकिस्तान का बुनियादी लोकतंत्र एवं इंडोनेशिया, घाना का नियंत्रित लोकतंत्र इसी श्रेणी में माने जा सकते हैं, लेकिन उनका परिदर्शित स्वरूप अधिनायकवाद के रूप में अधिक दिखाई देता है।

विभिन्न विचारों एवं मानसिकताओं के परिवेश के लोकतंत्र को चुनौती नहीं दी जा सकती। मौरिस क्रैस्ट ने भी कहा था कि-'भिन्न-भिन्न लोगों के मस्तिषकों में पाए जाने वाले विविध प्रकार के सभी विचार लोकतंत्र के अंदर आते हैं'। परिस्थितियाँ अब बदल चुकी हैं। जनता का रूप अब जन का न होकर 'जन पुंज' मास का हो चुका है। इसलिये अतीत की अवधारणाएँ अब धीरे-धीरे अप्रासंगिक होती जा रही हैं। लोकतंत्र की अवधारणाओं के परिप्रेक्ष्य में लोककल्याण एवं लोकतंत्रीय शासन व्यवस्था में जनता की पूर्ण भागीदारी को सुनिश्चित कर व्यक्ति के मौलिक अधिकारों की सुरक्षा, व्यवस्था, स्वतंत्रता, नियमित जीवन, नियंत्रित अर्थव्यवस्था को अक्षुण्ण रखना है। यदि ऐसी अवधारणाएँ सामाजिक परिवेश में मान्य हो जाती हैं, तो लोकतंत्र के विचार व व्यवहार के बीच वह सेतु बनकर विचार एवं व्यवहार के समन्वित रूप को निखार सकती है।

संयुक्त राष्ट्र शैक्षणिक, सामाजिक, सांस्कृतिक संगठन की रिपोर्ट में अब इस बात की संपुष्टि हो चुकी है कि लोकतंत्र विरोधी सिद्धांत

अब भूमंडलीय स्तर पर भी सामने नहीं आते। लोकतंत्र विरोधी अवधारणाएँ तथा मानसिकता अब जन-मानस को पसंद एवं स्वीकार नहीं है। आज की स्थिति में अलगाव, आतंक, अस्थिरता, असंतोष एवं अविश्वास के अनेक यक्ष प्रश्न राष्ट्रीय जनमानस से अपना उत्तर माँग रहे हैं। उनके एक ही दृढ़ स्वर में उत्तर एवं क्षरण की ध्वनि गूँज रही है। हमें निर्णय लेना है कि इस सबके सार्थक उत्तर देकर हम देश के उज्ज्वल भविष्य के निर्माण में सहभागी बनें या सामाजिक पूर्ण विखंडता या बिखराव के भागीदार बने रहें।

भारत आज विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्रीय व्यवस्था का प्रतीक होते हुए भी राष्ट्रीय अवधारणाओं से दूर होते जाने से मूल्यों के भयावह क्षरण भ्रष्टाचार के महातांडव, चरमारती राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक जटिल समस्याओं से घिरे परिवेश में भ्रमित एवं कुंठित खड़ा है। दिशाहीनता एवं बेरोजगारी की कुंठाओं के बीच देश का युवा वर्ग आक्रोशित, निराश एवं अपने अनजान भविष्य से भयभीत है। निराश जीवन के पग आत्म-हत्या एवं आपराधिक दिशा की ओर उत्प्रेरित होते दिखाई दे रहे हैं जिससे देश के सम्मुख शांत व्यवस्था एक जटिल समस्या बनती जा रही है। देश के महिलाओं की आधी आबादी समाज में अपनी पहचान के लिए संघर्षरत है। राजनीतिक परिवेश में अपनी सक्रिय भागीदारी से वंचित नारी भारतीय लोकतांत्रिक व्यवस्था में अपनी पूरी भागीदारी के लिए वैचारिक एवं सांस्कृतिक क्रांति पर अग्रसर है। रूसी चिंतक क्रोपार्टिकन के शब्दों में 'क्रांति की पूर्व भाषित परिप्रेक्ष्य से सभी को अवगत होने की आवश्यकता है। उनके विचारों में क्रांति का अर्थ व्यवस्था एवं व्यवस्था का आमूल-चूल बदलाव होता है। रूस, फ्रांस की जनक्रांति एवं भारत देश का स्वतंत्रता संग्राम जैसे अनेक उदाहरण सामने हैं। वर्तमान संघर्ष किन्हीं बाहरी आक्रांताओं से नहीं अपने और अपनों से है, जिन्हें उलटना है। वे जीवन मूल्य हैं जिनकी प्रतिष्ठा होनी है। वे जीवन साधन के अनमोल सूत्र हैं जिन्हें बदलना है, वह राष्ट्र की जीवन व्यवस्था है। राजनीतिक व्यवस्था को केवल बदल देने से काम चलने वाला नहीं है। इन समस्याओं के समाधान के लिए संपूर्ण क्रांति की आवश्यकता है। सांस्कृतिक क्रांति से जीवन और उसकी व्यवस्था को निर्मूल बनाकर परिष्कृत किया जा सकता है। सांस्कृतिक क्रांति ही संपूर्ण क्रांति है। आजतक जितनी भी क्रांतियाँ हुई हैं, उसमें बाहरी परिवर्तन को प्रमुख ध्येय बनाया जाता रहा है। अपनी सोच में परिवर्तन की बात नहीं सोची गई जिससे हमारी स्थिति यथावत से भी बदतर होती गई।

राजतंत्र का लोकतंत्र में परिवर्तन लोक जीवन की अपेक्षाएँ नहीं पूरा कर सका। लोकतंत्र का नयी व्यवस्था को भी हमने इस प्रकार संचालित किया कि नव सामंतवाद राजनीतिक परिवेश में भी पूरी तरह प्रभावी होता रहा। अब समय आ गया है कि वैचारिक क्रांति के साथ-साथ सांस्कृतिक क्रांति के समन्वित रूप को तैयार किया जाए। इस ब्रह्मास्त्र से मनुष्य की मानसिकता, आस्थाओं, मान्यताओं, अवधारणाओं एवं विश्वास में बदलाव आयेगा। ब्रह्मास्त्र लोहे एवं लहू से मुक्त होकर विचारों एवं भावनाओं से युक्त होगा जिससे परिस्कृत राष्ट्रीय चिंतन का उदय होगा। वर्षो पूर्वी स्वामी विवेकानंद, महर्षि अरविंद, महात्मा गाँधी, डॉ. राधाकृष्णन, अर्नाल्ड टाभनवी और एम.ए. वाशम ने इसके बीज बोये थे। बिनोवा जी से उनके भारत भ्रमण के बीच महत्वपूर्ण अनुभूति के संबंध में चर्चा कराने पर उनका सीधा सादा उत्तर था कि भ्रमण के दौरान सामाजिक, राजनीतिक, प्राकृतिक कई परिवेश के बीच से गुजरने के बाद भी उन्हें कोई भारतीय नहीं दिखाई पड़ा। एक पूर्णरूप से राष्ट्र एवं समाज को समर्पित व्यक्तित्व की इस प्रकार की अनुभूति हमारी राष्ट्रीय चेतना का साक्ष्य स्वरूप उजागर करती है।

वैचारिक-सांस्कृतिक समेकित क्रांति आज युग की आवश्यकता बन चुकी है। हमें अपने आपको राष्ट्र को समर्पित करना होगा। स्वतंत्रता संग्राम के बीच जबतक हम सभी राष्ट्र को समर्पित थे, ब्रिटिश सरकार की आग उगलती तोपों एवं बंदूकों के सामने सीना तान कर खड़ा होने और अपने आपको राष्ट्र के लिए बलिदान कर देने की ऊर्जा, उत्साह एवं साहस से भरा भारतीय समाज था जिसमें किशोर, युवा, बूढ़े, पुरुष एवं महिला का विभेद करना कठिन था। सभी समर क्षेत्र में अपने आपको समझते थे। लेकिन जैसे-जैसे हम राष्ट्रीय भावनाओं एवं समर्पण से दूर होते गए और क्षेत्रीय तथा वैयक्तिक परिवेश में सिमटते गए देश हमसे दूर छूटता चला गया। पारस्परिक अविश्वास, घृणा, विद्वेष तथा अलगाव के साथ असहिष्णुता, प्रतिशोध की मानसिकता से ग्रसित होकर अपने ही अपनों के शत्रु बन बैठे। हिंसात्मक कुकृतियों को भी धार्मिक मान्यता का आवरण चढ़ने लगा। राष्ट्रीय सभी मान्यताएँ एक-एक कर ध्वस्त होती गईं। इस प्रकार देश आज जटिल समस्याओं के बीच बैशाखी पर खड़ा है। प्रगतिशील साक्ष्यों के आँकड़ों के बीच हम अपनी पीठ थपथपा सकते हैं, लेकिन आज का सच यही है इसे हमें स्वीकार करना होगा।

इस देश में लोकसेवियों की महत्वपूर्ण परंपरा हमेशा

मौजूद रही है जो मूल्य आधारित विचार क्रांति का प्रतिनिधित्व करती है। इसके चिंतन हमेशा समाज का इंसान होता है। राष्ट्रीय व्यवस्था एवं देश के भविष्य के लिए चिंतन एवं समस्याओं का निदान ढूँढ़ना इनका ध्येय रहा है। राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी, लोकनायक जय प्रकाश नारायण एवं बिनोवा भावे जैसे महान व्यक्तित्व के लोगों ने इस परंपरा को जीवित रखा। उनकी अनुपस्थिति में सुसुप्त एवं भ्रमित युवा शक्ति को आज लोकसेवियों की परंपरा की बागडोर अपने हाथ में लेनी है। नैतिक एवं राष्ट्रीय भावनाओं के अभाव में सामाजिक अवमूल्यन निम्नतम स्तर की ओर अग्रसर है। आज की सारी वस्तुएँ एवं जीवन के हर पहलू में बिकाउपन प्रभावी है। समस्याओं के समाधान में राष्ट्रीय सोच, समर्पण, नैतिक, बौद्धिक जागृति एवं सामाजिक क्रांति आज की वैचारिक क्रांति अभियान के महत्वपूर्ण आयाम हैं। व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र निर्माण तथा 21वीं सदी की अँधेरी राह में प्रकाश दीप के रूप में आज की युवाशक्ति को भी अपना सुदृढ़ कदम बढ़ाने की आवश्यकता है। उनकी सक्रिय भागीदारी से राष्ट्रीय चेतना जाग्रत होगी और इक्कीसवीं सदी में आ रहे उज्ज्वल भविष्य की वह आधारशिला होगी। जब समाज स्वार्थ, लोभ, मोह और कामनाओं की पूर्ति में डूबा हो और समाज तेजी से पतोन्मुख हो तब अपने स्वार्थ, आत्ममोह एवं कल्याण को त्याग कर लोकसेवा एवं मार्गदर्शन के लिए अपने आपको राष्ट्र को समर्पित कर देने से सामयिक मानसिकता एवं अवधारणाओं को नवजीवन मिलेगा, राष्ट्रीय चेतना परिष्कृत होगी। आत्मा की स्वाभाविक सनातन आकांक्षाओं को दुर्जन अधिक दिनों तक दबाकर नहीं रख सकते। जाग्रत जनमानस के प्रकाश के सामने अँधकार अधिक दिनों तक नहीं टिक सकता।

आज के युवा वर्ग को स्मरण रखना चाहिए कि जो वस्तु आनंद नहीं प्रदान कर सकती, वह सुंदर नहीं हो सकती और जो सुंदर नहीं वह सत्य भी नहीं हो सकती। सत्य वहाँ होता है जहाँ आनंद है। जाग्रत राष्ट्रीय चेतना की आज आवश्यकता है। बिखरा हुआ निराश सुसुप्त समाज देश पर भार स्वरूप होता है। संगठित जाग्रत राष्ट्रीय चेतना निर्माणकारी एवं सामाजिक जटिल समस्याओं से जूझने की ऊर्जा प्रदान करती है, जो युग को बदलने में सक्षम होती है। हमें इस सबसे अवगत होना चाहिए कि युग बदलते नहीं बदले जाते हैं।

राष्ट्रीय चेतना और राष्ट्रवाद की बात जब हम करते हैं, उस समय हमें उसके मौलिक परिभाषित रूप को भी समझने का प्रयास

करना चाहिए। राष्ट्रवाद या राष्ट्रीय चेतनाओं से मानवीय कल्याणकारी अवधारणाओं में जहाँ वृद्धि होती है, वहाँ राष्ट्रीय चेतना या राष्ट्रवाद के अतिवादी विकृत सोच से जर्मनी में राष्ट्रवाद के नाम पर प्रलय भी मचा। सामाजिक एकता एवं देश को विकसित रूप देने के लिए राष्ट्रीय चेतना का जागरण- अमूल्य निधि है एवं संकल्पित ऊर्जा का स्रोत है। अरविंद घोष का विश्वास था कि 'मानव जाति के विकास के लिए राष्ट्र पहली आवश्यकता है।' सच्चा राष्ट्रवाद व्यक्ति को व्यक्तिगत स्वार्थ के ऊपर उठाकर उसे इस बात के लिए प्रेरित कर सकता है कि वह व्यक्तिगत स्वार्थ की तुलना में राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय सोच के निकट नहीं पहुँच सकता। अपने राष्ट्र का आदर न करने वाला व्यक्ति दूसरे राष्ट्र का आदर कैसे कर सकता है? राष्ट्रवाद या राष्ट्रीय चेतना से प्रेरित होकर राष्ट्र के लिए त्याग एवं बलिदान करने जैसे शौर्यपूर्ण कार्यो से इतिहास के पन्ने भरे पड़े हैं। रूढ़िवादी मानसिकता के बीच उग्र राष्ट्रवाद अभिशाप भी बने हैं।

विभिन्न भाषा-भाषी, संस्कृति एवं धार्मिक अनुयायियों तथा रीतिरिवाज के मानने वाले लोगों का भारत जैसा राष्ट्र भी बना जो अपनी जटिल समस्याओं के बीच भी आज की भूमंडलीय विकास की दौड़ में अपनी सक्रिय भूमिका निभा रहा है। भाषा, संस्कृति, परंपरागत मान्यताओं की सक्रिय सकारात्मक भूमिका राष्ट्र निर्माण में लोकतांत्रिक परिवेश के महत्वपूर्ण तत्व हुआ करते हैं। राष्ट्रीय चेतना का उद्‌भव किस रूप में हुआ है और उसके व्यवहार के परिप्रेक्ष्य में कैसी मानसिकता प्रभावी है? अधिक महत्वपूर्ण होती है। राष्ट्रीयता की भावना में राष्ट्र के प्रति अगाध श्रद्धा होती है। बाल गंगाधर तिलक कहा करते थे कि ईश्वर और हमारा देश अलग-अलग नहीं है। हमारा देश ईश्वर का ही एक रूप है। माता और मातृभूमि की मान्यता स्वर्ग से ही अधिक हमारे देश में रहती आयी है। 'राष्ट्र ही सर्वोपरि है' इन्हीं शब्दों में पूरी राष्ट्रीय चेतना निहित है। जे. एच. रोज ने कहा है कि राष्ट्रीयता हृदयों की एक ऐसी एकता है, जो एक बार बनकर कभी नहीं टूटती।' यह श्रद्धा और भावना पर आधारित एक आदर्श संकल्प है। राजनीतिक एकता का आधार राष्ट्रीय चेतना ही हुआ करती है। गुलामी की बेड़ियों से मुक्ति से राष्ट्रीय चेतना ही ब्रह्मास्त्र का काम करती है। भौगोलिक एकता, नस्ल की एकता, सामान्य ऐतिहासिक अतीत, सांस्कृतिक एकता एवं राजनीतिक एकता, राष्ट्रीय चेतना के उद्‌भव एवं विकास में सहायक हुआ करते हैं। हमारे देश में राजनीतिक आपसी कलह, फूट एवं

विभिन्नता तथा बिखराव ने किस प्रकार देश को पराधीन बनाया और पुनः जब राष्ट्रीय चेतना जागृत हुई और सरदार वल्लभभाई पटेल जैसे व्यक्तित्व का राष्ट्रीय क्षितिज पर उदय हुआ तो देश की 554 रियासतों का पुनः राष्ट्रीयकरण एवं महात्मा गाँधी, पं. जवाहर लाल नेहरू, नेताजी सुभाष चंद्र बोस, राज गोपालाचारी के नेतृत्व तथा जय प्रकाश नारायण, डॉ. राममनोहर लोहिया, क्रांतिकारी चन्द्रशेखर आजाद, सरदार भगत सिंह, राम प्रसाद बिस्मिल आदि युवा वर्ग के उफनती जोश एवं उत्साह ने किस प्रकार राष्ट्रीय चेतना को जाग्रत किया हमारे सम्मुख साक्ष्य विद्यमान हैं।

राष्ट्रवाद एवं राष्ट्रीय चेतना पर चिंतन करते समय हमें अपने वर्तमान सच से रूबरू होना होगा। विश्व का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक राष्ट्र भारत अपनी संविधान स्वीकृत राष्ट्रभाषा से आजतक महरूम क्यों है? आजादी प्राप्ति के सत्तर वर्ष बाद भी क्षेत्रीय पारिवारिक परिवेश से यह बाहर क्यों नहीं निकल सका? देश की लोकतांत्रिक व्यवस्था में देश के महिलाओं की आधी आबादी की सक्रिय भागीदारी क्यों नहीं बन सकी? अपनी सामाजिक एवं राजनीतिक पहचान से वह अपने लोकतांत्रिक परिवेश में भी आजतक निराश, विवश अवस्था में संघर्ष पथ पर क्यों खड़ी है? राष्ट्रीय स्तर के राजनीतिक दल सांपद्रायिक, जातीय एवं क्षेत्रीय भावनाओं से ऊपर क्यों नहीं उठ सके? जातीय आधार पर संगठित सेवाओं एवं बेरोजगारी के परिप्रेक्ष्य में युवावर्ग द्वारा आपराधिक तत्वों की निकटता से जन साधारण शांति एवं सुरक्षा के प्रति आश्वस्त कैसे हो सकेगा? अरब से अधिक आबादीवाले देश के 33 प्रतिशत से अधिक लोग गरीबी रेखा के नीचे जीवन बसर कर रहे हैं। 20 करोड़ लोग दो जून की रोटी के लिए मोहताज हैं। हत्या, अपहरण, बलात्कार की घटनायें दिनों-दिन बढ़ती जा रही हैं। बच्चों से लेकर वृद्ध जनों तक की सुरक्षा प्रदान करने में आज हमारा लोकतंत्र असमर्थ दिखाई दे रहा है। युवा शक्ति एवं ऊर्जा विदेशों में बिकाऊ बनती जा रही है। राष्ट्रीय जीवन का हर पहलू आज व्यावसायिक मानसिकता का शिकार है। ऐसी स्थिति में हमे सोचना होगा कि क्या सदियों से इंसानियत की जिंदगी की उपेक्षा में बैठे लोगों को अपने आधुनिक लोकतांत्रिक परिवेश में हम मुक्ति दिला सकेंगे? जबकि राष्ट्र एवं राष्ट्रवाद या राष्ट्रीय चेतना से दूर खड़ा पूरा राष्ट्र अपनी सामयिक सच से विमुख एवं निराश तथा विवश मूकद्रष्टा बना हुआ है। अपनी इन सारी समस्याओं के मूल में यदि देखें तो ज्ञात होगा कि राष्ट्रीय चेतना की शून्यता ही हमारी इन

समस्याओं का मूल कारण है। आजाद भारत में हमने धर्म, सांप्रदायिकता एवं धर्म निरपेक्षता की मौलिकता एंव अंतर तो इतना भ्रमित परिवेश है कि राष्ट्रीय चेतना ही आज हमारी गौण होकर शून्य अवस्था में परिदर्शित है। मानवी आचरण, सोच एवं विवेक का विमल स्वरूप विक्षिप्त अवस्था में पहुँचा हुआ दृष्टिगत होता है। सामाजिक एवं व्यक्ति की पहचान भी आज संदिग्धता के घेरे में है। धर्म का आध्यात्मिक रूप जीवन का अभिन्न अंग बनकर पाशविक कुकृत्यों के बीच गौरवशाली एवं कृतिमान का प्रतीक बनकर नई सामंती प्रवृत्ति का सहभागी बनता जा रहा है। और आज की लोकतांत्रिक व्यवस्था असहाय मूकदर्शक के रूप में साक्ष्य परिस्थितियों से अंजान एवं विमुक्त दिखाई देती है। जनता द्वारा संचालित जनता की सरकार का जनता की प्रमुख समस्याओं के प्रति सहज रूप की मानसिकता के परिवेश में देश राष्ट्रीय चेतना को किस प्रकार अक्षुण्ण रख सकेगा। स्वतंत्रता संग्राम के समय महात्मा गाँधी के रामराज्य के संकल्पित लक्ष्य एवं 1947 आंदोलन में जय प्रकाश बाबू द्वारा देश की जनता को सामाजिक न्याय के प्रति आश्वस्त की गई आकाक्षाओं की विरासत से आज की पीढ़ी राष्ट्र, राष्ट्रवाद या राष्ट्रीय चेतना को कैसे जोड़ पायेगी? विचारणीय है।

अतीत का हमारा राष्ट्रवाद स्वरूप मंगल पांडे, लक्ष्मीवाई, नाना साहब पेशवा, तात्याटोपे, बाल गंगाधर तिलक, महात्मा गाँधी, पं. जवाहर लाल नेहरू, लौह पुरुष सरदार वल्लभाई पटेल, नेता जी सुभाषचंद्र बोस, सरोजनी नायडू, कैप्टन लक्ष्मी सहगल, गुरु गोविंद सिंह, गुरु नानक, लाला लाजपत राय, विपिन चंद्र पाल, चंद्रशेखर आजाद, सरदार भगत सिंह, रामप्रसाद विस्मिल, अशफाक उल्ला, खुदीराम बोस जैसे त्यागी बलिदानी व्यक्तित्व के ऐतिहासिक कृत्यों से भरा पड़ा है और उनके द्वारा दिये गये संदेश आज भी राष्ट्रीय चेतना के परिप्रेक्ष्य में हमारे बीच जीवंत हैं। देश को आज अपने राष्ट्रीय अतीत से जोड़ने की आवश्यकता है। स्वामी विवेकानंद, रामकृष्ण परमहंस, महर्षि अरविंद, सिस्टर निवेदिता, मदर टेरेसा, मार्गेकोजिंस, श्री माँ मीरा अहघेन्द्रे के आध्यात्मिक परिवेश भी राष्ट्रीय चेतना की ऊर्जा के स्रोत रहे हैं। देश जितना अधिक अवधारणाओं के निकटस्थ सानिध्य में होगा राष्ट्रीय चेतना उतना ही अधिक निखार पर होगी। देश का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य साक्ष्य है कि राष्ट्रीय आह्वान पर सदा देश का युवा अग्रिम पंक्ति में खड़ा दिखाई देता आया है। आज भी अपनी जटिल सामयिक समस्याओं का समाधान उसे ही ढूँढ़ना है तथा अपनी क्षमता, विवेक एवं शौर्य के

आधार पर उसे ही उससे मुक्ति पानी है। मान्यताओं एवं समस्याओं के सही परिभाषित आलोक से उसे सहज एवं निर्दिष्ट राह मिलेगी।

रूढ़िवादी राष्ट्रवादियों के अनुसार जो कुछ परंपरागत रूप से सदियों से चला आ रहा है वही राष्ट्रीय है तथा वही राष्ट्रवाद है। ऐसी मानसिकता से भारत जैसे हमारे देश में वर्ण व्यवस्था की जन्मना सोच को बढ़ावा मिलता है और जातीय अन्य संकुचित परिवेश प्रोत्साहित होते हैं। लेकिन ब्रिटेन इसी दृष्टिकोण का समर्थक है। ऐसी अवधारणाओं में राष्ट्र का एक ऐतिहासिक व्यक्तित्व होता है। उनके अनुसार परंपरागत संस्थाएँ एवं प्रथाएँ समाज में उपयोगी मानी जाती हैं। वहाँ परंपरा का सम्मान एवं संरक्षण प्रत्येक नागरिक का कर्त्तव्य बन जाता है। नेतृत्व कुलीन वर्ग के हाथ में यथावत रह जाता है। इन अवधारणाओं के परिप्रेक्ष्य में बहुसंख्यक निर्धन जनता का शोषण अधिक परिदर्शित रहा है। इसमें राष्ट्र साध्य एवं व्यक्ति साधन समझा जाने लगता है। इसके अतिरिक्त उदारवादी, जनवादी, एकाधिकारवादी, मार्क्सवादी विभिन्न प्रकार की सोच भी भूमंडलीकरण स्तर पर आज व्यवहृत हैं।

राष्ट्रवाद समाज के लिये वरदान एवं अभिशाप दोनों में व्यवहारित हो सकता है। राष्ट्र के लोग राष्ट्रवाद या राष्ट्रीय चेतना को अपने जीवन में किस रूप में लेते हैं यही उसकी मौलिकता का सही परिप्रेक्ष्य निर्दिष्ट कर सकता है। राष्ट्रवाद वांछनीय परिप्रेक्ष्य है। राष्ट्रीय एकता के लिए राष्ट्रीय चेतना ही उसकी मौलिकता है। 'महर्षि अरविंद के अनुसार राष्ट्र का विकास मनुष्य का विकास है जो आजकल बहुत महत्वपूर्ण है, क्योंकि व्यक्तिगत स्वार्थ व पारिवारिक स्वार्थ को, जिनकी जड़ें बहुत गहरी हैं, अब व्यापक राष्ट्रीय स्वार्थ व व्यवस्था में विलीन होना सीखना आवश्यक है जिससे मानवता के कल्याण की वृद्धि हो।' राष्ट्रवाद निश्चित रूप से वरदान है। इसको विकृत एवं उग्र रूप से बचाने की आज आवश्यकता है। हेज ने कहा है कि राष्ट्रवाद मानवता एवं विश्व के लिए एक अद्वितीय वरदान सिद्ध होगा यदि वह विशुद्ध दो प्रेम का पर्यायवाची हो सके।'

भारतीय लोकतंत्र में रूढ़िवादी राष्ट्रवाद धीरे-धीरे अपनी जड़ें जमाने के लिए प्रयासरत दिखाई देता है। लेकिन विभिन्न भाषाओं, परंपराओं, अवधारणाओं एवं राजनैतिक मान्यताओं के समन्वित परिवेश का विश्व का यह बड़ा लोकतंत्र उसके पथ के प्रभावी परिवेश में बाधक बन जाता है। आज की स्थिति में राष्ट्र सर्वोपरि है कि अवधारणा ही देश को सही राह दिखा सकती है। देश का वर्तमान अतीत की विभिन्न मान्यताओं

एवं परंपराओं पर आधारित है। उसका समेकित स्वरूप आज की मौलिकता को सही रूप में परिभाषित कर सकता है। देश की 33 प्रतिशत से अधिक आबादी का इंसानियत की जिंदगी की अपेक्षा एवं देश की महिलाओं की आधी आबादी का समाज हमें अपने अन्जान पहचान के साथ भारतीय लोकतंत्र के विकास एवं स्थायित्व को सुनिश्चित करने एवं अक्षुण्ण रखने के लिए राष्ट्रीय चेतना को उद्भाषित नहीं किया जा सकता। उपेक्षित, तिरस्कृत एवं असुरक्षित प्रताड़ित त्रासदी के बीच राष्ट्रीय चेतना के लिए समाज के एक बहुसंख्यक वर्ग को विश्वास में लेना होगा। उसकी राष्ट्रीय समस्याओं को राष्ट्रीय स्वरूप से जोड़ना होगा। सत्ता में बैठे लोगों को जनता के बीच किये गये वायदों के प्रति अपने आपको विश्वसनीय स्थिति में लाना होगा। जनसाधारण के बीच उनके जीवन के प्रत्येक स्तर पर सहिष्णुता के परिवेश में सहभागिता एवं सक्रिय भागीदारी को सुनिश्चित करना होगा तभी हम राष्ट्रीय चेतना को जाग्रत कर विश्व में भारतीय लोकतंत्र के सही परिवेश को निखार सकेंगे। अभी तक भारतीय जनसाधारण अपने स्वर्णीम भविष्य के आश्वासनों के बीच ठगा जाता रहा है। निर्वाचनों के माध्यम से जनप्रतिनिधियों का चुनाव एवं उनके बहुमत या गठजोड़ों द्वारा सरकार के गठन को ही सफल लोकतंत्र की संज्ञा दी जाती रही है। जनमानस भी यदा-कदा अपने मतों का सदुपयोग कर लोकतांत्रिक कर्त्तव्यों की इतिश्री समझता आया है। आजादी प्राप्ति के 70 वर्ष बीत जाने के बाद भी अपनी जनतांत्रिक व्यवस्था के मौलिक स्वरूप से वह परिचित नहीं हो सका है जिससे इस व्यवस्था के गुण-दोष एवं संचालन में अपनी सक्रिय भागीदारी से वो अंजान है जिसके कारण राष्ट्र-राष्ट्रीय भावनाओं एवं संभावनाओं से कटता गया।

राष्ट्रीय चिंतन के परिवेश में यहाँ यह भी स्पष्ट हो लेना है कि राष्ट्रीय आह्वान पर भारतीय जनमानस सदा प्रथम पंक्ति में आया है और उसने सिपाही सिपाहसलार दोनों की भूमिका भी आवश्यकतानुसार निभाई है। देश के लिए त्याग एवं बलिदान का कृतिमान स्थापित किया है। विकास के दौर में भी अंतरराष्ट्रीय स्तर पर युवा पुरुष एवं महिला वर्ग ने प्रत्येक क्षेत्र में अपनी सराहनीय क्षमता को दर्शाकर कृतिमान स्थापित किया है। फिर भी जनमानस का बहुसंख्यक वर्ग अपनी इंसानियत की जिंदगी तथा सुरक्षा के प्रति चिंतित है। युवा वर्ग अपने भविष्य के प्रति आशंकित है। महिलाएँ समाज में अपना मौलिक पहचान नहीं पा सकी हैं। राष्ट्रीय चेतना जागृत करने के लिए इनके मौलिक जीवन एवं पहचान को प्रतिस्थापित करना होगा।

राष्ट्रीयता और नारी
सुनीता जाजोदिया

भारत के महान विचारक एवं दार्शनिक स्वामी विवेकानंद ने कहा था-'पाश्चात्य देशों में स्त्री को पत्नी की दृष्टि से देखा जाता है, उसमें पत्नीत्व की कल्पना की जाती है, परंतु इसके विपरीत प्रत्येक भारतीय नारी में मातृत्व की कल्पना करता है।' भारतीय संस्कृति में नारी को एक गौरवशाली एवं वंदनीय पद प्राप्त है, क्योंकि वह माता है-ममता की मूरत है। एक नवजात शिशु की पहचान उसकी जननी, उसकी माँ होती है, एक मानव की पहचान उसकी जन्मभूमि होती है, जो उसकी मातृभूमि है, उसका देश है, उसका राष्ट्र है। एक शिशु अपने भरण-पोषण और अपनी दैनिक जरूरतों के लिए माँ पर आश्रित रहता है, एक मनुष्य अपने जीवन-निर्वाह की मूलभूत आवश्यकता जल, अग्नि, वायु, आकाश, धरती आदि पंचभूत के लिए अपने देश, अपने राष्ट्र पर आश्रित रहता है, एक माँ अपनी कोख में नौ माह तक अपने रक्त द्वारा सींच कर हाड़ मांस के पुतले मानव को जन्म देती है, उसी मानव को इस विशाल ब्रह्मांड में उसकी पहचान, उसका वजूद, उसकी अहमियत प्रदान करता है। उसका देश, उसका राष्ट्र उसकी अपनी मातृभूमि इस प्रकार एक माँ और एक राष्ट्र, जन्मभूमि में कोई भेद नहीं, बल्कि दोनों ही एक उत्तम कोटि के मानव की निर्माण-प्रक्रिया के लिए अत्यावश्यक हैं, इसमें कोई संदेह नहीं। एक भ्रूण के विकसित होकर मानव-शिशु के रूप में जन्म पाने के लिए आवश्यक एक कोख की पूर्ति एक नारी करती है तो मानव को उसे चहुँमुखी विकास, शांत एवं मनोरम जीवन-यापन के लिए आवश्यक रोटी, कपड़ा, मकान एवं प्राकृतिक संपदा की पूर्ति उसके देश द्वारा होती है। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने भी अपनी जन्मभूमि के प्रति कृतकृत्य होते हुए कहा है-

'जिसकी रज में लोट-लोट कर बड़े हुए हैं,
घुटनों के बल सरक-सरक कर खड़े हुए हैं।।
परमहंस सम बाल्यकाल में सब सुख पाए।
जिसके कारण धूल-भरे हीरे कहलाए।।
हम खेले-कूदे हर्षयुत, जिसकी प्यारी गोद में।
हे मातृभूमि! तुझको निरख मग्न क्यों न हो मोद में।।

यही राष्ट्र-प्रेम और देश-भक्ति देश के हर नागरिक में पाई जाती है। व्यक्ति अपनी निजी एवं सामाजिक जीवन जीते हुए कहीं न कहीं, किसी न किसी प्रकार अपने देश से जुड़ा रहता है, अपने राष्ट्र के लिए कार्य करता है, वह उसके हित के लिए सोचता है, उसकी प्रगति एवं गौरव के लिए कार्य करता है। राष्ट्र-हित में किया गया बड़े से लेकर हर छोटे से छोटा कार्य 'राष्ट्रीयता' है। राष्ट्रीयता स्वयं में एक व्यापक शब्द है, विशाल मायने हैं इसके। धर्म, संस्कृति, मानवीय एवं नैतिक-मूल्य, अर्थ एवं राजनीति आदि इसके विभिन्न क्षेत्र हैं।

नारी जननी है, सृष्टा है, विधाता की अनुपम कृति है। नर की संगिनी है, पूरक है, उसकी प्रतिछाया है। नारी मानव-जीवन की धुरी है जिस पर परिवार, समाज एवं राष्ट्र की प्रगति-चक्र घूमता है। विश्व की सिरमौर भारतीय संस्कृति ने नारी का यशगान करते हुए 'शक्ति' कहा है, उसकी स्तुति की है यथा-'यत्र नारी पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता:' नारी-शक्ति के आगे समस्त देवी-देवता नत्मस्तक हो जाते हैं। अत: आदिशक्ति जगदंबा, भवानी, अन्नपूर्णा, लक्ष्मी, सरस्वती और गायत्री आदि रूपों में उसकी वंदना की जाती है। यहाँ तक कि हम अपने देश, अपने राष्ट्र को भी 'भारत माता' कहते हैं। भारतीय संस्कृति के आदिदेव, महादेव शिव भी शक्ति के बिना 'शिव' के समान हैं। शक्ति के योग से ही वे अपने शिवत्व को प्राप्त करते हैं और अर्द्धनारीश्वर कहलाते हैं।

नारी एक शिशु में संस्कार देती है, आचार-विचार देती है, अपनी अमूल्य पुरातन संस्कृति को एक पीढ़ी से अगली पीढ़ी को सौंपने का माध्यम बनती है। उत्तम संस्कार, शील एवं गुणों को अपने बालक में समावेश कर, कर्त्तव्य-पालन का पाठ पढ़ाकर उसे एक सभ्य एवं आदर्श नागरिक बनाने में सहायक होती है। नागरिकों के उत्तम गुणों के बल पर ही एक राष्ट्र की प्रगति निर्भर होती है। इतना ही नहीं, गर्भावस्था में नारी को रामायण, गीता, कुरान आदि महान धार्मिक ग्रंथ का अध्ययन मनन के लिए प्रेरित किया जाता है, किसी देवी देवता, साधु-संत, महान नायक अथवा युगपुरुष की जीवनी पढ़ने की सीख दी जाती है, उनकी तस्वीरों के नियमित दर्शन किए जाते हैं, ताकि जन्म लेने वाला बालक संस्कारी हो, तेजस्वी बने, युग-प्रवर्तक बने जिससे उसके माता-पिता, परिवार, समाज एवं राष्ट्र गौरव को प्राप्त करे। इस तरह एक जननी के रूप में नारी शिशु के जन्म से पूर्व ही राष्ट्रीयता की भावना उसके रक्त में प्रवाहित कर देती है।

इतिहास गवाह है, हर महापुरुष के पीछे किसी न किसी स्त्री का हाथ रहा है। छत्रपति वीर शिवाजी को देशभक्ति एवं राष्ट्रीयता का पाठ पढ़ाने वाली माता जीजाबाई थीं, गाँधीजी को सत्य और अहिंसा की राह दिखलाने वाली उसकी माता पुतलीबाई ही थीं। युद्ध के मैदान में अपने प्रियतम के चंचल मन को स्थिर करने के लिए नवविवाहिता हाड़ा रानी ने उपहार-स्वरूप अपना सिर धड़ से काट कर भेज दिया था। राष्ट्र के लिए दी गई यह कुर्बानी एक नारी की राष्ट्रीयता की अनुपम एवं बेजोड़ मिसाल है। राजकुंवर उदय सिंह के प्राणों की रक्षा के लिए पन्ना धाय ने अपने पुत्र का बलिदान दिया था। इस अद्भुत बलिदान को इतिहास भी शत-शत नमन करता है।

कई सदियों से भारत गुलामी की बेड़ियों में जकड़ा हुआ था। अँग्रेजों ने इसे व्यापारिक कॉलोनी बनाया। देश का सारा वैभव लूट कर अपने देश को समृद्ध किया। इस देश पर फूट डाल कर राज्य किया। देशवासियों पर मनमाने एवं क्रूर अत्याचार किए। अँग्रेजी शासन के खिलाफ सर्वप्रथम विद्रोह का बिगुल बजाकर, उन्हें लोहे के चने चबवाकर, आजादी के आंदोलन का श्रीगणेश करने वाली वीरांगना झांसी की रानी लक्ष्मीबाई ही थी। अपनी पीठ पर झोले में अपनी संतान को बाँधकर हाथ में तलवार उठाकर रण-भूमि में बिजली की तरह लरजने वाली, गिरने वाली रानी लक्ष्मीबाई ने दुश्मनों के छक्के छुड़ा दिए थे। रण-बल, शौर्य, साहस एवं पराक्रम के पर्याय के रूप में झांसी की रानी का नाम आज भी बच्चे-बच्चे की जुबान पर है। कवयित्री सुभद्राकुमारी चौहान ने उनकी प्रशस्ति में कहा भी है-

चमन उठी सन् सत्तावन में, वह तलवार पुरानी थी
खूब लड़ी मर्दानी वह तो, झांसी वाली रानी थी।

भारतीय इतिहास में वीरांगनाओं के ऐसे जौहर और साहस से भरे कई स्वर्णिम पृष्ठ मिल जाएँगे।

आजादी के आंदोलन में सिर्फ पुरुष ही नहीं, महिलाएँ भी समान रूप से सक्रिय एवं भागीदार थीं। गली-चौराहे पर होने वाली सभा-मीटिंग में जाना, नेताओं के भाषण सुनना, उनके संदेश का प्रचार करना, उसका साथ देना, गुप्तचर का काम करना, क्रांतिकारियों को अपने घर में पनाह देना, उनकी मदद करना, गुप्त रूप से घर पर बम, हथगोले आदि विस्फोटक पदार्थ बनाकर महिलाओं ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थीं।

घर-बार, चुल्हे-चक्की को छोड़ आजादी हासिल करने की शपथ लेकर कूद पड़ी थीं। महिलाएँ आजादी के हर उस आंदोलन में जिसकी परिणति एक गौरवशाली स्वतंत्र भारत के रूप में हुई।

सन् 1942 में विदेशी कपड़ों की होली जलाने में भी महिलाओं की सक्रिय भागीदारी थी। अँग्रेजों को भारतीय जमी से उखाड़ फेंकने के लिए महात्मा गाँधी के हर आंदोलन एवं सत्याग्रह में उनका मनोबल बढ़ाने वाली, उनका साथ देने वाली उनकी धर्मपत्नी कस्तूरबा की भूमिका को भला कैसे नजरअंदाज किया जा सकता है। विदेशी कपड़ों का बहिष्कार कर, सूत कातकर, स्वयं खादी पहनकर, घर-घर में आजादी की अलख जगाकर फिरंगियों को अपने वतन इंग्लैंड की राह दिखाई थी- इन महिलाओं के मनोबल ने। स्वरूप रानी, कस्तूरबा गाँधी, कमला नेहरू, इंदिरा गाँधी, विजयलक्ष्मी पंडित जैसी देशभक्त व राष्ट्रप्रेमी ललनाओं ने गली-गली, कोने-कोने व चप्पे-चप्पे में गुलामी की भयावहता की काल-कोठरी में जी रहे स्त्री-पुरुष, युवक-युवती, बच्चे-बूढ़ों को संगठित कर, बलिदान, एकता व जन शक्ति का ज़ज़्बा भरकर अँग्रेजों के विरूद्ध राष्ट्रीय आंदोलन की एक ऐसी आँधी उठाई थी जिसमें अँग्रेजों के जमे हुए पैर उखड़ गए थे। करोड़ों माँ ने अपने कलेजे पर पत्थर रख अपने सपूतों को आजादी की लड़ाई में झोंक दिया था। लाखों पत्नियों ने, प्रियतमा ने हँसते-हँसते अपने पति व प्रियतम को देश के लिए त्याग एवं बलिदान की राह पर भेज दिया था, असंख्य बहनों ने भाई की कलाई पर राखी बाँधकर राष्ट्र की रक्षा के बंधन में उन्हें बाँध दिया था। यह है-एक नारी का हृदय, उसकी शक्ति एवं दृढ़ता। आज हम स्वतंत्र राष्ट्र के नागरिक हैं। हमारी भौगोलिक सीमाओं पर लू-गर्मी, सर्दी, बर्फीले तूफान, घनघोर वर्षा एवं तूफान के थपेड़ों को सहते हुए प्रहरी बने डट कर खड़े हैं देश के ये वीर जवान जो किसी माँ के बेटे, पत्नी के पति, बहन के भाई, बेटी के पापा हैं- कर्तव्यपूर्ण के लिए युद्ध के मैदान की ओर इन्हें रूखसत करने वाली नारीशक्ति एवं उसकी राष्ट्रीयता के प्रति कविवर मैथिलीशरण गुप्त भी नतमस्तक हो कह उठते हैं-

'स्वयं सुसज्जित करके क्षण में,
प्रियतम को प्राणों के पण में,
हमीं भेज देती हैं रण में,
क्षात्र-धर्म के नाते।'

आज भारत एक स्वतंत्र प्रजातंत्रात्मक-गणतंत्रात्मक राष्ट्र है। भारतीय

संविधान ने नारी को पुरुष के समकक्ष अधिकार दिए हैं, यहाँ तक कि पैतृक संपत्ति में पुत्री को भी उत्तराधिकार प्राप्त है। आज की नारी 21वीं सदी की आधुनिक नारी है। कम्प्यूटर एवं मशीनी युग में नारी पुरुष से कहीं भी पीछे नहीं- शिक्षा क्षेत्र में क्रांति, नारी के प्रति पुरातन सामाजिक दृष्टिकोण में परिवर्तन, स्वयं अपनी क्षमता, साहस, धैर्य एवं दृढ़ता के बल पर आज भारतीय नारी आकाश की ऊँचाइयों को छू रही है। ऐसे विरले ही क्षेत्र होंगे जहाँ नारी का वर्चस्व न हो। आज की नारी पश्चिमी सभ्यता का अनुकरण करने वाली, विश्वीकरण एवं उपभोक्तावाद में लिप्त, कम्प्यूटर एवं दूरसंचार की क्रांति से प्रभावित एक ऐसी नारी है जो हाथ में मोबाइल, जींस, शार्ट टॉप पहने, बालों को फैशन में रंगवाकर छोटे करके निधड़क स्कूटर कार चलाती है और डिस्को में झूमती है और माथ ही देशभर में धूम मचाने वाले नवरात्री जैसे धार्मिक एवं सामाजिक उत्सव में पारंपरिक परिधान, अलंकार एवं श्रृंगार में मग्न हो जब गरबा एवं डांडिया की लय-ताल पर रास-नृत्य करती हुई झूमती-लहराती है तो ऐसा लगता है मानों हजारों वर्ष प्राचीन ब्रजभूमि जीवंत हो हमारे सम्मुख रास रचा रही हो। भारतीय संस्कृति ने तबले की थाप और चूड़ी एवं पायल झंकार में मानों अमरत्व प्राप्त कर लिया हो। अपनी संस्कृति एवं मान्यताओं को जिलाए रखना भी स्वयं में राष्ट्रीयता है।

नारी द्वारा विभिन्न पर्व-त्यौहार एवं उत्सवों को रीतिरिवाज के साथ परंपरागत तरीके एवं हर्षोल्लास के साथ मनाने के कारण भारतीय संस्कृति के अनमोल संदेश एवं मूल्य अनगिनत पीढ़ियों तक अक्षुण्ण हैं। राम कृष्ण, शिव-पार्वती विभिन्न इष्ट देवताओं की पूजा-उपासना कर युवा पीढ़ी की नजरों में धर्मभीरू एवं पुरातन पंथी कहलाने वाली यह नारी ही है जो माँ के रूप में, एक गुरु के रूप में अपनी संतान को जीवन में धर्म का महत्व समझाती है, संतों एवं सद्गुरु के अमृत-वचनों को अपनाकर जीवन में सफलता पाने का रहस्य उजागर करती हैं। ईश्वर-प्रदत्त इस दुर्लभ मानव-जीवन को परमार्थ एवं सत्कर्म में लगाकर, इसे उत्कृष्ट तरीके से जीने का मार्ग दिखाकर मानवीय एवं नैतिक मूल्यों को प्रतिपादित करती है। संपूर्ण मानव-जाति को आपस में 'प्रेम' एवं 'निर्भय' आतंकरहित जीवन जीने की ओर प्रेरित करते हुए 'वसुधैव कुटुम्बकम्' एवं 'जियो और जिने दो' जैसे धर्म के महान संदेश को जन-जन द्वारा अपनाने के लिए प्रयत्न करती है नारी। मानवीय एवं नैतिक मूल्य राष्ट्र की संपदा है और इस पर एक राष्ट्र की प्रगति एवं विश्व में उस राष्ट्र का स्थान निर्भर करता है। आज विश्व-समुदाय में राष्ट्

इन्हीं सिद्धांतों एवं मूल्यों के बल पर भारत-राष्ट्र को एक विशिष्ट स्थान प्राप्त है।

विज्ञान ने आज काफी प्रगति कर ली है- चाँद-सितारों की दुनिया में पहुँचाना अब उसके लिए असंभव नहीं-किंतु करवा-चौथ आदि विभिन्न व्रत एवं त्यौहार के माध्यम से नारी ने अपनी संस्कृति के विभिन्न मूल्यों एवं विश्वास की रक्षा करने की जिम्मेदारी ली है, क्या उत्तर, क्या दक्षिण, क्या पूरब, क्या पश्चिम- इस दिन देश भर की समस्त महिलाएँ एक ही समय एक साथ चंद्र-दर्शन एवं अर्चन कर इस विशाल राष्ट्र की अखंडता एवं एकता को असीम अंबर की तरफ स्वयं में समेट लेती है।

कुंभ, महाकुंभ एवं अन्य धार्मिक अवसरों पर विभिन्न तीर्थ-स्थलों पर लाखों करोड़ों लोग एक साथ सलिला नदियों में स्नान कर पुण्य फल प्राप्त करते हैं। यह सूचक है- संकेत है राष्ट्र के लोगों द्वारा एक ही राष्ट्रीयता की पवित्र नदी में गोते लगाने का, डुबकी लगाने का। यह महिलाएँ ही हैं जिनकी माँ गंगे में श्रद्धा एवं आस्था नहीं छूटती। ठीक उसी तरह एक संतान की अपनी माँ के प्रति आस्था नहीं टूटती। एक नागरिक की अपने राष्ट्र के प्रति नहीं टूटती। तीर्थ-स्थलों, मेले, धामों एवं प्रवचनों में जब भारी तादाद में लोग पहुँचते हैं तो वे ये संयुक्त परिवार की तरह रहते हैं-व्यक्ति अपने वैयक्तिक स्वार्थ को भूलाकर एक संयुक्त एवं सामूहिक उद्येश्य से वहाँ आता है अपने जीवन को शुद्ध करना, सरल करना, मुक्ति का मार्ग तलाशना एवं उसके लिए चेष्टा करना। इतने बड़े समुदाय में द्वेष का कोई नाम नहीं, बैर के लिए स्थान नहीं रहता। वहाँ व्याप्त होती है तो सिर्फ त्याग और सेवा की भावना-प्रेम और सद्भाव की भावना- यही भावना, व्यक्ति, समुदाय, समाज से ऊपर उठती है तो राष्ट्र से जुड़ कर एकता की एक अखंड एवं अलौकिक भावना बन जाती है जिसका आनंद ही निराला है, अवर्णनीय है।

राष्ट्रीयता सिद्ध करने के लिए यह आवश्यक नहीं कि विशाल पैमाने पर बहुत बड़ा कार्य किया जाय। राष्ट्रहित के लिए किया गया छोटे से छोटा कार्य भी राष्टीय है- देश को समर्पित है। राष्ट्रीयता का आरंभ राष्ट्र की सबसे छोटी इकाई परिवार से होता है। माता अपने बालक का झूठ बोलने से रोकती है। चोरी करने पर सजा देती है। उसे अपने घर-परिवार समाज व राष्ट्र के प्रति कर्त्तव्य-परायणता की सीख देती है। वैज्ञानिक अविष्कारों से हताहत 'माँ प्रकृति' की रक्षा एवं सुरक्षा के प्रति उसे जागरूक

करती है। स्वच्छ पर्यावरण द्वारा ही दीर्घ एवं निरोगी जीवन संभव है की चेतना जागृत करती है। इस प्रकार एक माता अपनी संतान को सभ्य व शिष्ट नागरिक बनाती है, उसमें राष्ट्र-प्रेम की लौ जगाती है, राष्ट्रीय चरित्र संवारती है। यह राष्ट्रीयता के प्रति किया गया वह छोटे से छोटा कार्य है जिसके बलबूते पर भविष्य में कई स्वामी विवेकानंद, महात्मा गाँधी, नेताजी सुभाषचंद्र बोस, टैगोर जैसे अनगिनत रत्नों से भारत माँ का कंठहार सुसज्जित होगा।

मंत्री एवं नेता, कुर्सी एवं अधिकार वर्तमान राजनैतिक संदर्भ में घोटाले एवं घपले की कहानी, वोटों की राजनीति एवं स्वार्थपूर्ति हेतु दलबदल के किस्से बन गए हैं। सच्चे अर्थो में राष्ट्रीयता किसी बड़े पद अथवा रूतबे की मोहताज नहीं, हालांकि आज कई राज्यों के मुख्यमंत्री पद को नारी शोभायमान कर रही हैं। इतना ही नहीं कई प्रमुख राजनीतिक दलों की अध्यक्ष व मुख्य कार्यकर्ता महिलाएँ हैं। आम जनता का सूचक, बोधक व प्रतिनिधि- भारतीय संसद में महिला सांसद की संख्या वृद्धि पर है। 'महिला आरक्षण बिल' चाहे संसद में पारित हो अथवा न हो, देश के निर्माण में राष्ट्र की भावी विकास संयोजनाओं की रूप-रेखा बनाने एवं उन्हें क्रियान्वित करने में आज महिला वर्ग का योगदान, भागीदारी एवं उनकी लोकप्रियता निरंतर प्रगति पर है। राजस्थान की धरती अपनी समृद्ध संस्कृति, वीरांगनाओं एवं अनेक जौहर के लिए सुप्रसिद्ध है। आम जनता द्वारा बहुमत से मुख्यमंत्री पद के लिए एक महिला को चुना, आज के बदलते राजनीतिक संदर्भ में नारी की पुष्ट स्थिति स्पष्ट करने के साथ-साथ लंपट, रिश्वतखोर एवं भ्रष्ट नेताओं के प्रति मतदाता आक्रामक तेवर एवं आक्रोश को व्यक्त करते हुए उनकी परिवर्तित मानसिकता दर्शाते हैं। इस प्रकार नारी देश की शासनिक, प्रशासनिक, राजनीतिक गतिविधियों में सक्रिय रूप से जुड़ी हैं। महिला-संचालित एवं केंद्रीत पुलिस स्टेशन, पेट्रोल-पंप, ऑटोमोबाइल गैरेज व सर्विस केंद्र, मैकेनिक-रिपेयरिंग, डिपार्टमेंटल व कोऑपरेटिव स्टोर आदि देश की उन्नति व प्रगति में महिलाओं की क्षमता व सक्रियता के प्रमाण हैं।

रंगमंच, फिल्मजगत, फैशन, शिक्षा, साहित्य, राजनीति, खेलकूद, विज्ञान, इंजीनियरिंग, कम्प्यूटर जगत, व्यापार, शेयरबाजार, बैंक-उद्योग, गीत-संगीत, नृत्य एवं ललित कला, शासन-प्रशासन आदि कई क्षेत्रों में भारतीय नारी कठोर परिश्रम एवं लगन से देश में ही नहीं विदेशों में भी सफलता प्राप्त कर, शीर्षस्थ पदों को शोभायमान कर देश की शान में चार

चाँद लगाकर अपने राष्ट्रीय कर्त्तव्य को अंजाम दे रही है। अंतरिक्ष जगत की राजकुमारी कल्पना चावला को देश ही नहीं, संपूर्ण विश्व शत्-शत् नमन् करता है।

इस प्रकार नारी अपने हर रूप एवं क्रियाकलापों द्वारा किसी न किसी प्रकार से ऐसे संस्कार को जिलाए हुई है जो राष्ट्रीय संस्कृति, राष्ट्रीय चरित्र एवं राष्ट्रीय शक्ति बनकर राष्ट्र के इतिहास का निर्माण करती है। उसकी बनाई मक्के दी रोटी, सरसों दा साग, इडली सांवर में राष्ट्रीयता का आस्वादन है, चूड़ी एवं पायल में राष्ट्रीयता की झंकार है, उसके मृगनयनों के खंजर में कई राष्ट्रीय महाकाव्य हैं, उसके आँचल में तिरंगे को गौरव व इतिहास है। राष्ट्रवादी कवि 'दिनकर' भी नारी के लिए कह उठते हैं-

'दृष्टि तुमने फेरी जिस ओर,
गयी खिल कमल पंक्ति अम्लान,
हिंस्र मानव के कर से संत्र,
शिथिल गिर गए धनुष और वाण,
त्यागमयी गिर गए धनुष और वाण,
त्यागमयी हम कभी नहीं,
रूकती हैं अधिक समय तक,
इतिहासों की आग बुझाकर,
भी उनके पृष्ठों में।'

स्त्री सशक्तीकरण का अभियान

डॉ. ऋषभदेव शर्मा

'स्त्री साक्षात् शक्ति है।' स्त्री अबला है। समाज के स्त्री विषयक सोच अथवा समाज में स्त्री की स्थिति के ये दो परस्पर विरोधी प्रतीत होने वाले पक्ष हैं, जो मूलतः सशक्त हैं, लेकिन जिसे असशक्त बना दिया गया, उसे पुनः सशक्त बनना/बनाना होगा। शक्तिशाली को शक्तिहीन बनाने की अपेक्षा अशक्त को सशक्त बनाना अधिक चुनौतीपूर्ण और कठिन है। इसीलिए स्त्री सशक्तीकरण को एक सामाजिक अभियान के रूप में स्वीकार करने की आवश्यकता है।

स्त्री-सशक्तीकरण का यह अभियान इस आकांक्षा से संचालित है कि समाज के सभी क्षेत्रों में स्त्री के अस्तित्व को मनुष्य के रूप में स्वीकृति प्राप्त हो। स्त्री और पुरुष की ऐसी समानता की व्यावहारिक प्रतिष्ठा आवश्यक है जिसमें स्त्री अन्या, द्वितीयक, गौण उपेक्षितां, अनुगामिनी या अनुचर नहीं, अनिवार्य और सहचर की भूमिका में हो। अर्धनारीश्वर, वाक् और अर्थ, साम और ऋक् तथा द्यावापृथिवी जैसे मिथकों के माध्यम से भारतीय संस्कृति ने सभ्यता के आरंभ से ही स्त्री पुरुष की इस समानता को स्वीकृति प्रदान की है। इसी युग्म भाग और पारस्परिकता को आधुनिक संदर्भ में प्रतिष्ठित करने का अभियान है स्त्री सशक्तीकरण का अभियान। शक्ति और शिव के योग संबंधी मिथ को सामाजिक धरातल पर घटित होते देखना इस अभियान की आकांक्षा है, अहिंसा और करुणा के प्रति आस्था में जिसका बल निहित है। यह बल एक खास तरह की निर्भीकता प्रदान करता है और विकट परिस्थिति में आत्मनिर्णय की दृढ़ता भी। यही कारण है कि सीता और सावित्री भारतीय स्त्री की तेजस्विता का प्रतीक हैं। वे पुरुष की अनुगामिनी छाया मात्र नहीं हैं। वे अपनी सशक्तता को निर्विवाद रूप से प्रमाणित करने में सक्षम हैं। लेकिन स्त्री के अबला रूप की पोषक शक्तियों ने उनकी इस तेजस्विता की उपेक्षा करके उन्हें पति-परमेश्वर की अनुचरी मान बनाकर रख दिया। उन्हें जब तक फिर से परमेश्वरी नहीं बनाया जाता, तबतक स्त्री पुरुष समता का दावा नहीं किया जा सकता। परमेश्वरी बनाने का अर्थ स्त्री के मानवी रूप की पूर्ण स्वीकृति मात्र है, देवी बनाकर पूजना नहीं।

यह भी सामाजिक सांस्कृतिक विडंबना ही है कि समाज स्त्री को या तो देवी के रूप में पूजता है या दानवी के रूप में उससे घृणा

करता है। स्त्री के ये दोनों ही अतिरंजित रूप न तो सामान्य हैं और न स्वीकार्य। सशक्त स्त्री का अर्थ देवी या दानवी होना नहीं, मानवी होना है जिसमें पुरुष की तरह ही शक्तियाँ भी हैं और दुर्बलताएँ भी। यही मनुष्य की सहज पूर्णता है। मानवी होने के इस नैसर्गिक अधिकार से स्त्री को सभ्यता के किसी असभ्य मोड़ पर वंचित कर दिया गया और उसका जन्म ही अभिशाप तथा पराधीनता का द्योतक बन गया। जिस मानव जीव को संपूर्ण पृथ्वी पर केवल इसलिए दंडित किया जाता हो कि उसका जन्म स्त्री के रूप में हुआ है, वह शारीरिक और मानसिक स्तर पर अशक्तता का शिकार नहीं होगा तो और क्या होगा? इसी से घर-बाहर सर्वत्र पुरुषों को अबाध स्वतंत्रता और निर्णय क्षमता प्राप्त हुई तथा स्त्रियों को अबला कहकर इनसे वंचित कर दिया गया। स्त्री सशक्तीकरण का अर्थ है स्त्रियों को उनकी हरण की गई अबाध स्वतंत्रता और निर्णय क्षमता लौटाना। जबतक ऐसा नहीं किया जाता तब तक अथर्व संहिता के हवाले से अपने घर में पुत्र और शत्रु के घर में कन्या के जन्म की प्रार्थनाएँ की जाती रहेंगी अथवा ऐतरेय ब्राह्मण के हवाले से कन्या के जन्म को शोक का विषय माना जाता रहेगा। भारत में तो फिर भी वेद काल से आज तक सशक्त स्त्रियों के सम्मान के अनेक उदाहरण प्राप्त हैं, दुनिया के अन्य अनेक देशों ने दार्शनिक चिंतन और बौद्धिक विमर्श से स्त्रियों को सदा दूर रखने के प्रयास किए तथा उन्हें गुलाम और वहशी कहकर पुरुष के अधीन रहने को विवश किया है। स्त्री सशक्तीकरण की शुरुआत के लिए यह अधीनता टूटनी आवश्यक है ताकि मताधिकार, शिक्षा और रोजगार के अवसरों से किसी मानव जीव को मात्र स्त्री होने के कारण वंचित न किया जाय।

यह चिंता का विषय है कि विविध माध्यम आज भी स्त्री की स्वतंत्रता पर आक्रमण कर रहे हैं। उसके शरीर और सौंदर्य की विभिन्न सभ्यताओं ने विविध रूपों में अलग-अलग संस्थाओं के नाम परपुरुष के, कभी एकांत और कभी सार्वजनिक उपभोग की वस्तु बनाने में कभी कोई कोताही नहीं की है। आज भी बाजार की शक्तियाँ अधिक सुनियोजित ढंग से वही सब कर रही हैं। सशक्त स्त्री पालतू होने से इंकार करेगी, मनोरंजन का साधन नहीं बनेगी और इस प्रकार समाज को उन्नत और सुसंस्कृत बना सकेगी। बाजार की शक्तियों द्वारा चलायी जा रही देह की राजनीति का शिकार होने वाली स्त्रियाँ सशक्त नहीं हैं इसलिए स्त्री विरोधी जाल में इतनी आसानी से फंस जाती हैं। अपनी अस्मिता और व्यक्तित्व की गरिमा के प्रति

जागरूक हुए बिना हर सशक्तीकरण अपूर्ण है।

स्त्री-सशक्तीकरण की चर्चा चलते ही कुछ लोगों के घर, परिवार और विवाह के टूटने की चिंता सताने लगती है। यदि किसी संस्था के जीवित रहने के लिए उसके आधे हिस्से का अशक्त रहना जरूरी है, तो उसे टूट ही जाना चाहिए। परंतु सच्चाई यह नहीं है। इन संस्थाओं के लिए स्त्री का सशक्त होना ही श्रेयस्कर है। इन्हीं संस्थाओं के बीच स्त्री ने ही पहल करके विकास का मार्ग प्रशस्त किया है। वह स्त्री आत्मनिर्भर और स्वायत्त थी। कालांतर में उसे भूमि और संपत्ति का पर्याय बना दिया गया जिससे उसकी सृजनशीलता कुंठित हुई। अपनी सृजन शक्ति को स्त्रियों ने लोकगीतों के माध्यम से भी प्रमाणित किया है। सृजन स्त्री का स्वभाव है, घर उसका अपना आविष्कार। स्त्री की सशक्तता और घर एक दूसरे के विरोधी नहीं है। लेकिन घर, परिवार और विवाह को बनाए रखने की एक पक्षीय जिम्मेदारी केवल स्त्री पर नहीं डाली जा सकती। झूठी मर्यादा के नाम पर स्त्री से हर तरह के बलिदान की माँग करना और पुरुष को घर फूँकने, परिवार तोड़ने तथा विवाह की पवित्रता को भंग करने की केवल पुरुष होने के नाते छूट देना न्यायसंगत नहीं है। सशक्त स्त्री पुरुष के इस स्वेच्छाचार को बर्दाश्त नहीं करेगी तो यह घर परिवार के हित में ही होगा। स्त्री-सशक्तीकरण का अर्थ स्त्री को समाज से अलग करना नहीं है और न ही पुरुष से प्रतिस्पर्धा या विरोध। इसका आधार तो सहयोग और सहानुभूति है और उद्येश्य है व्यापक सामाजिक समरसता। इस समरसता की प्राप्ति में जो प्रवृत्तियाँ बाधक हैं पुरुष को उनसे मुक्त होकर सामाजिक दायित्वबोध के साथ इस अभियान में हिस्सा बनना होगा ताकि वह स्वयं पौरुष की झूठी परिभाषाओं से मुक्त होकर बेहतर दुनिया के लिए काम कर सके। सृजन के हर क्षेत्र में स्त्री-पुरुष सहयोगी रहे हैं, रह सकते हैं। इस धरती को रूढ़िग्रस्तता, सांप्रदायिकता, कट्टरवाद, भ्रष्टाचार, हिंसा और आतंक से मुक्त करने के लिए सशक्त स्त्री की भी उतनी ही जरूरत है जितनी सशक्त पुरुष की।

दुनिया भर में स्त्री आज भी विविध प्रकार की हिंसा झेल रही है। मारपीट, क्रूरता, अभद्रता, बलात्कार और परिवार तथा समाज में तिरस्कार शताब्दियों से स्त्री नियति मान कर बर्दाश्त करती आई है। ऐसी दमित शोषित स्त्री निश्चय ही समाज के तो क्या अपने भी उत्थान के लिए कुछ कर सकती है, इसमें संदेह है। समाजोत्थान के विविध कार्यक्रमों में

उसकी सक्रिय भागीदारी के लिए इस बहुआयामी हिंसा से उसे मुक्त करना होगा। दुर्भाग्य तो यह है कि स्त्री को अवांछित जीव समझे जाने के कारण यह हिंसा उसके जन्म से पूर्व ही शुरू हो जाती है। विविध प्रचार माध्यम स्त्री पर हिंसा को नित्य नए आयाम प्रदान कर रहे हैं और समाज उन्हें स्वीकृति भी प्रदान कर रहा है। इन माध्यमों में मनोरंजन से लेकर विज्ञापन तक सर्वत्र पुरुष का स्त्री के प्रति व्यवहार हिंसक, आक्रामक, विद्वेषपूर्ण और मालिकाना ढंग से प्रस्तुत किया जा रहा है। कामुकता और विलासिता की अश्लील प्रस्तुति के बीच स्त्री पुरुष के सहज प्रेम की हत्या की जा रही है और दर्शक सिर धुनने की बजाय ताली पीट रहे हैं।

एक प्रवृत्ति यह भी पनपी है कि स्वावलंबी महिलाओं की छवि क्रूर और दुश्चरित्र के रूप में गढ़ी जा रही है ताकि सशक्त स्त्री को संदेह और घृणा का पात्र बनाया जा सके। इससे एक ओर तो स्त्री विरोधी अपराध बढ़ रहे हैं और दूसरी ओर विवाह के प्रति वितृष्णा का भाव तेजी से फैल रहा है। ये दोनों ही बातें सामाजिक समरसता के लिए अमंगलकारी हैं। अश्लीलता सदा अमंगलकारी हीं होती है। इससे मुक्ति के लिए समाज की मानसिकता में परिवर्तन अपेक्षित है, अन्यथा मानव-सभ्यता विकास के नाम पर विनाश को ही प्राप्त होगी। सशक्त स्त्री इस सामाजिक परिवर्तन का नेतृत्व करेगी- भाषा और साहित्य के स्तर से लेकर आर्थिक और राजनैतिक स्तर तक। सभ्यता और संस्कृति का विकास अकेले पिताओं ने नहीं किया है, उसमें माताओं का भी बराबर का योगदान है।

भविष्य निर्माण में माताओं के इस योगदान को सुनिश्चित करने के लिए स्त्री को अपने ऊपर थोपे गए अबलापन से निकालना ही होगा। इसके लिए आर्थिक आत्मनिर्भरता ही काफी नहीं है। शिक्षा और सामाजिक चेतना का व्यापक प्रसार भी आवश्यक है। भारतीय परिप्रेक्ष्य में यह भी ध्यान रखना होगा कि स्त्री सशक्तीकरण का लक्ष्य शहरी और सुविधासंपन्न स्त्री तक सीमित नहीं है वरन् ग्रामीण और आदिवासी क्षेत्र तक की स्त्री का इसमें सम्मिलित होना अनिवार्य है। साहित्य, शिक्षा, आर्थिक विकास और राजनैतिक चेतना सभी स्तरों पर ग्रामीण स्त्री की सक्रिय और सार्थक भागीदारी को सुनिश्चित करना होगा, तभी यह अभिमान पूर्णता प्राप्त कर सकता है। धर्म, जाति, क्षेत्र और संप्रदाय की सीमाओं से परे यह भी सुनिश्चित करना होगा कि स्त्री संतान को केवल ससुराल जाने के लिए तैयार न किया जाए, बल्कि जीवन और जगत के हर मोर्चे के लिए प्रशिक्षित

किया जाए। इससे व्यवस्था में विभिन्न स्तरों पर और विभिन्न क्षेत्रों में स्त्री की भागीदारी को बढ़ाया जा सकता है और उसे एक पूर्ण मानव के रूप में प्रतिष्ठित किया जा सकता है।

पूर्ण मानव होने का अर्थ स्त्रीत्व से निवृत्त या विमुख होना कदापि नहीं है, बल्कि इससे तो स्त्री और पुरुष के बीच के रिश्ते को प्रेमपूर्ण होने में और सहायता ही मिलेगी, क्योंकि प्रेम के लिए समानता आवश्यक है। मालिक और गुलाम के बीच प्रेम नहीं हो सकता (यदि हो सकता है तो वे मालिक और गुलाम नहीं रहते)। प्रेम की अभिव्यक्ति के नाम पर होने वाले अमर्यादित आचरण पर भी इससे अंकुश लगेगा। जयदेव, कालिदास और मीरा की काव्य कृतियों अथवा खजुराहों की कलाकृतियों में जो उदात्त प्रेम दीखता है, उसका स्रोत स्त्री-पुरुष की उस समानता में निहित है जिसका आधार परस्पर सहचरी सहचा होने का उन्मुक्त भाव है। समता के स्तर पर प्रेम पात्र के व्यक्तित्व में अपने व्यक्तित्व के विसर्जन में ही यदि प्रेमियों का मोक्ष निहित है तो इसके लिए अधिकार नहीं समर्पण चाहिए- सहज समर्पण। अशक्त के पास तो समर्पित करने को अपना कुछ होता ही नहीं। इसलिए सशक्त स्त्री से किसी को भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है। सशक्त स्त्री विविध सामाजिक संबंधों को अधिक प्रेम और अधिक गरिमा प्रदान करेगी, इसमें संदेह नहीं।

राष्ट्र की समकालीन चुनौतियाँ
डॉ. चुन्नी लाल शर्मा

आज हमारा देश एक विकट दौर से गुजर रहा है। आज हमारे राष्ट्र को विकट चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। देश की इन समस्याओं को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। यद्यपि वाह्य रूप से देखें तो भारत की चमक-दमक, भारत की प्रगति, भारत की भव्यता सहसा हरेक को आकर्षित कर लेगी तथापि उन असमानताओं, उन उलझनों को कैसे झुठलाया जा सकता है जो हमारे राष्ट्र के वट वृक्ष को दीमक की तरह शनैः शनैः जर्जरता की ओर ले जा रही है। समय रहते इन चुनौतियों का सामना न किया गया तो फिर 'अब पछताए क्या होत है, जब चिड़िया चुग गई खेत' वाली कहावत चरितार्थ होगी। चंद चुनौतियाँ अधोवर्णित हैं-

१. सांप्रदायिकता-

आजादी को प्राप्त लगभग सात दशक बीत गये हैं, परंतु हम अपने आप को वहीं खड़ा पा रहे हैं जो स्थिति आजादी प्राप्ति के समय थी। भारत का विभाजन हिंदू-मुस्लिम सांप्रदायिक मनःस्थिति को लेकर हुआ था। सोचा था कि विभाजन के बाद यह समस्या स्थाई रूप से हल हो जाएगी, परंतु इस लंबे समय के बाद भी हिंदू-मुस्लिम के बीच जो अपनत्व, सौहार्द बढ़ना चाहिए था, वह नहीं हुआ, बल्कि इनके बीच की दरारें ज्यादा बढ़ गई हैं। यह एकता व अखंडता की चुनौती, सरहद-पार के मुल्कों से उतनी नहीं है जितनी सीमा के भीतर मुख्य घटक समुदायों (हिंदू और मुसलमान) के बीच मतभेदों और मन-मुटावों की वजह से उभरी है। सदियों से दोनों समुदाय के साथ वैमनस्य कभी नहीं रहा। कुछ वर्षो से, सत्ता की राजनीति ने न सिर्फ इन सूत्रों को कमजोर किया, वरन् उन्हें जान-बूझ कर तहस-नहस भी किया।

मुसलमानों के हिंदुओं के साथ दिन-प्रतिदिन बिगड़ते जाते रिश्तों पर ध्यान केंद्रीत करें तो मुख्य दो कारण सामने आते हैं-

(क) इस्लाम के बारे में ऐतिहासिक तथ्यों का विद्रूपीकरण

(ख) मिथ्या धार्मिक अवधारणाएँ

कुछ लालायित हिंदुत्ववादी इन दोनों ही तत्वों को लगातार प्रचारित करते रहे तथा यह सिद्ध करने का प्रयास करते रहे कि इस्लाम हिंदुत्व का विरोधी है। यह मिथ्या प्रचार एकता में रोड़े लगाने का काम करने लगा।

दोनों समुदायों के बीच गलतफहमीं तथा अविश्वास की भावना कुछ कट्टरपंथी लोगों ने पैदा कर दी थी तो राजनैतिक पार्टियाँ भले अपने को इससे दूर कैसे रख सकती थीं। ये पार्टियाँ सत्ता प्राप्ति के लिए इस प्रकार का घिनौना खेल खेलने लगीं। वे अपना उल्लू सीधा करना चाहती थीं न कि देशवासियों को गुलामी की पिनक से उबार कर, प्रगति के मार्ग की ओर दिशा निर्देश करना। यह देश का दुर्भाग्य है कि राजनीति के स्वरूप को सर्वग्रासी होते देखकर भी बुद्धिजीवियों ने अपनी सारी इन्द्रियों को समेट लिया है- 'मूंदहुं नयन कतहु कछु नाहीं' को ही आधार मान लिया है।

आज राजनीति में हरिजन, पिछड़ा वर्ग तथा मुस्लिम वोटों के बैंक खुल गए हैं। ये वोट बैंक राजनीति में प्रमुख खेल खेल रहे हैं। हिंदू-मुस्लिम के बीच सेतु रचने की आकांक्षा शून्य बन गई है। यह घिनौना खेल देश को अवनति के कगार पर लाकर खड़ा कर सकता है। समय रहते इस वास्तविकता को स्वीकार न किया गया तो हिंदू-मुस्लिम एकता संभव नहीं। बनावटी धर्म निरपेक्षता के आवरण से सच्चाई को ढँकने की प्रवृत्ति घातक होगी तथा दिन-प्रतिदिन पानी सिर के ऊपर ही चढ़ता जायेगा। तथाकथित प्रभावकारी आर्थिक नीतियाँ, प्रगति के मार्ग की ओर उठाये गये कदम व्यर्थ हो जायेंगे जबतक हिंदू-मुस्लिम के बीच प्रेम, सौहार्द न बढ़ेगा। इनकी एकता पर भारत अन्य सभी समस्याओं को चुटकी में हल कर सकता है। आज इस गंगा यमुना के दो आव में जायसी, रहीम, मीर और गालिब पैदा करने की क्षमता बंजर बन गई है। इसे उर्वर तभी बना सकते हैं जब दोनों समुदायों के बीच पारदर्शिता कायम हो। हिंदू के हृदय में मुसलमानों के प्रति क्या है? मुसलमान के दिल में हिंदू के लिए क्या है- यह पारदर्शिता जरूरी है। इधर वोट बैंक की राजनीति ने इस पारदर्शिता की संभावना को नष्ट कर दिया है।

क्या यह उचित है कि भारत के मुसलमानों को संवैधानिक तौर पर 'अल्पसंख्यक' बनाकर इनको वोट बैंक के रूप में प्रयोग किया जाए। अल्पसंख्यक करार देना ही अपने आप में इन्हें पृथक बनाकर हौवा खड़ा करना है। हर देशवासी देश का नागरिक है और उसे समान अधिकार प्राप्त है फिर किसी समुदाय को अल्पसंख्यक बताना उचित नहीं। सिक्ख अल्पसंख्यकवाद की दुर्गंध पंजाब भुगत चुका है। यह वोट बैंक की राजनीति दो फाड़ करने की कोशिश करती रहेगी तो देश को राष्ट्र का स्वरूप

नहीं दे सकते। इधर इतना याद रखना चाहिए कि जिन विवादों के पीछे लोगों की संवेदना जुड़ी हो वे राजनीति के हिसाब से तय नहीं किये जा सकते। अगर ऐसे मामले इस प्रकार तय करने का प्रयास किया भी गया तो एक न एक पक्ष को अवश्य ही आघात पहुँचेगा। जहाँ तक हो सके अतीत के गड़े मुर्दे को न उखाड़ें। उर्दू के शायर ने लिखा है-

'सरकशी की किसी महमूद ने सहियों पहले,
इस लिए खूब खबर ली मेरे सर की तुमने।
चंद पत्थर किसी बाबर ने गिराए थे कभी
ईंट से ईंट बजा दी मेरे घर की तुमने।'

आस्था और संवेदना के सवालों को आपस में मिलजुल कर तय करने की बजाय राजनीतिज्ञों के हाथ में देकर खिलवाड़ की सामग्री बनाना ठीक नहीं। मंदिर-मस्जिद फिर से बनाये जा सकते हैं परंतु टूटे हुए प्रेम की धारा को जोड़ना संभव नहीं। मंदिर-मस्जिद के सारे विवाद वैसे के वैसे हैं। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इसका हल न हुआ न होना संभव है। इसे समय काटने की दृष्टि से प्रयोग किया जा रहा है। समाज को दो फाड़ की राजनीति को दूर करना होगा। दोनों संप्रदायों में विश्वास भरोसा स्थापित करना होगा तभी इस का हल संभव है। यह घिनौनी राजनीति छोड़नी होगी।

२. भ्रष्टाचार

राष्ट्र के सामने दूसरी सबसे बड़ी चुनौती है भ्रष्टाचार की। आजादी के बाद अगर दूसरी कोई समस्या उभर कर सामने आई है जिसने देश को पीछे ढकेला है तो वह 'नैतिक मूल्यों का पतन'। जब देश आजाद हुआ था तो उस समय लोगों में देशभक्ति का जोश था, दीवानापन था, कुछ कर दिखाने की तमन्ना थी तथा उस समय देश प्रेम सर्वोपरि था। शनैः शनैः वह पीढ़ी अलविदा हो गई। इस नई पीढ़ी के पैर में बवाई पड़ी ही नहीं तो वह आजादी का सही मूल्य कैसे आक सकती। उस समय के नेता संघर्ष करते थे, जेल जाते थे तब कुर्सी पर बैठते थे, परंतु आज के नेता पहले कुर्सी पर बैठते हैं फिर जेल जाते हैं; पहले राष्ट्रीय अधिवेशन होते थे तथा कार्यकर्ता नेताओं से मार्गदर्शन प्राप्त करते थे। आज के अधिवेशनों में नेता के दर्शन होते हैं तथा उसके आदेश मिलते हैं। कहते हैं कश्मीर से कन्याकुमारी तक भारत एक है, यह सर्वमान्य तथ्य है- भ्रष्टाचार के आधार पर समूचा भारत एक है। भ्रष्टाचार की एक महान राष्ट्रीय परंपरा चल पड़ी है। हर नेता, हर अधिकारी अब भ्रष्टाचार के मामले में पिछला रिकार्ड तोड़ने पर जुटा है।

अगर सचमुच सब कुछ इसी ढर्रे पर चलता रहा तो वह दिन दूर नहीं जब सब नेता एक बार मिलजुल कर 'भ्रष्टाचार वर्ष' भी मनाने लगेंगे। निम्न पंक्तियाँ कितनी सार्थक हैं–

'वह दिन दूर नहीं
जब सी.बी.आई. और जांच आयोगों के
मुँह पर ताले होंगे
हर रोज नये घोटाले होंगे।
वह दिन दूर नहीं
जब घोटाले जैसे लोकप्रिय कार्यक्रम को
राष्ट्रीय खेल घोषित किया जाएगा,
इस के मजे हुए खिलाड़ियों को
वरीयता क्रम दिया जायेगा
घोटाले के सर्वश्रेष्ठ खिलाड़ी का
नागरिक अभिनंदन होगा
उसके माथे पर विदेशी चंदन होगा।'

यह देश सोने की चिड़िया था तथा है। पद पर बैठने वालों के लिए यह देश सोने की चिड़िया ही है। आज रक्षा घोटाला, डाबर घोटाला, यूरिया घोटाला, शक्कर घोटाला, चारा घोटाला, शेयर घोटाला, आदि घोटालों की एक लंबी सूची बन गई है। काण्डों की भी एक बड़ी सूची है-तेलगी स्टाम्प पेपर कांड, तहलका कांड आदि आदि। भ्रष्टाचार के कारण यह देश इन राजनेताओं का चारागाह बन गया है। प्रस्तुत पुस्तक के संपादक सिद्धेश्वर जी ने काव्य हाइकु काव्य संग्रह– 'सुर नहीं सुरीले' में भ्रष्टाचार की अच्छी व्याख्या की है–

खिलौने बनें
कब तक हम भी
भ्रष्ट हाथों के?

बेमिसाल था
भ्रष्ट आचरण का
तंदूर कांड

जो भ्रष्टाचार
निकलता दिल्ली से
गंगा नदी है

है बेच दिया
घोटालेबाजों ने ही
देश को भी

खोखला किया
भ्रष्टाचारियों ने ही
इस देश को

इस देश में
भ्रष्टाचार है फैला
कैंसर जैसा

इन भ्रष्ट नेताओं को मान-अपमान की जरा भी परवाह नहीं, उन्हें अपने कृत्य पर न खेद है न पछतावा। वे अब भी गर्व से सीना तान

कर चल रहे हैं।

कवि चिरंजीत ने ठीक ही कहा है–

'लोकतंत्र का रक्षक अब भी भूख नंगा अनपढ़ है
पर उसके वोटों का भिक्षुक सैर हवाई करता है।
राजनीति का तिलक लगाकर, डाकू भी अब संत बने
देशभक्ति में लूटमार है, आशीष में बर्बरता है।।'

अब ऐसे भ्रष्टाचार के वातावरण में कुछ क्रांति तभी संभव है जब राष्ट्र के कर्णधार उज्ज्वल चरित्र के साफ सुथरे हों। कवि रमेश गुप्त नीरद का कथन है–

'बुझती हुई आग को अंगारा चाहिए
अंधियारी इस रात को उजाला चाहिए
आहूति जो स्वयं की चढ़ा सके सहर्ष
एक कोई नेता हमें ऐसा चाहिए।' (नितनया अनुबंध)

३. आतंकवाद

देश के ही नहीं अपितु विश्व के सामने एक बड़ी चुनौती है बढ़ते हुए आतंकवाद की। आतंकवाद ने विश्व के प्रमुख राजनेताओं की नींद हराम कर रखी है। ये आतंकवादी देश की, विश्व की शांति को छिन्न-भिन्न कर देना चाहते हैं तथा वे नहीं चाहते कि कुछ राष्ट्र उन्नति के पथ पर अग्रसर हों। इन लोगों की संकीर्ण धार्मिक भावना भी इन्हें आतंकवाद की ओर प्रेरित कर रही है। इन भ्रष्ट लोगों को कुछ धार्मिक नेता, कुछ राजनेता भी आतंकवाद की ओर मोड़कर अपना उल्लू सीधा करना चाहते हैं। आज कश्मीर की वादियाँ गोलियों की गूँज से, बमों के विनाशकारी भयानक आवाजों से अपने को आहत समझ रही हैं। यह आतंकवाद किसी भी नागरिक को उद्वेलित करने में समर्थ है। डॉ. महेंद्र भटनागर कहते हैं–

'रात गुजरते ही
घबराए कुत्ते रोएँगे
भय विह्वल पक्षी चीखेंगे
हम
आहत युग की पीड़ा सह कर
इतिहास का मलवा ढोएँगे'

आतंकवाद की सबसे बड़ी मार को, पीड़ा को भारत को ही

सहना पड़ा है। इस आतंकवाद ने न केवल हमारी प्रगति के पहिये को जाम कर दिया है, बल्कि आर्थिक ढाँचे को भी छिन्न-भिन्न कर दिया है। आज कोई भी व्यक्ति कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक अपने को सुरक्षित नहीं समझ रहा।

लगभग दो ढाई दशकों से आतंकवाद क्रमशः बढ़ता ही गया है। इंडियन एयरलाइंस के विमान अपहरण कांड को हम आतंकवाद से ही जोड़ सकते हैं तथा इसके बदले मौलाना मसूद अजहर नामक आतंकवादी को छुड़ाया गया। इसने अपना एक अलग आतंकवादी संगठन तैयार किया जो 'जैश-ए-मुहम्मद' के नाम से जाना जाता है। 'अल रशीद ट्रस्ट' भी इसी आतंकवादी की देन है। इस ट्रस्ट का लादेन के 'अल कायदा' से भी घनिष्ट संबंध है। एक अन्य आतंकवादी हरकत-उल-अंसार ने 'हरकत-उन-मुजाहिददीन' नामक संगठन का गठन किया है। लश्करे तैयबा के उभरने से पहले कश्मीर में हिजबुल मुजाहिदीन आतंकवाद फैलाने में सबसे आगे था। भारतीय सुरक्षा बलों पर हमले करने वाला सबसे सूर आतंकवादी संगठन लश्कर-ए-तैयबा है। मूलरूप से कश्मीर में सक्रिय जमात-ए-इस्लामी का संगठन 'हिजबुल मुजाहिदीन' शुरू से ही पाक समर्थक रहा है। इसका गठन सन् 1989 में श्रीनगर में किया गया था। इस संगठन में सम्मिलित ज्यादातर आतंकवादी कश्मीरी हैं। 'तहरीक-ए-जेहाद' प्रो. अब्दुल गनी भट्ट की एक आतंकवादी संस्था है। यह पाक में कश्मीर का विलय चाहती है। सन् 1990 में 'अल-वर्क-मुजाहिदीन' आतंकवादी दल 'पीपुल्स कांफ्रेंस' नामक राजनैतिक पार्टी द्वारा बनाया गया। इसका मुखिया बिलाल राही है। वह संगठन अब कमजोर हो गया है।

'हिजबुल मोइमीन' कश्मीर में रहने वाले शिया मुसलमानों के संरक्षण में चल रहा है। इसकी गतिविधियाँ बड़गाम तक ही सीमित हैं। पाक में बसे शिया संगठन इसकी मदद करते हैं। 'हिजबुल्ला' जम्मू कश्मीर मुस्लिम लीग की यह आतंकवादी इकाई है। ऐसे आतंकवादी संगठनों की सूची लंबी है जो भारत सरकार के लिए चिंता बने हुए हैं।

कश्मीर के अलावा पंजाब में, उत्तर-पूर्व भारत में, दक्षिण भारत में तथा उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र व आंध्र प्रदेश में अनेक आतंकी संगठन सक्रिय हैं। अक्षरधाम मंदिर पर, जम्मू के मंदिर पर, संसद पर किये गये आक्रमण इनके दुस्साहस के अंतर्गत आते हैं। हमारे युवा प्रधानमंत्री स्व. राजीव गाँधी भी आतंकवाद के शिकार बने थे।

आतंकवाद के कारण हर व्यक्ति अपने आप को असुरक्षित अनुभव कर रहा है। भारत भ्रमण करते समय हम सब सावधानियाँ बरत सकते हैं। उबला पानी पीये या फिर खाने की शुद्धता परखें, परंतु इन आतंकवादियों से हम अपनी रक्षा कैसे करें? हम पुलिस के प्रशिक्षित कुत्ते तो नहीं हैं कि सूंघ कर पहचान लें कि कौन आतंकवादी है? पता नहीं कब किस कोने में रखा बम हमें मौत के घाट उतार दे या फिर किसी गली, मोहल्ले, बाजार में कोई साईकिल सवार हमें मार दे। उग्रवाद किसी समस्या का समाधान नहीं है, यह न कभी था न होगा। यह एक विनाशकारी कदम है या यूँ कहें कि अपने घर में सेंध लगाकर, अपने ही घर को बाँटने की तैयारी है। ये लोग जाग्रत अवस्था में भी क्यों सोये हैं, अपने ही भाई-बहनों के खून से हाथ रंग कर किसी भ्रांत कल्पना में खोये हैं? सिद्धेश्वर जी ने अपनी काव्य पुस्तक 'जागरण के स्वर' में आतंकवाद की इस प्रकार व्याख्या की है-

'रहे उजाड़, अंधा बन स्वार्थ में, अपना घर
इंसानियत, कत्ल हो रही चाहे, जो भी हो मेरा
मारे जा रहे, मंदिर-मस्जिद के नाम इंसान
धर्मो के नाम, आज खुद को हम छल रहे हैं
आतंकवाद, हमारी नींद को भी हराम किया
आतंकवाद खत्म कर रहा है भाईचारे को'

कश्मीर :

आजादी के बाद जिस चुनौती ने हमारे राष्ट्रीय नेताओं, समाज के कर्णधारों एंव शांतिप्रिय लोगों को बेचैन कर रखा है, वह है कश्मीर। यद्यपि कश्मीर की कोई समस्या नहीं है परंतु इसे पाकिस्तान एवं उनके समर्थक देशों ने एक समस्या बना रखी हैं। कश्मीर की चुनौती को खुलासा करने के लिए हमें उसके गत इतिहास को जानना पड़ेगा।

विभाजन के समय पाकिस्तान का विचार था कि कश्मीर को पाकिस्तान में सम्मिलत होना चाहिए, क्योंकि यहाँ की अधिकांश जनसंख्या मुसलमान है। इधर राज्य के शासक महाराजा हरि सिंह इससे संतुष्ट न थे। राजा का झुकाव स्वतंत्र रहने का था। पाकिस्तान प्रतीक्षा नहीं करना चाहता था। अत: पाकिस्तान ने प्रशिक्षित उग्रवादियों द्वारा कश्मीर पर आक्रमण कर दिया और फलस्वरूप कश्मीर को भारत के आँचल में ढकेल दिया। महाराज ने

भारत के साथ विलय को स्वीकार कर लिया। 29 अक्टूबर 1947 को भारतीय सेना श्रीनगर पहुँची तथा पाकिस्तानी उग्रवादियों को धकेलना शुरू किया। संयुक्त राष्ट्र संघ के हस्तक्षेप से युद्ध बंद हुआ तथा कश्मीर का 40 प्रतिशत भाग पाकिस्तान के अधिकार में रह गया। पूरे कश्मीर को हड़पने के लिए पाकिस्तान ने सन् 1965 में दूसरा प्रयास किया। उसका विचार था कि पं. नेहरू की मृत्यु एवं 1962 में चीन से पराजय के बाद भारत दुर्बल हो चुका है। पाकिस्तान इस प्रयास में असफल रहा। उसे मुँह की खानी पड़ी। 'ताशकंद समझौते' के बाद पाकिस्तान ने खोया प्रदेश वापस प्राप्त किया। सन् 1971 में भी उसे भारी पराजय का सामना करना पड़ा। सन् 1972 में शिमला समझौता हुआ तथा संघर्ष को समाप्त करने पर सहमत हुए। आपसी मतभेद शांतिपूर्वक वार्ता द्वारा तय करने पर राजी हुए। जिया-उल-हक ने परोक्ष युद्ध शुरु करने का निर्णय लिया अर्थात् कश्मीर घाटी को विद्रोह और तोड़फोड़ के रास्ते स्वाधीन करना था। सन् 1889 में मध्य तक कश्मीर में परोक्ष युद्ध आरंभ हो गया, जो आज तक चल रहा है। जिया के बाद की सभी सरकारों ने हर कदम पर इस परोक्ष युद्ध को चलाये रखा तथा कश्मीर पंडितों को कश्मीर से बाहर निकालने में सफल हो गये।

अटल बिहारी बाजपेयी ने संबंधों को सुधारने के लिए 20 दिसंबर 1998 को लाहौर यात्रा की। दोनों देशों के प्रधानमंत्रियों ने 'लाहौर घोषणा' पर हस्ताक्षर किये। इस घोषणा पत्र में दोनों देशों के बीच शांति एवं स्थिरता, समृद्धि एवं विकास के स्वप्न का उल्लेख है। जिस समय यह शांति प्रक्रिया चल रही थी उसी समय पाकिस्तान ने कारगिल युद्ध शुरु कर दिया। पाकिस्तान का यह प्रयास भी पूर्ण रूप से विफल रहा। नवाज शरीफ ने इस पराजय के बाद सेनाध्यक्ष परवेज मुशर्रफ को हटाने की योजना बनाई जब वे श्रीलांका के दौरे पर गये हुए थे। लेकिन उनका पासा उलट गया, पाकिस्तान में सेना ने तख्ता पलटा दिया और 12 दिसंबर 1999 को जनरल मुशर्रफ ने शासन की बागडोर संभाल ली। पाकिस्तान का इरादा नेक नहीं है। वह जब-जब मौका मिलता है अंतरराष्ट्रीय मंचों पर कश्मीर का प्रश्न उठाता रहता है। दूसरी तरफ भारत कश्मीर को छोड़ नहीं सकता अन्यथा देश के छिन्न-भिन्न होने की संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता। पाकिस्तान द्वारा मिथ्या दुष्प्रचार का खंडन करना, सेना द्वारा कश्मीर में विद्रोह व तोड़-फोड़ को रोकना, राज्य का विकास करना तथा कश्मीर वासियों को अपने वि वास में लाना भारत का प्रमुख कर्त्तव्य है।

पाकिस्तान के इशारे पर कश्मीर में अब भी अर्धसैनिक बलों पर हमले हो रहे हैं। श्रीनगर तथा घाटी में कई अन्य नगरों में गोली-बारी हो रही है, बम विस्फोट हो रहे हैं। कई पर्यटन स्थलों पर, पुलिस चौकी पर, लाल चौक में बम विस्फोट किये गये हैं। पुलों को उड़ाने तथा संचार व्यवस्था को भंग करने का प्रयास भी किये गये हैं, परंतु सतर्कता के कारण ये प्रयास सफल नहीं हुए।

निष्कर्ष :

चुनौतियाँ मानव जीवन को यथा किसी राष्ट्र को अपनी कसौटी पर खरा उतारने में सहायक बनती हैं। इन चुनौतियों का सामना करने के लिए सतत् प्रयास, सच्ची लगन तथा एकता की जरूरत है। इनसे उबर कर ही कुंदन बन सकते हैं। किसी कवि ने ठीक ही कहा है-

'जो कफन बांध सिर पर चलता,
पीता नहीं सुधा प्याली
रहती ही उस के होठों पर
हर दम सुख की लाली छाई'

लेकिन यह नहीं भूलना चाहिए कि हर चीज की हद होती है। सांप्रदायिकता, भ्रष्टाचार तथा आतंकवाद कश्मीर ये चार प्रमुख समस्याएँ हैं जो हमारे देश के लिए सिरदर्द बनी हुई हैं। इनसे हम तभी छुटकारा पा सकते हैं जब हम एकजुट होकर इन्हें समाप्त करने का संकल्प लें। युवा पीढ़ी को इस कार्य के लिए आगे आना होगा। भ्रष्टाचारी को शीघ्र सख्त से सख्त सजा का प्रावधान होना चाहिए। ऐसे लोगों का सामाजिक बहिष्कार करना चाहिए। धार्मिक एवं पूजा स्थलों को पवित्र रखना पड़ेगा। ये भाईचारे की भावना बढ़ाने में सहायक बने।

श्री गुप्त जी के ये शब्द- 'नर हो न निराश करो मन को' सदैव याद रख कर भारत की उन्नति के लिए एकजुट होकर आगे बढ़ना है। भारत का भविष्य उज्ज्वल है। सुनहरा प्रभाव आने वाला है जहाँ प्रेम होगा, अपनत्व होगा तथा ईमानदारीपूर्ण व्यवहार होगा। हमारी सभ्यता-संस्कृति हमारे देश को विश्व को शिरोमणी बन कर ही रहेगा।

राष्ट्रीयता और बाल चेतना

राजनारायण चौधरी

देशभक्ति, राष्ट्रीयता एवं राष्ट्रसेवा की भारतीय परंपरा उतनी ही प्राचीन है जितने वेद। वास्तव में साम्राज्यवादी ब्रिटिश शासकों की यह सोची-समझी नीति थी कि भारतीयों को उनके गौरवशाली अतीत के ज्ञान से वंचित रखा जाय, संभवत: इसी कूटनीति का यह परिणाम रहा कि कतिपय राष्ट्र प्रेमियों ने यहाँ तक कह डाला कि भारत का सौभाग्य था कि वह अँग्रेजों और अँग्रेजी के संपर्क में आया, अन्यथा देश अज्ञान के अँधकार में ही डूबा रहता। यह तथ्य उल्लेखनीय है कि वैदिक युग में महर्षि अर्थव ने अपने 'भूमि सूक्त' का 'पृथिवी'। पृथ्वी सूक्त में अँग्रेजों के भारत आगमन से हजारों वर्ष पूर्व जन्मभूमि को माता का सम्मान देते हुए घोषणा की थी- 'माता भूमि: पुत्रोहम पृथिव्या:'- भूमि मेरी माता है और मैं पृथ्वी का पुत्र हूँ। भूमि सूक्त के साथ उन्होंने देश की समृद्धि और संपन्नता के हेतु कृषि सूक्त, वर्षा सूक्त, गौ सूक्त एवं गोष्ठ सूक्त द्वारा देशभक्ति की अति उदात्त और सर्वथा अनुकरणीय भावनाओं की अभिव्यक्ति की।

अथर्ववेद में राष्ट्र और राष्ट्रीयता की अवधारणाओं का विकसित रूप प्राप्त होता है। विद्वानों का कथन है कि 'भक्ति सूक्त' द्वारा मातृभूमि की कल्पना मानव इतिहास में अभूतपूर्व और असाधारण महत्व की है। अथर्ववेद ही क्यों? ऋग्वेद में भी राष्ट्रीयता की भावनाओं का भरपूर समावेश है। प्राचीन ऋषि भी राष्ट्र की रक्षा और राष्ट्रीयता की भावनाओं को सुदृढ़ करने के लिए सदैव तत्पर और सक्रिय रहते थे। श्री राम वन गमन के समय जब तीर्थराज प्रयाग में भरद्वाज जी से परामर्श हेतु उनके आश्रम गए और उनसे मार्गदर्शन के लिए अनुरोध किया तो ऋषि ने उन्हें दक्षिण की ओर जाने को कहा, वन तो निकटवर्ती हिमालय में भी थे। दरअसल उन दिनों सारा दक्षिण भारत राक्षसों के भय से आक्रांत था और राम जैसे तपस्वी बलवान धनुर्धारी से ही उन राक्षसों का दमन संभव था। अत: उनके दक्षिण की ओर भेजने में देश-कल्याण की भावना निहित थी।

रामायण ही नहीं महाभारत में भी ऐसे अनेक प्रसंग आते हैं जिनमें राष्ट्रीयता की उदात्त भावनाओं का परिचय मिलता है। एक अवसर पर देश की अखंडता की रक्षा हेतु पांडवों ने यह घोषणा की थी कि हमें केवल पाँच न समझो, हम सौ और पाँच मिलकर देशहित में एक सौ पाँच हैं।

रामायण और महाभारत के बाद भी राष्ट्रीय भावनाओं की अजस्र धारा बराबर प्रवहमान है। विष्णुगुप्त चाणक्य के सहयोग, समर्थन और सुमंत्रणा से चंद्रगुप्त मौर्य समूचे देश के चक्रवर्ती सम्राट के पद पर प्रतिष्ठित हुए।

वैसे सम्राट अशोक के बाद देश अनेक छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त हो गया तथापि राष्ट्रीय भावनाओं में कोई कमी नहीं आई। देश के चारो धामों की यात्रा में यही राष्ट्रीय भावना विद्यमान है। आधुनिक युग में महर्षि दयानंद सरस्वती के आर्य समाज आंदोलन का योगदान भी राष्ट्रीयता की भावना को अक्षुण्ण रखने में कम नहीं है। इसके बाद तो अँग्रेजों की दासता से देश को मुक्त कराने में वीर कुँवर सिंह, रानी लक्ष्मीबाई, सुभाष चंद्र बोस, चंद्रशेखर आजाद, वीर भगत सिंह, चंकी पाण्डेय आदि के बलिदानों को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता।

सचमुच राष्ट्रीय भावना मनुष्य के अंतर की वह जीवनी शक्ति है जो किसी भी राष्ट्र को दुनिया में सम्मान और गौरव दिलाने के लिए आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य भी है और वही मनुष्य राष्ट्र जननी की सुपुत्र कहलाने का सच्चा हकदार है जिसकी रग-रग में राष्ट्रीयता रची-बसी है।

किंतु स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् सत्ता के लोभ में, पद और पैसे की चकाचौंध में देश और राष्ट्र की उस गरिमा का क्षरण होते देख हम निश्चय ही उस आशंका से भयभीत हैं कि कहीं फिर देश गुलामी की जंजीर में न जकड़ जाय। हमारे यहाँ ऐसे भी लोग हैं जो आतंकी संगठन से सांठगांठ कर धन तो कमा रहे हैं पर राष्ट्र की अस्मिता पर घोर प्रश्न चिन्ह लगा रहे हैं। ऐसी स्थिति में हम समस्त देशवासियों के लिए गंभीर रूप से सोचने और चिंतन करने का समय आ गया है कि हम कैसे उन विघटनकारी तत्वों से निजात पा सकें। उम्र से बड़े लोग जो अपने जीवन को गलत दिशा में ढाल चुके हैं उनसे हम आशा नहीं रखते कि वे अपनी भावनाओं को बदल पाएँ। हाँ, उनसे सचेत रहना और उनकी दुर्भावनाओं को फलीभूत न होने देना हमारा अनिवार्य कर्त्तव्य अवश्य बन गया है।

हाँ, नई पीढ़ी के बच्चों में पवित्र देशप्रेम की भावना को विकसित करना निहायत जरूरी जान पड़ रहा है ताकि वे अभी से राष्ट्रीयता के यज्ञ में अपनी आहुति देकर गलत दिशा में जाने से बच सकें। अन्यथा यदि आने वाली पीढ़ी भी इन तथाकथित नेताओं के मार्ग का अनुसरण करना शुरू कर दें तो उस महानाश से हमें कोई बचा नहीं सकता जिसके भय से हम आतंकित हैं। और उन बच्चों पर ही आशा बनाएं कि वे देश और राष्ट्र की अस्मिता को बचा पाने में सक्षम हो सकेंगे।

यह अत्युक्ति नहीं कि आज के बच्चे ही कल के पहरेदार होंगे, देश के रहनुमा होंगे। वे ही बड़े-बड़े उत्तरदायित्वपूर्ण पदों पर प्रतिष्ठित होंगे। इसलिए वे योग्य नागरिक ही नहीं देश के समर्थ रक्षक बनें, इस ओर हम

सभी प्रबुद्धजनों को ध्यान देना चाहिए। बच्चे बुजुर्गों से अधिक संवेदनशील होते हैं। उनकी चेतना में जो बात घर कर जाती है वह जल्दी नहीं निकल पाती। यह मात्र संयोग नहीं है कि शिवाजी ने अपनी बहादुरी से मराठा राज्य को संयोग कायम करने में सफलता हासिल की और अँग्रेजी हुकूमत के छक्के छुड़ा दिए। कौन नहीं जानता कि शिवाजी को उनकी माता ने बचपन में ही बहादुरी के किस्से सुना-सुनाकर वैसा बाँकुरा बनाया था? वहीं महाराणा प्रताप ने घास की रोटी खाकर दुश्मन से लोहा लेने में अपनी क्षमता का प्रयोग किया वह बचपन से ही मिली राष्ट्र प्रेम की शिक्षा का परिणाम था।

अब आज के बच्चों में से ही हमें चंद्रशेखर आजाद, सुभाषचंद्र बोस, खुदीराम, भगत सिंह तैयार करने की जिम्मेदारी आ गई है। उक्त वीर युवकों ने अँग्रेजी सल्तनत के विरूद्ध होने वाले आंदोलनों में वैसी भागीदारी निभाई और हँसते-हँसते वे फाँसी के तख्ते पर झूल जाने में जो अपूर्व सुख का स्वाद चखा उसके पीछे बचपन से ही पूर्ववर्ती आंदोलनकारियों की जिजीविषा का गहरा प्रभाव पड़ना ही एकमात्र कारण था।

क्या हम यह नहीं महसूसते कि उस समय के स्वतंत्रता के आंदोलन में साहित्य ने विशेषकर बाल साहित्य ने अपनी खास भूमिका अदा की थी? निश्चय ही मैथिलीशरण गुप्त का 'भारत भारती' ने जो बिगुल फूँका, माखन लाल चतुर्वेदी के राष्ट्रीय गीतों में जो फुंकार सुनाई दी उसने बालकों और किशोरों के मन को झकझोर दिया था। माखन लाल चतुर्वेदी की कविता का यह अंश-

'मुझे तोड़ लेना बनमाली, उस पथ पर देना तू फेंक।
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने जिस पथ जाएँ वीर अनेक।।
(पुष्प की अभिलाषा)

किसके हृदय के तारों को झंकृत नहीं करता है? श्याम लाल पार्षद की कविता की यह पंक्ति बच्चे बच्चे के जवान पर गुंजित होती रहती थी-

झंडा ऊँचा रहे हमारा।
विजयी विश्व तिरंगा हमारा।

इसी तरह गुप्त जी की कविता का यह अंश क्या कम झकझोरता है?

'जिसको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है
वह नर नहीं, नर-पशु निरा है और मृतक समान है'

जय शंकर प्रसाद के प्रयाण गीत 'हिमाद्रि तुंग शृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती' ने भी किशोर आंदोलनकारियों में अभूतपूर्व जोश भरा था।

महाप्राण निराला की कविता जागो फिर एक बार में भी यही प्रेरणा दी गई थी। वहीं सुमित्रानंदन पंत के जन जन भारत, जन-जन अभिमत, जय गणतंत्र विधाता, ने भी राष्ट्रीयता की भावना भरने में महत्वपूर्ण योगदान किया था। माधव शुक्ल ने गोली से होली खेलने की प्रेरणा दी थी। कवि नवीन ने भी अपने गीतों में राष्ट्रीयता का वह मंत्र फूँका था कि समूचे देश में उथल-पुथल मच गई थी। इसी तरह कवि सोहन लाल द्विवेदी के 'वंदना के स्वरों' में बलि की पवित्र महक समाई थी। इसी तरह सुभद्रा कुमारी चौहान की कविता 'खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसीवाली रानी थी' ने देशभक्ति की अनूठी अलख जगाई थी। रामवृक्ष बेनीपुरी की कविता की पंक्ति, सब प्रकार से सुंदर सुख कर सरस सुहावन मेरा देश आज भी राष्ट्र प्रेम की प्रेरणा देती है। बच्चों की ही पत्रिका बाल सखा के संपादक गिरिजा दत्त शुक्ल गिरीश ने अपनी एक कविता में लिखा था-

यही हिमालय सा पहाड़ है, यही गंग की धारा है।
यमुना लहराती है सुंदर भारत कितना प्यारा है?

रामधारी सिंह दिनकर ने अपनी एक कविता में कैसा जोश उभारा था इसे देखें- 'सिंहासन खाली करो कि जनता आती है।'

स्वाधीनता के बाद भी खूब राष्ट्रीय और देशभक्तिपूर्ण कविताएँ लिखी गई हैं जिनसे बच्चे प्रेरणा लेकर अपना सर्वस्व देश के प्रति समर्पित करने को तैयार हो जा सकते हैं। जरूरत है कि हम धन, पद और प्रतिष्ठा को दांव पर रख कर अपने बच्चों को देशभक्त बनाएँ, राष्ट्रीयता की भावना को उनके हृदय में भरे ताकि वे सच्चे स्वाभिमानी भारत के निर्माण में जुट जाएँ। भविष्य उनके हाथों में है। कम से कम अब तो हमें उस भारतवर्ष को उन्नति के उस शिखर पर बिठा दें जिसकी कल्पना में लाखों बलिदानियों ने कभी अपना सर्वस्व निछावर कर दिया था। साहित्य के साथ-साथ बच्चों को स्कूलों में दी जाने वाली शिक्षा में भी हमें पारदर्शिता लानी होगी। बच्चे त्यागी, बलिदानी, स्वाभिमानी, ईमानदार, कर्तव्यनिष्ठ कैसे बन सकेंगे, हमें इस पर गंभीरता से ध्यान देना होगा। स्कूलों में राष्ट्रीयता के रंग में इस तरह रंग जाएँ कि उन पर आज के गंदे माहौल का कुछ असर न पड़ सके। उन्हें बाहरी दुश्मनों के साथ-साथ देश के भीतर के दुश्मनों से भी तो लड़ना है। और बाहरी दुश्मन से ज्यादा खतरनाक भीतरी दुश्मन होते हैं, जिसे नजरअंदाज नहीं किया जा सकता।

पंचायत राज्य व्यवस्था
डी. पी. महेश्वरी

सत्ता के विकेंद्रीकरण हेतु संविधान के 73वें संशोधन द्वारा पंचायतों को विस्तृत स्वरूप प्रदान करते हुए एक ठोस ढाँचा और दिशा दी गई। विनिर्दिष्ट शर्तो के अधीन पंचायतों को ऐसी शक्तियाँ और उत्तरदायित्व प्रतिनिर्धारित किए गये हैं जो उन्हें स्वायत्त शासन की संस्था के रूप में कार्य करने में समर्थ बनाती हैं। पंचायत ग्रामीण जीवन के संचालन में आर्थिक विकास एवं सामाजिक न्याय के लिए योजनाएँ तैयार करेंगी तथा उन्हें क्रियान्वित करेंगी। स्पष्टत: ग्राम्य विकास की हर महत्वपूर्ण विधा पंचायत के कार्यक्षेत्र के अधीन होगी।

पंचायतें सामाजिक, नैतिक एवं प्रजातांत्रिक रूप से न्यूनतम अवरोधों एवं रूकावटों के बिना कार्य कर सकें तथा गतिशील बनी रहें, इसलिए पंचायतों का कार्यकाल अधिकतम पाँच वर्ष रखा गया है। हर पाँच वर्ष के पश्चात् पंचायतों का आम निर्वाचन करना संवैधानिक व्यवस्था के अनुसार राज्यों के लिए बाध्यकारी है। पंचायतों का सम्यक एवं सुचारू निर्वाचन संपन्न कराने हेतु संविधान के अनुच्छेद 243 के द्वारा प्रत्येक राज्य में राज्य निर्वाचन आयोग के गठन की अवस्था की गई है।

'पंचायतों के लिए कराए जाने वाले सभी निर्वाचनों के लिए निर्वाचक नियमावली तैयार कराने का और इन सभी निर्वाचनों के संचालन का अधीक्षण, निर्देशन और नियंत्रण एक राज्य निर्वाचन आयोग में निहित होगा जिसमें राज्यपाल द्वारा नियुक्त किया गया एक राज्य निर्वाचन आयुक्त होगा।'

73वें संविधान संशोधन के अनुसरण के अधिनियमित बिहार राज्य में बिहार पंचायत राज्य अधिनियम 1993 दिनांक 23 अगस्त 1993 से प्रवृत्त हुआ है। इस अधिनियम की धारा 136 द्वारा बिहार राज्य निर्वाचन आयोग का गठन किया गया है। आयोग को निम्नलिखित प्रमुख दायित्व सौंपे गये हैं–

1. पंचायत निकायों के निर्वाचन हेतु निर्वाचक सूची तैयार करना,
2. निर्वाचनों के संचालन पर अधीक्षण, निर्देशन एवं नियंत्रण रखना
3. आयोग में राज्य निर्वाचन आयुक्त होते हैं जिनकी नियुक्ति तथा सेवा शर्तो एवं पदावधि नियमों का निर्धारण राज्यपाल द्वारा किया जाता है। राज्य निर्वाचन आयुक्त स्वतंत्र एवं निष्पक्ष रूप से, सरकार से प्रभावित हुए बिना,

पंचायत निर्वाचनों का संचालन कर सकें, इस हेतु राज्य निर्वाचन आयुक्त को अपने पद से उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को हटाए जाने की समान रीति अपना कर और समान आधार पर ही हटाए जा सकने का प्रावधान है।

4. बिहार पंचायत राज्य अधिनियम, 1993 एवं तत्अधीन गठित बिहार पंचायत निर्वाचन नियमावली, 1995 के प्रावधानों के अधीन राज्य-निर्वाचन आयोग द्वारा वर्ष 1996 में पंचायत निकायों का निर्वाचन संपन्न कराने की सारी तैयारी कर ली गई थी, किंतु माननीय उच्च न्यायालय, पटना के एक महत्वपूर्ण न्याय निर्णय के कारण उक्त चुनाव ऐन मौके पर स्थगित हो गये। मामला कानूनी पेचों में उलझ जाने के कारण वर्ष 1999 तक पंचायत निर्वाचन कराये जाने की दिशा में राज्य सरकार द्वारा कोई ठोस पहल नहीं की जा सकी। अंततः वर्ष 2000 के उत्तरार्द्ध में राज्य सरकार द्वारा कतिपय सीमाओं के अधीन पंचायतों का निर्वाचन कराने का निर्णय लिया गया, जिसके आलोक में वर्ष 2001 के शुरू में राज़्य निर्वाचन आयोग द्वारा पंचायतों का निर्वाचन कराया गया। जनसाधारण को उस वैधानिक परिदृश्य की जानकारी रहनी चाहिए जिसके अधीन राज्य निर्वाचन आयोग द्वारा वर्ष 2001 के पंचायत चुनाव कराए गये हैं।

5. बिहार में पंचायतों का आम निर्वाचन वर्ष 2001 : वैधानिक परिदृश्य-

(क) बिहार पंचायत राज्य अधिनियम, 1993 में पंचायत के प्रत्येक स्तर पर सदस्य पद हेतु अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति/पिछड़ा वर्ग एवं महिलाओं के लिए आरक्षण का प्रावधान है। इन संस्थाओं के प्रमुख (Chairperson) यथा ग्राम पंचायत के मुखिया, पंचायत समिति के प्रमुख एवं जिला परिषद के अध्यक्ष के पद हेतु भी आरक्षण का प्रावधान है। अधिनियम में ग्राम कचहरी के गठन तथा पंच एवं सरपंच हेतु आरक्षण के प्रावधान किए गए हैं। अनुसूची-1 के रूप में पिछड़े वर्गो की एक सूची भी अधिनियम में सम्मिलित है।

(ख) अधिनियम के उक्त प्रावधानों को माननीय उच्च न्यायलय, पटना में समादेश याचिका संख्या 3351/1994 एवं अन्य कई समरूप याचिकाओं के माध्यम से चुनौती दी गई। दिनांक 19.03.96 को पारित एक आदेश द्वारा माननीय उच्च न्यायालय, पटना ने पिछड़े वर्गो की एक सूची आरक्षण तथा ग्राम कचहरी के गठन से संबंधित प्रावधानों को असंवैधानिक घोषित करते हुए निम्नलिखित प्रेक्षण किया-

(i) अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति एवं पिछड़े वर्ग के लिए पंचायत

निर्वाचन के क्रम में आरक्षण किए जा सकते हैं, किंतु आरक्षण की यह सीमा मूल पदों के 50 प्रतिशत से अधिक नहीं हो सकती।

(ii) ग्राम पंचायत के मुखिया, पंचायत समिति के प्रमुख एवं जिला परिषद के अध्यक्ष के एकल पदों के लिए कोई आरक्षण नहीं किये जा सकते।

(iii) बिहार पंचायत राज अधिनियम, 1993 की धारा 13 की उप-धारा(1), धारा 15 का उप-धारा /(1), धारा 36 की उपधारा (1), धारा 30 की उपधारा 2(ए), धारा 63 की उपधारा (1) एवं धारा 65 की उपधारा 2(ए) के द्वारा किए गये आरक्षण प्रावधान 50 प्रतिशत की सीमा को पार कर जाते हैं, अत: ये असंवैधानिक हैं।

(iv) बिहार पंचायत राज अधिनियम, 1993 के अध्याय-1 की धारा 88 के अंतर्गत ग्राम कचहरी का गठन असंवैधानिक है, क्योंकि ग्राम कचहरी के सदस्यों के लिए जो कतिपय दीवानी एवं कतिपय फौजदारी मामलों की सुनवाई एवं पड़ताल करेंगे, कोई योग्यता निर्धारित नहीं की गई है।

(v)बिहार पंचायत राज अधिनियम, 1993 की अनुसूची-1 में अंकित पिछड़ी जातियों की सूची में ऐसी कई जातियाँ शामिल हैं, जो सामाजिक, शैक्षणिक, आर्थिक एवं राजनैतिक रूप से काफी आगे हैं एवं इन्हें पिछड़ा नहीं माना जा सकता है। इस सूची के पुनरीक्षण एवं पिछड़ी जातियों के पुनर्निर्धारण की आवश्यकता है ताकि वस्तुत: पिछड़े वर्गो को ही पंचायत निर्वाचन में आरक्षण का लाभ मिल सके।

(ग) पटना उच्च न्यायालय के उक्त आदेश के विरूद्ध राज्य सरकार द्वारा 1996 में सर्वोच्च न्यायालय में दो विशेष अनुमति याचिकाएँ दायर की गई, जो सम्प्रति एक संविधान पीठ के समक्ष विचारधीन है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा उपर्युक्त विशेष अनुमति याचिकाओं में दिनांक 19.08.2000 को निम्न अंतरिम आदेश पारित किया गया- 'Having heard tha learned counsel for the parties, we make it clear that there is no bar for holding elections to different panchayats in accordance with law. As it stands today, which will be subject to the final decision in the pending appeal.'

(घ) उपर्युक्त अंतरिम आदेश के आलोक में राज्य सरकार द्वारा वर्ष 2001 में निम्नलिखित आधार पर पंचायतों का निर्वाचन संपन्न कराने की अनुशंसा राज्य निर्वाचन आयोग से की गई-

(i) बिहार पंचायत राज अधिनियम, 1993 में तत्काल कोई संशोधन नहीं किया जाएगा, 'अर्थात पिछड़ी जाति के लिए आरक्षण एवं पिछड़ी जातियों का

पुर्ननिर्धारण, एकल पदों पर आरक्षण, सरपंच के लिए शैक्षणिक योग्यता के निर्धारण के संबंध में विशेष अनुमति याचिकाओं के निपटारा होने तक कोई कार्रवाई नहीं की जायेगी।

(ii) पंचायत निर्वाचन में तत्काल अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति एवं महिलाओं के लिए ही अधिनियम में अंकित वर्त्तमान प्रावधानों के अनुसार आरक्षण रहे।

(iii) पिछड़ी जातियों के लिए कोई आरक्षण नहीं किया जाएगा। पंचायत निर्वाचन के परिप्रेक्ष्य में अधिनियम की अनुसूची-1 तत्काल मान्य नहीं होगी।

(iv) ग्राम कचहरी एवं सरपंच के पदों के लिए तत्काल कोई निर्वाचन नहीं कराया जाएगा।

(v) वर्त्तमान में ग्राम पंचायत के मुखिया तथा ग्राम पंचायत, पंचायत समिति एवं जिला परिषद के सदस्यों के लिए ही निर्वाचन संपन्न कराए जायेंगे।

(vi) ग्राम पंचायत के मुखिया, पंचायत समिति के प्रमुख एवं जिला परिषद के अध्यक्ष के एकल पद के लिए कोई आरक्षण लागू नहीं होगा।

(vii) उक्त निर्वाचन हेतु राज्य सरकार द्वारा निर्गत अधिसूचना में स्पष्ट कर दिया गया है कि 'निर्वाचन वर्त्तमान विधि के अनुसार कराए जा रहे हैं, जो विचारण हेतु लंबित विशेष अनुमति याचिका (सिविल) संख्या 9724-9728/1996 और 9819-9825/1996 में भारत के सर्वोच्च न्यायालय के अंतिम निर्णय के अध्यधीन होगा और उक्त अपील में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा उद्घोषित विधि के अनुसार समुचित कार्रवाई करने का अपना अधिकार राज्य सरकार सुरक्षित रखती है।'

6. सरकार की अनुशंसा के आलोक में राज्य निर्वाचन आयोग द्वारा वर्ष 2001 में छः चरणों में पंचायतों का आम निर्वाचन तथा वर्ष 2002 एवं 2003 में रिक्त पदों के लिए उप-चुनाव कराये गये जिसके फलस्वरूप 38 जिला परिषदों, 530 पंचायत समितियों एवं 8471 ग्राम पंचायत जन आकांक्षाओं के जीवंत प्रतीक के रूप में राज्य के पटल पर अस्तित्व में आ गई। इन पंचायत निकायों से करीब 1.37 लाख जनप्रतिनिधि निर्वाचित होकर आए हैं, जिनमें लगभग 45 हजार महिलाएँ हैं। निर्वाचित महिलाओं में से लगभग 10045 महिलाएँ अनुसूचित जाति/ जनजाति वर्ग की है। ग्राम पंचायत, पंचायत समिति तथा जिला परिषद के सदस्यों के पद हेतु तो महिलाओं के लिए 33 प्रतिशत आरक्षण प्रावधान बिहार पंचायत राज अधिनियम,

1993 में है, पर इन निकायों के अध्यक्षों, यथा-ग्राम पंचायत के मुखिया, पंचायत समिति के उप-प्रमुख एवं 86 महिलाएँ ग्राम पंचायत मुखिया के रूप में अपने दम पर जीत कर आई हैं। यह महिलाओं में बढ़ती जागरूकता तथा उनके प्रति समाज के बदले हुए दृष्टिकोण का परिचायक है।

7. पंचायत चुनाव के पहले बड़े पैमाने पर यह भ्रांति फैली कि चुनावों में व्यापक हिंसा एवं धांधली होगी तथा बाहुबली निर्वाचन प्रक्रिया पर हावी रहेंगे। सारी आशंकाओं को निर्मूल साबित करते हुए राज्य निर्वाचन आयोग में सुव्यवस्थित ढंग से पंचायत निर्वाचनों का संचालन एवं नियंत्रण किया। किसी भी कोने से आयोग की निष्पक्ष, निर्भिकता एवं विश्वसनीयता पर कोई प्रश्न नहीं उठा, जो आयोग के लिए अत्यंत संतोष की बात है। इससे आयोग का उत्साह बढ़ा है तथा भविष्य के निर्वाचनों की चुनौतियों का दक्षतापूर्वक सामना करने की शक्ति प्राप्त हुई है।

8. निर्वाचनों के पश्चात् उपर्युक्त स्तर पर पंचायतों का गठन हो जाने के बाद सरकार/राज्य निर्वाचन आयोग के सामने ऐसी शिकायतें आई कि कई पदधारक विहित अहर्त्ता नहीं रखते हुए भी गलत शपथ-पत्र देकर तथ्यों को छुपाकर निर्वाचित हो गये हैं, फलतः पदधारण करने के अयोग्य हैं। बिहार पंचायत राज अधिनियम, 1993 की धारा 139(2) के अधीन राज्य सरकार द्वारा राज्य निर्वाचन आयोग को अयोग्यता के बिंदू पर निर्णय लेने हेतु सक्षम प्राधिकार घोषित कर दिये जाने पर आयोग ने ऐसे मामलों को काफी गंभीरता से लिया तथा विधिवत सुनवाई कर अब तक विभिन्न स्तरों पर 104 पंचायत प्रतिनिधियों को पदधारण करने अयोग्य करार देते हुए उन पदों को रिक्त घोषित कर दिया। आयोग द्वारा कालक्रम में ऐसे रिक्त पदों के विरूद्ध उप-चुनाव भी संपन्न कराये गये तथा भविष्य में कराये जाते रहेंगे। आयोग की इस कार्रवाई से ऐसे तत्व भविष्य में निश्चय ही निरूत्साहित होंगे तथा पंचायत व्यवस्था में सही व्यक्तियों का प्रवेश सुनिश्चित होगा।

9. पंचायत निर्वाचनों का संचालन बिहार पंचायत निर्वाचन नियमावली, 1995 के प्रावधानों के अनुसार किया जाता है। वर्ष 2001 के निर्वाचन में आयोग के सामने कई ऐसी व्यावहारिक समस्याएँ सामने आईं जिन्हें उक्त नियमावली में स्पष्ट नहीं किया गया। आयोग द्वारा स्वविवेक से उन समस्याओं का निराकरण कर संगत दिशा-निर्देश निर्गत किये गये, पर आयोग का मानना है कि उक्त नियमावली के तिपय प्रावधानों में संशोधन करने तथा स्पष्टता लाने की नितांत आवश्यकता है। आयोग द्वारा इस संबंध में अनुशंसित संशोधन

प्रस्तावों से राज्य सरकार सहमत है तथा इन्हें शीघ्र ही अधिसूचित कर दिये जाने की संभावना है। निर्वाचन नियमावली में उक्त संशोधनों से आयोग भविष्य के पंचायत निर्वाचनों का संचालन अधिक स्पष्टता एवं सुगमता से कर सकेगा।

10. बिहार पंचायत राज अधिनियम, 1993 का धारा 136 की उपधारा-3 के प्रावधानों के अनुसार राज्य निर्वाचन आयोग को सौंपे गये कृत्यों के निष्पादन के लिए आयोग के अनुरोध पर, राज्य सरकार को आवश्यकतानुसार स्टाफ उपलब्ध कराना है। राज्य सरकार का इस दिशा में सहयोग प्रशंसनीय है। पर पिछले पंचायत निर्वाचन में कई पदाधिकारियों/कर्मियों द्वारा आयोग के दिशा-निर्देश के अनुरूप कार्य नहीं किये गए तथा अपने कर्त्तव्यों के निर्वह्ण में ईमानदारी एवं पारदर्शिता नहीं बरती गई, फलस्वरूप कहीं-कहीं विषम परिस्थिति उत्पन्न हुई तथा निर्वाचनों को रद्द कर देना पड़ा। आयोग को ऐसे व्यक्तियों/कर्मियों पर अपने स्तर से सीधे कार्रवाई करने का अधिकार नहीं रहने के कारण ऐसे व्यक्ति यथोचित एवं त्वरित दंड पाने से बच जाते हैं।

11. पंचायत राज व्यवस्था को उनके प्रतिनिधि ही प्रभावकारी बना सकते हैं। प्रतिनिधि सही व्यक्ति हों एवं उनमें अपने क्षेत्र का विकास करने का जज्बा हो, तभी स्वायत्त शासन की अवधारणा फलीभूत हो सकती है। स्वतंत्र एवं निष्पक्ष चुनाव के जरिए सही व्यक्तियों को व्यवस्था में काबिज करना राज्य निर्वाचन आयोग की अहम जिम्मेवारी है। बिना जिम्मेवार एवं सुदृढ़ राज्य निर्वाचन आयोग के पंचायतराज की धूरी अत्यंत निर्बल हो जाएगी।

राष्ट्र और राष्ट्रीयता
प्रह्लाद् श्रीमाली

राष्ट्रीयता का अर्थ शब्दकोष में लिखा है किसी राष्ट्र का विशेष गुण, देश के प्रति उत्कट प्रेम, देश भक्ति आदि लेकिन राष्ट्रीयता के मामले में इतने भर से संतोष नहीं होता। ज्यादा सोचने पर पता चलता है राष्ट्रीयता की परिभाषा भी कविता की तरह पेचीदा है, जिंदगी की तरह उलझी हुई, रहस्यमयी सी। इधर राष्ट्रीयता के अर्थ बदले हैं, जटिल हुए हैं। इसके आयाम अनोखापन छू रहे हैं। कौतुहल जगा रहे हैं। हम लचीली सुरक्षित राष्ट्रीयता चाहने लगे हैं। यह आजादी के उदंड उपभोग की तासीर है। नेपोलियन बोनापार्ट ने स्वाभिमानपूर्वक कहा था, मेरा वंश मेरे साथ शुरू होता है। हम दंभपूर्वक मानते हैं, हमारी राष्ट्रीयता हमारे साथ शुरू होती है। हमारे साथ यानी हमारे स्वार्थो के साथ। यह अनावश्यक उत्तेजना पैदा करने के उद्देश्य से की गई आकर्षक तुलना नहीं है। यथासंभव चेतना के साथ चिंतन किया गया है। चाहें तो आप भी सहजता के साथ हो लें। सहमत होते देर नहीं लगेगी।

महात्मा गाँधी की राष्ट्रीयता उन्हें सब कुछ त्याग कर बिना कोई पद लिए जन साधारण की सेवा करने के लिए प्रोत्साहित करती थी। आज के नेता सत्ता तक पहुँचने के लिए आत्मप्रचार के ऊपर राष्ट्रीयता का लबादा ओढ़ने के लिए मजबूर हैं। राष्ट्रीयता का यह भावार्थ परिवर्तन जनमानस पर व्यापक प्रभाव डाल रहा है। मासूम, नादान और अवसरवादी आ़म जन भ्रम में है। वह किसकी राष्ट्रीयता अपनाए? कौन सी वाली राष्ट्रीयता उसके लिए सूटेबल रहेगी? वह जानबूझ कर आकर्षक प्रलोभन का शिकार होना चाहता है। वर्तमान नेतृत्व के लक्षण देखते हुए बलिदान से बिदकना वह अपना हक मान रहा है। जबकि राष्ट्रीयता कदम-कदम पर त्याग की माँग करती है। त्याग बलिदान का भोग किए बिना राष्ट्रीयता संपन्न शक्तिशाली नहीं हो सकती। जीवन से लेकर मामूली सुविधा तक जो भी त्याग बलिदान स्वेच्छा से किया जाता है, उसे सहर्ष स्वीकार कर राष्ट्रीयता संपन्न होती है। यह विचारणीय तथ्य है कि राष्ट्र की संपन्नता के लिए त्याग-बलिदान की इतनी गहरी आवश्यकता नहीं होती जितनी राष्ट्रीयता के लिए होती है।

नेता राष्ट्रीयता का मुद्दा उठाते हैं ताकि वे अंतरराष्ट्रीय फलक पर आसानी से चमक सकें। यानी राष्ट्रीयता अब भावना नहीं मुद्दा है, उद्देश्य नहीं बहाना है। और इस बहाने अपने राजनीतिक प्रतिद्वंद्वी पर निशाना है। जनता इन गतिविधियों से सुविधाजनक प्रेरणा लेती है। असहयोगी आचरण

रखते हुए प्रशासन की दुर्व्यवस्था पर कुढ़ना। वोट देकर कुर्सी पर बिठाने के बाद अनुकूलता का अभाव देख नेता को आवश्यक अनावश्यक कोसना। व्यवस्था के किसी अप्रिय निर्णय को राष्ट्र विरोधी मानते हुए उत्तेजित प्रतिक्रिया में सार्वजनिक संपत्ति यानी राष्ट्रीय संपत्ति को नुकसान पहुँचाना। सांप्रदायिकता की आँच में अपनी रोटी सेंकने की कुचेष्टा रखना। यह कुंठित, पीड़ित, अनैतिक आदमी की राष्ट्रीयता है। यहाँ कूढ़मगजी पर स्वार्थ और उन्माद हरदम हावी रहता है। किसी भी कीमत पर उल्लू सीधा करने की मानसिकतावाला नेता इन मनोरोगियों को हवा देता है। ऐसे माहौल में राष्ट्रीयता के संदर्भ में वीर शहीदों की याद में बरबस आँखें डबडबा जाती हैं और शर्म महसूस होती है।

राष्ट्रहित में यथासंभव नहीं, बल्कि अतिसंभव जो किया जा सकता है, वह हमारे महान शहीदों की राष्ट्रीयता है। नोच कर, झटक कर राष्ट्र से कुछ न हासिल करने का प्रयत्न हमारी राष्ट्रीयता है। इधर देश के जलवायु में एक विशेष गुण विकसित हो चुका है। प्रतिभावान छात्र राष्ट्र के भारी भरकम खर्च पर उच्च शिक्षा प्राप्त करके अपनी सेवाएँ विदेश को अर्पित करने के लिए उतावले रहते हैं। उनका व्यावहारिक तर्क है, वे यहाँ की तुलना में कई गुणा पैसा कमाकर राष्ट्र को समृद्ध कर रहे हैं। इस स्तर की राष्ट्र सेवा नहीं कर पाने वाले होनहार युवक कसमसा रहे हैं। जबकि फेरी लगाकर तिरंगे झंडे बेचने वाले को अलग शिकायत है। उसके अनुसार लोगों में राष्ट्रीयता की भावना घटती जा रही है। सरकार द्वारा स्वीकृति मिलने के बावजूद अधिकतर लोग अपने घरों, प्रतिष्ठानों पर राष्ट्रीय झंडा नहीं फहरा रहे। स्कूली छात्रों को भी राष्ट्रीयता का सबक सलीके से नहीं दिया जा रहा। तभी तो वे तीन रुपये खर्च कर आइसक्रिम खा लेंगे लेकिन एक रुपये में राष्ट्रीय झंडा नहीं लेंगे। झंडेवाला चाहता है देश में राष्ट्रीयता की बाढ़ आए। उसका तिरंगे झंडों का स्टॉक ब्लैक में बिके। देश का हर बूढ़ा-बच्चा देशप्रेमी बने। यह उसकी राष्ट्रीयता है एकदम व्यक्तिगत।

राष्ट्रीयता के प्रति एक तस्कर मौलिक तर्क है। वह देशवासियों को अपेक्षाकृत कम कीमत में विदेशी वस्तु उपलब्ध कराता है। यानी देशभक्ति से उसका भी नाता है। देशी आतंककारी की अपनी राष्ट्रीयता है। आतंक का दबाव बनाकर वह व्यवस्था को चुस्त-दुरूस्त रखता है। अधिक लापरवाह नहीं होने देता। तभी तो विदेशी आतंककारी घुसपैठिए मनमानी नहीं कर पाते। यहाँ तक कि देश से लूट कर स्विस बैंक में अरबों-अरबों रुपया जमा रखने वाले तत्व भी कभी पकड़े गये तो अपनी

राष्ट्रीयता सिद्ध करने से बाज नहीं आएँगे। राष्ट्रीयता के इस विशिष्ठ वातावरण में एक आम आदमी की क्या औकात। वह अपनी राष्ट्रीयता का दावा कैसे सिद्ध करे। उसे तो विधिवत राष्ट्रीयता का मतलब भी नहीं मालूम, क्योंकि आजादी के बाद से इस तरफ कोई गंभीर व्यापक कोशिश नहीं की गई। न सरकारों को फुरसत मिली न समाजसेवी संस्थाओं ने जरूरत समझी।

पुल के चढ़ाव पर एक मजदूर माल भरा ठेला खींचते हुए लथपथ हो रहा है। यह देखकर फुटपाथ पर चलता एक आम आदमी टाइप आदमी तुरंत उसकी ओर लपकता है और ठेले के पीछे से ठेलने लगता है। उसमें राष्ट्रीयता कूट-कूट कर भरी हुई है। यह जानकारी उस आम आदमी को देने की फुरसत किसी बुद्धिजीवी के पास नहीं है। तमाम बुद्धिजीवी फिलहाल राष्ट्रीयता को लेकर तगड़ी बहस करने के मूड में हैं। राष्ट्रीयता के प्रति सब के पास कई करारे तर्क हैं। इस ज्वलंत प्रश्न पर गंभीर गहन चिंतन है जिसे दूर-दूर तक उलीचने का मौका हासिल करना उनका राष्ट्रीय धर्म है।

सफाई कर्मचारी के निवेदन और चेतावनी के बावजूद शिक्षित किंतु फूहड़ गृहिणी तीसरी-चौथी मंजिल के अपने घर की खिड़की से पोलिथीन बैग में भरा कचरा नीचे सड़क पर फेंक देती हैं फिर साफ-सुथरे विदेशी यात्रा-वृतांत पढ़ कर पड़ोसिनों-सहेलियों की बैठक में शहर की गंदगी को कोसते हुए अपना विदेशी ज्ञान बघारती है। इसे राष्ट्रीयता का पाठ पढ़ाने के लिए विद्यालय खोलना व्यवस्था के बूते की बात नहीं। महानगर की कुटिल सास अपनी बहु के गर्भ का भ्रूण परीक्षण करवाती है, मादा भ्रूण को मरवाती है। फिर अपनी जागरूकता के मारे लड़कों की तुलना में कम होती जा रही लड़कियों की जन्म दर पर सार्वजनिक चिंता करने चली जाती है। कौन माई का लाल महाबली इस विषम-विदूषी सास के आसपास बेचारी राष्ट्रीयता को फटका सकता? वहाँ खुद राष्ट्रीयता पानी-पानी हो जाती है।

दूरदर्शन द्वारा संसदीय कार्यवाही का सीधा प्रसारण देखते हुए शिक्षित व संवेदनशील नौजवान का राष्ट्रीयता को लेकर व्यथित होना लाजिमी है। लेकिन राष्ट्रीयता के क्षेत्र में अपनी भूमिका चुनते समय वह भी सुविधाभोगी, समझौतवादी बनना व्यवहारिक मानता है। वैश्वीकरण के इस बाजारवादी दौर की भूलभूलैया में भटकते लोग आज राष्ट्रीयता नहीं अंतरराष्ट्रीयता की ओर आकर्षित हैं। यह सम्मोहन टूटन तक खाँटी राष्ट्रीयता को इंतजार करना पड़ेगा। अलबत्ता कामचलाऊ राष्ट्रीयता अपने पूरे उफान पर है।

मीडिया और राष्ट्रीयता

रमेश गुप्त नीरद

मीडिया का अर्थ है सूचना-संचार माध्यम और राष्ट्रीयता का राष्ट्र के प्रति प्रेम और कर्त्तव्य। दोनों का संबंध जनता से है। मीडिया संप्रेषण का सशक्त माध्यम है। यह न केवल देश-विदेश के समाचारों से हमें रू-ब-रू कराता है, बल्कि अपनी भाषा और शैली द्वारा सम्मोहित भी करता है। मीडिया शासक और शासित के बीच संवाद-मंच भी है। मीडिया अथाह जानकारियों द्वारा हमारा ज्ञान-संवर्द्धन तो करता ही है, मानवीय घटनाओं के प्रति हमारी संवेदनशीलता को भी जागृत करता है।

राष्ट्र का अर्थ समाज। वैदिक कथन है-'राष्ट्राणि वै विश:' अर्थात् विशद समाज ही राष्ट्र है। इस अर्थ में भारत एक राष्ट्र है। इसकी अनेक भाषाई, वैचारिक, सांप्रदायिक तथा जीवन-शैलीगत इकाईयाँ हैं जो इसके अवयव हैं। राष्ट्र अवयवी है, विविध इकाईयाँ अवयव और अवयवों का राष्ट्र के प्रति निष्ठावान होना, समर्पित होना राष्ट्र-विकास हेतु आवश्यक है, यही राष्ट्रीयता है- या कहें राष्ट्रीयता का भाव। राष्ट्र सदैव एक सांस्कृतिक इकाई होता है और इसी परिप्रेक्ष्य में हमें मीडिया का अवलोकन करना होगा।

मीडिया के दो प्रकार हैं- प्रिंट मीडिया और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया जिसमें अब इंटरनेट तथा वेबसाइट भी जुड़ गए हैं।

जनसंचार माध्यमों की बहुआयामी सामाजिक भूमिका है। राष्ट्र की अभेद्‌य व पवित्र संप्रभुता एवं भौगोलिक सीमाओं और सामाजिक-सांस्कृतिक अस्मिताओं के स्थायित्व में इनका अहम योगदान है।

भारत एक राष्ट्र है। यह अपनी संपूर्ण विविधताओ के साथ एक सांस्कृतिक इकाई है। इसकी विविधता इसकी एकता का सहज और अनिवार्य अंग है। भारत माता और भारत राष्ट्र ये दोनों ही सांस्कृतिक अवधारणा के दो पर्यायवाची नाम हैं। स्वतंत्रता संग्राम के दौरान इस अवधारणा को सशक्त बनाने में प्रिंट मीडिया ने अपनी ऊर्जा लगाई है।

बीसवीं सदी के प्रारंभ में मीडिया का लक्ष्य घटना के सत्य को शुद्ध रूप से जनता तक पहुँचाना था। संचार माध्यमों से संलग्न पत्रकार इस उद्‌देश्य को अपना धर्म समझकर उसे निर्भिकतापूर्वक संपन्न कर रहे थे। गाँधी जी, गणेश शंकर विद्यार्थी, माखनलाल चतुर्वेदी जैसे तपस्वी पत्रकार इसके उदाहरण हैं। अँग्रेजी दासता की बेड़ियों से जकड़े भारतवासियों

के हृदय में स्वाधीनता की अलख जगाने का महती कार्य प्रिंट मीडिया द्वारा ही संपादित हुआ। देश की आजादी के प्रति त्याग और उत्सर्ग की राष्ट्रीय भावना की प्रखर-ज्योति प्रज्ज्वलित करने में प्रिंट मीडिया ने क्रांतिकारी कार्य किए।

स्वतंत्रापूर्व भारत एक राष्ट्र और एक कौम का इतिहास है। राष्ट्रीयता की भावनाएँ लोगों में इस प्रकार व्याप्त थी जैसे अग्नि में ताप। भगत सिंह और सुखराम जैसे शहीदों की शहादत, नेताजी सुभाषचंद्र बोस की आजाद हिंद फौज और उनका यह कथन- 'तुम मुझे खून दो मैं तुम्हें आजादी दूँगा' महात्मा गाँधी का अहिंसात्मक आंदोलन सभी राष्ट्रीयता के सैलाब हैं। प्रिंट मीडिया ने इस सैलाब की धारा को जन-जन तक पहुँचाकर अँग्रेजी हुकूमत को विवश कर दिया भारत को स्वतंत्र करने के लिए। यह बात अलग है कि जाते-जाते वे अपनी चाल खेल गए और इस विशाल भूखंड को दो राष्ट्रों के रूप में बाँट गए।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् नेताओं की मानसिक सोच में बदलाव आया। स्वतंत्रतापूर्व मीडिया और राष्ट्र एक दूसरे के पूरक थे। स्वतंत्रता बाद मीडिया सरकारी मीडिया बन गया जिसका काम था राष्ट्र का निर्माण करना जिसका श्रोता या दर्शन नागरिक हुआ करता था। देश का नागरिक है वो जिसे हमें इनफार्मेशन देनी है, जानकारी देनी है और वह यह कि आपका विकास हो रहा है। विकास के आँकड़े साल दर साल बढ़ोत्तरी पर है, किंतु यथार्थ में जनता गरीबी, बेरोजगारी तथा अशिक्षा में निम्न पर निम्न। पिछले चालीस-पचास सालों से एक सरकारी मीडिया यही आब्जेक्टिव लेकर चलता रहा है इस देश में।

माध्यम विकसित हुए पहले प्रदर्शनात्मक और मुद्रण कला के विकास के बाद समाचार पत्र। लोकतांत्रिक देशों में समाचार पत्रों का उत्तरदायित्व कम नहीं होता। लोकतंत्र के प्रति संकल्पवान होना, अपने पाठकों की जागरूकता बनाए रखना एवं अपनी नीतियों का राजनीतिक धरातल पर स्पष्ट रखते हुए शासनतंत्र को दिशा देना, उसकी जिम्मेदारी है। समाचार-पत्रों से यह आशा की जाती है कि आकलन करते हुए शासकों को दायित्वबोध कराते रहें।

अब तो इलेक्ट्रॉनिक मीडिया ही आज के युग के पहचान बन गया है। बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में मीडिया की शक्ल बदली। वैश्वीकरण और उदारीकरण से मीडिया पूँजीवादी हो गया। इस पूँजीवादी मीडिया के लिए उसका श्रोता या दर्शक कंज्यूमर या उपभोक्ता हो गया। वो

उसका ग्राहक हो गया। उसको जो समाचार उसको देना या उसको जो चीज उसको देनी है वह इनफार्मेशन नहीं देनी है, उसको मनोरंजक कार्यक्रम देना है। जिन देशों में पूँजीवाद रहा है- वहाँ इस मीडिया की पूरी एप्रोच दूसरी है। यहाँ युद्ध को भी बड़ी मनोरंजक इवेंट बनाकर सीएनएन ने पेश किया। इसने समाचार की कवरेज की शैली को बदलकर एक नया बाजार निर्मित किया कि समाचार खबर भी बिक सकती है। खबर के लिए भी अच्छा बाजार है, लोगों को खबर एक नए तरीके से दी जा सकती है।

पूँजीवादी देशों की इसी एप्रोच को भारतीय मीडिया भी अपनाता जा रहा है। मानवीय गुणों पर इसका क्या प्रभाव पड़ेगा, राष्ट्रीय-हितों पर कितनी आँच आएगी उससे उसके कोई सरोकार नहीं। हमारे देश में मल्टी मीडिया चैनलों की जो बाढ़ आई है, उसने सरकारी मीडिया को इस कदर प्रभावित किया है कि वे संज्ञाशून्य से विदेशी चैनलों के कार्यक्रमों का भारतीयकरण कर उन्हें परोसने पर मजबूर हो गए। रही सही कसर हमारे दूरदर्शन-निर्माताओं ने पूरी कर दी अपने विवेकहीन और अतार्किक कार्यक्रमों के द्वारा, जिन्हें युवा पीढ़ी भी बड़ी रसिकता से देखती है और अपने जीवन में अनुभव करने का प्रयत्न करती है। इन परिस्थितियों में कहाँ से कहाँ से राष्ट्रीयता स्थिर रहे और कहाँ से प्रदर्शित हो। कुछ बुद्धिजीवियों ने तो 'राष्ट्र' पर ही आपत्ति उठानी शुरू कर दी है और जब राष्ट्र ही नहीं रहा तो किस खूंटे पर टंगी मिलेगी राष्ट्रीयता? भारत में बीसवीं सदी के उत्तरार्ध की राजनीति आदर्श या सिद्धांतों की न होकर सांप्रदायिकता, क्षेत्रीयता, भाषावाद, गठबंधन और मोर्चाबंदी की राजनीति हो गई जिसका लक्ष्य येन केन सत्ता प्राप्त करना रहा। राष्ट्र और राष्ट्रीयता दोनों ही इस राजनीति में खो गए।

मीडिया भी इसी आँगन में फल-फूल रहा है। मीडिया विकल्प के लिए करोड़पति बनाता है कभी तो कभी गोधराकांड तथा उसके बाद गुजरात नरसंहार, आगजनी, लूट-पाट की दुख भरी, मार्मिक घटनाओं को मनोरंजक तरीके से बार-बार प्रदर्शित कर अपनी रेटिंग बढ़ाता है। समुदायों के बीच बारम्बार प्रदर्शित इस फिल्म को देखकर किस प्रकार की प्रतिक्रिया पैदा हो सकती है अथवा यह किस प्रकार एक समुदाय विशेष को उकसा सकती है बदला लेने के लिए उन्हें मतलब नहीं। उन्हें तो खबर बेचनी है। इस प्रकार के घिनौने खेल आज की मीडिया की जिंदगी बन रहे हैं- परिणामस्वरूप राष्ट्रीयता मुँह छिपाये बैठी है किसी जयललिता, लालू, पप्पू या मोदी के राजमहल में।

राजनीति हो या मिडिया विश्वसनीयता के लिए आधार होते हैं आचरण, स्वभाव, संस्कार और निष्ठा। लोग विश्वसनीयता का विकल्प नहीं। पत्रकारिता, जिसका लक्ष्य कभी घटना को शुद्ध रूप से जनता तक पहुँचाना था, ने अपने को मीडिया में शामिल मान लिया है अर्थात् वह जनता के दु:ख दर्द में भागीदार न बनकर तमाशबीन हो गयी है।

देश आकंठ भ्रष्टाचार में डूबा है। बड़े-बड़े नेता, अफसर घोटाले पर घोटाले करते हैं, देश का धन लूटते हैं और उस धन-बल से बाहुबल खरीदकर सत्ता में टिकते हैं, मीडिया इन्हें हीरो बनाकर अपने चोखटे में इनके थोबड़े प्रदर्शित करता है, क्या राष्ट्रीय धर्म निभाने के लिए? क्या लोगों में राष्ट्रीय ज़ज़्बा पैदा करने के लिए या एक समाचार, एक घटना, एक खबर को मनोरंजक बनाकर बेचने के लिए? कारगिल में युद्ध के दौरान तथा उसके बाद युद्ध तथा सैनिकों से संबंधित ऐसे ऐसे प्रश्न उछाले जाते हैं कि क्षोभ पैदा होता है। आखिर ये आधुनिक पत्रकार क्यों अपने आपको अप्रतिम प्रतिभाशाली दिखाने पर तुले हुए हैं? यदि इतनी ही प्रतिभा या क्षमता है तो पीछे पड़े भ्रष्टाचार के दैत्य के पीछे और करें उसे नंगा ताकि जनता को खोया हुआ विश्वास मिल जाये।

किसी जमाने में नहीं, बीसवी सदी में ही ऐसे नेता, ऐसे लोग हुए हैं जिन्होंने विवाद झेले, निंदा सही, लेकिन अपना विश्वास नहीं गंवाया। उनकी हर बात पत्थर की लकीर होती थी। इन लोगों में पत्रकार, साहित्यकार, नेता सभी हुए हैं। लेकिन आज? मौका मुहाल देखकर नीति बदली जाती है, लोभ, लाभ या भय विचार को बदल देते हैं, कल के आतंकवादी और अपराधी आज नेता और देशभक्त हो जाते हैं। कानून बनते हैं, निरस्त होते हैं किसी भय से। अर्थनीति, पेटेंट नीति बनती हैं- बदलती हैं विश्व बैंक और मुद्राकोष के दबाव के कारण। इन विषयों पर मीडिया क्या कहता है, क्या नहीं कहता किसी लोभ या भय के कारण। इन सब दवाबों, लोभ तथा भय के बीच कहाँ है राष्ट्रीयता या राष्ट्रप्रेम या राष्ट्र-उत्सर्ग की भावनाएँ?

अपराध और आंतक, जो हमारी राष्ट्रीय त्रासदी है, के विरूद्ध प्रशासन क्यों चुस्त और दुरूस्त नहीं है और यदि नहीं है तो मीडिया क्या कर रहा है? कभी प्रेमचंद ने कहा था कि रास्ता दिखाने, रोशनी दिखाने की जिम्मेदारी पत्रकारिता पर है। जिम्मेदारी न निभाकर, क्या पत्रकार राष्ट्रीय कर्त्तव्य की इतिश्री नहीं कर रहा है?

जो पत्रकार विचार व विचारधारा से शून्य है वह सफल पत्रकार और सफारी पत्रकार तो जरूर बन सकता है, लेकिन एक अच्छा पत्रकार कभी नहीं बन सकता। और एक अच्छा पत्रकार ही राष्ट्र निर्माण की नींव का पत्थर हो सकता है।

आज जब असंस्कारी साक्षरों की भीड़ बढ़ी है, मानसिक आलस्य, कामचोरी और काहिली की प्रवृत्ति पनप रही है, नेता से लेकर सरकारी कर्मचारी तक व्यक्तिगत और सामूहिक उत्तरदायित्व का क्षरण हो रहा है संचार माध्यमों से इनके प्रतिकार की उपेक्षा नहीं है? राष्ट्रीय चरित्र के इस पतन को संचार माध्यम मूक दर्शक की भांति निहार रहा है। लोक निष्ठा का स्थान निज निष्ठा ले रही है और सामाजिकता पर वैयक्तिकता हावी होती जा रही है। संचार माध्यमों के माध्यम से हम आप तक घटनाएँ तो पहुँच रही हैं पहुँचती भी हैं, किंतु संवेदनाएँ मर चुकी होती हैं।

पत्रकारिता का प्रत्यक्ष एवं परोक्ष धंधाकरण किया जा रहा है। जब धंधाकरण की आँधी चल रही हो, सामाजिक सरोकार, सामाजिक उत्तरदायित्व एवं सामाजिक तथा राष्ट्रीय बोध सब पीछे छूट जाते हैं, प्रकाशविहीन हो जाते हैं। राष्ट्रीयता नाम की चिड़िया पर नहीं फड़फड़ाती मीडिया के इस बाजारीकरण में। भोगवादी सभ्यता और संस्कृति के प्रचार प्रसार के समक्ष भारतीयता निर्वासित है। व्यक्ति कम समय में अधिक दौलत बटोरना चाहता है चाहे उसके लिए भ्रष्टाचार की सुरंग से निकलना पड़े अथवा राष्ट्रीयता के शवों पर से गुजरना पड़े। शासक से शासित तक की यह दौड़ मीडिया बस प्रायोजित कर रहा है।

यह नहीं है कि समाज में संवेदनशील, ईमानदार, कुशाग्रबुद्धि, राष्ट्रभक्त और राष्ट्रप्रेमी लोगों का अकाल है, मगर संचार माध्यमों पर जिनका वर्चस्व है उनका ध्यान इनकी ओर जाता ही नहीं।

हमारे अंत:सत्त्व को जागृत करने के लिए, राष्ट्रीयता को फलित करने के लिए संचार माध्यमों का उपयोग किया जा सकता है बशर्ते इसमें उन लोगों की पैठ हो जो भारत को स्वरूप समझ और मान इसकी सेवा करने की भावना रखते हों। राष्ट्र सर्वोपरि है। राष्ट्र है तो हम हैं इन भावनाओं में जीते हों और इसके लिए किसी भी उत्सर्ग के लिए सदैव तत्पर हों।

राष्ट्रीयता के परिप्रेक्ष्य में प्रबुद्ध चेतना की फर्ज अदायगी का दौर

सिद्धेश्वर

हमारा देश इन दिनों अस्मिता के संकट और विखंडन की ताकतों से एक साथ जूझ रहा है। साथ ही नवउदारवादी व्यवस्था के दौर में भारतीय समाज की सामूहिक चेतना का स्तर जिस तेजी से गिरता जा रहा है वह चिंता का विषय है। आज जहाँ एक ओर हमारे यहाँ लोग राष्ट्रीय एकता की दुहाई देते नहीं थकते, वहीं दूसरी ओर बेशर्मी से ऐसे काम करते हैं जो राष्ट्रीय एकता की जड़ों पर प्रहार करने वाले हैं। समाज के लोग चाहे करोड़पति हों या तथाकथित प्रबुद्धजन निचले पायदान पर खड़ा व्यक्ति हो या गाँव का अशिक्षित वर्ग, वहशियाना व्यवहार एवं दरिंदगी एक ही तरह की दिखती है। त्रासद स्थितियों से गुजर रहे हमारे समय और समाज में अपराध की नई-नई प्रवृत्तियाँ जन्म ले रही हैं। यौन अपराध या महिलाओं के प्रति पुरुष दुराग्रह से भिन्न मौजूदा दौर में अब तो संबंधों के कथित सुरक्षा दायरे में घुसपैठ कर बाप अपने मासूम बच्चों एवं अपनी पत्नी की हत्या करने से भी बाज नहीं आ पा रहा है। इधर हाल के वर्षो में जो घटनाएँ घटीं उससे तो ऐसा लगता है कि सामूहिक चेतना का रोग व्यापक तौर पर विकसित हो गया है। भारतीय समाज की अपूर्णता यह चीख-चीखकर कर बता रही है कि सामूहिक चेतना का स्तर दिन-व-दिन निम्न होता चला जा रहा है। कहीं तीन माह की बच्ची अपने पिता अथवा चाचा के वहशिपन का शिकार हो रही है तो कहीं पाशविकवृत्ति के लोग अपने बच्चे को बाजार में बेच दे रहे हैं। मगर इसी भारतीय समाज में कहीं सामूहिक चेतना में गुणात्मक परिवर्तन दिखता है तो कहीं उसका विद्रूप चेहरा।

यह दौर है भरोसे के त्रासद अंत का, संबंधों और संवेदनाओं के लगातार छीजते चले जाने का। हिंसा के समाजशास्त्र का नया पन्ना यहाँ से खुलता है। इसके पीछे है वह सामाजिक सच जिसने जिंदगी को साधन, सुविधा, भोग और अर्थ की फांस में जकड़ लिया है जिसके आगे संबंधों का हर धागा कमजोर होता जा रहा है और जहाँ संवेदना का हर आग्रह बेमानी लगता है, क्योंकि समाज और राजनीति में हिंसा और मूल्यहीनता का बोलबाला है जिसने समाज को पीछे ढकेला है। राजनीति और व्यवस्था में बढ़ती हिंसात्मक प्रवृत्तियों के चलते आम आदमी आत्मकेंद्रित और समाज विमुख

होता जा रहा है। सच कहा जाए, तो परिवर्तन का मूल और दूरगामी अस्त्र अहिंसा ही हो सकता है। शांति और व्यवस्था का जन्म अहिंसा के गर्भ से ही संभव है, हिंसा से कदापि नहीं, किंतु यह सब होगा कैसे? यह सवाल प्रबुद्धजनों के दिमाग में कौंधना चाहिए। कुछ इन्हीं सब कारणों से देशवासियों में तेजी से ह्रास होती राष्ट्रीयता की भावना और समाज के प्रति प्रतिबद्धता की कमी ने इस देश के सजग नागरिकों को सोचने के लिए विवश किया है। प्राय: सभी क्षेत्रों में नैतिकता की गिरावट और रिश्तों में दरारों के चलते आज गंभीरता से यह विचार करने के लिए हम मजबूर हैं कि ऐसी विषम परिस्थिति में भगवान महावीर, गौतम बुद्ध, महात्मा गाँधी, महर्षि अरविंद, आचार्य श्रीतुलसी, स्वामी विवेकानन्द के विचारों और आदर्शों को कैसे मूर्तरूप दिया जाए और इसके लिए वैचारिक क्रांति कैसे लाई जाए। श्रुत और चेतना-संपन्न के साथ-साथ सद्चित्त व्यक्तियों का यह फर्ज बनता है कि आचार-व्यवहार के क्षेत्र में किसी प्रकार की शिथिलता न आने दें और प्रवाहपतिता से स्वयं को बचाएँ। रचनाकार, प्राध्यापक, विचारक एवं चिंतक लोग अपनी गतिविधियों से यदि हस्तक्षेप नहीं करते हैं तो स्थिति इतनी भयावह हो जाएगी कि फिर आप चाहकर भी उसे संभाल नहीं पाएँगे।

ऐसे वक्त मुझे याद आ रही हैं अनीस अंसारी की ये चार पंक्तियाँ जो समाज और राजनीति की मौजूदा हालात को बयां करती हैं-

लुटेरे मौज हाकिम हो गए हैं
समन्दर डर के खादिम हो गए हैं
हिफाजत किस तरह हो फस्ल-ए-जां की
कि बाड़े खुद ही मुजरिम हो गए हैं

मैं समझता हूँ कि आज देश में ऐसे लोगों की कमी नहीं है जो स्थिति को भली-भाँति समझते हैं और जिनके सक्रिय हस्तक्षेप से व्यापक फेर-बदल की गुँजाईश भी है। जरूरत केवल इस बात की है कि वे नकली कुहासेवाले खोल से बाहर आएँ।

मौजूदा दौर में एक तरह जहाँ विचारों और सिद्धांतों में हम देशवासी अधिक-से-अधिक उदार और सहिष्णु होने का दावा कर रहे हैं, वहीं दूसरी तरफ हमारे सामाजिक आचार-व्यवहार अत्यंत संकीर्ण होते जा रहे हैं और राष्ट्र के प्रति हमारा जो कर्तव्य है उससे विचलित होते चले जा रहे हैं। ऐसी विषम स्थिति में प्रबुद्ध एवं चेतनशील लोग ही आज के युवा वर्ग का

मार्गदर्शन कर सकते हैं और रोशनी दिखा सकते हैं जिसके बल पर वे सही निर्णय ले सकें तथा 'अयं निज: परोवेति' की भावना से लोग जी सकें। इसलिए समाज आज ऐसे उदार चरित्रवाले सज्जनों की खोज कर रहा है जिसके व्यक्तित्व में सामाजिक वेदनाओं, पीड़ाओं को मिटाने की क्षमता के साथ-साथ राष्ट्र के प्रति चेतना जाग्रत करने की क्षमता हों।

राष्ट्रीय मुख्यधारा से इस देश के जो लोग अपने आपको अलग-थलग महसूस कर रहे हैं अथवा आजादी के सत्तर साल से अधिक बीत जाने के बाद भी जिनकी झोपड़ियों में विकास की किरणें अभी तक नहीं आ पाई हैं उनमें चेतना जाग्रत करने तथा आम जनमानस को उद्वेलित करने का हर संभव प्रयास आज जरूरी है। इसके साथ ही रूढ़ियों एवं पाखंडों पर हमला करने, राजनीतिक दलों एवं उसके नेताओं की पोल खोलने तथा समाज विरोधी तत्वों एवं देशद्रोही ताकतों के खिलाफ आवाज उठाने का फर्ज चेतना-संपन्न व्यक्ति ही कर सकते हैं। गैर-बराबरी, शोषण-संघर्ष, दुख-दर्द और दमन के विरूद्ध आम आदमी को वाणी वे ही दे सकते हैं।

आप हमारी इस बात से सहमत होंगे कि आज हमारे सामने वैचारिक संकट अपने असली रूप में सारे नकाब झाड़कर खड़ा है। वैचारिक संकट का सबसे दरिद्र और दयनीय प्रदर्शन संस्कृति और साहित्य के साथ-साथ धर्म के ठेकेदारों एवं ताबेदारों द्वारा ही किया जाता रहा है। मौलिक चिंतन की अनुपस्थिति और बड़े सामाजिक एवं राष्ट्रीय आंदोलन के न होने के पीछे संभवत: धर्मप्राण संस्कृति है, जो भाग्य, भगवान, अवतारों में लौ लगाना सिखाती है। सभी वर्गो व वर्णो में इसके संस्कार समा गए हैं। फलस्वरूप सामाजिक गतिशीलता कुचल दी गई है। ऐसी स्थिति में प्रबुद्ध चेतन समाज का यह फर्ज बनता है कि वैचारिक धरातल पर झकझोरने और आंदोलन की मानसिकता तैयार करने में वे अपना योगदान दें और देश के संचालकों 'सूखे बाड़ में अग्नि की तरह सोयी' सुप्त चेतना को विचारों के माध्यम से जागृत करने और संघर्ष तथा रचना की दिशा में मोड़ने में वे अपनी भूमिका निभाएँ, क्योंकि मौजूदा दौर प्रबुद्ध चेतना की फर्ज अदायगी का दौर है। चेतना संपन्न व्यक्ति समष्टिवाद का पक्षधर होता है। इसलिए उसे बड़े हित के लिए छोटे हित का त्याग करना होता है और वह अपने आसपास के लोगों के दर्द सुनता है। आज प्रत्येक भारतीय एक निश्चित परिधि के अंदर ही सीमित हो गया है। सर्वाधिक त्रासद स्थिति यह है कि हमारा समाज इतने टुकड़ों में बँट गया है

कि एक संपूर्ण राष्ट्र की कल्पना भी व्यर्थ प्रतीत होने लगता है। पर हम शायद यह भूलते जा रहे हैं कि स्वस्थ समाज के बगैर एक समृद्ध राष्ट्र का निर्माण कतई संभव नहीं है जिसकी कल्पना लौह पुरुष सरदार वल्लभभाई पटेल, लाल बहादुर शास्त्री, नेताजी सुभाष चन्द्र बोस, देशरत्न डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, तिलक, गोखले आदि देशभक्त नेताओं ने की थी।

वर्तमान दौर में मानवीय मूल्यों का ह्रास जितना हुआ है उतना पहले कभी नहीं हुआ। यह तो पतन की पराकाष्ठा है, जहाँ नारकीय यातनाओं के अतिरिक्त कुछ भी शेष नहीं बचा है। ऐसी विषम स्थितियों से संवेदनशीलता ही हमें उबार सकती है और एक नए मानव का विकास कर मृतप्राय मानवता में नए प्राण फूँक सकती है। संवदेनशीलता ही समत्वभाव की आधारशिला है जिस पर शांत व सुखी मानव-जीवनरूपी भवन निर्मित होता है। यह समत्वभाव ही है जो प्रकृति की स्वार्थयिकता और बुद्धि को उदासीनता दोनों से मुक्त कर सकती है। इसके बाद ही मनुष्य में राष्ट्रीयता की भावना जाग्रत हो सकती है। आज मनुष्य स्वार्थलोलूप होकर सभ्यता और संस्कृति के साथ खिलवाड़ कर रहा है। अनैतिक आचरण और दुर्व्यसनों ने भारतीय समाज को विषमताओं के अँधकूप की ओर धकेल दिया है और जीवन एवं राष्ट्र के प्रति भौतिक दृष्टिकोण ने लोगों को स्वार्थान्धता के मकड़जाल में जकड़ लिया है।

भारतीय सामाजिक जीवन में स्नेह, सौहार्द और सद्भाव के दृश्य तो मिलते हैं। जरूरत केवल इस बात की है कि उसे पूर्वाग्रह से मुक्त होकर हम देखें। तभी आपको समूची दुनिया अपना कुटुम्ब सा प्रतीत होगी, मगर संस्कार और संस्कृति के अभाव में लोगों में घृणा, द्वेष, अलगाव, भेदभाव, शोषण, उत्पीड़न की वजह से आज मारकाट, लूटपाट, छीना-झपटी, तोड़फोड़ की प्रवृत्ति पनप गई है। दरअसल, मानव जाति को एकता के सूत्र में बाँधने वाले सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्य के स्थान पर विभाजन और खंडन करने वाली शक्तियाँ सिर उठा रही हैं। ऐसी स्थिति में राष्ट्रीयता की भावना आए तो कैसे? ऐसी भयावह स्थिति में प्रबुद्ध चेतना ही शक्ति-संचय, ज्ञानार्जन, सबकी भागीदारी और सहभागिता एवं सामूहिक विवेक का मार्ग दिखा सकती है। एक बार जनता जब जग जाएगी तो वह क्रांति पथ अपना लेगी और राष्ट्रीयता की भावना से ओत-प्रोत हो जाएगी। यह तभी संभव है जब प्रबुद्ध चेतना अपना फर्ज समझ सामने आए और सामाजिक माहौल को सकारात्मक बनाने का प्रयास करे।

बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड के पूर्व अध्यक्ष एवं सुप्रतिष्ठित पत्रकार श्री सिद्धेश्वर जी द्वारा सम्पादित 'राष्ट्रीयता के विविध आयाम' के दोनों भाग उल्लेखनीय कृतियाँ हैं विशेषत: भूमण्डलीकरण के फैलते सर्वग्राही दुष्परिणामों के सन्दर्भ में। भूमण्डलीकरण के प्रवर्त्तकों का मानना है कि अब राष्ट्रीयता की अवधारणा निरर्थक हो चली है। भूमण्डलीकरण, जो बाजारवाद का छद्म नाम है, पाश्चात्य चिन्तकों के अनुसार आर्थिक तथा सांस्कृतिक नवसाम्राज्यवाद का पर्याय है तथा परिचय के उत्पादों की खपत के लिए राष्ट्र की सीमा को बाधक मानता है। वह निर्बन्ध मुक्त व्यापार का ही हिमायती नहीं है, अपितु अपने उत्पादों के लुभावने विज्ञापन द्वारा विकासशील राष्ट्रों की सामाजिक-सांस्कृतिक सोच को भी आक्रान्त करना चाहता है। उन राष्ट्रों की अस्मिता को विखण्डित करना चाहता है।

– डॉ. ब्रह्मचारी सुरेन्द्र कुमार

देशभक्ति राष्ट्रीय भावना की आधारशिला है। देश की आजादी के पूर्व राष्ट्रीयता एक उमंग भर थी। केवल विदेशी शासन और अँग्रेजी साम्राज्यवाद के खिलाफ ही वह उमंग सीमित थी। उन दिनों राष्ट्रीयता के सामाजिक तथा आर्थिक मूलों की ओर लोगों का ध्यान सामान्यत: नहीं जा सका था, किंतु आजादी के बाद वाले भारत में यह बात अब स्पष्ट हो गई है कि राष्ट्रीयता की भावना, जो सामाजिक तथा आर्थिक मूलों से अनिवार्यत: जुड़ी हुई है, हमारी सामाजिक संरचना एवं हमारी संस्कृति की आंतरिक चेतना को नियंत्रित करती है। मुश्किल यह है कि हम देशवासियों के मन में आज राष्ट्रीयता की कोई स्पष्ट कल्पना ही नहीं है। यही कारण है कि यहाँ राष्ट्रीयता की भावना का बड़ी तेजी से ह्रास हो रहा है। सच तो यह है कि हमारी राष्ट्रीयता का मूल आधार है हमारा संविधान। उसकी प्रस्तावना में स्वतंत्रता और समता के साथ बंधुता का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि यह मूल्य व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्रीय एकता सुनिश्चित करने के लिए है। राष्ट्र की एकता तभी मजबूत हो सकती है जब देश में रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति को उचित सम्मान मिले और साथ ही हममें भाई-चारे का विकास हो।

– श्री टी. एन. चतुर्वेदी

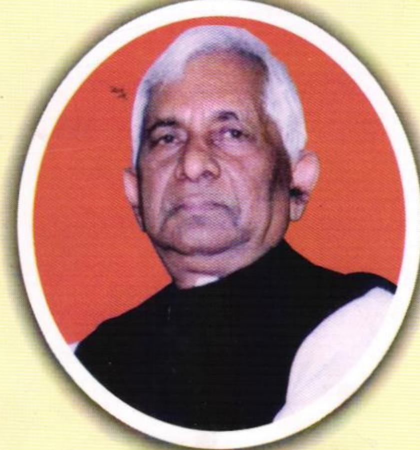

संपादक

सिद्धेश्वर

प्रकाशक – सरदार पटेल साहित्य प्रकाशन
दिल्ली–92